मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के

हिंदी विभाग में

पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

निर्देशक

डॉ. मीता शर्मा
(निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा)
सह आचार्य (हिंदी)
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज.)

शोधार्थी

रामरती माँजू
(पीएच.डी. 2014/34)
हिंदी विभाग

हिंदी विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2021

घोषणा शोधार्थी

मैं रामरती माँजू, शोधार्थी हिन्दी विभाग (पीएच.डी. 2014/34) यह घोषणा करती हूँ कि मेरा यह शोध–प्रबंध **'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन'**, जो मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, यह मेरा अपना शोधकार्य है। मैंने अपना यह शोध कार्य डॉ. मीता शर्मा, (निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा) सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर (राज.) के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा अपना मौलिक कार्य है। मैंने अपने अध्ययन द्वारा प्राप्त विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ पर आवश्यकतानुसार दूसरे विचारों का प्रयोग किया गया है, उन्हें मान्य स्रोतों से लिया गया है। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री जो इस शोध प्रबंध में प्रस्तुत की है, का यथास्थान संदर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है।

मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझती हूँ कि मेरे द्वारा किसी भी नियम–उल्लंघन पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है।

दिनांक – **शोधार्थी**
स्थान –

रामरती माँजू

प्रमाणित किया जाता है कि रामरती माँजू (पीएच.डी. 2014/34) द्वारा दी गई उपर्युक्त सभी सूचनाएँ मेरी जानकारी के अनुसार सही हैं।

दिनांक – **शोध निर्देशक**
स्थान –

डॉ. मीता शर्मा
(निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा)
सह आचार्य (हिंदी)
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज.)

शोध प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रामरती माँजू, शोधार्थी (पीएच.डी. 2014 / 34) हिंदी विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा प्रस्तुत शोध–प्रबंध **'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन'** मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में लिखा गया है। इस गवेषणात्मक प्रबंध के लिए इन्होंने अथक परिश्रम किया है। इनका यह कार्य पूर्णतया मौलिक एवं नवीन है।

मैं इस शोधकार्य को मूल्यांकन हेतु संस्तुत करती हूँ।

दिनांक – **शोध निर्देशक**

स्थान –

डॉ. मीता शर्मा
(निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा)
सह आचार्य (हिंदी)
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज.)

प्रमाण –पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि शोध प्रबंध **'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन'** शोधार्थी – रामरती माँजू (पीएच.डी. 2014/34) ने वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के हिंदी विभाग में पीएच.डी. के नियमानुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है –

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्सवर्क पूर्ण किया है।
2. शोधार्थी ने 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार समय–समय पर अपने कार्य का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है।
4. शोधार्थी ने विभाग व संस्थाप्रधान के समक्ष अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी द्वारा यू.जी.सी. से अनुमोदित शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन किया है।

मैं इस शोध प्रबंध को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. उपाधि प्रदत्त किये जाने हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करती हूँ।

दिनांक – **शोध निर्देशक**

स्थान –

डॉ. मीता शर्मा
(निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा)
सह आचार्य (हिंदी)
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज.)

कोर्स वर्क पूर्ण प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रामरती माँजू, शोधार्थी (पीएच.डी. 2014/34) हिंदी विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) से '**शोध प्रबंध मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन**' के विषय पर एक शोधार्थी के रूप में प्री–पीएच.डी. कोर्स वर्क (पीएच.डी के एक भाग व आवश्यकता के रूप में) पूर्ण किया हैं और सफलता पूर्वक परीक्षा पास की हैं, जो यू.जी.सी. के अनुसार पीएच.डी. कार्यक्रम का एक हिस्सा है। यह पीएच.डी विनियम, 2009 की भी अनुपालना करता हैं।

पाठ्यक्रम कार्य यू.जी.सी. विनियम (एम.फिल./पीएच.डी. डिग्री प्रदान करने के लिए न्यूनतम मानक और प्रक्रियाएँ), 2009 के अनुसार पूरा किया गया है।

दिनांक –
स्थान –

निदेशक

शोध विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, (राज.)

पूर्व पीएच.डी. सबमिशन प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रामरती माँजू, शोधार्थी (पीएच.डी. 2014/34) हिंदी विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) से शोध प्रबंध **'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन'** के विषय पर पूर्व पीएच.डी. संगोष्ठी की आवश्यकता को संतोषजनक ढंग से पूर्ण किया हैं, जो यू.जी.सी. के अनुसार पीएच.डी. कार्यक्रम का एक हिस्सा है। यह पीएच.डी विनियम, 2009 की भी अनुपालना करता हैं।

पूर्व पीएच.डी सबमिशन सेमिनार यू.जी.सी. के नियमों, (एम.फिल./पीएच.डी. डिग्री प्रदान करने के लिए न्यूनतम मानक और प्रक्रियाएँ) विनियम, 2009 के अनुसार दिया गया है।

दिनांक –
स्थान –

निदेशक

शोध विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, (राज.)

—: प्राक्कथन :—

साहित्यकार अपने सामाजिक परिवेश से संपृक्त होने के कारण अपने परिवेश का भोक्ता, युगद्रष्टा व मार्गदर्शक भी होता है। अपने सामाजिक परिवेश के साथ सार्थक संवाद करते हुए अपनी वाणी को कलम द्वारा पूर्ण सजगता के साथ, स्वयं की संवेदनशीलता व साहित्यिकसजगता के आधार पर साहित्याभिव्यक्ति करते हुए समाज में व्याप्त विषमताओं व विसंगतियों के प्रति आक्रोश व विद्रोह का भाव व्यक्त करता है। युगानुरूप समाज में होने वाले परिवर्तनों के साथ—साथ समाज की मान्यताओं व धारणाओं में भी बदलाव आता है, जिसका प्रभाव साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है। साहित्यकार व उसका साहित्य समाज से प्रभावित होने के साथ ही समाज में नये विचार, नये आदर्श व नई प्रेरणा प्रस्तुत करता है। हिंदी साहित्य में उपन्यास एक ऐसी विधा है, जिसमें ये सामाजिक सरोकार सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त होते हैं तथा समाज की सामाजिक—आर्थिक—सांस्कृतिक—राजनीतिक स्थिति के साथ—साथ परिवार व समाज में मनुष्य के रिश्तों व सामाजिक जगत का पुनः सृजन किया जाता है। बदलते सामाजिक संबंधों की गतिशीलता को प्रामाणिकता के साथ व्यक्त करने वाला सर्वाधिक सशक्त माध्यम है — उपन्यास।

स्वतंत्रता—पश्चात् उपन्यास विधा को समृद्धि प्रदान करने में महिला उपन्यासकारों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए समाज की विषमताओं, मूल्यहीनताओं तथा अन्तर्विरोधों को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। समाज के प्रति प्रतिबद्ध समकालीन उपन्यासकारों में प्रख्यात व प्रबुद्ध रचनाकार मृदुला गर्ग भी अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास को सर्वाधिक सशक्त माध्यम मानती हैं। इनके उपन्यासों में पारिवारिक—सामाजिक समस्याओं के साथ—साथ नारी—मन के अनछुए पहलुओं को स्पर्श करते हुए अपनी सामाजिक अनुभूतियों को सुविचारित व आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनके उपन्यास साहित्य में परिवार व समाज के बीच आज की नारी—अस्मिता को खोजते हुए राजनीतिक परिवेश, आर्थिक विषमता, शोषण, वर्गभेद, वर्ग—संघर्ष व विद्रोह, दांपत्य जीवन का तनाव, अन्तर्द्वन्द्व जैसी अनेक समस्याओं को सजगता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। स्त्री—पुरुष संबंधों की नई छवि गढ़ते हुए व दांपत्य—दांपत्येतर संबंधों का बेबाक वर्णन करते हुए समाज की सामाजिक—राजनीतिक—आर्थिक—सांस्कृतिक स्थितियों को उजागर किया है। सामाजिक संरचना की विखंडित होती छवि व जीवन—मूल्य के ह्रास को चित्रित करते हुए वैश्विक बाजारवाद व उपभोक्ता संस्कृति, नव औपनिवेशिक दौर में संयुक्त परिवार के टूटते स्वरूप के साथ—साथ नारी के बदलते स्वरूप तथा अन्य कई सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने में मृदुला गर्ग के उपन्यास उल्लेखनीय रहे हैं। इनके सातों उपन्यास समकालीन सामाजिक समस्याओं को पाठक वर्ग के समक्ष रखते हैं। अपने समय व समाज को, व्यक्ति की मानसिकताओं को जिस संवेदनशीलता के साथ मृदुला जी ने अपनी सशक्त—प्रभावी वाणी के द्वारा व्यक्त किया है, उसी को अपने इस अध्ययन द्वारा उद्घाटित करने का प्रयास किया है। मृदुला जी की औपन्यासिक विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध प्रबंध को उपसंहार के अतिरिक्त आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है —

प्रथम अध्याय :— 'समाजशास्त्रीय अध्ययन और साहित्य का समाजशास्त्र' के अंतर्गत समाजशास्त्रीय अध्ययन की अवधारणा व स्वरूप, साहित्य, कला और समाज का अन्तःसंबंध, साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की पद्धति और इतिहास, विविध दृष्टियाँ व सिद्धांत के साथ—साथ उपन्यास के समाजशास्त्र को विवेचित—विश्लेषित किया गया है।

द्वितीय अध्याय :– 'मृदुला गर्ग का व्यक्तित्व व कृतित्व' के अंतर्गत मृदुला गर्ग के जीवन–वृत्त पर विचार किया गया है। इनके व्यक्तित्व–कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। इनके जन्म, शिक्षा–दीक्षा, पारिवारिक संस्कार, सृजन–प्रेरणा, पुरस्कार व सम्मान तथा औपन्यासिक कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय :– 'मृदुला गर्ग की विश्वदृष्टि' के अंतर्गत उन विविध आयामों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो मृदुला जी के उपन्यासों के प्रेरक तत्त्व हैं। इनके व्यक्तित्व निर्माण व इनकी कृतियों में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनकी विश्वदृष्टि पर विचार करते हुए इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त परिवार–समाज, वर्ग–चेतना, लोकतांत्रिक परिवेश, मानवीय अस्मिता व मूल्य–बोध संबंधी इनकी दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय :– 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य' के अंतर्गत पारिवारिक व सामाजिक संदर्भ में नारी–विषयक दृष्टिकोण को व्यक्त किया गया है। नारी–शिक्षा व उन्नति के साथ–साथ नारी के बदलते स्वरूप, नारी–शोषण व विद्रोह को अभिव्यक्त करते हुए स्त्री–पुरुष संबंध व प्रेम–संकल्पना तथा पारिवारिक संरचना के विखंडन को विश्लेषित किया गया है।

पंचम अध्याय :– 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य' के अंतर्गत इनके उपन्यास साहित्य के संदर्भ में स्वतंत्रता–पश्चात् के मोहभंग के साथ–साथ राजनीति के ह्रासोन्मुख रूप, स्वातंत्र्य– संघर्ष के विविध पक्षों को उजागर करते हुए राष्ट्रीय चेतना के स्वर की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला गया है।

षष्ठ अध्याय :– 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का आर्थिक परिप्रेक्ष्य' के अंतर्गत मृदुला जी के उपन्यास साहित्य में चित्रित समाज की आर्थिक स्थितियों, वर्गभेद व वर्गीय चेतना, बालश्रम व शोषण, वाणिज्य व व्यापार के साथ–साथ वैश्विक बाजारवाद के कारण उत्पन्न उपभोक्तावादी संस्कृति को विवेचित–विश्लेषित किया गया है।

सप्तम अध्याय :– 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य' के अंतर्गत मृदुला जी की औपन्यासिक कृतियों में चित्रित सामाजिक मूल्यों–आदर्शों व परिवेश को विवेचित–विश्लेषित किया गया है। ग्रामीण व शहरी परिवेश पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन व नवीन विचारधाराओं के पारस्परिक संघर्ष व विवाह बंधन के खोखलेपन को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

अष्टम अध्याय :– 'कथ्य के विकास में सहायक रूप–सौष्ठव' के अंतर्गत मृदुला जी की औपन्यासिक रचनाओं में प्रयुक्त सशक्त व प्रवाहमयी भाषा–शैली का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इनकी शैलीगत विविधता को उजागर करते हुए संवाद–योजना, भाषा की संप्रेषणीयता व प्रतीकात्मकता पर प्रकाश डाला गया है।

अंतिम अध्याय :– 'उपसंहार' के अंतर्गत मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य की प्रासंगिकता व विशिष्टता के साथ–साथ उनकी कृतियों के सामाजिक योगदान को रेखांकित किया गया है। इनके उपन्यास साहित्य का मूल्यांकन व निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार के पश्चात् परिशिष्ट में संदर्भ–ग्रंथ सूची के अंतर्गत 'अधार ग्रंथ' तथा 'सहायक ग्रंथ' सूची संलग्न की गई है। हिंदी कोश, पत्र–पत्रिकाएँ व वेबसाइट्स की सूची प्रस्तुत की गई है, जो मेरे शोधकार्य में बहुत ही उपयोगी व सहायक रही हैं। अंत में शोधकार्य

के दौरान शोध–पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध आलेख सूची व उन सेमिनारों की सूची है, जिनमें मुझे पत्र–वाचन व भाग लेने का अवसर मिला।

मैं कृतज्ञता व आभार ज्ञापित करती हूँ मेरी शोध निर्देशक डॉ. मीता शर्मा, (निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा) सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर को, जिनके कुशल निर्देशन के कारण मैं अपना शोध प्रबंध का कार्य पूर्ण कर पाई। इनकी कृपा व आशीर्वाद मुझ पर सदैव बना रहे, ऐसी मैं आकांक्षा करती हूँ। इनका विद्वतापूर्ण निर्देशन, व्यक्तित्व–कृतित्व की मृदुलता व वाणी की मधुरता शोध प्रबंध लेखन के समय मेरे लिए प्रकाश स्तंभ रहे हैं। इसी क्रम में मैं डॉ. नवीन नंदवाना, सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे समय–समय पर शोधकार्य संबंधी महत्त्वपूर्ण तथ्यों से अवगत करवाया एवं मेरा मार्गदर्शन किया।

मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगी वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा के कुलपति महोदय माननीय प्रो. डॉ. रतनलाल जी गोदारा का, जिन्होंने मुझे अपनी छत्रच्छाया में प्रेरक प्रकाश स्तंभ के रूप में इस शोध कार्य को पूर्ण करने का अवसर प्रदान किया। शोध विभाग की निर्देशक डॉ. क्षमता चौधरी जी का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगी, जिन्होने ने समय–समय पर मुझे प्रोत्साहन व सहयोग प्रदान किया। मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगी श्री सुरेश कुमार जी सैनी, लिपिक द्वितीय श्रेणी, का जिन्होंने प्रारम्भ से ही भ्रातृत्व–भावना के साथ मेरे शोध कार्य के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों के समय मेरा पूर्ण सहयोग किया। विश्वविद्यालय के समस्त आचार्यों व कार्मिकों का, पुस्तकालय अध्यक्ष व पुस्तकालय के समस्त कार्मिकों का, राजकीय सार्वजनिक मण्डल पुस्तकालय, बीकानेर के मण्डल पुस्तकालयाध्यक्ष व कार्मिकों का, पुस्तकालय रतन बिहारी पार्क, बीकानेर के पुस्तकालयाध्यक्ष का, जिन्होंने मेरे शोध कार्य को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से मार्गदर्शन व सहयोग प्रदान किया। इसी क्रम में उन रचनाकारों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी कृतियाँ मेरे शोधकार्य का अवलंब बनीं।

मैं आभार व्यक्त करती हूँ अपने श्वसुर श्री रामकुमार जी मील व ममतामयी सास श्रीमती किताब देवी के प्रति, जिनसे मुझे स्नेहिल आशीर्वाद व प्रोत्साहन मिला। मैं सदैव आभारी रहूँगी अपने पूज्य पिताजी स्व. रामस्वरूपसिंह माँजू व पूज्या माता जी श्रीमती सुमित्रा देवी की, जिनके वात्सल्य भाव ने मुझे शिक्षा–दीक्षा के पथ पर उन्नति की ओर अग्रसर किया, उसी का परिणाम यह शोध कार्य है। उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता। प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य के प्रति मुझे उन्मुख करने का श्रेय मेरे जीवन साथी श्री रामरतन मील को जाता है, जिन्होंने मुझे इस कार्य हेतु निरंतर प्रोत्साहन, प्रेरणा व संबल प्रदान किया।

मैं अपने पुत्र रजत की भी आभारी हूँ, जिसके हिस्से के कुछ पलों को चुराकर मैंने इस कार्य को पूर्ण किया तथा साथ ही मैं अपनी भानजी रुचिका की भी आभारी हूँ, जिसने अपनी पढ़ाई के साथ–साथ घरेलू कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान कर इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया।

मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग व प्रेरणा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी क्रम में पीएच.डी. 2014 के शोधार्थी – वीरेन्द्र सिंह, विजेन्द्र व रवि के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे समय–समय पर सहयोग प्रदान किया।

मैं आभार व्यक्त करती हूँ श्री विष्णु जी राजपुरोहित एवं दीपक सिंह का जिन्होंने स्वच्छ व सुंदर टंकण कार्य के माध्यम से मेरे शोध प्रबंध कार्य को पूर्ण करने में अपना सहयोग दिया। मैं आशा करती हूं कि मेरा यह शोध कार्य जिज्ञासुओं, शोधार्थियों व साहित्य प्रेमियों के लिए उपयोगी हो सकेगा। मेरी दृष्टि से इस विषय को लेकर पूर्व में इस प्रकार का विवेचनात्मक अध्ययन नही हुआ है। यह शोध कार्य मेरा नवीन व मौलिक प्रयास है, जो विद्वजनों के समक्ष प्रस्तुत हैं। अंत में, मैं अपनी त्रुटियों के प्रति विद्वजनों से क्षमा–याचना करते हुए अपनी श्रम–साधना का यह सुमन अपने प्रेरणा स्रोत पूजनीय पिताजी स्व. रामस्वरूप सिंह माँजू को मन में व्याप्त उस विश्वास के साथ समर्पित करती हूँ, जिसने मुझे शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने व जीवन में सही मार्ग पर चलने का हौसला प्रदान किया।

दिनांक : **शोधार्थी**

रामरती माँजू

मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय : समाजशास्त्रीय अध्ययन और साहित्य का समाजशास्त्र 1–33

(क) समाजशास्त्रीय अध्ययन की अवधारणा व स्वरूप

(ख) साहित्य, कला और समाज का अन्तःसंबंध

(ग) साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : पद्धति और इतिहास

(घ) साहित्य के समाजशास्त्र की विविध दृष्टियाँ

(ङ.) साहित्य के समाजशास्त्रीय सिद्धांत

(च) उपन्यास का समाजशास्त्र

द्वितीय अध्याय : मृदुला गर्ग का व्यक्तित्व–कृतित्व 34–59

(क) व्यक्तित्व – जन्म व परिवार, शिक्षा और जीवन–संदर्भ

(ख) कृतित्व – कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, यात्रा–वृत्तांत व व्यंग्य–संग्रह

(ग) प्रेरक पृष्ठभूमि : चिंतन–अनुचिंतन

तृतीय अध्याय : मृदुला गर्ग की विश्वदृष्टि 60–75

(क) परिवार–समाज

(ख) वर्ग–चेतना

(ग) सामाजिक–आर्थिक चिंतन

(घ) लोकतांत्रिक परिवेश

(ङ.) मानवीय अस्मिता

(च) मूल्य–बोध

चतुर्थ अध्याय : मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य 76–102

(क) पारिवारिक व सामाजिक स्थिति

(ख) पारिवारिक संरचना का विखंडन

(ग) नारी का बदलता स्वरूप

(घ) नारी–शिक्षा व नारी उन्नति

(ङ.) नारी–शोषण व नारी–विद्रोह

(च) दांपत्य संबंध

(छ) स्त्री–पुरुष संबंध व प्रेम संकल्पना

(ज) पीढ़ियों की टकराहट

पंचम अध्याय : मृदुला गर्ग के उपन्यासों का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य 103–133

(क) राष्ट्रीय चेतना के स्वर की अभिव्यक्ति

(ख) राजनीति का ह्रासोन्मुख रूप

(ग) देश विभाजन की त्रासदी

(घ) पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था

(ड.) भ्रष्ट राजनीति

(च) गांधी नीतियों की आलोचना

(छ) स्वतंत्रता–पश्चात् का मोहभंग

(ज) योजनाओं की असफलता

(झ) स्वातंत्र्य–संघर्ष के विविध पक्ष

षष्ठ अध्याय : मृदुला गर्ग के उपन्यासों का आर्थिक परिप्रेक्ष्य 134–182

(क) वर्गभेद का चित्रण

(ख) वर्गीय चेतना

(ग) आर्थिक परवशता

(घ) बालश्रम व शोषण

(ड.) उच्च व मध्यम वर्ग व्यवस्था

(च) वाणिज्य व व्यापार चेतना

(छ) अन्याय व शोषण का विरोध

(ज) वैश्विक बाजारवाद के कारण उत्पन्न उपभोक्ता संस्कृति

सप्तम अध्याय : मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य 183–202

(क) ग्रामीण व शहरी परिवेश

(ख) महानगरीय अवबोध

(ग) परंपरागत नैतिक मूल्यों व सामाजिक आदर्शों का ह्रास

(घ) प्राचीन व नवीन विचारधाराओं का पारस्परिक संघर्ष

(ङ.) विवाह बंधन का खोखलापन

अष्टम अध्याय : कथ्य के विकास में सहायक रूप सौष्ठव **203—255**

(क) समाज के निकट भाषा और शिल्प का सामाजिक आधार

(ख) शैलीगत वैविध्य

(ग) संवाद—योजना

(घ) प्रतीकात्मकता एवं संप्रेषणीयता

उपसंहार : **256—263**

समकालीन उपन्यास साहित्य में मृदुला गर्ग की विशिष्टता और उनका योगदान

संदर्भ ग्रंथ सूची : **264—270**

(क) आधार ग्रंथ

(ख) संदर्भ ग्रंथ

(ग) पत्र—पत्रिकाएँ

(घ) शब्दकोश व साहित्यकोश

(ङ.) वेबसाइट्स

प्रकाशित शोधपत्र व प्रमाण पत्र

प्रकाशित शोधपत्र

संगोष्ठी सेमिनार प्रस्तुतीकरण

साहित्यिक चोरी की रिपोर्ट

–: प्रथम अध्याय :–

समाजशास्त्रीय अध्ययन और साहित्य का समाजशास्त्र

साहित्य व समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्य का जन्म समाज में ही होता है। साहित्य की रचना करने वाला रचनाकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है। वह जिस सामाजिक परिवेष में रहता है, उस परिवेश का प्रभाव भी उस पर अवश्य पड़ता है। एक रचनाकार की रचना भी उसी सामाजिक परिवेश में जन्म लेती है, जिस परिवेश में वह रहता है। इसीलिए स्वाभाविक है, कि उसकी रचना में उसका समाज प्रतिबिंबित होता है। कोई भी साहित्यिक कृति समाज के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकती है, क्योंकि साहित्य का भी समाज से उतना ही घनिष्ठ संबंध होता है, जितना कि मनुष्य का समाज से। जिस प्रकार प्राणहीन शरीर व अर्थहीन शब्द का कोई महत्त्व नहीं होता है, उसी प्रकार समाज–निरपेक्ष साहित्य भी महत्त्वहीन होता है। साहित्य और कला का संबंध यदि समाज से नहीं होता तो इसकी रचना ही न हुई होती।

साहित्य अपने काल का प्रतिबिंब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है, कि वह सामाजिक जीवन की सच्चाइयों का दर्पण हो। साहित्य मानवीय संस्कृति का मूर्त रूप होता है। मानव समाज व संस्कृति विकासशील व निरंतर परिवर्तनशील हैं। धीरे–धीरे समाज की मान्यताएँ बदलती जाती हैं और उसी के साथ–साथ साहित्यिक मान्यताएँ भी बदल जाती हैं। मानव जीवन सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट विवकेशील प्राणी का जीवन है। मानव के व्यक्तित्व का निर्माण व विकास समाज में ही संभव है। व्यक्ति के मन–मस्तिष्क पर समाज में घटित होने वाली घटनाओं का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। साहित्यकार भी एक सामाजिक सहृदय प्राणी होने के कारण अपने मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। साहित्य मानव–समाज की चेतना में ही साँस लेता है, जिसका प्रयोजन सामाजिक जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करना होता है। समाज शरीर है और साहित्य उसका परिधान, जो उस समाज में रहने वाली मानव जाति के आत्मस्पंदन से ध्वनित होता है और इसी में जनता के राग–विराग, सुख–दुःख, आकर्षण–विकर्षण सन्निहित हैं। वस्तुतः सामाजिक परिवेश में रहने वाले व्यक्ति की अनुभूति की अभिव्यक्ति ही रचना होती है तथा प्रत्येक साहित्यिक रचना का समकालीन सामाजिक परिवेश होता है। साहित्य समाज में ही जन्म लेता है और समाज में ही पल्लवित–पुष्पित होते हुए समाज को प्रभावित करता है। चूंकि साहित्यकार एक विशेष सामाजिक परिवेश में रहकर उसी से प्राप्त अनुभवों के आधार पर साहित्य की रचना करता है। इसीलिए स्वाभाविक रूप से उसकी रचनाओं में समाज चित्रित हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, – ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[1] उन्होंने यह भी कहा है कि देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ–साथ जनता की चित्तवृत्ति में भी परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन का भी प्रभाव साहित्य पर पड़ता है।

साहित्यकार समाज के भावों को अपनी वाणी के माध्यम से बल ही नहीं देता वरन् कभी–कभी उन्हें नई दिशा भी देता है। वह समाज के भावों को अपने अनुभवों के आधार पर अभिव्यक्त कर सजीव और शक्तिशाली बना देता है। साहित्य समाज की गतिविधियों से प्रभावित होने के साथ ही समाज में नये विचार, नये आदर्श, नई प्रेरणा भी प्रस्तुत करता है। साहित्यिक रचना की सामाजिक अस्मिता उसके सामाजिक संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व द्वारा निर्मित होती है। समाजशास्त्र की तरह साहित्य का मुख्य संबंध भी मनुष्य के सामाजिक जगत से होता है। साहित्य व समाज दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध होने के कारण दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। साहित्य समाज के बीच ही पैदा होता है और समाज के साथ ही उसकी

अन्तःक्रिया होती है। अतः साहित्य का अध्ययन करते समय उसमें चित्रित समाज को भी जानना व समझना आवश्यक है।

समाजशास्त्र में मानवीय समुदायों व सामाजिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत एक व्यक्ति का नहीं अपितु समूचे समुदाय और समाज के क्रिया–व्यापारों, जीवन–पद्धति और पारस्परिक आदान–प्रदान व व्यवहार का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार साहित्य का समाजशास्त्र भी साहित्य में अंतर्निहित सामाजिक जीवन और सत्य को रेखांकित करके रचना और रचनाकार के उस परिवेश को समझाता है, जिसमें उनकी उपस्थिति होती है। साहित्यकार की रचना में उसका व्यवहार व समाज का स्वरूप उसके कथानक और पात्रों के माध्यम से व्यक्त होता है। साहित्य व समाजशास्त्र एक–दूसरे से पूर्णतः भिन्न नहीं हैं, अपितु ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि साहित्य का संबंध उन्हीं सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक व साँस कृतिक संरचनाओं से होता है, जिनसे समाजशास्त्र का। समाजशास्त्र भी समाज में मनुष्य की स्थिति और गति का वस्तुगत अध्ययन करता है। अतः जिस प्रकार साहित्य की समझ के लिए समाज की समझ होना आवश्यक है, उसी प्रकार समाज को समझने के लिए साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता है।

साहित्य का समाजशास्त्र से तात्पर्य साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से है। आधुनिक साहित्यिक आलोचक केवल कृति का अध्ययन व व्याख्या नहीं करते हैं, अपितु उसके सामाजिक अस्तित्व की भी व्याख्या करते हैं। कोई भी साहित्यक कृति किस सामाजिक परिवेश में बुनी व रची गई है तथा समाज के लिए कितनी उपयोगी है, यह जानने का प्रयास करते हैं। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा ही उसकी उपयोगिता व सार्थकता को जाना–पहचाना जा सकता है। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य की सही समझ, वर्ग–संरचना व समाज के यथार्थ की वैज्ञानिक पड़ताल और उसके कलात्मक रूपांतरण की अभिशंसा रचता है। इसके अंतर्गत अध्ययनकर्त्ता यह जाँचता व परखता है कि कोई रचना समाज के लिए कितनी प्रेरक व मूल्यवान है।

साहित्य समाज में उपस्थित रहकर समाज के लिए ही लिखा जाता है, जिसमें लेखक और पाठक दोनों ही परस्पर समाज से जुड़ते हैं और इसमें दोनों का ही कल्याण छिपा हुआ होता है। वृहत्तर समाज के कल्याण की कामना से ही साहित्य की रचना की जाती है। इसमें साहित्यकार के मन की भावना, प्रेरणा व प्रयोजन भी आवश्यक होता है, क्योंकि प्रयोजनहीन साहित्य समाज के लिए अनुपयोगी है। साहित्य में व्यक्ति के जीवन और समाज दोनों की आलोचना होती है ताकि व्यक्ति और समाज को अच्छी तरह से समझा जा सके। व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं। साहित्य में जीवन की आलोचना तभी संभव है जब साहित्यकार व्यक्ति के जीवन तथा उसके जीवन में होने वाली समस्त घटनाओं और उन घटनाओं के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव आदि को अनुभव कर सके। साहित्य में साहित्यकार के अनुभवों की ही अभिव्यक्ति होती है, वह अनुभव जितना गहरा और स्पष्ट होगा, साहित्य उतना ही सार्थक होगा। साहित्य का अध्ययन करने की कई पद्धतियाँ है, जिनमें से एक है – 'साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन।' इस पद्धति से किए गए अध्ययन से हमें ज्ञात होता है, कि साहित्य समाज के लिए कितना उपयोगी व प्रेरणादायक है।

(क) समाजशास्त्रीय अध्ययन की अवधारणा व स्वरूप :

समाजशास्त्र का औपचारिक शुभारंभ उन्नीसवीं शताब्दी में ही हुआ। इस शताब्दी में प्रसिद्ध फ्राँसिस दार्शनिक एवं विचारक ऑगस्त कॉम्ट ने 'पोजिटिव फिलॉसॉफि' नामक ग्रंथमाला में समाज के अध्ययन की एक वैज्ञानिक पद्धति और सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की। कॉम्ट ने प्रारम्भ में ज्ञान की इस नवीन शाखा का नाम सामाजिक भौतिकी (Social Physics) रखना चाहा, लेकिन जब कॉम्ट को यह ज्ञात हुआ कि यह नाम बेल्जियम सांख्यिकी शास्त्री अदोल्फ क्वेतलेत ने चुरा लिया है, तो 1838 में उसने लेटिन भाषा के शब्द Socius (समाज या

साथी) तथा ग्रीक भाषा के Logos (वार्तालाप, शब्द अथवा विज्ञान) को मिलाकर एक नया नाम Sociology अर्थात् 'समाजशास्त्र' रखा। ऑगस्त कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक माना गया। उन्होंने इस विषय की कल्पना फ्रॉंस की औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिए की थी। समय के साथ–साथ यह विषय जर्मनी, इंग्लैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में फैलता गया और आज यह सारी दुनिया में एक लोकप्रिय विषय के रूप में स्थापित हो गया है।

समाजशास्त्र समाज एवं सामाजिक जीवन का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। यह समाज में रहने वाले लोगों से जुड़ा हुआ विषय है तथा इसके अंतर्गत मानव समाज का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानव समुदाय के विकास, संरचना, व्यापारों और परस्पर प्रभाव प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जीवन और समाज के आधुनिक विस्तारों, द्वंद्वों और अंतर्विरोधों को समझने के लिए समाजशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। समाजशास्त्र के अध्ययन द्वारा समाजों, समूहों, और मनुष्य के सामाजिक जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह हमारे सामाजिक व्यवहारों से जुड़े मसलों पर अत्यधिक प्रभावशाली तरीके से विमर्श करता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन अत्यधिक व्यापक क्षेत्रों तक विस्तृत होता है। इसका विस्तार विगत समाजों के विश्लेषण से लेकर नवीनतम वैश्विक सामाजिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण व छानबीन तक फैला हुआ है। अतः हमें अपने समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म, शिक्षा, व्यवसाय, जाति, वर्ग, राजनीति, संस्कृति के बारे में जानने के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।

साहित्य व समाज एक–दूसरे को प्रभावित ही नहीं करते अपितु उनकी दशा और दिशा भी बदलते या निर्धारित करते हैं। अतः साहित्य का अध्ययन करते समय उसमें चित्रित समाज के बारे में जानना व समझना आवश्यक होता है। साहित्य में व्यक्तिगत चिंताओं के साथ–साथ सामाजिक चिंताएँ भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य अभिव्यक्त होती हैं। किसी भी रचना में रचनाकार का सामाजिक व्यवहार उसके द्वारा चयन किए गए कथानक और पात्रों के प्रतीक और अलंकार के माध्यम से प्रकट होता है। समाजशास्त्र में भी समाज और मनुष्य की स्थिति और गति का वस्तुगत अध्ययन किया जाता है। अतः साहित्य और समाजशास्त्र पूर्णतः भिन्न नहीं हैं, वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य का संबंध उन्हीं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं से होता है, जिनसे समाजशास्त्र का। अतः साहित्य की समझ के लिए समाज की तथा समाज की समझ के लिए तात्कालिक समाज में रचित साहित्य की समझ की आवश्यकता है। इसलिए साहित्य को समझने के लिए समाज व समाज को समझने के लिए साहित्य का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। इसी अध्ययन की आवश्यकता बनकर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन आज अधिक आवश्यक होता जा रहा है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन का उद्देश्य यह ज्ञात करने का प्रयास होता है कि साहित्य के निर्माण में समाज की क्या भूमिका होती है तथा रचना में समाज का स्वरूप कहाँ तक चित्रित है। समाजशास्त्र की तरह साहित्य का मुख्य सरोकार भी मनुष्य का सामाजिक जगत होता है। तात्कालिक समाज की प्रभावशाली विचारधारा का रचनाकार व उसकी रचना की अंतर्वस्तु और रूप पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा यह किस प्रकार व कितना अपने समाज को प्रभावित करती है। सृजन करना भी एक सामाजिक कर्म है और सृजक अपने समाज से जीवन पर्यंत अभिन्न रूप से संबद्ध रहता है। अपनी रचना में वह सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिंबित ही नहीं करता, अपितु वह उसकी पुनर्रचना भी करता है। अतः समाज रचना की अंतर्वस्तु में ही नहीं होता, उसके रूप–शिल्प में भी होता है। इसीलिए समाजशास्त्रीय अध्ययन का उद्देश्य उस पूरी प्रक्रिया को समझने का प्रयास होता है, जिसमें किसी साहित्यिक कृति की रचना होती है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को समझने से पहले हमें साहित्य के समाजशास्त्र को समझना आवश्यक है।

साहित्य का समाजशास्त्र :

साहित्य का समाजशास्त्र से तात्पर्य साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से है। साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य में अंतर्निहित सामाजिक जीवन और सत्य को रेखांकित करके रचना और रचनाकार के उस परिवेश को समझता है, जिसमें उनकी उपस्थिति होती है, क्योंकि कोई भी रचना एक सामाजिक परिवेश में जन्म लेती है और उसका रचनाकार व पाठक वर्ग भी एक सामाजिक परिवेश में जीते हैं। समाज ही साहित्य सृजन की भूमि प्रदान करता है तथा उसे गति एवं दिशा देता रहता है। रचनाकार पर समाज या परिवेश का जब जैसा दबाव या प्रभाव होगा तब वह वैसा ही साहित्य रचेगा, क्योंकि साहित्यकार की चेतना भी सामाजिक चेतना से प्रभावित होती है।

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य की सही समझ, वर्ग संरचना, सामाजिक यथार्थ की वैज्ञानिक पड़ताल और उसके कलात्मक रूपांतरण की अभिशंसा रचता है। यह कला सृजन, कला के प्रभाव की मानवीय चेतना एवं मूल्य–चेतना का अनुसंधानात्मक प्रयत्न भी है, जिसमें रचना प्रक्रिया से लेकर वर्ग–बोध, वर्ग–रूपांतरण और मूल्य–संप्रेषण के सारे संदर्भ समेटे जा सकते हैं। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, साहित्य के अध्ययन की एक ऐसी विधा है, जो साहित्य के अध्ययन के अंतर्गत साहित्यिक कृति एवं उसके सामाजिक संदर्भ के बीच का संबंध, साहित्य का प्रकार, पाठक वर्ग का स्तर, प्रकाशन की विधि तथा उसके स्तर, उसकी रंगमंचीयता, लेखक की सामाजिक स्थिति तथा पाठक का सामाजिक वर्ग, साहित्यिक कृति के केंदीय पात्र–पात्रों के सामाजिक स्तर आदि बातों का अध्ययन करता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में साहित्य और समाज के अंतःसंबंध की समीक्षा होती है। साहित्य–रचना के समय समाज की क्या परिस्थितियाँ थीं, उसकी क्या समस्याएँ थीं और वर्तमान समय में समाज में इन रचनाओं की क्या उपयोगिता है, इत्यादि का समाजशास्त्रीय अध्ययन में विवेचन किया जाता है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत इस बात को परखा जाता है कि कोई रचना समाज के लिए कितनी मूल्यवान है। क्या उस रचना ने परंपरागत लीक से हटकर नये सामाजिक प्रतिमानों की प्रतिष्ठा की है ? क्या वह समाज में नये मानव मूल्यों और नई सामाजिक चेतना को जाग्रत करने में समर्थ रही है ? साथ ही इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि किसी रचना विशेष ने पाठक वर्ग में कितनी वृद्धि की है ? रचना की अंतर्वस्तु, संरचना, शिल्प और भाषा में समाज की अभिव्यक्ति होती है। पात्रों की भावनाओं, पाठकों के विचारों, वैचारिक एवं सौंदर्यबोधी वर्ग संरचना की सम्यक् व्याख्या व विश्लेषण करना भी समाजशास्त्रीय अध्ययन का विषय है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही प्रारम्भ हुई। वैसे तो इस विचारधारा की नींव 1800 ई. में ही फ्रांस की मादाम स्तेल (1766–1817) ने रख दी थी। मादाम स्तेल ने एक पुस्तक 'सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार' (1800 ई.) लिखी। इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा – ''मैंने साहित्य पर धर्म, नैतिकता और कानून के प्रभाव तथा उन सब पर साहित्य के प्रभाव की जाँच–परख का प्रयत्न किया है।''[2] मादाम स्तेल ने साहित्य से राजनीति की निकटता पर जोर दिया है और साहित्य में परिवर्तन और विकास पर सामाजिक विकास के प्रभाव का भी विश्लेषण किया है। इसी विचार क्रम में उन्होंने उपन्यास के उदय की समाजशास्त्रीय व्याख्या भी प्रस्तुत की है। उन्होंने ही उपन्यास के उदय के लिए मध्य वर्ग के उदय को आवश्यक माना है। इसी संदर्भ में उन्होंने यह भी माना है कि नारी की स्थिति से उपन्यास के विकास का गहरा संबंध है। उनके अनुसार प्राचीनकाल में उपन्यास का अभाव इसलिए था क्योंकि उस समय के समाजों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसका अर्थ है कि जिन समाजों में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक होगी और स्त्री–पुरुष संबंधों में गहरी रुचि होगी, वहीं उपन्यास का विकास होगा।

उपन्यास–संबंधी मादाम स्तेल की मान्यताओं का बीसवीं सदी में उपन्यास साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

हिंदी साहित्य में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन, स्वरूप और प्रयोजन के बारे में अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है। समाजशास्त्री इसे समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में देखते हैं, लेकिन साहित्य–विचारक उसे एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा मानते हैं। समाजशास्त्री भले ही साहित्य के समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की एक शाखा समझें, लेकिन वास्तविकता यह है कि अब वह समाजशास्त्र से स्वतंत्र एक साहित्यिक विधा के रूप में विकसित हो रहा है। पिछले सौ वर्षों से संस्कृति की भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर कलाओं का जो समाजशास्त्र विकसित हुआ है, उसका एक रूप है, साहित्य का समाजशास्त्र। साहित्य के समाजशास्त्र का विकास साहित्य के आलोचकों ने किया है, न कि विशुद्ध समाजशास्त्रियों ने। तेन, लिओं लावेंथल, लूसिए गोल्डमान, मिशेल जेराफा और रेमण्ड विलियम्स का योगदान किसी भी समाजशास्त्री से बहुत अधिक है। साहित्य के समाजशास्त्रीय स्वरूप के अनिश्चय का एक कारण समाजशास्त्र संबंधी दृष्टियों व पद्धतियों की अनेकता भी है। ऊपरी तौर पर समाजशास्त्र एक अनुशासन लगता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि उसके भीतर अनेक दृष्टियाँ और पद्धतियाँ हैं। जो साहित्य का समाजशास्त्र जिस समाजशास्त्रीय पद्धति को अपनाता है, उसी के अनुसार उसका स्वरूप बनता है।

समाज बदलता है तो साहित्य भी बदलता है, उसका विकास होता है, तो साहित्य की धारणा भी बदलती है, उसका भी विकास होता है। साहित्य और साहित्य की धारणा का विकास सामजिक विकास से जुड़ा हुआ है। समय के साथ–साथ साहित्य की भूमिका में भी परिवर्तन हुआ है। अब साहित्य केवल सौंदर्यबोधात्मक ही नहीं है, वह चेतनापरक भी है। साहित्य की समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति की ओर मुड़ने का एक कारण यह भी है कि आज के युग में प्रायः सभी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ से जुड़ी होती हैं। महान लेखकों और उनकी रचनाओं का अध्ययन निश्चित रूप से इसलिए किया जाता है कि उनकी महानता का अर्थ है – मानवीय और सामाजिक स्थितियों में गहन अंतर्दृष्टि का अंतर्भाव। लॉवेन्थल की दृष्टि से कलाकार द्वारा किया गया चित्रण स्वयं सच्चाई से ज्यादा सच होता है, जबकि रिचर्ड होगर्ट के अनुसार महान साहित्य मानवीय अनुभव में ज्यादा गहरे पैठता है, क्योंकि उसमें केवल वैयक्तिक दृष्टांतों को नहीं, बल्कि सतही ब्यौरों के नीचे गहरे और दीर्घकालिक आंदोलनों को देखने की क्षमता होती है। साथ ही उसमें असमान तत्त्वों को एक करने की योग्यता होती है। महान कलाकार संपूर्ण मानव समाज का पूरी गहराई से चित्रण करता है। महान साहित्य जीवित रहता है। इसमें जनसंस्कृति, लोकसंस्कृति आदि के माध्यम से भावी पीढ़ियों के लिए संदेश निहित होता है तथा मनुष्य की सामाजिक और मानवीय स्थिति में गहरी अंतर्दृष्टि होती है। साहित्य उन मूलभूत मूल्यों और प्रतीकों को अंगीकार करता है, जो समाज के भीतर विभिन्न वर्गों को संबद्ध करते हैं। साहित्य का जो सहित भाव है, वह भाव स्वयं में एक लेखक का समाज के साथ उसकी आंतरिक क्रिया–प्रतिक्रिया एवं संबंधों से प्राप्त अनुभवजन्य प्रक्रिया का हिस्सा है। साहित्य का समाजशास्त्र आधुनिक काल में साहित्य की वास्तविक स्थिति को वस्तुपरक ढंग से समझने की चुनौती का वैचारिक स्तर पर सामना करने की संघर्षपूर्ण प्रक्रिया की देन है।

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य के समाजिक एवं साँस कृतिक दायित्व से जुड़ा है। साहित्यकार की समस्त आर्थिक एवं साँस कृतिक स्थितियाँ तथा समकालीन समयों की शक्तियाँ जो समाज में पर्दे के पीछे से कार्यरत रहती हैं, एक साहित्यकार के विचार, मानसिक बनावट एवं विश्वदृष्टि को व्यापक स्तर पर प्रभावित करती हैं। इससे रचनात्मक प्रयास तथा निष्कर्ष पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। साहित्यकार केवल कल्पना लोक में ही नहीं जी सकता। उसकी कुछ बुनियादी जरूरतें हैं और वे जरूरतें समाज के व्यावहारिक जीवन का हिस्सा हैं और उस हिस्से के तहत लेखक को व्यावहारिक जिंदगी के लिए समझौता करना पड़ता है। साहित्य, साहित्यकार की प्रतिभा और सामाजिक जीवन की उपज है। प्रतिभा की कोई निश्चित सीमा या वर्ग नहीं होता और परिस्थितियाँ भी परिवर्तनशील होती हैं, इसीलिए साहित्य की भी

निश्चित सीमा नहीं होती। समाज की गतिशीलता साहित्य को गतिमान बनाए रखती है। नित्य नये कलेवर और नया संदर्भ प्रदान करती है। साहित्यकार सामाजिक जीवन की संवेदना एवं समस्त यथार्थ को कला के स्तर पर व्यक्त करते समय चाहे जितना बाह्य या आंतरिक दबाव झेले, लेकिन वह सदैव एक व्यापक स्तर पर सच्चे मानवीय भाव एवं अर्थ की तलाश करता रहता है। लोकरुचि की दासता या उसका अंधानुकरण करना साहित्यकार को शोभा नहीं देता, किंतु अपनी समर्थ वाणी से वह लोक को अपनी ओर आकृष्ट करता है। लोकरुचि का समर्थन करना या पाना ही समाज निर्माण के दायित्व का निर्वाह करना है। समाज निर्माण के लक्ष्य को रखकर साहित्य निर्माण करने के कारण ही वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, कबीर, प्रसाद, प्रेमचंद आदि की कृतियाँ आज भी समाज के लिए प्रासंगिक हैं।

साहित्यकार समाज का दृष्टा, उपभोक्ता, निर्माता और प्रवक्ता होता है। वह समाज में ही जन्म लेता है, सीखता है, अनुभव करता है, बढ़ता है, पढ़ता है और अन्ततः समाज में रहकर समाज के लिए सृजन करता है। साहित्य में समाजशास्त्रीय सोच अति प्राचीन होते हुए भी विवेचन के कारगर हथियार के रूप में नये तेवर तथा नये अंदाज के साथ उभरी है। इस पद्धति में समाजशास्त्र एक प्रतिमान के रूप में कार्य करता है। इस संबंध में प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. बच्चन सिंह का कथन है कि– ''लेखक साहित्य का स्रष्टा है। साहित्य में उसके व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है। अतः साहित्य को समझने के लिए लेखक के व्यक्तित्व को रूपायित करने वाले तत्वों का विश्लेषण जरूरी है।''[4] अतः कोई भी साहित्यिक कृति या क्रियाकलाप मात्र व्यक्तिगत घटना नहीं होता। उसका संबंध रचनाकार या कर्त्ता, कृति और पाठक वर्ग से होता है। साहित्यकार के कृतित्व का जिन रूपों में विकास होता है, जिन परिस्थितियों में वह साहित्य साधना करता है, वह साहित्यकार का सामाजिक परिवेश होता है। जिन सामाजिक संबंधों को आधार बनाकर और जिन विशेष सामाजिक परिस्थितियों में साहित्यिक कृति की रचनात्मक प्रक्रिया पूर्ण होती है, वह कृति का सामाजिक परिवेश होता है। कर्त्ता व कृति का सामाजिक परिवेश से घनिष्ठ संबंध होता है, जिसमें एक और परिवेश होता है, पाठक का। इन तीनों परिवेशों का विश्लेषण और संश्लेषण करना ही साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन कहलाता है।

(ख) साहित्य, कला और समाज का अन्तःसंबंध :

साहित्य :

साहित्य का मुख्य संबंध मनुष्य के सामाजिक जगत से होता है। साहित्य सामाजिक चेतना में साँस लेता है तथा उसे समाज का दर्पण, समाज की मशाल आदि कहा गया है। उसमें व्यक्ति से लेकर समूह तक के मन की आशा, आकांक्षा, जय–पराजय, हानि–लाभ, सभी ध्वनित होती हैं। वह जन–जीवन की व्याख्या है। साहित्य का महत्त्व समाज के लिए समाज से ही उठता तथा उभरता रहा है। समाज ही साहित्य की श्रेष्ठता का निर्धारक और मानक होता है। सामान्यतः समाज सामाजिक संबंधों का संचरित रूप है। समाज वह सामान्यीकृत व्यवस्था है, जो अपनी सभी इकाइयों को अंतःक्रिया द्वारा एकीकृत करती है। आर्थिक राजनीतिक, साँस कृतिक व्यवस्था से निर्मित संपूर्ण समाज में जब विविध सामाजिक रचनाएँ व्यापक मानवीय हितों के स्थान पर व्यक्ति या व्यक्ति समूहों का हित संयोजन करती है, तो समाज में विविध वर्ग पैदा होते हैं।

समाज एक–दूसरे के लिए जीने की भावना, उदारता, क्षमा, दया, सहयोग, साहचर्य और सहकर्म की पाठशाला है। समाज की प्राथमिक इकाई व्यक्ति है। साहित्य मानव का मानव के लिए सृजन है। मानव द्वारा अपने भावों को स्थिरता देने की भावना ने ही साहित्य को जन्म दिया। मनुष्य की प्रतिभा, कल्पना की प्रतिक्रिया तथा ज्ञान की द्विधा प्रतिक्रिया से साहित्य का सृजन होता है। ज्ञान–भावना तथा संकल्प से मनुष्य रचनात्मक प्रतिक्रिया करता है, जिनका आनंदपरक, कल्याणपरक भाव ही साहित्य कहलाता है। साहित्य का उद्देश्य ही जीवन और

समाज रहा है। साहित्य जनता के विचारों, भावों, आशाओं और आकांक्षाओं का मूर्त रूप होता है। आचार्य शुक्ल ने साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब कहा है। जब साहित्यकार अपने भावों, विचारों और स्वप्नों को शब्दों का आवरण औढ़ाकर किसी साहित्यिक विधा में अवतरित करता है, तो वह साहित्य कहलाता है।

साहित्य समाज के बाह्य और आंतरिक जीवन को प्रभावित, परिचालित तथा नियंत्रित करता है। साहित्य मातृवत्त पालक है, पितृवत्त संरक्षक है, गुरुवत परम शिक्षक है। रचनाकार समाज से ही उभरता है और रचना की प्रेरणा, रचना के तथ्य समाज के भीतर से ही चुनता है। साहित्यकार अपने समाज एवं समय दोनों का प्रतिनिधि होता है। साहित्य किसी समाज की अच्छी–बुरी दशा, उन्नति–अवनति का चित्र होता है। सामाजिक प्राणी होने से मनुष्य अपने लिए एक सुंदर समाज की रचना हेतु जो चिंतन–मनन करता है, उससे साहित्य के क्रमिक विकास को बल मिलता है। समाज में मनुष्य के एकाकीपन से उत्पन्न उदासीनता को साहित्य मनोरम क्षणों में बदल देने की क्षमता रखता है। साहित्य समाज का नियामक एवं उन्नायक दोनों होता है। युग की घटनाएँ साहित्य में प्रतिबिंबित होती हैं। युग–जीवन प्रतिबिंबित होने से साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं।

आधुनिक समय में साहित्य शब्द का अर्थ व्यापक अर्थों में होने लगा है। 'वाड्.मय' और 'काव्य' दोनों के लिए 'साहित्य' शब्द का प्रयोग होता है। साहित्य संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है । संस्कृत के विद्वानों के अनुसार अर्थ है – ''हितेन सह सहित तस्य भवः'' अर्थात् कल्याणकारी भाव। साहित्य में लोक कल्याण की भावना निहित होती है। इसका उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र नहीं होता है, अपितु इसका उद्देश्य समाज का मार्गदर्शन करना भी है। साहित्य–सृजन, अध्ययन और पठन की प्रवृत्ति मानव में प्राचीन काल से ही रही है। साहित्य में जहाँ मानवीय भाव एवं अनुभूतियाँ रसात्मक अभिव्यक्ति ग्रहण करती हैं, वहाँ मानव उस अभिव्यक्ति में विद्यमान विचारधाराओं, सामाजिक तथ्यों एवं अपनी सहज प्रवृत्तियों की संतुष्टि का आधार भी खोजता रहा है। सभ्यता के विकास के साथ साथ साहित्य के प्रचार–प्रसार में निरंतर वृद्धि हो रही है। ''सुरसरि सम सब कहं हित होई'' की भावना से आपूरित साहित्य में जहाँ व्यक्ति, समाज और युग को स्थायित्व प्राप्त करने में सहायता मिलती है, वहाँ सामाजिक विचारधारा की एक क्रमिक शृंखला ने विकसित होकर मानव ज्ञान को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहायता दी है।

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया तथा साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियों विसंगतियों, विकृतियों, अभावों, असमानताओं और विषमताओं के बारे में लिखता है। इनके प्रति जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। साहित्य जनहित के लिए होता है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य जनमानस का मार्गदर्शन करता है। मनुष्य समाज का एक अभिन्न अंग है। जीवन में मनुष्य के साथ क्या घटित होता है, उसे साहित्यकार शब्दों में रचकर साहित्य की रचना करता है अर्थात् साहित्यकार जो देखता है, अनुभव करता है, चिंतन करता है, विश्लेषण करता है, उसे लिख देता है। साहित्य सृजन के लिए विषयवस्तु समाज से ही विभिन्न पक्षों से ली जाती है। साहित्यकार साहित्य की रचना करते समय अपने विचारों और कल्पनाओं को भी सम्मिलित करता है। साहित्य राष्ट्र व समाज को नई दिशा देने का कार्य करता है। साहित्य जनमानस को सकारात्मक सोच तथा लोक कल्याण के कार्यो के लिए प्रेरणा देने का कार्य करता है।

कला :

कला का अर्थ है, 'रचना करना' अर्थात् वह कृत्रिम है। कला उस कार्य में है, जो मनुष्य करता है। कौशलपूर्ण मानवीय कार्य को कला की संज्ञा दी जा सकती है। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है, जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। कला शब्द इतना

व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ केवल एक विशेष पक्ष को छूकर रह जाती हैं। कला का अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। कला को विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार अलग–अलग परिभाषित किया है। भारतीय परंपरा के अनुसार कला उन सारी क्रियाओं को कहते हैं, जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय शास्त्रियों ने भी कला में कौशल को महत्त्वपूर्ण माना है। मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार ''मन के अन्तःकरण की सुंदर प्रस्तुति ही कला है।'' कला ही है, जिसमें मानव मन में संवेदनाएँ उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को दिशा देने की अद्‌भुत क्षमता है।

जीवन ऊर्जा का महासागर है। जब अन्तश्चेतना जाग्रत होती है तो ऊर्जा जीवन को कला के रूप में उभारती है। कला जीवन को 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' से समन्वित करती है। इसके द्‌वारा ही बुद्धि, आत्मा का सत्य स्वरूप झलकता है। कला उस क्षितिज की भाँति है, जिसका कोई छोर नहीं, इतनी विशाल, इतनी विस्तृत कि अनेक विधाओं को अपने में समेटे हुए है। इसीलिए किसी कवि ने कहा है – ''साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।'' रविन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार – ''कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है।'' तो प्लेटों के अनुसार – ''कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है।'' कला जीवन की अभिव्यंजना है। चित्रकार रंगो और रेखाओं के माध्यम से अपने एवं जगत के मनोभावों को मूर्त, सजीवन रूप प्रदान करता है। संगीतकार स्वर के आरोह–अवरोह द्‌वारा निजी भावों को श्रोताओं के समक्ष अभिव्यक्त करता है। साहित्यकार अपनी लेखनी से निकली सार्थक–शब्दावली द्‌वारा प्रकृति के स्थूल व सूक्ष्म अन्तःसंबंधों को वाणी प्रदान करता है।

समाज :

साहित्य, कला और समाज का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। साहित्य सृजन करना स्वयं ही एक कला है। कोई भी कला समाज के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकती है। कला का इतिहास प्रायः उतना ही पुराना है, जितना मनुष्य अर्थात् समाज का। कला समाज निरपेक्ष नहीं होती। उसकी प्रगति सामाजिक विकास क्रम के अंतर्गत ही होती है, किंतु वह सामाजिक विकासक्रम से पूर्णतः नियंत्रित नहीं होती है।

कलाकार अर्थात् साहित्यकार का संपर्क जन–जीवन से ही रहता है। वह समाज का एक अविभाज्य अंग है। अपनी प्रतिभा और योग्यता के कारण ही वह समाज के विचारों एवं भावों का वाहक बन जाता है। साहित्य जगत और जीवन की व्याख्या है। साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है, वरन् उसी का मुखरित रूप है। वह जीवन रूपी महासागर से उठी हुई मुक्त तरंग है। मानव जाति के भावों, विचारों और संकल्पों को कथा–साहित्य के रूप में प्रसारित करता है। साहित्य व समाज में अंग–अंगी का संबंध है। इसीलिए जीवन की मूल प्रेरणाएँ ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं। जो वृत्तियाँ जीवन की समस्त क्रियाओं की मूल स्रोत हैं, वे ही साहित्य को जन्म देती हैं।

समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य का समाज से वही संबंध होता है, जो आत्मा का शरीर से होता है। साहित्य, समाज रूपी शरीर की आत्मा है, जो अजर–अमर है। साहित्य समाज का दर्पण है, समाज का प्रतिबिंब है, समाज का मार्गदर्शक है तथा समाज के आचार–विचारों का लेखा–जोखा है। किसी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से प्राप्त की जा सकती है। साहित्य, लोक जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य में उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन–सहन, खान–पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। साहित्य समाज की जड़ परिस्थितियों का निराकरण कर उसमें चेतन वृत्ति का प्रतिष्ठान करता है।'' साहित्य उसी रचना को कहा जाता है, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो, जिसमें दिलोदिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्णरूप से तभी उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ व

अनुभूतियाँ व्यक्त की जाती हैं। मानव प्रकति का मर्मज्ञ साहित्यकार राजकुमारों की प्रेमगाथाओं और तिलिस्मी कहानियों में भी जीवन की सच्चाइयों का वर्णन कर सकता है, सौंदर्य की सृष्टि कर सकता है, परंतु इससे भी इस सत्य की ही पुष्टि होती है कि साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की सच्चाइयों का दर्पण हो।'' प्रेमचन्द के अनुसार – साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों या काव्य के, उसमें हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए। निस्संदेह, काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है।''[5] साहित्यकार जीवन में जो कुछ देखता है, या जो कुछ उस पर गुजरती है, वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुँचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा बनती हैं। कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है।

साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सांमजस्य का व्यक्त रूप है और सांमजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, विनाश नहीं। वह हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है। आज समाज को उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का संदेश हो। प्रकृति का विधान वृद्धि और विकास है और जिन भावों, अनुभूतियों और विचारों से हमें आनंद मिलता है, वे इसी वृद्धि और विकास में सहायक हैं। कलाकार अपनी कला से सौंदर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है। साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं हैं, वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई ही नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।

साहित्य समाज के हृद्य और मस्तिष्क की भावनाओं तथा विचारों को मुखरित करने वाली भाषा है, जसमें समाज के प्राण छिपे हुए हैं। साहित्य समाज की भावना है, उसकी कल्पना है, इतिहास है, उसकी आत्मा की पुकार है। साहित्यकार, जो समाज का सर्वाधिक संवेदनशील सदस्य होता है, बदलती हुई चित्तवृत्तियों के प्रति निरपेक्ष नहीं रह सकता है और न ही सामाजिक परिवेश से तटस्थता का दावा कर सकता है। अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हुए भी उसकी भावनाओं का संसार निरंतर बाह्य जगत की घटनाओं से प्रतिध्वनित और झंकृत होता है।

महान कला का मौलिक लक्षण है सार्वकालिकता और सार्वदेशिकता। कोई भी कृति मानवीय चेतना से संयुक्त होकर ही सार्वकालिक व सार्वदेशिक बन सकती है। कलाकृति की रचना करने वाले कलाकार के लिए अपनी चेतना का ज्ञान पर्याप्त नहीं है। उसे समाज, जाति, देश और विदेश की अखंड चेतना का भी ज्ञान होना चाहिए। यह जातीय और देशीय चेतना निरंतर विकसित व परिवर्तित होती रहती है। कलाकार की व्यक्ति चेतना उसके व्यापक जीवनदर्शन या जगदर्शन का अंग होती है। कला का संबंध सौंदर्य से है, लेकिन यह सौंदर्य मात्र बाहय नहीं होता है। यह आभ्यंतरिक व आत्मिक भी होता है। कला की सृष्टि में सामाजिक दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण होता है। कलाकार का जीवनदर्शन जितने स्वस्थ और प्रगतिशील सामाजिक मूल्यों पर आधारित होगा उतनी ही उदात्त और मूल्यवान उसकी कला होगी। कला का संबंध सौंदर्य मूलक भावों व विचारों से ही नहीं बल्कि जनता के सामाजिक संबंधों से भी है। यह वर्गीय चेतना का प्रतिफलन है और सामाजिक चेतना का एक रूप। वर्गीय चेतना काल के साथ–साथ परिवर्तित होती रहती है, फलतः सामाजिक चेतना भी परिवर्तित होती है और उसका प्रभाव कला पर पड़ता है।

साहित्य, कला और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। सामान्यतः साहित्य को समाज का दर्पण एवं जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब कहा गया है तथा कला को सामाजिक चेतना का एक रूप माना गया है। किसी भी श्रेष्ठ साहित्यिक कृति को कला की संज्ञा दी जा सकती है। इस दृष्टि से साहित्य और कला परस्पर संबंधित हैं। साहित्य व कला की रचना समाज से विलग होकर करना असंभव है। साहित्य समाज से संपृक्त होकर ही

सार्थक बनता है। 'साहित्य अपने काल का प्रतिबिंब होता है, जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते है।''[6]

बालकृष्ण भट्ट ने जुलाई 1881 के 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' निबन्ध में 'साहित्य को जनसमूह के चित्र का चित्रपट कहा है। साहित्य की यह परिभाषा उसके जातीय चरित्र पर बल देती है।मुक्तिबोध ने साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति के बारे में लिखा है – ''साहित्यिक कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है। कला में जीवन की पुनर्रचना होती है। वह सारतः उस जीवन का प्रतिनिधित्व करती है, जो जीवन इस जगत में वस्तुतः जिया और भोगा जाता है – स्वयं द्वारा तथा अन्यों द्वारा। यह जीवन जब कल्पना द्वारा पुनर्रचित होता है तब उस पुनर्रचित जीवन में तथा वास्तविक जगत क्षेत्र में जिए और भोगे जाने वाले जीवन में गुणात्मक अंतर उत्पन्न हो जाता है। पुनर्रचित जीवन जिए और भोगे हुए जीवन में सारतः एक होते हुए भी स्वरूपतः भिन्न होता है।''[7] इससे ज्ञात होता है कि किसी रचना के अंतर्गत जीवन और समाज की अभिव्यक्ति को पहचानने के लिए उसके शिल्प और रचनाकार के दृष्टिकोण के बारे में समझना पड़ता है। साहित्य को समझने के लिए उसके सामाजिक उद्गम, उसकी कलात्मक एकता और रूप–रचना को समझना आवश्यक है और इसके लिए समाज की तात्कालिक स्थिति को समझना होगा।

अतः हम कह सकते हैं कि कला का जन्म समाज में ही होता है तथा साहित्य रचना करना भी एक कला ही है, क्योंकि कला स्वयं एक सामाजिक घटना है। कलाकार की मूल अनुभूति चाहे व्यक्तिगत व अनुभूत क्यों न हो, वह समाज से जुड़ी होती है। उसकी कला, समाज तथा उसके सदस्यों के बीच सम्पर्क का माध्यम है। प्रत्येक कलाकृति में एक सामाजिक शक्ति निहित होती है, जिसके द्वारा वह जनमानस को प्रभावित करती है। कला का इतिहास भी मनुष्य के इतिहास जितना ही पुराना है तथा समाज के साथ कला का संबंध उतना ही पुराना है, जितना मनुष्य का। साहित्य रचना करना भी एक कला ही है, इसीलिए साहित्य भी समाज से संबंधित होता है। कलाकार अर्थात् साहित्यकार और समाज का दृष्टिकोण एक–दूसरे के प्रति बदलता रहता है तथा कला की प्रकृति और दृष्टि भी परिवर्तित होती रहती है। कला और समाज के बदलते स्वरूप और कला की अनिश्चित प्रवृत्ति के कारण कला, साहित्य और समाज के परस्पर संबंध भी परिवर्तित होते रहते हैं। साहित्य समाज की अभिव्यक्ति के साथ–साथ समाज के परिवर्तन और विकास को प्रभावित भी करता है। इस तरह साहित्य का विकास समाज और कला दोनों के विकास से संबंधित है। उसमें परिवर्तनशीलता के साथ–साथ निरंतरता भी अभिव्यक्त होती है।

(ग) साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : पद्धति और इतिहास

समाजशास्त्र में समाज में स्थित मनुष्य के साथ ही सामाजिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का अध्ययन भी किया जाता है। समाज के अस्तित्व, उसकी कार्य पद्धति, उसके बने रहने के कारण से जुड़े तमाम सवालों के जवाब उसे तलाश करने पड़ते हैं। समाज का ढाँचा तमाम संस्थाएँ मिलकर निर्मित करती है। इन संस्थाओं की कार्य प्रणाली की जाँच करने पर इनके बीच से समाज का, उन तौर–तरीकों का चित्र उभरता है, जिन्हें मनुष्य अपनाता है और उनके अनुरूप अपने को ढालता है। मनुष्य इन संस्थाओं को, इनकी कार्य–विधि को सोच–समझकर स्वीकार करता है, उन्हें मान्यता देता है। इसी आधार पर समाज स्थित रहते हैं, विभिन्न समाजों में निरंतरता बनी रहती है। समाजशास्त्र का दायित्व इस स्थिरता और निरंतरता के कारणों की छानबीन तक सीमित नहीं रहता। वह उसकी गतिशीलता और निरंतरता के बीच उसकी परिवर्तनशीलता का अध्ययन भी करता है। ''समाजशास्त्र की तरह साहित्य का मुख्य सरोकार भी मनुष्य का सामाजिक जगत होता है। उपन्यास ऐसी विधा है, जिसमें यह सरोकार सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त होता है। उसमें परिवार, राजनीतिशास्त्र, अर्थव्यवस्था, धर्म इन सबके साथ मनुष्य के रिश्तों के सामाजिक जगत का पुनःसृजन किया जाता है। इन संस्थाओं के भीतर

इसकी भूमिका की पड़ताल करने के अलावा समुदायों और वर्गों के बीच होने वाले संघर्षो और तनाव का चित्रण भी किया जाता है। साहित्यिक रचनाओं के एक पूरे वर्ग में अध्येता को विषयों और शैलीगत–साधनों के वैयक्तिक समीकरणों को सामाजिक समीकरणों में रूपांतरित करना पड़ता है।''[8] साहित्य के निजी स्वायत संसार के विशिष्ट सामाजिक अर्थों में रूपांतरण अर्थात् साहित्य का यह बहिर्वेशी उपागम या नजरिया अक्सर आलोचना का विषय रहा है। साहित्य की समझ और मूल्यांकन के लिए अपेक्षित उपकरणों के अभाव की स्थिति में ही साहित्य को इस प्रकार बाहर से उलटकर देखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।आज के समाज में साहित्य के बदले हुए संबंध को यथार्थवादी ढ़ंग से समझने की जरूरत है न कि उसकी काल्पनिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तथाकथित अंतर्वर्ती आलोचना से चिपके रहने की। साहित्य का समाजशास्त्र आधुनिक समाज के साहित्य की वास्तविक स्थिति और भूमिका को यथार्थवादी ढ़ंग से समझने का प्रयत्न करता है। साहित्य की सामाजिकता की चिंता पहले भी रही है तथा आज भी लेखक और आलोचक साहित्य की सामाजिकता की बात करते हैं। साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य के समक्ष आई तमाम परेशानियों को समझने की कोशिश करता है, साथ ही इन परेशानियों को दूर करने का प्रयास भी करता है। साहित्य का समाजशास्त्र इस बदलते युग में साहित्य की सामाजिक अवधारणा को व्यक्त करता है।

साहित्य के बारे में समाजशास्त्रीय अध्ययन पर विचार–विमर्श का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के आस–पास सर्वप्रथम पश्चिम के समाजशास्त्रियों व चिंतकों ने शुरू किया था। इसका मुख्य सरोकार मनुष्य का सामाजिक जगत और उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसके समस्त जीवन संसार से रहा है। साहित्य का समाजशास्त्र क्या है और इसका साहित्यालोचन में क्या स्थान है ? यह साहित्य के समाजशास्त्र के बारे में विस्तार से जानने, उसके काम को समझने पर ही ज्ञात होगा। समाजशास्त्र साहित्य का किस दिशा में, किस प्रकार से विवेचन करता है ? बदलते हुए युग में साहित्य का सामाजिक महत्त्व व उसकी भूमिका के बारे में साहित्य के समाजशास्त्र के द्वारा ही जान सकते हैं। इन सब प्रश्नों के समाधान में ही साहित्य के समाजशास्त्र का उद्देश्य निहित है।

साहित्य के समाजशास्त्र का आविर्भाव सत्रहवीं–अट्ठारहवीं शती में एक समीक्षा प्रणाली के रूप में हुआ। साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की नींव 1800 ई. में मादाम स्तेल (1766–1817) ने अपनी पुस्तक 'सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार'(1800 ई.) के द्वारा रख दी थी। इन्हीं के विचारों को फ्रांसीसी दार्शनिक व आलोचक इपॉलीत तेन (1828–93 ई.) ने आगे बढ़ाया। इनके मन में साहित्य के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का संकल्प नहीं था, किंतु उसके विश्लेषणों, अध्ययनों और स्थापनाओं से साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि को पुष्ट करने में काफी मदद मिली। तेन ने साहित्य के भौतिक आधार और सामाजिक स्वरूप को स्पष्टतः स्वीकार किया है। साहित्य के समाजशास्त्र का विकास साहित्य के आलोचकों ने किया न कि विशुद्ध समाजशास्त्रियों ने। तेन, लिओ लावेंथल, लूसिएं गोल्डमान, मिशेल जेराफा, रेमण्ड विलियम का योगदान किसी समाजशास्त्री से कम नहीं है। पाश्चात्य विचारकों के साहित्यिक समाजशास्त्र के पुरोधा इपॉलीत अडोल्फतेन, लिओ लावेंथल, लूसिए गोल्डमान और रेमण्ड विलियम्स को माना जाता है। फ्राँस में समाजशास्त्रीय चिंतन परंपरा से सुदृढ़ आधार और उसका सक्षम प्रयोग अडोल्फतेन ने किया। लिओ लावेंथल ने साहित्य के समाजशास्त्र की चर्चा पूर्ववर्ती लेखकों और उनकी रचनाओं के संबंध में की। लूसिए गोल्डमान ने समाजशास्त्रीय समीक्षा के क्षेत्र में व्यवस्थित और उत्कृष्ट प्रयास किया। वेल्स के मजदूर परिवार में जन्में रेमण्ड विलियम्स इंग्लैण्ड के बहुचर्चित समीक्षक रहे हैं।

मादाम स्तेल ने जर्मन चिंतन को समझा और आत्मसात किया था, जिसकी समवेत अभिव्यक्ति उनकी पुस्तक 'सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार' के रूप में आगे आई। इस रचना में पहली बार साहित्य के भौतिक आधार की चर्चा की गई और सामाजिक अस्तित्व पर विचार का क्रम रखा गया। उन्होंने सामाजिक संस्थाओं से क्रिया–प्रतिक्रिया पर

सम्यक् विचार रखा। मादाम स्तेल ने कहा कि ''मैंने साहित्य पर धर्म, नैतिकता और कानून के प्रभाव तथा उनके साहित्य से संबंधों की खोज की।' इसे एक नयी पद्धति माना गया। मादाम स्तेल की कई मान्यताओं को तेन ने आगे विस्तार दिया। मादाम स्तेल ने अपने ग्रंथ साहित्य के विषय में 'दिलालित शव्यार' के आरम्भ में ही कहा है ''मेरा उद्देश्य साहित्य में धर्म, रीति–रिवाज और कानून के प्रभाव का परीक्षण करना है।''[9] उनके अनुसार प्रत्येक युग और समाज के साहित्य को अपने समय के राजनीतिक विश्वासों की गहरी जानकारी होनी चाहिए। उन्होंने उपन्यास विधा की संरचना के लिए मध्यम वर्ग के उदय की अनिवार्यता का प्रत्याख्यान किया है। वे जनता और किसानों को रचना के केंद में रखने की पक्षधर थी। इपोलीत अडोल्फतेन मूलतः इतिहासकार, कलाचिंतक तथा दार्शनिक समालोचक थे। उनके ऐतिहासिक दृष्टिकोण के एक पक्ष के रूप में साहित्य का समाजशास्त्र विवेचित हुआ है। उन्होनें लेखक के व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण मानते हुए रचना में सामाजिक सत्यों को खोजने का प्रयास किया। समाज से साहित्य की वस्तुपरक व्याख्या में उन्होंने माना कि साहित्य समसामयिक रीति–रिवाजों का पुनर्लेखन है। तेन ने साहित्य के समाजशास्त्र के चार पक्षों पर सर्वाधिक बल दिया – पहला –साहित्य के भौतिक सामाजिक मूलाधार की खोज, दूसरा – लेखक के महत्त्व का सम्यक् विवेचन, तीसरा – साहित्य में समाज के प्रतिबिंबन की व्याख्या तथा चौथा – साहित्य का पाठक समुदाय से संबंध। लिओ लावेंथल ने व्यवस्थित रीति से साहित्य के समाजशास्त्र का विकास करने का विशेष प्रयास किया। इस विषय पर लिख गये उनके तीन निबंध संग्रह प्रकाश में आए – 1. साहित्य और मनुष्य की परिकल्पना, 2. साहित्य : लोकप्रिय संस्कृति और समाज, 3. कथा की कला और समाज। साहित्य में जीवन के विशिष्ट अनुभव को महत्त्व दिया। लूसिए गोल्डमान ने उपेक्षित पड़ी हुई जार्ज लूकाच की दो कृतियों 1. उपन्यास का सिद्धान्त, 2. इतिहास और वर्ग चेतना, का पुनरुद्धार करके समाजशास्त्रीय विश्लेषण की एक सुसंगत प्रणाली विकसित की। गोल्डमान ने साहित्यिक समाजशास्त्र के विवेचन की परिधि में केवल महान एवं कालजयी कृतियों का ही समावेश किया।

समय के साथ–साथ साहित्य की भूमिका में भी परिवर्तन हुआ। अब साहित्य केवल सौंदर्यबोधात्मक ही नहीं है, वह चेतनापरक भी है। समाजपरक और चेतनापरक साहित्य का अध्ययन एवं समीक्षा केवल भाषिक विश्लेषण के आधार पर ही नहीं हो सकती। जब भौतिक विश्लेषण की सीमाएँ सामने आने लगी तो समीक्षक साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति की ओर मुड़े। साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति से जुड़ने का एक कारण यह भी है कि आज के युग में प्रायः सभी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ से जुड़ी होती हैं, भले ही उसका रचनाकार उसे सामाजिक न कहे। अतः यह आवश्यक हो गया है कि साहित्यिक रचना के बाहर के जीवन का भी विवेचन किया जाए और वह समाजशास्त्रीय पद्धति के अंतर्गत आता है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धतियाँ :

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के विकास की दो मुख्य पद्धतियाँ हैं – मीमांसावादी पद्धति व अनुभववादी पद्धति। मीमांसावादी पद्धति का विकास यूरोपीय चिन्तन की परंपरा में अधिक हुआ है तथा अनुभववादी पद्धति का गढ़ अमेरिका है। संभवतः इसीलिए अनुभववादी समाजशास्त्र को अमेरिकी समाजशास्त्र कहते हैं। लेकिन अनुभववादी समाजशास्त्री यूरोप में भी हैं, विशेषतः फ्राँस और जर्मनी में। मीमांसावादी पद्धति में साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है तथा अनुभववादी पद्धति में साहित्य की सामाजिक स्थिति का विवचेन होता है। अनुभवादी साहित्य के समाजशास्त्र के लिए पहले से बनी बनाई किसी धारणा की जरूरत नहीं मानते, क्योंकि उनके अनुसार साहित्य की धारणा के पीछे मूल्य चेतना भी काम करती है, जिसका वे विरोध करते हैं। अनुभववादी साहित्यिक कृति की अस्मिता को भी महत्त्वपूर्ण नहीं मानते लेकिन मीमांसावादी समाजशास्त्री साहित्य की धारणा जरूरी मानते हैं। उन्होंने साहित्य की ऐसी धारणा निर्मित की है, जिससे समाज के साथ साहित्य के बहुस्तरीय संबंध की व्याख्या संभव होती है। अनुभववादी साहित्य को सामाजिक तथ्य मानते हैं। उनके अनुसार – साहित्य का सामाजिक अस्तित्व लेखक, पुस्तक और पाठक के अंतःसंबंधों से

निर्धारित होता है। उन संबंधों के भीतर मनोवैज्ञानिक, नैतिक, सौंदर्यबोधीय, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का ताना–बाना होता है। कुछ अन्य अनुभववादी साहित्य को एक संस्था मानते हैं और साहित्य की साहित्यिकता के निर्माण में विभिन्न साहित्यिक और सामाजिक संस्थाओं की भूमिका का विवेचन करते हैं। कुछ अनुभववादी साहित्य का सामाजिक साक्ष्य के रूप में अध्ययन करते हैं, जिसमें साहित्य को समाज का दर्पण मानकर समाज की खोज की जाती है।

मीमांसावादी पद्धति में कृति विवेचना के केंद में होती है। इस पद्धति को मानने वाले विद्वान साहित्य को सामाजिक दस्तावेज के रूप में स्वीकार करते हैं। मीमांसावादी समाजशास्त्र के अंतर्गत साहित्यिक कृतियों के पाठकीय ग्रहण और पाठकीय प्रतिक्रियाओं का भी विवेचन होता है। इस पद्धति के अंतर्गत साहित्यिक कर्म और कृतियों के माध्यम से साहित्य की सामाजिकता की व्याख्या होती है। इसमें रचनाकर्म दूसरे सामाजिक कर्मों की सापेक्षता में और साहित्यिक कृतियों को व्यापक सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में देखा–परखा जाता है।

उपर्युक्त दोनों पद्धतियाँ समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रक्रिया में एक दूसरे की पूरक हैं। परंतु वास्तविकता यह है, कि अध्ययन करते समय या तो लेखन के सामाजिक संदर्भ पर बल दिया जाता है या फिर साहित्यिक पाठ और उसके सामाजिक अर्थ पर।

साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन आधुनिक समाज में साहित्य की सत्ता और सार्थकता की पहचान के बौद्धिक प्रयत्न की देन है। आज के समाज से बदलते हुए संबंध को यथार्थवादी ढंग से समझने की जरूरत है, न कि उसकी काल्पनिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तथाकथित अंतर्वर्ती आलोचना से चिपके रहने की। साहित्य का समाजशास्त्र आधुनिक समाज में साहित्य की वास्तविक स्थिति और भूमिका को यथार्थवादी ढंग से समझने का प्रयत्न करता है। सम्पूर्ण साहित्यिक प्रक्रिया के तीन मुख्य पक्ष हैं – लेखक, कृति और पाठक। साहित्य की प्रक्रिया को समग्रता में समझने के लिए इन तीनों के आपसी संबंधों का बोध आवश्यक है। गोल्डमान ने यह काम दूसरे विचारकों की तुलना में अधिक सफलता से किया है। गोल्डमान रचना की संरचना में विश्वदृष्टि की खोज करते हैं। अडोल्फ तेन ने अपने ग्रंथ 'अंग्रेजी साहित्य का इतिहास' में साहित्य संबंधी मूल्यांकन का एक सिद्धांत स्थापित किया। यह सिद्धान्त प्रजाति, काल और पर्यावरण के त्रिक पर आधारित है। प्रजाति को वह वंशानुक्रम, शारीरिक संरचना, काल को युग चेतना और पर्यावरण को जलवायु तथा सामाजिक परिवेश के रूप में लेता है। ये तीनों तत्त्व परस्पर संबद्ध हैं, अलग–अलग नहीं हैं।

(घ) साहित्य के समाजशास्त्र की विविध दृष्टियाँ :

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की अनेक दृष्टियों का विकास हुआ और जो दृष्टियाँ उभरकर साहित्य के मूल्यांकन में सामने आई हैं, वे साहित्य के समाजशास्त्र के स्वरूप को समझने के लिए उसके भीतर समाज से साहित्य के संबंध की व्याख्या में सहायक हैं। आजकल साहित्य के समाजशास्त्र के क्षेत्र में तीन दृष्टियाँ सक्रिय हैं, जिनका लक्ष्य है– (1) साहित्य में समाज की खोज (2) समाज में साहित्य की सत्ता और साहित्यकार की स्थिति का विवेचन (3) साहित्य और पाठक के संबंध का विश्लेषण।

साहित्य में समाज की खोज :

साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है, समाज से साहित्य के संबंध की खोज और उसकी व्याख्या करना। साहित्य के समाजशास्त्र के अंतर्गत समाज से साहित्य के संबंध का विवेचन करने वाले दो तरह के विचारक हैं – एक वे हैं, जो समाज को समझने के लिए साहित्य का उपयोग करते हैं और दूसरे वे हैं, जो साहित्य को समझने के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाते हैं। शुद्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण वालों के लिए अच्छी–बुरी, सतही और

गंभीर साहित्यिक कृतियों में कोई फर्क नहीं होता। वे महान साहित्य और लोकप्रिय साहित्य को समान महत्त्व देते हैं। साहित्य की साहित्यिकता की रक्षा करते हुए उसकी समाजिकता खोजने वाले साहित्य के ज्ञानात्मक पक्ष का विवेचन करते हैं। वे साहित्यिक कृतियों के विशिष्ट स्वरूप की उपेक्षा नहीं करते, इसलिए रचना की अंतर्वस्तु, उसकी संरचना और प्रयोजन पर ध्यान देते हैं। इस दृष्टि के अंतर्गत समाजशास्त्री यह जानने का प्रयास करता है, कि सृजनात्मक साहित्य के निर्माण में समाज की क्या भूमिका होती है और रचना की जड़ें समाज में कितनी समायी होती हैं।

साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन का आरंभ समाज से साहित्य के संबंध की खोज के साथ हुआ था। इस चिंतन के विकास में अग्रगामी भूमिका निभाने वाली क्रांतिकारी नारी मादाम स्तेल ने साहित्य की उत्पत्ति में समाज की भूमिका और समाज पर साहित्य के प्रभाव का विवेचन किया था। इनका साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन साहित्य में समाज को दो स्तरों पर जोड़ता था– एक, समाज को साहित्य की उत्पत्ति और उसके स्वरूप का निर्धारण करने वाली शक्ति के रूप में और दूसरे, साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में। वह चिंतन विधेयवाद से प्रभावित था। उसमें समाज से साहित्य का संबंध निर्धारणवादी ढंग से देखा जाता था। इसलिए समाज और साहित्य के बीच कार्य कारण संबंध मान लिया जाता था। इस दृष्टिकोण की मुख्य मान्यता यह थी, कि साहित्य समाज का दर्पण है, जिसमें समाज प्रतिबिंबित होता है। हिंदी में महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में दर्पणवादी दृष्टिकोण खूब प्रचलित था। इसकी एक सीमा यह है, कि इस दृष्टिकोण में रचनाकार की चेतना की क्रियाशीलता की उपेक्षा होती है। लेखक सामाजिक यथार्थ को रचना में प्रतिबिंबित ही नहीं करता, वह उसकी पुनर्रचना भी करता है । उसकी रचना में उसकी कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ भी व्यक्त होती हैं। दूसरी सीमा यह है, कि समाज रचना की अंतर्वस्तु में ही नहीं होता, उसके रूप और शिल्प में भी होता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य सामाजिक संरचना के विविध पक्षों का, पारिवारिक संबंधों का, वर्गगत संघर्षों का और संभवतः परस्पर विलग प्रवृत्तियों और आबादी की बनावट का सीधा प्रतिबिंब है।

समाज में साहित्य की सत्ता और साहित्यकार की स्थिति :

साहित्य के समाजशास्त्र की दूसरी दृष्टि समाज में साहित्य की भौतिक सत्ता और साहित्यकार की वास्तविक स्थिति के विश्लेषण पर बल देती है। इस परंपरा में विधेयवादी अनुभववादी दृष्टिकोण की प्रधानता है और इसका सर्वाधिक विकास अमेरिका तथा फ्राँस में हुआ है। इस दृष्टि के अंतर्गत दो प्रवृत्तियाँ हैं – एक प्रवृत्ति साहित्य के समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की एक शाखा बनाने पर जोर देती है तथा दूसरी प्रवृत्ति समाजशास्त्रीय अंतर्दृष्टि की मदद से समाज में साहित्य और साहित्यकार की स्थिति समझने की कोशिश करती है। आज के समाज में साहित्य और साहित्यकार की स्थिति में बदलाव आया है। भारतीय समाज में जो स्थिति वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, कबीरदास, बिहारी या भूषण की थी, वही आज के लेखक की नहीं है। साहित्य और साहित्यकार की आज के समाज में जो स्थिति हैं, उसका विवेचन साहित्य का समाजशास्त्र करता है। जो स्थिति थी या जो होनी चाहिए वह समाजशास्त्र का विषय नहीं है। इस दृष्टिकोण में साहित्यिक रचना की बजाय स्वयं उत्पादन पक्ष पर, विशेषकर लेखक की सामाजिक स्थिति पर अधिक बल देता है। विचार–विमर्श का केंद्र साहित्यिक पाठ के बजाय संरक्षण और उत्पादन की लागत हो जाती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से कलाकारों और साहित्यकारों की सामाजिक स्थितियों का विश्लेषण बीसवीं सदी में विकसित हुआ। यह पूँजीवादी समाज में कलाकारों और साहित्यकारों की जटिल त्रासद स्थितियों को समझने के प्रयत्न का परिणाम है। साहित्य के समाजशास्त्र में समाज से लेखक के संबंध, उसकी सामाजिक स्थिति, जीविका, आश्रय और इन सबसे प्रभावित होने वाली मानसिकता का अध्ययन होता है। फ्राँस के रोबेर एस्कार्पी ने ऐसे अध्ययन की दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया है। उन्होंने साहित्य के सामाजिक अस्तित्व और आधुनिक समाज में

लेखक की स्थिति स्पष्ट की है। उनके अनुसार – ''लेखक, पुस्तक और पाठक के अन्तःसंबंध की जानकारी से ही समाज में साहित्य और साहित्यकार की वास्तविक स्थिति मालूम हो सकती है।''[10] एस्कार्पी ने साहित्य को एक सामाजिक उत्पादन मानकर पूरी साहित्य प्रक्रिया का विवेचन किया है, जिसमें साहित्य के उत्पादन, वितरण और उपभोग के अंतर्गत विभिन्न समस्याओं पर विचार किया गया है। आज के समाज में साहित्यकार को बुद्धिजीवी या मसिजीवी कहा जाता है। इसका तात्पर्य है कि लेखन केवल शौक नहीं है, जीविका का साधन भी है। हिंदी में शौकिया लेखक अधिक हैं तथा अधिकांश लेखक छोटी–बड़ी नौकरियों में रहते हुए साहित्य लिखते हैं।

समाज में साहित्य की सत्ता और स्थिति का एक पक्ष यह भी है, कि वह व्यापक सामाजिक ढाँचे से अनेक रूपों में जुड़ा होता है। वह सामाजिक प्रक्रिया के आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक व्यवहारों से प्रभावित होता है और उनको प्रभावित भी करता है। ऐसे संबंधों का अध्ययन साहित्य के समाजशास्त्र में किया जाता है। हैरी लेविन के अनुसार – ''अन्य संस्थाओं के समान ही साहित्य भी मानव अनुभव की अद्वितीय अवस्था को अपने भीतर संजोये हुए है। साहित्यिक संस्था का एक निजी स्वरूप है, जिससे उसकी पहचान बनती है, लेकिन वह विकासशील भी है।''[11] एच.डी.डेकन के अनुसार भी ''साहित्य एक सामाजिक संस्था है तथा लेखक, आलोचक और पाठक के बीच परस्पर संबंध से साहित्य की संस्था का स्वरूप बनता है।''[12]

साहित्य संबंधी संस्थागत दृष्टिकोण का एक रूप यह भी है, जिसमें साहित्य के उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रिया में सक्रिय विभिन्न संस्थाओं के आपसी संबंधों का अध्ययन होता है। पाठक तक पहुँचने से पहले पुस्तक कई प्रक्रियाओं से गुजरती है, जिसमें प्रकाशन और वितरण के साथ–साथ आलोचना भी है। आलोचना अनेक स्तरों पर पुस्तक के चयन में सहायक और बाधक बनती है। सी.जे.वानरीस के अनुसार आलोचना भी एक संस्था है। ''रचना को मूल्यांकन बनने के लिए आलोचना की चयन प्रक्रिया से छनकर निकलना होता है।''[13] साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य के चारों ओर के कल्पित प्रभामंडल को हटाकर उनकी वास्तविक स्थिति का विश्लेषण करता है। पूँजीवादी समाज में साहित्य और साहित्यकार की स्थिति अच्छी नहीं है, लेकिन जो है उसे जानना जरूरी है, इसे वस्तुगत विश्लेषण के द्वारा ही जाना जा सकता है।

पाठक समुदाय के बीच साहित्य :

साहित्य के समाजशास्त्र का एक उद्देश्य पाठक से साहित्य के संबंध का विवेचन करना भी है। किसी भी कृति की सार्थकता पाठक के पास पहुँचने पर ही सिद्ध होती है। पाठक के अभाव में कोई रचना चाहे कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, उसकी कोई सार्थकता नहीं है। लेखक को अपने पाठक की चिंता रहती है। यदि वह समकालीन पाठकों से निराश होता है, तो भविष्य में पाठकों की तलाश करता है। चाहे कितना भी बड़ा कलावादी लेखक क्यों न हो, उसे भी अपने पाठक वर्ग की चिंता रहती है। कृति से पाठक के संबंध के विचार के बिना पूरी साहित्य प्रक्रिया को समझ पाना असंभव है। पिछले दो–तीन दशकों में पाठक साहित्य–चिंतन का केंद्र बन गया है। ''रोमैण्टिक काल में आलोचना का केंद रचनाकार था। कृति उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति थी, इसलिए रचनाकार से कृति के संबंध का विश्लेषण ही आलोचना का केंद्रीय प्रयोजन था। विधेयवादी समाजशास्त्र में भी लेखक से कृति के संबंध पर जोर दिया जाता था। रूपवादी आलोचना में केंद बदला, लेखक और पाठक से स्वतंत्र कृति आलोचना का केंद बनी।''[14] संरचनावादियों और मार्क्सवादियों ने भी पाठक को महत्त्व दिया। आलोचना के केंद्र में कृति से पाठक के संबंध की व्याख्या आ गयी। साहित्य के समाजशास्त्र में पाठक का महत्त्व स्वीकार करने से तात्पर्य है, साहित्य के उपभोग पर ध्यान केन्द्रित करना तथा उत्पादन की परिस्थितियों के बदले उपभोग की स्थितियों का विवेचन करना। पाठक समुदाय के बीच साहित्य की सत्ता और महत्ता के विवेचन की ओर ले जाने वाली यह प्रक्रिया

साहित्य की सामाजिकता की पहचान कराती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत पाठक द्वारा कृति के चयन, चयन के कारण, उसकी मानसिकता, कृति का बोध, कृति के अर्थ की पुनर्रचना, पाठक पर प्रभाव और उसकी प्रतिक्रियाओं का विवेचन किया जाता है। इससे कृति की घटती–बढ़ती लोकप्रियता और पाठक समुदाय की बदलती हुई मानसिकता का पता चलता है। इससे स्पष्ट होता है कि पाठकीय अभिरुचि के विकास में रचना की भूमिका और साहित्य के स्वरूप के विकास में पाठक वर्ग की भूमिका महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

वर्तमान समय में लेखक और पाठक का संबंध पहले की तुलना में बदल गया है। पहले लेखक अर्थात कवि का समाज से सीधा संबंध होता था और वह समाज को सीधे संबोधित करता था। साहित्य मौखिक होने के कारण श्रोता से संवाद और सहज था। लिखित साहित्य के कारण पाठक अस्तित्व में आया। पहले कवि या लेखक उनके लिए लिखता था, जिनको वह जानता था अर्थात अपने वास्तविक पाठकों के लिए लिखता था। लेकिन पूँजीवादी युग में लेखक अपने संभावित पाठकों के लिए लिखता है। लेखक और पाठक के बीच में बाजार मौजूद होने के कारण वह अपने पाठक को ठीक से नहीं जानता है। बाजार में कृति एक वस्तु की तरह होती है, जिस पर कृतिकार के व्यक्तित्व की छाप होती है, लेकिन यह छाप संकेत से अधिक महत्त्व नहीं रखती है। बाजार में आते ही कृति अपने कृतिकार से स्वतंत्र हो जाती है तथा पाठक से उसका वस्तुगत संबंध हो जाता है।

रचना, रचनाकार की चेतना की उपज होती है तथा पाठक वर्ग में चेतना पैदा भी करती है अर्थात अपने पाठक पैदा करती है। साहित्य के समाजशास्त्र में कृति से पाठक के संबंध का विवेचन–विश्लेषण किया जाता है। इसमें पाठक और साहित्य के संबंध पर दो दृष्टियों से अधिक विचार किया गया है। एक में मुख्य रूप से साहित्य के विकास में पाठक समुदाय की भूमिका का विवेचन हुआ है, तो दूसरी में कृति के पाठकीय अभिग्रहण, पाठक पर प्रभाव और पाठकीय प्रतिक्रिया का विश्लेषण हुआ है। पहली परंपरा इंग्लैण्ड में विकसित हुई और दूसरी जर्मनी में। पहली परंपरा का विकास इतिहास लेखन के अंतर्गत हुआ है और दूसरी का आलोचना के क्षेत्र में साहित्य को व्यापक साँस कृतिक प्रक्रिया के अंग के रूप में पुराने समय से ही देखा जाता रहा है। इसमें साहित्य के सामाजिक संदर्भ की पहचान की जाती है, जिसमें साहित्य के विकास, उसके स्वरूप में परिवर्तन और नयी विधाओं के उदय में पाठक समुदाय की भूमिका का विवेचन किया जाता है। क्यू.डी.लीविस की पुस्तक 'उपन्यास और पाठक समुदाय' (1932) का उद्देश्य भी लोकप्रिय उपन्यासों से पाठकों के संबंध का विवेचन करना ही था। उन्होंने तथ्यों एवं सूचनाओं के सहारे जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता और उनके पाठकों की मानसिकता का अध्ययन किया। उनका दृष्टिकोण अभिजनवादी था।

साहित्य के विकास में पाठक समुदाय की भूमिका के एक नये पक्ष का विश्लेषण इवान वाट्स की पुस्तक 'उपन्यास का उदय' (1957) में हुआ है। उन्होंने अट्ठारहवीं सदी के इंग्लैण्ड में पाठक समुदाय के स्वरूप और उसकी मानसिकता के परिवर्तन के साथ उपन्यास और यथार्थवाद के विकासशील संबंध का विवेचन किया है। उन्होंने लिखा है, कि– ''लेखकों के आश्रय की पुरानी पद्धति का अंत, पुस्तक बाजार के विकास, पाठक के रूप में मध्यवर्ग के विस्तार और उसके साथ उपन्यासकारों के घनिष्ठ संबंध के कारण उपन्यास का विकास हुआ।''[15] इनके अनुसार उपन्यास मध्यवर्ग का महाकाव्य है। साहित्य से पाठक के संबंध के अध्ययन की एक परंपरा का विकास जर्मनी में भी हुआ और वहाँ इसका विस्तार साहित्य के इतिहास, सौंदर्यशास्त्र, आलोचना और साहित्यिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में दिखाई देता है। लेविन एल शूकिंग की पुस्तक ''साहित्यिक अभिरुचि का समाजशास्त्र (1931) में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया गया है। उन्होंने इतिहास में पाठकीय अभिरुचि का महत्त्व स्पष्ट करते हुए 1913 में लिखा था – ''साहित्य के इतिहास के सामने मुख्य सवाल यह होना चाहिए कि किसी समय में एक राष्ट्र या जाति के विभिन्न वर्गों के लोगों के बीच कौन–सा साहित्य लोकप्रिय था और लोकप्रियता के क्या कारण थे।''[16] उन्होंने साहित्य के परिवर्तन और विकास की पहचान के लिए तीन बातें जरूरी मानी – (1) युग की बौद्धिक चेतना (2) पाठक समुदाय

में परिवर्तन (3) पाठक समुदाय के विस्तार से साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन। उनके अनुसार प्रत्येक समाज में हर समय एक ऐसा समुदाय होता है, जो मुख्य रूप से संस्कृति का संवाहक माना जाता है। वही साहित्यिक रुचि का रक्षक और निर्माता भी होता है।

हिंदी में प्रेस प्रकाशन और पत्र–पत्रिकाओं के विकास के साथ गद्य विधाओं के विकास के संबंध को समझने के लिए उस समय के पाठक वर्ग और उसकी मानसिकता का विश्लेषण आवश्यक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य के इतिहास लेखन के लिए दो बातों पर विचार आवश्यक माना है। पहली बात है – ग्रंथों की प्रसिद्धि। उनके अनुसार प्रसिद्धि किसी काल की लोकप्रवृत्ति की प्रतिध्वनि है। दूसरी विचारणीय बात है – कि किसी काल विशेष में लोगों में रुचि विशेष का संचार और पोषण किधर से और किस प्रकार हुआ। जर्मनी में साहित्यिक कृतियों के पाठकीय अभिग्रहण के समाजशास्त्र को व्यवस्थित रूप से लिओ लावेंथल ने आगे बढ़ाया। उनके अनुसार ''साहित्य के अभिग्रहण और उपयोग का अध्ययन केवल साहित्य प्रक्रिया के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष का अध्ययन नहीं है, वह समाज का भी अध्ययन है। अभिग्रहण की प्रक्रिया समाज से प्रभावित होती है और पाठकों को प्रभावित भी करती है, उससे आकांक्षाओं की तुष्टि होती है और नयी आकांक्षाएँ पैदा भी होती हैं।''[17] साठ के दशक में साहित्य के समाजशास्त्र की दो विरोधी दृष्टियों पर बहस हुई जिसमें एक ओर था मार्क्सवाद और दूसरी ओर अनुभववादी विधेयवाद। मार्क्सवादी साहित्य के उत्पादन पर जोर देते हैं और रूपवादी उत्पादित वस्तु के वर्णन पर। दोनों ही दृष्टियाँ अधूरी हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से साहित्य–चिंतन के क्षेत्र में मार्क्सवादी दृष्टि का प्रभाव बढ़ा। मार्क्स ने जर्मन दार्शनिकों – कांट और हीगेल के विपरित अपनी भौतिकवादी जीवन–दृष्टि को स्थापित करते हुए माना कि मनुष्य प्रमुख रूप से उत्पादक है। वह केवल भौतिक पदार्थों का ही नहीं वरन् कलाकृतियों का भी उत्पादक है। कला की सृजना मानव–कर्म का ही अभिन्न अंग है। मार्क्स का मानना है कि अर्थव्यवस्था की नींव पर ही वैचारिक जीवन की इमारत खड़ी होती है। उत्पादन की परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर स्वभावतः समाज का आर्थिक ढाँचा भी बदल जाता है और आर्थिक ढाँचे में बदलाव के साथ ऊपर की इमारत–कानून, राजनीति, धर्म, साहित्य आदि का रूप भी बदल जाता है। उनके अनुसार कला मनुष्य की कृतियों के मानवीकरण का अत्यन्त प्रभावी साधन है, किंतु यह प्रक्रिया निश्चित यथार्थ अर्थात सामाजिक–ऐतिहासिक आधार पर ही घटित होनी चाहिए। इसमें सिद्धान्त और विचार–तत्व के साथ–साथ कला–तत्व को भी महत्त्व दिया और रचना तथा समाज के बीच सापेक्षिक महत्त्व को रेखांकित किया। मार्क्सवादी समीक्षा के भीतर समाजशास्त्रीय दृष्टि का विकास कभी सिद्धान्त की कठोरता और कभी उदारता और समन्वयशीलता के साथ होता रहा, जिसकी प्रशंसा और आलोचना बराबर होती रही।

साहित्य विवेचन की भारतीय दृष्टि :

साहित्य के विवेचन के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टियों का उपयोग भारतीय समीक्षा व पाश्चात्य समीक्षा दोनों में ही हुआ। साहित्य के सम्यक् विवेचन की परंपरा भारत में प्राचीन काल से ही परिलक्षित होती है। विवेचन की इस परंपरा में काव्य की आत्मा, रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण, प्रयोजन, अंग, उपांगों, कृति एवं भावक, प्रभाव और परिणति की व्यापक और गहरी चर्चा न केवल ऋषियों, आचार्यों ने उठायी वरन कृतिकारों ने भी उस पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया। संस्कृत साहित्य में साहित्य विवेचन की परंपरा विस्तृत व समृद्ध है। संस्कृत का काव्यशास्त्री आचार्य है और वह रचनाकार और कृति को ही केंद में रखता है। भावक का आनन्द ही उसके लिए सर्वोपरि है। वह कृति की आंतरिक बनावट, रस, सौंदर्य, चमत्कार को ही महत्त्वपूर्ण मानता है। रचना में वर्णित समाज उसकी चिंता का विषय नहीं रहा है। संस्कृत का रचनाधर्मी व्यक्तिगत मूल्यों को सामाजिक मूल्यों से भिन्न नहीं मानता क्योंकि वह समाज का अविच्छिन्न अंग है, वही अन्ततः समाज की पूर्णता भी है। साहचर्य, प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, सौंदर्य व्यक्ति के मूल्य हैं, परंतु सम्पूर्ण समाज की स्थिरता, कल्याण के इन्हीं

तत्त्वों पर आधारित है। उन्होंने अपने साहित्य को युगीन साँस कृतिक उपलब्धियों का वाहक बनाया है। साहित्यकार की आंतरिक संवेदना उसके वैयक्तिक स्वातंत्र्य की शर्त है। इसी के माध्यम से उदात मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने में समर्थ हो पाता है। संस्कृत और आगे चलकर हिंदी के साहित्यकार धार्मिक मतवादों, दार्शनिक चिंतन पद्धतियों तथा राजनीतिक संघर्षो के विरोध के बीच भी सामंजस्य और समन्वय का मार्ग प्रशस्त करता आया है।

भारतीय साहित्यकारों ने पाश्चात्य साहित्यकारों व चिंतकों की भांति मानव जीवन को वस्तु नहीं माना। उन्होंने व्यक्तिगत संवेदन को पौषणीय बनाकर सामाजिक गत्यात्मकता को आगे बढ़ाया है। उन्होंने सम्पूर्ण मानवता को लक्ष्य बनाया। लोक मान्यता, लोकदृष्टि, परंपरित मानस की उच्चशयता को रूपायित करने वाला भारतीय साहित्य मात्र समसामयिक समाज और उसकी सीमा में अट नहीं पाता। वह व्यक्ति से विश्व बनने की कामना का रचनाधर्मी ही आद्यन्त बना रहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र के अभिजनवादी दृष्टिकोण में साहित्य की व्यापक सामाजिक भूमि और भूमिका की उपेक्षा का विरोध करती हुई ही साहित्य की सामाजिक दृष्टि आधुनिक काल में विकसित हुई है।''साहित्यानुशीलन की सामाजिक दृष्टि के दो रूप हैं – एक के अंतर्गत साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है अर्थात् साहित्य में किसी काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवन के अनुभवों और विचारों की व्यंजना होती है। उसमें सामाजिक यथार्थ और सामाजिक चेतना का संबंध मिलता है, जिससे साहित्य का स्वरूप बनता है। समाज से साहित्य के इस संबंध बोध के माध्यम से साहित्य के सामाजिक उद्भव और विकास का स्वरूप स्पष्ट होता है और सामाजिक परिवर्तन के साथ साहित्य के परिवर्तन की स्थितियों की पहचान भी होती है। दूसरे रूप में साहित्य को प्रेरक शक्ति माना जाता है। इसके अनुसार साहित्य समाज के परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली शक्ति है, वह सामाजिक चेतना के निर्माण और विकास में सहायक है। इसके भीतर पाठक समुदाय से साहित्य के संबंध पर ध्यान दिया जाता है और पाठक पर साहित्य के प्रभाव के साथ–साथ साहित्य के विकास में पाठकीय रुचि की भूमिका का विश्लेषण होता है। साहित्य की यह सामाजिक दृष्टि आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास के साथ भारतेंदु युग में सामने आती है। इसके विकास के पीछे व्यापक स्वाधीनता आंदोलन की प्रक्रिया में समाज से साहित्य के संबंध की नयी चेतना और सामाजिक जीवन में साहित्य की सक्रिय भूमिका के बोध का महत्त्वपूर्ण योगदान है।''[18]

साहित्यालोचन की इस दृष्टि की प्रभावकारी अभिव्यक्ति बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'साहित्य जनसमूह के ह्रद्य का विकास है' में दिखाई पड़ी। भट्ट जी का यह निबंध जुलाई 1881 ई. में 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने लिखा कि 'साहित्य को यदि जन–समूह (नेशन) के चित्र का चित्रपट कहा जाय तो संगत है।'' इस मंतव्य को और विस्तार देते हुए उन्होंने लिखा – ''प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के ह्रदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब उसके भाव उस समय की साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं।''[19] अपनी इस मान्यता को उन्होंने देशी–विदेशी साहित्य के उद्धरणों से पुष्ट भी किया है। इनके इस निबंध में 'जन–समूह' का प्रयोग 'जाति' के अर्थ में हुआ है। यह एक प्रकार से साहित्य में समाज के प्रतिबिंबन की खोज की कोशिश है। भट्ट जी साहित्य के विकास और परिवर्तन को जाति के जीवन और भाषा के विकास और परिवर्तन के साथ संबद्ध मानते हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बालकृष्ण भट्ट के विचारों को व्यापकता प्रदान करते हुए साहित्य और समाज के संबंध को रेखांकित किया। भट्ट जी ने साहित्य के भावात्मक पक्ष को महत्त्व दिया था परंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसके ज्ञानात्मक पक्ष पर बल दिया। उन्होंने साहित्य को ज्ञानराशि का संचित कोश कहा और यह भी माना कि साहित्य जातीय जीवन का प्रतिबिंब होता है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि ''जाति विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके ऊँच–नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसकी ऐतिहासिक घटनाओं और राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिंब देखने को यदि कहीं

मिल सकता है तो उसके ग्रंथ साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है।''[20] द्विवेदी जी ने साहित्य को समाज–जाति का प्रतिबिंब कहने के साथ ही इसकी परिवर्तनकारी भूमिका को भी रेखांकित किया है। उन्होंने साहित्य के परिवर्तन व विकास को सामाजिक परिवर्तन व विकास से जोड़ते हुए कहा है कि जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। समाज में साहित्य की अभिव्यक्ति और साहित्य में सामाजिक स्वरूप दोनों की पहचान पर बल दिया है। द्विवेदी जी साहित्य को समाज का दर्पण ही नहीं मानते, वे साहित्य में अभिव्यक्ति के साथ ही साहित्य को समाज के परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली सक्रिय शक्ति के रूप में देखते हैं। उन्होंने लिखा है कि ''आँख उठाकर जरा और देशों और जातियों की ओर तो देखिए। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे–कैसे परिवर्तन कर डाले। साहित्य ने वहाँ समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है, शासन प्रबन्ध में बड़े–बड़े उथल–पुथल कर डाले हैं, यहाँ तक कि अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पायी जाती।''[21] द्विवेदी जी ने साहित्य को समाज की अभिव्यक्ति के साथ ही परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में भी रेखांकित किया है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काफी व्यवस्थित ढ़ंग से साहित्य की सामाजिक दृष्टि को विकसित किया। उन्होंने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में साहित्य के सामाजिक–ऐतिहासिक स्वरूप की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि –''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य–परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखलाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है। अतः कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।''[22] शुक्ल जी के अनुसार परिस्थितियों के बदलने से सामाजिक के चित्त में परिवर्तन होता है और उसी के अनुकूल साहित्यिक प्रवृत्ति में भी परिवर्तन होता है। शुक्ल जी ने साहित्य और समाज के एक और पक्ष पर भी प्रकाश डाला है, वह है साहित्य के विकास में पाठकीय रुचि का योगदान। उन्होंने पाठकों के आधार पर साहित्य की लोकप्रियता को रेखांकित किया और रचना की लोक–प्रसिद्धि को जनभावना की अभिव्यक्ति माना है। साहित्य की यह सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के अधिक जटिल संबंध को सामने लाती है। इसमें साहित्य का विकास समाज और चेतना दोनों के विकास से संपृक्त है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद साहित्य की सामाजिक दृष्टि को विकसित करने का कार्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'कबीर' नामक महत्त्वपूर्ण आलोचना ग्रंथ के माध्यम से किया। उन्होंने इस ग्रंथ में कबीर के व्यक्तित्व, उनके रचना संसार और भक्ति आंदोलन के सामाजिक–साँस कृतिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट किया। कबीर के व्यक्तित्व और उनकी कविता को तत्कालीन समाज से जोड़कर देखा है, जिससे उनकी साहित्य संबंधी सामाजिक दृष्टि को अच्छी तरह समझा जा सकता है।साहित्य की सामाजिक दृष्टि का व्यवस्थित विकास हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना ने किया है। गजानन माधव मुक्तिबोध ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत साहित्य और समाज के संबंधों पर जितनी गंभीरता और व्यवस्था के साथ विचार किया है उससे समाजशास्त्रीय आलोचना का पथ प्रशस्त होता है। उन्होंने 'कामायनीः एक पुनर्विचार' पुस्तक में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि हर तरह के साहित्य को एक ही दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। समाज से साहित्य के संबंध का विवेचन करने के लिए सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि जिस कृति या कृतिकार का विश्लेषण करना है, उसका स्वरूप क्या है। उन्होंने दो प्रकार का साहित्य बताया है –एक वह जिसमें युग प्रवृत्तियों से संचालित और नियंत्रित होते हुए भी साहित्यकार सचेत रूप से उन प्रवृत्तियों को ग्रहण नहीं करता। इसका फल यह होता है

कि वह साहित्य अपने में उन प्रवृत्तियों के विकृत असंस्कृत प्रतिबिंब ही लिए रहता है। दूसरा साहित्य इस प्रकार का होता है कि उसमें उन युग–प्रवृत्तियों के वास्तविक अभिप्राय, गर्भितार्थ तथा उनके निर्माण कार्य अथवा विनाश कार्य, आशय आदि को जागरूक प्रकार से ग्रहण किया जाता है और वर्तमान के पार मानव भविष्य को निहारा जाता है।''[23] अतः स्वाभाविक है कि इन दोनों प्रकारों के साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन एक ही ढ़ंग से नहीं हो सकता। उनके अनुसार साहित्यकार अपनी विधायिनी कल्पना के द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है। रचना में जीवन और समाज की अभिव्यक्ति की पहचान के लिए उसके शिल्प और रचनाकार के दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है।

मुक्तिबोध ने साहित्यिक कृति की पहचान के साथ–साथ उसके समाजशास्त्रीय विश्लेषण की पद्धति पर भी विचार किया है। उन्होंने लिखा है कि ''साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन है; अतएव जो लोग केवल ऊपरी तौर पर साहित्य का ऐतिहासिक विहंगावलोकन अथवा समाजशास्त्रीय निरीक्षण कर चुकने में ही अपनी इति कर्त्तव्यता समझते हैं, वे एक पक्षीय अतिरेक करते हैं।''[24] उन्होंने ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति के व्यावहारिक रूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि किसी भी साहित्य को तीन तरह से देखा जाना चाहिए। एक तो वह किन स्रोतों से उद्गत होता है अर्थात किन वास्तविकताओं के परिणामस्वरूप वह साहित्य उत्पन्न हुआ है। दूसरे, उसका कलात्मक प्रभाव क्या है और तीसरे, उसकी अन्तःप्रकृति, रूप रचना कैसी है। इस तीसरे प्रश्न को बिना पहले प्रश्न से मिलाए हम दूसरे सवाल का जवाब नहीं दे सकते। इस प्रकार वे तीन अवस्थाओं की चर्चा को प्रमुखता देते हैं – 1. साहित्य का सामाजिक उद्गम, 2. कलात्मक एकता, 3. रूप, रचना, विधान। इन तीन आधारों पर साहित्यिक रचना का समाजशास्त्रीय विवेचन किया जा सकता है।

मुक्तिबोध के पश्चात् हिंदी में समाजशास्त्रीय दृष्टि को व्यावहारिक आधार देने वाले आलोचक पूरनचंद जोशी हैं, जिन्होंने 'गोदान का समाजशास्त्रीय अध्ययन' प्रस्तुत करके 'गोदान' को समझने की नयी दृष्टि दी है। 'गोदान' संबंधी उनके विश्लेषण में प्रेमचन्द की ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि और कला के अन्तःसंबंध को अच्छी तरह रेखांकित किया गया है। हिंदी के अधिकांश मार्क्सवादी समीक्षक रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, नामवरसिंह आदि साहित्य की समीक्षा में समाजशास्त्रीय दृष्टि अपनाते हुए दिखाई पड़ते हैं, किंतु उससे हिंदी साहित्य में समाजशास्त्रीय आलोचना का व्यवस्थित रूप निर्मित नहीं हो पा रहा है।

(च) साहित्य के समाजशास्त्रीय सिद्धांत :

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के दौरान हमने यह जाना कि साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य में अंतर्निहित सामाजिक जीवन और सत्य को रेखांकित करके रचना और रचनाकार के उस परिवेश को समझता है, जिसमें उनकी उपस्थिति होती है। यह कला सृजन, कला के प्रभाव की मानवीय चेतना एवं मूल्य चेतना का अनुसंधानात्मक प्रयत्न भी है, जिसमें रचना–प्रक्रिया से लेकर वर्ग–बोध, वर्ग–रूपांतरण और मूल्य–संप्रेषण के सारे संदर्भ समेटे जा सकते हैं। इसके अंतर्गत इस बात को परखा जाता है कि कोई रचना समाज के लिए कितनी मूल्यवान है ? क्या उस रचना ने परंपरागत लीक से हटकर नये सामाजिक प्रतिमानों की प्रतिष्ठा की है ? क्या वह रचना समाज में नये मानव मूल्यों और नई सामाजिक चेतना को जाग्रत करने में समर्थ रही है ? साथ ही इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि किसी रचना विशेष ने पाठक वर्ग में कितनी वृद्धि की है ? इसके साथ ही हमने यह जाना कि साहित्य व समाज के संबंध कैसे हैं ? उसकी सामाजिक स्थिति क्या है ? उसकी समाज में क्या अस्मिता है ? साहित्य और समाज को जोड़ने वाली कड़ी अर्थात लेखक की सामाजिक स्थिति क्या है ? साहित्य को सामाजिक परिवर्तन किस प्रकार प्रभावित करते हैं तथा साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययनकर्त्ता के साहित्य के प्रति कैसे विचार रखते हैं तथा उनका साहित्य के प्रति क्या उत्तरदायित्व है ? इन सबके अतिरिक्त हमारे लिए यह जानना भी आवश्यक है कि

हम साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के विविध सिद्धांतों के बारे में जाने तथा साहित्य के समाजशास्त्र को पूर्णतः समझ सकें।

साहित्य और समाज संबंधी किसी सिद्धांत को ऐसी धारा के रूप में रेखांकित किया जा सकता है, जिसका प्रभाव वर्तमान रचनाओं पर भी निरंतर पड़ रहा है। साहित्य के समाजशास्त्र ने अलग–अलग समय पर अलग–अलग लेखकों के सामने इस विषय के मुख्य प्रश्नों को निश्चित रूप से उठाया है। इसके लिए हम तेन के प्रत्यक्षवादी सिद्धांत, मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त तथा लूकाच का सामाजिक यथार्थवादी सिद्धांत पर प्रकाश डालना चाहेंगे। इन सिद्धांतों का प्रत्यक्ष रूप से समाज और साहित्य पर प्रभाव पड़ा है।

तेन का प्रत्यक्षवादी सिद्धांत :

साहित्य और समाज के बीच संबंध को सही अर्थ में पहले–पहल व्यवस्थित विवेचन का श्रेय फ्रांसीसी दार्शनिक और आलोचक ईपॉलीत तेन (1828–93) को दिया जाता है। दार्शनिक, इतिहासकार, राजनीतिज्ञ और निबंधकार ईपॉलीत तेन को सामान्यतः साहित्य के समाजशास्त्र का प्रर्वतक मानते हैं। साहित्य और समाज पर उनके अधिकांश कार्य की प्रकृति सत्याभासी होने के बावजूद उसके द्वारा साहित्य के किसी भी समाजशास्त्र के सामने आने वाली मूलभूत और स्थायी समस्याओं की जानकारी मिलती है। ''उन्होंने साहित्य और कला पर उन्हीं शोध पद्धतियों को लागू किया जिनका उपयोग भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों में किया जाता है। उन्होंने लिखा – ''गुण और दोष वैसे ही उत्पाद हैं, जैसे–''चीनी और नीला थोथा।'' और इस प्रकार समान शोधस्तर के विषय हैं।''[25]साहित्य के सामाजिक अध्ययन की दिशा में विकसित होते हुए दृष्टिकोणों में से ही एक आंदोलन 'प्रत्यक्षवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके तहत सामग्री यानी जलवायु, भूगोल और जाति जैसे तथ्यों और साहित्य के बीच वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञात हो सकने योग्य कार्य कारण संबंधों की खोज की गई। वैज्ञानिक शोध में साहित्य को भी दूसरे तथ्यों के समान दर्जा देकर एक तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया। कलात्मक मूल्यांकन समग्र रूप से देश, काल और प्रयोजन पर निर्भर हो गया। इस दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य के अध्ययन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष मूल्य हो जाते हैं और साहित्यिक समाजशास्त्र मूलतः उन मूल्यों का अध्ययन हो जाता है, जिनके अनुसार व्यक्ति और उसके समाज को रहना चाहिए।

तेन ने साहित्य का संबंध समाज की आर्थिक बुनियाद में ही खोजा है तथा उन्होंने अपने 'अंग्रेजी साहित्य के इतिहास' की भूमिका में लिखा था कि ''साहित्यिक रचना कल्पना की मात्र वैयक्तिक क्रीड़ा नहीं होती, किसी उत्तेजित मानस की अलग भटकी तरंग भी नहीं, बल्कि वह समसामयिक आवरण की प्रतिलिपि होती है, जिसे हम एक विशेष प्रकार की मानसिकता की अभिव्यक्ति कह सकते हैं।''[26] उन्होंने साहित्य के समाजशास्त्र के चार मुख्य पक्ष बताये हैं– (1) साहित्य के भौतिक सामाजिक मूलाधार की खोज (2) लेखक के महत्त्व का विश्लेषण (3) साहित्य में समाज के प्रतिबिंबन की व्याख्या (4) साहित्य का पाठक से संबंध।

तेन के इस सिद्धान्त को समझने से पहले हमें तेन की साहित्य संबंधी कुछ मान्यताओं को जान लेना चाहिए। इनकी सबसे पहली मान्यता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। उनका कहना है कि ''एक छोटा दर्पण जिसे हर जगह ले जाया जा सकता है और जो जीवन और प्रकृति के सभी पक्षों को प्रतिबिंबित करने का सर्वाधिक सुविधाजनक साधन है।''[27] औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा होने के कारण उपन्यास उसके स्वरूप को प्रकट करता है। साहित्य के किसी भी ऐसे समाजशास्त्र को जो सुस्पष्ट प्रत्यक्षवाद को अपना आधार बनाता है तथा जो साहित्य को सूचनाओं का स्रोत या दस्तावेज मानकर चलता है, अच्छे–बुरे या साधारण हर तरह के साहित्य के अध्ययन के लिए तैयार रहना चाहिए। साहित्यिक रचनाएँ दस्तावेज इसलिए होती हैं, क्योंकि वे स्मारक होती हैं। कलाकार जितना अधिक अपनी कला की गहराई में अन्तःप्रवेश करता है, उतना ही वह अपने युग और जाति की चेतना में अंतःप्रवेश करता है।

महान कलाकार ही अपने समय की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में समर्थ होते हैं तथा महान साहित्य अपने युग की चेतना का लगभग मूर्त रूप होता है। साहित्य केवल कोरी कल्पना का खेल नहीं है, न किसी प्रकार के उन्मत्त मस्तिष्क की उपज है, बल्कि साहित्य साहित्यकार द्वारा निर्मित एक ऐसी प्रतिलिपि है, जो साहित्यकार की अलग विशेष प्रकार की मानसिकता की उपज है। साहित्यकार अपनी नजरों से समाज को देखता है तथा अनुभूत करता है। कृति की रचना करते समय वह उसे अपनी अनुभूति और कल्पना का आवरण पहना देता है, जो इतना समसामयिक होता है कि उसे देखकर पाठक अपने समाज, जाति, परिवेश और काल को समझ पाता है।

तेन के अनुसार कला मनुष्य की मानसिकता की उपज है। कला जिस मानसिकता से पैदा होती है, वह मानसिकता कैसे बनती है, इसके लिए उन्होंने प्रजाति, परिवेश और युग का प्रसिद्ध सिद्धांत दिया है। तेन की समाजशास्त्रीय पद्धति तथ्य (कृति) से चेतना (लेखक) की ओर बढ़ती है और चेतना से उसके निर्माण की परिस्थितियों की ओर। ऐलन स्विंगवुड ने लिखा है कि ''तेन के अनुसार प्रजाति, परिवेश और युग से भौतिक आधारों का निर्माण होता है, जो कला के सभी वास्तविक कारणों और संभावित आंदोलनों का मूल स्रोत है। प्रजाति, परिवेश और युग के बीच क्रिया–प्रतिक्रिया से एक व्यावहारिक या चिंतनशील मानसिक संरचना पैदा होती है। इस मानसिक संरचना से वे बीज–विचार विकसित होते हैं, जो युग की विशेषता बन जाते हैं और उस युग की महान रचनाओं में व्यक्त होती हैं।''[28]तेन ने तीन अवधारणाओं को विशेष महत्त्व दिया है – प्रजाति, क्षण और परिवेश। प्रजाति, क्षण और परिवेश के बीच अंतःक्रिया एक व्यावहारिक अथवा चिंतनशील 'मानसिक सरंचना' उत्पन्न करती है। तेन के द्वारा प्रस्तावित तीनों तत्त्व परस्परावलंबित हैं – कभी प्रजातीय तत्त्व पर बल दिया जाता है, तो कभी क्षण और परिवेश पर।

तेन ने प्रजाति की धारणा को बहुत महत्त्व दिया है। वे प्रजाति की व्याख्या सहज वंशानुगत विशेषताओं, स्वभाव, शरीर, संरचना आदि के रूप में करते हैं। उनके अनुसार भले ही अनेक मानव जातियाँ विश्व में दूर–दूर तक बिखर गई हैं और अपने मूल आवास स्थलों से बहुत भिन्न स्थितियों में रहती हैं, फिर भी उनमें कुछ समान विशेषताएँ मिलती हैं। किसी भी प्रजाति की चरित्रगत विशेषताएँ उसकी जलवायु, मिट्टी और इतिहास की महान घटनाओं की उपज होती हैं, जिनमें वह आरंभ में होकर गुजरी हैं। तेन की दूसरी महत्त्वपूर्ण धारणा परिवेश की है। परिवेश से उनका आशय प्राकृतिक परिवेष से है, लेकिन उसके अंतर्गत वे सामाजिक परिवेश को भी शामिल करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के चारों ओर प्रकृति और समाज होता है। उसकी आदिम प्रवृत्तियाँ तथा प्रजातिगत विशेषताएँ भौतिक–सामाजिक परिस्थितियों, घटनाओं आदि से प्रभावित होती हैं। कोई भी मनुष्य अपनी जलवायु और भूगोल अर्थात परिवेश से मुक्त नहीं रह सकता। तेन की तीसरी धारणाा युग की है। इस धारणा के मूल में युग चेतना का विचार है। तेन का कहना है कि हर युग के कुछ अपने प्रधान विचार होते हैं और उसका कम से कम ऐसा बौद्धिक साँचा होता है, जिसमें सदियों तक जीवित रहने की क्षमता होती है और जो पूरे समाज के चिंतन को प्रभावित करता है। प्रत्येक युग में मनुष्य की एक परिकल्पना या अवधारणा होती है। युग के प्रधान विचार का प्रसार जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है – व्यवहार व चिंतन के रूप में। कोई लेखक विरासत में मिलने वाली परंपरा का उपयोग किस रूप में करता है, यह साहित्य के समाजशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण और प्रधान विचारणीय विषय है, जिसे तेन ने बखूबी समझा है।

तेन की प्रजाति, परिवेश और युग की अवधारणाओं से स्पष्ट होता है कि साहित्य जाति, परिवेश और युग से प्रभावित होता है और उसी के कारण निर्मित होता है। साहित्य की रचना करने वाला साहित्यकार जो कि एक व्यक्ति है, वह अंततः अपने स्थान, अपने परिवेश, अपनी जाति, अपनी परंपरा तथा जिस स्थान पर वह रहता है, उस स्थान की जलवायु अर्थात वातावरण से अवश्य प्रभावित रहता है। उसके समाज में घटित घटनाएँ तथा उनके कारण सामाजिक, राजनीतिक या साँस कृतिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से भी वह प्रभावित होता है।

इनके द्वारा ही उसके मन में सच्ची अनुभूति जाग्रत होती है और वह साहित्य का निर्माण करता है, जिसमें प्रजाति, परिवेश तथा युग तीनों कारकों को देख पाते हैं।

तेन के साहित्य का समाजशास्त्र के सिद्धान्त का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है, लेखक के महत्त्व की पहचान करना। इनके संपूर्ण साहित्य चिंतन का लक्ष्य मनुष्य को जानना है, कृति के सृजक मनुष्य और कृति में व्यक्त मनुष्य को भी। सृजक के रूप में उन्होंने लेखक को विशेष महत्त्व दिया है। वे लेखक की संवेदनशीलता, विचार की शक्ति और सामाजिक अंतर्दृष्टि को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार कलाकार सत्य का साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति होता है। वह अपने युग और राष्ट्र के जीवन के सत्य की पहचान कराता है। ऐसा लेखक जो अपनी रचना के माध्यम से समाज, राष्ट्र और युग के जीवन सत्य का बोध कराता है, वह सामान्य लेखकों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

तेन साहित्य के ज्ञानात्मक मूल्य को स्वीकारते हैं। उनकी मान्यता है कि साहित्य में समाज प्रतिबिंबित होता है। साहित्य को सामाजिक दस्तावेज या साहित्य को समाज का दर्पण समझने की धारणा उनके साथ मुख्य मान्यता के रूप में जुड़ गई है। उनके अनुसार साहित्य के अध्ययन से उसके रचनाकाल के मनुष्यों की भावनाओं के रूप, विचारों की गति और जीवन की दिशाओं का बोध होता है। उसमें अपने युग व प्रजाति की आत्मा का मनोविज्ञान प्रकट होता है, तेन के अनुसार ''साहित्य में भावों की अभिव्यक्ति का विशेष महत्त्व है। किसी रचना की श्रेष्ठता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें भावों की व्यंजना कैसी है। किसी कृति में महत्त्वपूर्ण भावों की जितनी बेहतर अभिव्यक्ति होती है, साहित्य में उसका स्थान उतना ही ऊँचा होता है। जो लेखक एक राष्ट्र और युग की समग्र जीवन पद्धति की जितनी अधिक और अच्छी तरह व्यंजना करता है, उतना ही अधिक वह अपने राष्ट्र और युग की भावनाओं का केंद बनता है।''[29] एक महान कविता या उपन्यास से समाज के बारे में जितनी अधिक जानकारी मिलती है, उतनी ढेरों इतिहास ग्रंथों से नहीं मिल सकती। महान रचनाओं की समुचित व्याख्या से समाज के बारे में अच्छा ज्ञान मिल सकता है। तेन ने पाठक समुदाय से साहित्य के संबंध पर भी विचार किया है तथा साहित्य के रूप के निर्माण तथा परिवर्तन में पाठकों की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बताया है। साहित्य हमेशा उन लोगों की रुचि के अनुकूल विकसित होता है, जो उसे पंसद करते हैं और उसका मूल्य चुका सकते हैं। पाठक समुदाय की रुचि और मानसिकता की भिन्नता के कारण साहित्य के रूप में भी भिन्नता दिखाई देती है। रचनाओं के विषय के चुनाव, कथ्य और शिल्प पर पाठकों की रुचि का प्रभाव पड़ता है। उनकी रुचि व मानसिकता में भिन्नता का प्रभाव साहित्य के रूप में भी भिन्नता लाता है।

मार्क्स का ऐतिहासिक–भौतिकवादी सिद्धांत :

साहित्य के इस समाजशास्त्रीय सिद्धांत में साहित्य को ऐतिहासिक एवं भौतिक तत्त्वों के धरातल पर रखकर उसका अध्ययन किया गया है। इसमें यह जानने का प्रयास किया गया है कि कौनसे ऐतिहासिक व भौतिक कारण हैं, जिनसे साहित्य प्रभावित होता है तथा किसी काल विशेष में किस विशेष प्रकार की रचना संभव है। सन् 1848 में कार्लमार्क्स (1818–88) और फ्रेडरिक एंगेल्स (1820–95) इन दो युवा जर्मन क्रांतिकारियों ने एक ऐसा दस्तावेज प्रकाशित किया जिसका मनुष्य जाति के इतिहास पर स्थायी प्रभाव पड़ा। इनका 'साम्यवादी घोषणा पत्र' पूर्ववर्ती भौतिकवादी चिंतन का योगफल था। इनका तर्क था कि मनुष्य का सामाजिक इतिहास वस्तुतः वर्ग–संघर्ष का इतिहास है। तेन की तरह मार्क्स और एंगेल्स ने भी साहित्य के विश्लेषण के लिए भौतिक आधार की शब्दावली को ही अपनाया, जो विशुद्ध आर्थिक तत्त्वों के साथ सामाजिक वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका से जुड़ी थी। मार्क्सवादी समीक्षक का काम एक युग के समग्र सामाजिक विकास का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना है, क्योंकि साहित्यिक कृति सदैव किसी वर्ग के चेतन अथवा अचेतन मनोविज्ञान का लेखक द्वारा अभिव्यक्त प्रतिबिंब होती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की उत्पत्ति मार्क्सवादी विचारधारा के तहत हुई है। उनका मानना है कि इस समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी भौतिक स्थिति से प्रभावित होता है। इसी कारण उन्होंने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद नामक सिद्धान्त का प्रवर्तन किया, जिसमें उन्होंने डार्विन के सिद्धान्त 'जीने की कला' के सिद्धान्त को आधार बनाया। मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव समाज के विकास के परिप्रेक्ष्य में आया है। उनके अनुसार सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया में मनुष्य विभिन्न प्रकार के संबंधों का विकास करता है, जो अपरिहार्य और मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। ये उत्पादन के साधन एक विशिष्ट विकास के सौपान को प्रमाणित करते हैं। उत्पादन के साधन और संबंधों से समाज के आर्थिक आधार का निर्माण होता है, जो मूलाधार होता है। इसी आधार पर राजनीतिक और विधि व्यवस्था बनती है तथा सामाजिक चेतना का विकास होता है। सामाजिक चेतना से तात्पर्य दर्शन, धर्म, कला व साहित्य आदि से है। आर्थिक उत्पादन के साधन और संबंध सामान्यतः मनुष्यों के सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन की प्रक्रियाओं को प्रतिवर्तित करते हैं। मार्क्स के अनुसार मनुष्य की सामाजिक चेतना, चिंतनधारा, सोच आदि को उस मानव समुदाय के आसपास का भौतिक जगत एवं आर्थिक स्थिति प्रभावित करते हैं।

मार्क्स के साहित्यिक समाजशास्त्र में यह सहज सत्य प्रतिष्ठित हो गया कि समस्त साहित्य वर्गबद्ध होता है तथा बुर्जुआ प्रभुत्व के साथ महान साहित्य की कोई संगति नहीं है। ''आर्थिक शक्तियाँ हालांकि दार्शनिक परंपरा को प्रभावित करती हैं, फिर भी सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रभाव राजनीतिक और नैतिक प्रतिक्रियाओं का ही होता है। यदि आर्थिक तत्त्वों का दर्शन पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, तो यही बात साहित्य के लिए भी संगत मानी जा सकती है।''[30] मार्क्स के अनुसार मानव की चेतना उसकी जीवन विधि या अस्तित्व को नियमित नहीं करती अपितु सामाजिक या भौतिक जीवन विधि से मनुष्य की चेतना का स्वरूप निर्मित होता है। मनुष्य का समाज उसके भौतिक परिवेश के आधार पर निर्मित होता है। उसके पास जीने के लिए जो उत्पादक साधन हैं, वो उसके आस–पास की प्रकृति पर आधारित होते हैं। वह जिस समाज में रहता है, उसी के आधार पर उसकी सामाजिक चेतना निर्मित होती है। उसकी कला या साहित्य भी उसकी सामाजिक चेतना से प्रभावित होता है। भौतिक तत्त्व मनुष्य की अलग–अलग सोच–विचार या चेतना का मुख्य कारण माना जा सकता है। व्यक्ति अपनी आर्थिक तथा भौतिक स्थिति से ही प्रभावित रहता है तथा उसकी चेतना इन्हीं से तय होती है।

जो साहित्य जैसा है, उसके पीछे लेखक की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सबसे बड़ी भौतिक स्थिति उस साहित्य के निर्माण की नीवं डालती है अर्थात साहित्य यदि गरीबी, भुखमरी, शोषित लोगों का दर्द, भ्रष्टाचार के खिलाफ उठती आवाज, वर्गभेद व नारी की स्थिति आदि की स्थिति को व्यक्त करता है, तो समझना चाहिए कि लेखक अपनी सामाजिक स्थिति को अभिव्यक्त कर रहा है। वह अपने समाज में व्याप्त अत्याचार व शोषण से मुक्ति चाहता है। उसकी चेतना हमें उसके साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है। लेखक गहरे स्तर पर समाज के सभी वर्गों से जुड़ा हुआ हो या उन्हें देखता आया हो तभी साहित्य में विभिन्नता के साथ–साथ हर प्रकार के मनुष्य व वर्ग की समग्रता का चित्रण कर सकता है। मार्क्स के अनुसार जब साहित्य में मनुष्य–जीवन व समाज के सभी वर्गों का चित्रण होगा, तभी साहित्य प्रगति करेगा। उसमें हर वर्ग की चेतना समायी होगी, तभी समाज के हर वर्ग को जानने व समझने का अवसर मिलेगा और कुछ करने की प्रेरणा मिलेगी। वर्तमान साहित्य में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रभाव दिखाई देता है, जिसमें आज मजदूर वर्ग की आवाज है, शोषण, भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज है तथा वर्ग चेतना निहित है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद साहित्य में उसकी उत्पत्ति, उत्पत्ति के कारण, उसके विकास के कारण तथा रचनाकार द्वारा साहित्य रचना में प्रयुक्त साधन तथा उसकी आंतरिक चेतना आदि का अध्ययन किया जाता है। साहित्यकार संवेदनशील प्राणी है और दूसरे व्यक्तियों की अपेक्षा उसकी अपने समाज तथा देश के प्रति चेतना अधिक सजग है। वह जिस सामाजिक परिवेश में रहता है, उसकी आर्थिक व भौतिक स्थिति से भी प्रभावित होता है।

लूकाच का सामाजिक–यथार्थवादी सिद्धांत :

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक और महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है– जार्ज लूकाच का सामाजिक–यथार्थवाद। सामाजिक–यथार्थवाद से तात्पर्य है, वह यथार्थ जो समाज से संबंध रखता है। समाज के सभी रूप, सभी प्रकार के कार्य, परंपरा, संस्कृति, धर्म, जाति, भाषा, घटनाएँ आदि का सही–सही विवरण और वर्णन ही यथार्थ कहलाता है। साहित्य को किसी देश या समाज का प्रतिबिंब कहा जाता है, इसीलिए उसमें उस देश या समाज की सही तस्वीर उभरकर आनी चाहिए। साहित्य में कोरा यथार्थ न होकर लेखक की अनुभूति व अस्तित्व को ध्यान में रखकर अभिव्यक्ति की जानी चाहिए, जिससे साहित्य सरस व उद्देश्यपूर्ण हो सके।

लूकाच के सामाजिक यथार्थवाद को समझने से पहले उनके साहित्य संबंधी विचारों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। लूकाच ने साहित्य के बारे में जो विचार दिए हैं, वो अपने समय की तत्कालीन रचनाओं के अध्ययन के आधार पर दिए हैं। अतः उनके लिए साहित्य में यथार्थवाद का होना अत्यावश्यक है। उनके अनुसार साहित्यिक कर्म या साहित्य जीवन की समग्रता को प्रस्तुत करता है। महान साहित्य के लिए उसमें जीवन का सार तत्त्व होना आवश्यक है। जीवन के सार तत्त्व के अभाव में साहित्य कोरी काल्पनिक रचना मात्र बनकर रह जाता है, जिसमें यथार्थ की कोई भी झलक नहीं रहती। ऐसा साहित्य मानव जीवन के लिए उपयोगी नहीं होता है।

लूकाच ने समाजवादी यथार्थवाद की तुलना में आलोचनात्मक यथार्थवाद को अधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार सामाजिक प्रक्रिया में लेखक की सक्रिय हिस्सेदारी से उसके अनुभव में व्यापकता गहराई और प्रामाणिकता आती है, इसलिए यथार्थवाद के विकास की संभावना बनती है। रचनाकार की विचारधारा उसके रचनाकर्म में व्यक्त होती है और उसी के आधार पर उसे समझा जा सकता है। वह जिस समाज और परिवेश में जीता है, उसके यथार्थ का अनुभव अनेक रूपों में करता है। यथार्थ का सामान्य और तात्कालिक अनुभव जब विशिष्ट और सुनिश्चित बोध बनता है, तब रचना का विषय बन जाता है। सच्चा यथार्थवादी, यथार्थ के नये पक्षों पर अपने पूर्वाग्रह नहीं लादता, नये उभरे पक्ष की उपेक्षा नहीं करता, वह यथार्थ की विकास प्रक्रिया सम्मत परिणति को स्वीकार करता है। लूकाच प्लेखानेव के इस तर्क को स्वीकार करते हैं कि साहित्य वर्ग–संघर्ष को प्रतिबिंबित करता है। वे लिखते हैं ''अपने जन्म, विकास, उत्थान और पतन में ऐतिहासिक उपन्यास अनिवार्यतः आधुनिक युग के महान सामाजिक रूपांतरणों का अनुसरण करता है।''[31] लूकाच का मूल विषय साहित्य पर उनके तमाम मार्क्सवादी लेखन की अन्तर्धारा के रूप में प्रवाहित है। प्लेखानोव की ही भाँति लूकाच भी सृजनात्मक साहित्य तथा वर्ग–संरचना के बीच एक यांत्रिक अंतःसंबंध स्वीकार करते हैं। लूकाच का मानना है कि समस्त साहित्य किसी वर्ग, किसी विश्वदृष्टि से ही लिखा जाता है, जो किसी उद्देश्य की ओर इंगित करता है। उद्देश्य के बिना यथार्थ की महत्त्वपूर्ण तथा सतही विशेषताओं में अंतर कर पाना असंभव है। लूकाच भी समाजवाद के प्रति आस्था को कलाकार की रचनात्मकता की कसौटी मानते हैं ''जो लेखक समाजवाद को नकारता है, वह भविष्य की ओर से आँख मूंद लेता है, वर्तमान के मूल्यांकन का हर अवसर छोड़ देता है, और विशद्ध गतिहीन कला को छोड़कर और किसी भी प्रकार के सृजन की क्षमता खो बैठता है।''[32] लूकाच ने उन्हीं लेखकों को महान माना है, जो अपने लेखन में स्थायी मानव प्ररूपों की रचना करते हैं। यही साहित्यिक उपलब्धि का वास्तविक मानदंड है। ''प्रगतिशील परिवर्तन के प्रति कलाकार की सजगता–यह बोध कि समाज स्थिर अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है, बल्कि गतिशील संबंधों की समग्रता का संघटन है – प्रारूप का स्रोत है।''[33]

लूकाच के मत में यथार्थ के महान उपन्यासकार हमेशा होमर के सच्चे पुत्र होते हैं। जिस समाज में वे रहते हैं, उसके जीवन और विकास को बाँटते और अनुभव करते हुए अपने

संसार की अकाव्यात्मक प्रकृति को वे परास्त कर देते हैं। संसार और मानव के विषय में समाजवादी आदर्श एक नयी अवधारणा है, जो यथार्थवाद का मूल रूप है। साहित्य में मानव कल्याण की कलात्मक उपलब्धि है और साहित्य के विकास में पूँजीवादसे समाजवाद और साम्यवाद की ओर संक्रमण है। यथार्थता का संबंध मनुष्य के व्यक्तित्व और अस्तित्व दोनों से है। यथार्थवाद यथार्थता का यथार्थतः चित्रण नहीं है, बल्कि कला की एक प्रवृत्ति है, जो यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के साथ–साथ अनुभव करने वाली कृति के कृतिकार के मस्तिष्क की भी एक झलक देती है। यथार्थवादी कला में स्वच्छन्दतावादी चेतना होती है। समाजवादी यथार्थवादी साहित्य में साहित्यकार सम्पूर्ण सामाजिक यथार्थ को अपनी स्वच्छन्द कला के द्वारा अभिव्यक्त करता है। आज का पाठक ऐसा साहित्य चाहता है, जो उसके मनोरंजन के साथ–साथ उसका दिमाग भी खोले। इसके लिए आवश्यक है कि साहित्य में पाठक की ही भाषा एवं समाज का समावेश हो, उसी की संस्कृति एवं परंपरा का समावेश हो ताकि वह साहित्य में व्यक्त बात को आसानी से समझ सके।

उपन्यास आज के युग की ऐसी विधा है जो अपनी प्रकृत्ति के कारण पाठक वर्ग के बहुत करीब है। उपन्यास में समाजवादी लेखक यथार्थ को सामाजिक तरीके से ही पेश करता है। साहित्यिक विचारधारा चाहे प्रभुत्वशाली हो या वैकल्पिक, उसमें सामाजिक यथार्थ के साथ किसी न किसी तरह के संबंध की अभिव्यक्ति जरूर होती है। यह संबंध काल्पनिक या वास्तविक कोई भी हो सकता है। भौतिक निर्धारण के सिद्धांतों में साहित्य की सुव्यक्त सामाजिक व्याख्या के जन्म से लेकर प्रत्यक्षवाद और मार्क्सवाद रूपी चरणों के माध्यम से इसके विकास पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि प्रत्यक्षवाद तथा मार्क्सवाद में कई समानताएँ है। दोनों ही विशिष्ट बाहरी तत्त्वों को साहित्यिक सृजनात्मकता और उत्पादक का अन्तिम निर्धारक मानते हैं। दोनों ही साहित्य की संरचना के संभावित नियंत्रक तत्त्वों के रूप में साहित्य श्रोता वर्ग, पाठक वर्ग और प्रकाशन के विकास के अध्ययन की आवश्यकता महसूस करते हैं। ये प्रयत्न साहित्य के रूप में सबसे अधिक बल साहित्यिक कृति पर देते हैं।

(छ) उपन्यास का समाजशास्त्र :

उपन्यास शब्द दो शब्दों के योग से बना है – 'उप' तथा 'न्यास'। 'उप' का अर्थ है– समीप तथा 'न्यास' का अर्थ है– थाती। अर्थात वह वस्तु जो मनुष्य के बहुत समीप है। उपन्यास हमारे जीवन को हमारे बहुत समीप लाकर रखता है। उसमें हमारे जीवन की हर वह सच्चाई व्यक्त होती है, जिससे हम जुड़े रहते हैं। जर्मन दार्शनिक हेगल ने कहा है कि उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य का विकल्प है। वह मध्यम वर्ग की और आधुनिक चेतना का प्रतिनिधि साहित्य रूप है। मिशेल जेराफा के अनुसार ''उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है।''[34] अपने समय, समाज और इतिहास की प्रक्रिया से परिभाषित मनुष्य ही उपन्यास रचना का लक्ष्य है, और समाजशास्त्रीय अन्वेषण का भी। एक उसकी कलात्मक पुनर्रचना का माध्यम है, तो दूसरा उसके बौद्धिक विश्लेषण का साधन। उपन्यास विश्व को देखने की एक विश्वदृष्टि है। वीरता एवं शौर्य के स्थान पर वह सामान्य मन को, व्यापारिक एवं औद्योगिक समाज के सामान्य यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

उपन्यास साहित्यिक रूपों में महाकाव्य के बाद एक ऐसा रूप या विधा है, जिसके कलेवर में समस्त मानव गतिविधि एवं परिदृश्य को रचना के स्तर पर समेटा जा सकता है। इसीलिए उपन्यास लोकतांत्रिक युग का प्रतिनिधि कलारूप अभिव्यक्त होता है। उपन्यास ऐसी विधा है, जिसका मुख्य सरोकार मनुष्य का सामाजिक जगत से होता है। उसमें परिवार, राजनीतिशास्त्र, अर्थव्यवस्था, धर्म इन सबके साथ मनुष्य के रिश्तों के सामाजिक जगत का पुनः सृजन किया जाता है। इन संस्थाओं के भीतरर उसकी भूमिका की पड़ताल करने के अलावा समुदायों और वर्गों के बीच होने वाले संघर्ष और तनाव का चित्रण भी किया जाता है। उपन्यास का वास्ता भी काफी दूर तक उन्हीं सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचनाओं से पड़ता है

जिनसे समाजशास्त्र का।उपन्यास में सामाजिक जीवन का चित्रण होता है, समाज की हर जटिलता का, विषय ऐक्यता का तथा उसमें रहने वाले लोगों के संघर्षों का चित्रण होता है। उपन्यास चाहे किसी भी देश का हो या किसी भी भाषा का हो वह उस देश, भाषा, समाज की संस्कृति तथा सभ्यता को दर्शाता है। इसीलिए उपन्यास के समाजशास्त्र के समाजशास्त्र को समझना हमारे लिए अधिक आवश्यक है, ताकि इसका समाज में स्थान निश्चित किया जा सके।

समाजशास्त्र में मनुष्य की सामाजिकता की पहचान के अनेक रास्ते हैं। उनमें से जो रास्ता साहित्य संसार में से होकर गुजरता है, वह सबसे सुगम और विश्वसनीय तब होता है, जब वह उपन्यास के रचना संसार से गुजरता है, क्योंकि उपन्यास की कला में मौजूद मनुष्य के समाज संबद्ध और इतिहास सापेक्ष रूप को आसानी से पहचाना जा सकता है। वहाँ कल्पना में रची–बसी जिंदगी की वास्तविकता को आसानी से पाया जा सकता है।उपन्यास और समाजशास्त्र एक ही युग के समान भौतिक और वैचारिक परिवेश की उपज हैं। यूरोप में आधुनिक युग में नयी ऐतिहासिक चेतना और समाजशास्त्रीय अन्वेषण की दृष्टि के विकास के साथ ही आधुनिक चेतना की अभिव्यक्ति के कलात्मक माध्यम के रूप में 'उपन्यास' का उदय हुआ है। विधेयवाद के जनक आगस्त काम्टे को समाजशास्त्र का जनक भी माना गया है। उनके विचारों का उपन्यास के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यूरोपीय तथा भारतीय उपन्यास के विकास में उनके विचारों का योगदान है। भारत में उपन्यास का मार्गदर्शन करने वाले और भारतीय उपन्यास की संभावनाओं को साकार रूप देने वाले बंगला के बंकिमचंद्र के उपन्यासों की रचनादृष्टि के पीछे विधेयवाद की सृजनात्मक भूमिका को अनेक आलोचकों ने स्वीकार किया है। ''उन्होंने विधेयवाद की प्रगति और व्यवस्था संबंधी मान्यताओं को अधिक समग्रता के साथ अपनी रचनादृष्टि में आत्मसात किया है और कलात्मक अभिव्यक्ति भी की है। आनंदमठ में विधेयवादी यूटोपिया के सहारे राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है और स्त्री संकटग्रस्त राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गई है। काम्टे की मानवता की देवी ही आनंदमठ में भारतमाता के रूप में दिखायी देती है।''[35] इससे स्पष्ट है कि अपने समय और समाज के निरीक्षण, परीक्षण और अन्वेषण की आधुनिक दृष्टि का एक रूप उपन्यास में मिलता है और दूसरा समाजशास्त्र में।

उपन्यास के समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य उपन्यास में निहित साहित्यिक और समाजशास्त्रीय कल्पना की रचनात्मक एकता की खोज और पहचान करना है। उपन्यास के उदय काल से उसके रूप और अंतर्वस्तु का ऐतिहासिक, सामाजिक स्वरूप साहित्य–विचारकों को आकर्षित करता रहा है। मादाम स्तेल और हेगेल के चिंतन से उपन्यास के सामाजिक आधार और अभिप्राय पर विचार की जो परंपरा शुरू हुई थी, वह उपन्यास के विकास के साथ–साथ विकसित हुई है। उपन्यास की समाजशास्त्रीय व्याख्या की अनेक दृष्टियाँ और पद्धतियाँ है। सबसे पुराना दृष्टिकोण विधेयवाद का है, जिसका नया रूप अनुभववाद में दिखाई देता है। इसके अंतर्गत उपन्यास के सामाजिक अस्तित्व को निर्धारित करने वाली भौतिक परिस्थितियों का विश्लेषण होता है तथा साथ ही उपन्यास के पाठकीय ग्रहण का विवेचन किया जाता है। उपन्यास के समाजशास्त्र के मार्क्सवादी विष्लेषण में अंतर्वस्तु और रूप में निहित सामाजिक यथार्थ, चेतना, विचारधारा आदि की खोज होती है।

समाज से उपन्यास के संबंध के अनेक स्तर और रूप हैं। उपन्यास आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रतिनिधि कला रूप है। हेगेल ने उपन्यास को गद्य युग का महाकाव्य कहा है। उपन्यास की रचनादृष्टि में मनुष्य की स्वतंत्रता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय संबंधों की गरिमा को तभी केंदीय महत्त्व मिला, जब आधुनिक मानस अपने अनुभव और तर्क के आलावा किसी अलौकिक शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। उपन्यास मध्य युगीनता के विरूद्ध आधुनिकता के विद्रोह की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य रूप है। डबलू. जे. हार्वे ने ठीक ही लिखा है, कि ''उपन्यास की रचना में क्रियाशील मानसिकता समाज में लोगों की पूर्णता, विविधता और वैयक्तिकता को स्वीकार करती है। वह विश्वासों तथा मूल्यों की अनेकता में विश्वास करती है। सहिष्णुता, संशयवाद और दूसरों की स्वायत्तता के प्रति आदरभाव

उसके आदर्श हैं, मतांधता और कट्टरता से उसे घृणा है।"[36] उपन्यास अपने पाठकों को जीवनमूल्यों के बीच चुनाव का संकेत देता है, उनकी सहानुभूतियों का विस्तार करता है और जीवन की कला भी सिखाता है।सामाजिक यथार्थ, जीवन के अनुभव और इतिहास की गति रचनाकार की सृजनशीलता से पुनर्रचित होकर उपन्यास में आते हैं, क्योंकि उपन्यास एक कला है, केवल सामाजिक दस्तावेज नहीं है। उपन्यास का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते समय उसके कला रूप को ध्यान में रखना आवश्यक है। उपन्यासकार एक कलाकार है, उसकी रचना में ऐसे यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है, जिसके रूप और अर्थ के बारे में वह पहले से सजग है। वह यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए अपने पूर्ववर्तियों से सीखे हुए तथा अपने नवीन अनुभवों से कुछ नये कला–कौशलों का आविष्कार करता है अर्थात उपन्यास लेखन एक कला के साथ–साथ सामाजिक अभिव्यक्ति का एक रूप भी है।

उपन्यास के समाजशास्त्र में उपन्यासकार की वर्गचेतना, विचारधारा या विश्वदृष्टि के सहारे उपन्यास का सामाजिक अभिप्राय जानने की कोशिश होती है। इस प्रक्रिया में सामाजिक यथार्थ के बारे में लेखक के दृष्टिकोण के आधार पर उसकी रचना का मूल्यांकन भी होता है। मानव जीवन के यथार्थ के रूपों की अपार विविधता होती है। एक उपन्यासकार जीवन यथार्थ के एक रूप और स्तर को महत्त्व देता है तो दूसरा किसी और रूप का चित्रण करता है। इसके साथ ही यथार्थ को देखने की दृष्टियाँ भी अनेक हो सकती हैं। यथार्थ के रूप और रचनाकार की चेतना के रूप से कला के रूप का गहरा संबंध होता है, जिससे उपन्यास का कलात्मक रूप प्रभावित होता है। उपन्यास के समाजशास्त्रीय विवेचन में किसी रचना की सामाजिकता की खोज करते समय उसके कलात्मक रूप से लेखक की चेतना और यथार्थ के रूप के संबंध की पहचान आवश्यक है। अगर एक ही समाजशास्त्रीय पद्धति से प्रेमचंद और अज्ञेय के उपन्यासों का विश्लेषण किया जाएगा तो उचित नहीं होगा। इन दोनों के उपन्यासों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में सामाजिक वास्तविकता और जीवन के अनुभवों के प्रति दोनों के दृष्टिकोण, उस दृष्टिकोण की रचनाओं में अभिव्यक्ति और दोनों की कला के अंतरों को ध्यान में रखकर ही उनके उपन्यासों के साथ न्याय हो सकता है।अपने समाज की वास्तविकता, समय की सच्चाई और इतिहास की गति की अभिव्यक्ति उपन्यास में कई रूपों में हो सकती है, और होती रही है। उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में उसके कथा शिल्प की विशिष्टता पर ध्यान देना जरूरी है। टेरी एग्ल्टन ने अपने निबंध में लिखा है कि "साहित्य में समाजशास्त्रीय दिलचस्पी के दो रूप हैं – यथार्थवादी और व्यवहारवादी। यथार्थवादी दृष्टि के अनुसार साहित्य का स्वरूप अपने सामाजिक संदर्भ से निर्मित और प्रभावित होता है। व्यावहारवादी पद्धति में साहित्य के स्वरूप और उसके पाठकीय ग्रहण की परिस्थितियों पर विचार होता है।"[37] यथार्थवादी अवधारणा को उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की केंदीय अवधारणा माना है।

उपन्यास के समाजशास्त्र के निर्माण में जार्ज लूकाच का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनके लेखन में उपन्यास के समाजशास्त्र के विकास की दो अवस्थाएँ हैं। आरंभिक अवस्थाा 'उपन्यास का सिद्धान्त' नाम की पुस्तक में पहली बार उपन्यास के दार्शनिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्वरूप का गंभीर विश्लेषण किया गया, जिससे प्रेरणा लेकर गोल्डमान और दूसरे समाजशास्त्रियों ने उपन्यास के समाजशास्त्र का विकास किया।लूकाच ने 'यूरोपीय यथार्थवाद का अनुशीलन' और 'समकालीन यथार्थवाद का अर्थ' जैसी कृतियों में उपन्यास का मार्क्सवादी समाजशास्त्र निर्मित किया। जार्ज लूकाच ने समाजवादी यथार्थवाद की तुलना में आलोचनात्मक यथार्थवाद को अधिक व्यापक रचनात्मक प्रवृत्ति माना है और उसे विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने लिखा है कि– "सामाजिक प्रक्रिया में लेखक की सक्रिय हिस्सेदारी से उसके अनुभव में व्यापकता, गहराई और प्रामाणिकता आती है, इसलिए यथार्थवाद के विकास की संभावना बनती है।"[38]

रचनाकार की विचारधारा उसके रचनाकर्म में व्यक्त होती है और उसी के आधार पर उसे समझा जा सकता है। उसकी विचारधारा को जानने का विश्वसनीय साधन उसकी रचना ही है। रचनाकार जिस समाज और परिवेश में जीता है, उसके यथार्थ का अनुभव अनेक रूपों में

करता है। यथार्थ का सामान्य और तात्कालिक अनुभव जब विशिष्ट और सुनिश्चित बोध बनता है, तब रचना का विषय बन जाता है। सच्चा यथार्थवादी यथार्थ के नये पक्षों पर अपने पूर्वाग्रह नहीं लादता, नये उभरे पक्ष की उपेक्षा नहीं करता, वह यथार्थ की विकास प्रक्रिया और विवेक सम्मत परिणति को स्वीकार करता है। ''यथार्थ के अनुभव, चयन, व्याख्या, मूल्यांकन, रूपांतरण और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया स्वतःचालित प्रक्रिया नहीं होती। इसमें रचनाकार की विश्वदृष्टि के साथ–साथ कलादृष्टि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। कलादृष्टि के अभाव में यथार्थ के अनुभव के बावजूद यथार्थवादी कलाकृति नहीं बन पाती।''[39] यथार्थवाद व्यक्तियों, वर्गों और वस्तुओं के बाहरी रूप के मूर्त चित्रण तक सीमित नहीं होता, उसमें विभिन्न प्रकार के संबंधों की भी अभिव्यक्ति होती है। ''किसी रचना की विचारधारा से उसके यथार्थवाद के संबंध की खोज तीन स्तरों पर हो सकती है – रचना की विचारधारा और यथार्थवाद की ऐतिहासिकता, रचना में दोनों का विशिष्ट स्वरूप और रचना की संपूर्ण संरचना में दोनों का संबंध। विचारधारा चाहे प्रभुत्वशाली हो या वैकल्पिक, उसमें सामाजिक यथार्थ के साथ किसी न किसी तरह के संबंध की अभिव्यक्ति जरूर होती है।''[40] यह संबंध काल्पनिक या वास्तविक कोई भी हो सकता है।

उपन्यास के समाजशास्त्र में यथार्थवाद की धारणा का आधार उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास रहे हैं। बीसवीं सदी में भी इस परंपरा का विकास रूसी और फ्राँसीसी उपन्यासों में मिलता है। दूसरे महायुद्ध के बाद फ्राँस में 'नया उपन्यास' आंदोलन चला, जिसने उन्नीसवीं सदी के उपन्यासों की परंपरा और यथार्थवाद दोनों का विरोध किया। फ्राँस में 'नया उपन्यास' के आंदोलन के पहले प्रूस्त, कामू और सार्त्र के उपन्यासों में उपन्यास का परंपरागत स्वरूप विघटित हुआ, कथानक का महत्त्व घटा और यथार्थ से उसका संबंध बदला। यूरोप में काफ्का, जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया वुल्फ, प्रूस्त, कामू और सार्त्र के उपन्यासों से उपन्यास रचना की नई दृष्टि सामने आयी। इन उपन्यासों में समाज की जगह व्यक्ति रचना का केंद बना, आत्मपरकता बढ़ी और उपन्यास के रूप में प्रयोगों की प्रवृत्ति प्रबल हुई। आधुनिकतावाद आवांगार्द और नया उपन्यास के आने के बाद यथार्थवाद की अपर्याप्तता पर बहस चली। गोल्डमान और मिसेल जेराफा जैसे उपन्यास के समाजशास्त्रियों ने आधुनिकतावादी उपन्यासों की सामाजिक भूमि और भूमिका का विश्लेषण किया।उपन्यास के समाजशास्त्र में 'यथार्थवाद' के संबंध में राबर्ट ऑल्टर ने ठीक ही लिखा है कि – ''सभी उपन्यास यथार्थपरक होते हैं। लेकिन इस यथार्थपरकता के दो रूप हैं– एक आत्मचेतन रूप और दूसरा यथार्थवादी रूप। पहले में उपन्यासकार इस बात के बारे में निरंतर सजग रहता है कि वह एक कथा लिख रहा है, इसलिए वह यथार्थ से अधिक उसकी चेतना पर ध्यान देता है और उस चेतना के बनते–बदलते रूपों को पाठकों के सामने रखता है। यथार्थवादी उपन्यासकार यथार्थ की समरूपता और समानधर्मिता की प्रतीति बनाए रखने की निरंतर कोशिश करता है। उपन्यास में शाब्दिक संकेतों के माध्यम से पाठक के मन में व्यक्तियों, स्थानों, स्थितियों, घटनाओं और संस्थाओं की समरूपता और समानधर्मिता की चेतना पैदा करने की कोशिश होती है।''[41] उपन्यास की कला चाहे कितनी भी विकसित हो अगर वह पाठक के आत्मबोध और जगतबोध को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं करती तो वह सार्थक नहीं हो सकती। पाठक की चेतना से उपन्यास के संबंधों का विश्लेषण उपन्यास के समाजशास्त्र की एक नयी दिशा है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साहित्य का समाजशास्त्र से तात्पर्य साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से है। आधुनिक साहित्यिक आलोचक केवल कृति का अध्ययन व व्याख्या नहीं करते हैं, अपितु उसके सामाजिक अस्तित्व की भी व्याख्या करते हैं। कोई भी साहित्यक कृति किस सामाजिक परिवेश में बुनी व रची गई है तथा समाज के लिए कितनी उपयोगी है, यह जानने का प्रयास करते हैं। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा ही उसकी उपयोगिता व सार्थकता को जाना–पहचाना जा सकता है। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य की सही समझ, वर्ग–संरचना व समाज के यथार्थ की वैज्ञानिक पड़ताल और उसके कलात्मक रूपांतरण की अभिशंसा रचता है। इसके अंतर्गत अध्ययनकर्त्ता यह जाँचता व परखता है कि कोई रचना समाज के लिए कितनी मूल्यवान है। साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की नींव 1800 ई. में मादाम स्तेल (1766–1817) ने अपनी पुस्तक 'सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार'(1800 ई.) के द्वारा रख दी थी। इन्हीं के विचारों को फ्रांसीसी दार्शनिक व आलोचक इपॉलीत तेन (1828–93 ई.) ने आगे बढ़ाया। तेन ने साहित्य के भौतिक आधार और सामाजिक स्वरूप को स्पष्टतः स्वीकार किया है। साहित्य के समाजशास्त्र का विकास साहित्य के आलोचकों ने किया न कि विशुद्ध समाजशास्त्रियों ने।

साहित्य का संबंध रचनाकार या कर्त्ता, कृति और पाठक वर्ग से होता है। कोई भी साहित्यिक कृति या क्रियाकलाप मात्र व्यक्तिगत घटना नहीं होता। साहित्य का संबंध रचनाकार या कर्त्ता, कृति और पाठक वर्ग से होता है। साहित्यकार के कृतित्व का जिन रूपों में विकास होता है, जिन परिस्थितियों में वह साहित्य साधना करता है, वह साहित्यकार का सामाजिक परिवेश होता है। जिन सामाजिक संबंधों को आधार बनाकर और जिन विशेष सामाजिक परिस्थितियों में साहित्यिक कृति की रचनात्मक प्रक्रिया पूर्ण होती है, वह कृति का सामाजिक परिवेश होता है। कर्त्ता व कृति का सामाजिक परिवेश से घनिष्ठ संबंध होता है, जिसमें एक और परिवेश होता है, पाठक का। इन तीनों परिवेशों का विश्लेषण और संश्लेषण करना ही साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन कहलाता है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के विकास की दो मुख्य पद्धतियाँ हैं – मीमांसावादी पद्धति व अनुभववादी पद्धति। मीमांसावादी पद्धति में साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है तथा अनुभववादी पद्धति में साहित्य की सामाजिक स्थिति का विवचेन होता है। मीमांसावादी पद्धति में कृति विवेचना के केंद्र में होती है। इस पद्धति को मानने वाले विद्वान साहित्य को सामाजिक दस्तावेज के रूप में स्वीकार करते हैं। इस पद्धति के अंतर्गत साहित्यिक कर्म और कृतियों के माध्यम से साहित्य की सामाजिकता की व्याख्या होती है। इसमें रचनाकर्म दूसरे सामाजिक कर्मों की सापेक्षता में और साहित्यिक कृतियों को व्यापक सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में देखा–परखा जाता है। आजकल साहित्य के समाजशास्त्र के क्षेत्र में तीन दृष्टियाँ सक्रिय हैं, जिनका लक्ष्य है– (1) साहित्य में समाज की खोज (2) समाज में साहित्य की सत्ता और साहित्यकार की स्थिति का विवेचन (3) साहित्य और पाठक के संबंध का विश्लेषण। साहित्यानुशीलन की सामाजिक दृष्टि के दो रूप हैं – एक के अंतर्गत साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है अर्थात् साहित्य में किसी काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवन के अनुभवों और विचारों की व्यंजना होती है। उसमें सामाजिक यथार्थ और सामाजिक चेतना का संबंध मिलता है, जिससे साहित्य का स्वरूप बनता है। समाज से साहित्य के इस संबंध बोध के माध्यम से साहित्य के सामाजिक उद्भव और विकास का स्वरूप स्पष्ट होता है और सामाजिक परिवर्तन के साथ साहित्य के परिवर्तन की स्थितियों की पहचान भी होती है। दूसरे रूप में साहित्य को प्रेरक शक्ति माना जाता है। इसके अनुसार साहित्य समाज के परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली शक्ति है, वह सामाजिक चेतना के निर्माण और विकास में सहायक है। इसके भीतर पाठक समुदाय से साहित्य के संबंध पर ध्यान दिया जाता है और पाठक पर साहित्य के प्रभाव के साथ–साथ साहित्य के विकास में पाठकीय रुचि की भूमिका का विश्लेषण होता है।

तेन की मान्यता है, कि साहित्य जाति, परिवेश और युग से प्रभावित होता है और उसी के कारण निर्मित होता है। साहित्य की रचना करने वाला साहित्यकार जो कि एक व्यक्ति है, वह अंततः अपने स्थान, अपने परिवेश, अपनी जाति, अपनी परंपरा तथा जिस स्थान पर वह रहता है, उस स्थान की जलवायु अर्थात वातावरण से अवश्य प्रभावित रहता है। इनके द्‌वारा ही उसके मन में सच्ची अनुभूति जाग्रत होती है और वह साहित्य का निर्माण करता है, जिसमें प्रजाति, परिवेश तथा युग तीनों कारकों को देख पाते हैं। इनके संपूर्ण साहित्य चिंतन का लक्ष्य मनुष्य को जानना है, कृति के सृजक मनुष्य और कृति में व्यक्त मनुष्य को भी। मार्क्स के अनुसार कलाकार जो साहित्य जैसा है, उसके पीछे लेखक की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सबसे बड़ी भौतिक स्थिति उस साहित्य के निर्माण की नीवं डालती है अर्थात साहित्य यदि गरीबी, भुखमरी, शोषित लोगों का दर्द, भ्रष्टाचार के खिलाफ उठती आवाज, वर्गभेद व नारी की स्थिति आदि की स्थिति को व्यक्त करता है, तो समझना चाहिए कि लेखक अपनी सामाजिक स्थिति को अभिव्यक्त कर रहा है। वह अपने समाज में व्याप्त अत्याचार व शोषण से मुक्ति चाहता है। उसकी चेतना हमें उसके साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है। लेखक गहरे स्तर पर समाज के सभी वर्गों से जुड़ा हुआ हो या उन्हें देखता आया हो तभी साहित्य में विभिन्नता के साथ–साथ हर प्रकार के मनुष्य व वर्ग की समग्रता का चित्रण कर सकता है। मार्क्स के अनुसार जब साहित्य में मनुष्य–जीवन व समाज के सभी वर्गों का चित्रण होगा, तभी साहित्य प्रगति करेगा। उसमें हर वर्ग की चेतना समायी होगी, तभी समाज के हर वर्ग को जानने व समझने का अवसर मिलेगा और कुछ करने की प्रेरणा मिलेगी। वर्तमान साहित्य में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रभाव दिखाई देता है, जिसमें आज मजदूर वर्ग की आवाज है, शोषण, भ्रष्टाचार के विरूद्‌ध आवाज है तथा वर्ग चेतना निहित है। है। साहित्य को किसी देश या समाज का प्रतिबिंब कहा जाता है, इसीलिए उसमें उस देश या समाज की सही तस्वीर उभरकर आनी चाहिए। साहित्य में कोरा यथार्थ न होकर लेखक की अनुभूति व अस्तित्व को ध्यान में रखकर अभिव्यक्ति की जानी चाहिए, जिससे साहित्य सरस व उद्‌देश्यपूर्ण हो सके। उपन्यास की कला चाहे कितनी भी विकसित हो अगर वह पाठक के आत्मबोध और जगतबोध को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं करती तो वह सार्थक नहीं हो सकती। पाठक की चेतना से उपन्यास के संबंधों का विश्लेषण उपन्यास के समाजशास्त्र की एक नयी दिशा है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नगेन्द्र. (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नौएडाः मयूर पेपर बैक्स. पृ.सं. 31.
2. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ.सं. 117.
3. सिंह, ऋचा. (2005). नयी कहानी का समाजशास्त्र. वाराणसीः विजयप्रकाशन मन्दिर. पृ. सं. 3.
4. प्रेमचंद का ऐतिहासिक भाषण 'साहित्य का उद्देश्य'. (1936). www.debateonline.in. पृ.सं. 2.
5. वही, पृ.सं. 2.
6. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ.सं. 62.
7. जैन, निर्मला. (2009). साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन. दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय. पृ.सं. – भूमिका iii
8. सिंह, ऋचा. (2005). नयी कहानी का समाजशास्त्र. वाराणसीः विजय प्रकाशन मन्दिर. पृ.सं. 9.
9. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ.सं. 20.
10. वही, पृ.सं. 22.
11. वही, पृ.सं. 22.
12. वही, पृ.सं. 22.
13. वही, पृ.सं. 24.
14. वही, पृ.सं. 26.
15. वही, पृ.सं. 27.
16. वही, पृ.सं. 29.
17. वही, पृ.सं. 56.
18. वही, पृ.सं. 57.
19. वही, पृ.सं. 58.
20. वही, पृ.सं. 58.
21. शुक्ल, रामचन्द्र. (2014). हिंदी साहित्य का इतिहास. जयपुरः विनायक पब्लिकेशन्स. पृ.सं. 21.
22. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ.सं. 62.
23. वही, पृ.सं. 63.
24. जैन, निर्मला. (2009). साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन. दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय. पृ.सं. 45.
25. वही, पृ.सं. 46.
26. वही, पृ.सं. 40.
27. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ.सं. 124.

28. वही, पृ.सं. 128.

29. जैन, निर्मला. (2009). साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन. दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय. पृ.सं. 65.

30. वही, पृ.सं. 69.

31. वही, पृ.सं. 70.

32. वही, पृ.सं. 71.

33. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ.सं. 227.

34. वही, पृ.सं. 228.

35. वही, पृ.सं. 230.

36. वही, पृ.सं. 234.

37. वही, पृ.सं. 238.

38. वही, पृ.सं. 242.

39. वही, पृ.सं. 243.

40. वही, पृ.सं. 248.

–: द्वितीय अध्याय :–

मृदुला गर्ग का व्यक्तित्व कृतित्व

साहित्य सृजन को साहित्यकार के व्यक्तित्व से पृथक करके मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है। किसी सृजक कलाकार के व्यक्तित्व–कृतित्व को समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है, कि उसका व्यक्तित्व किन–किन तानों–बानों से बुना गया है। साहित्यकार के व्यक्तित्व को उसके सामाजिक परिवेश और संस्कारों से अलग करके नहीं जाँचा–परखा जा सकता है। व्यक्तित्व का परिशोधन–परिमार्जन जहाँ एक ओर संस्कार करते हैं, वहीं परिवेश और रहन–सहन भी उसे तराशते हैं। किसी भी साहित्यिक कृति को कृतिकार के वैयक्तिक प्रभाव से रहित नहीं माना जा सकता। हर साहित्य में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य रहता है। जिनके मस्तिष्क महान विचारों से परिपूर्ण होते हैं, उन्हीं की वाणी से उदात्त शब्द साहित्य में झंकृत होते हैं। साहित्यकार हमेशा निजी दृष्टि से वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है। रचनाकार का व्यक्तिगत जीवन कृति के यदि प्रत्येक कोने में नहीं झाँकता है, तो किसी न किसी झरोखे में जरूर दृष्टिगोचर होता है। रचनाकार के अध्ययन की दिशा, अनुभव की गहराई और चिंतन की सूक्ष्मता का विश्लेषण करना इस दृष्टि से अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि कृतित्व और व्यक्तित्व दोनों ही एक–दूसरे पर आश्रित होते हैं। बचपन में आत्मसात किए गए घरेलू परिवेश के संस्कार किशोरावस्था तक आते–आते विचारों और अनुभवों की धूप सेककर तप्त होने लगते हैं, जिन्हें यौवन तथा गृहस्थी की हलचलें, संघर्ष और व्यावहारिकताएँ एक निश्चित शिल्प में ढालकर विभिन्न रूपाकार प्रदान करती हैं। आधुनिक हिंदी लेखिकाओं में मदुलागर्ग उन लेखिकाओं में से हैं, जिन्होंने खड़ी बोली में महानगरीय जीवन को आधार बनाकर अपने कथ्य को अभिव्यक्ति दी है। इनके व्यक्तित्व का निर्माण भी परिवेशगत संस्कारों से ही हुआ है। अतः मृदुला जी की कृतियों को परखने से पहले इनके व्यक्तित्व पर नजर डालना जरूरी है।

जन्म व परिवार :

मृदुला गर्ग का जन्म 25 अक्टूबर 1938 को कलकत्ता के एक संभ्रांत, उदारचेता और सम्पन्न परिवार में हुआ। इनके पिता श्री विरेन्द्र प्रसाद जैन पेशे से मैनेजर थे और माता रविकांता जैन गृहिणी थी। मृदुला जी पाँच बहनों व एक भाई में से दूसरे नम्बर की संतान हैं। मृदुला जी जब तीन साल की थीं, तभी इनके पिता का तबादला कलकत्ता से दिल्ली हो गया। तदुपरांत लेखिका की शिक्षा–दीक्षा दिल्ली में ही पूर्ण हुई। मृदुला जी बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति की हैं। बालपन से लेकर यौवन तक उन्हें जो संस्कार मिले उनमें से प्रमुख है, कि वे व्यक्तिगत धरातल पर अनुभव किये बिना किसी विचारधारा अथवा निर्णय के प्रति न तो अपनी स्वीकृति देती हैं और न ही उनके प्रति कोई रागात्मकता स्थापित कर पाती हैं।

बचपन में ही मृदुला जी ने हिंदी व अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में मौलिक व अनूदित रचनाएँ पढ़ीं। यह एकांतप्रिय और साहित्य पढ़ने में काफी रुचि रखती थीं। कई महान लेखकों की रचनाएँ उन्हें जुबानी याद थीं। इसका परिणाम यह निकला की साहित्य उनके भीतर समा गया और मन में निहित साहित्यकारों का डर भी समाप्त हो गया। 'थ्रू द लुकिंग ग्लास' नामक कहानी बचपन में पढ़ी तो उन्हें अहसास हुआ 'दौड़ोगे नहीं तो ठौर पर खड़े नहीं रह पाओगे'। एम.ए. अर्थशास्त्र से करते वक्त एन.राज जी की बात 'तेज' नहीं दौड़ोगे तो पीछे धकेल दिये जाओगे' उनके हृदय पर असर कर गई। किताबों एवं साहित्य से अलग एक जीवन बनाने में अभिनय का बड़ा हाथ रहा। स्कूली दिनों में मंच पर कई नाटकों का अभिनय किया। कई पुरस्कार पाने में भी ये सफल हुईं। उनके एकाकी स्वभाव एवं बीमारी के कारण इनके दोस्तों का दायरा काफी कम था।

माँ से अधिक मृदुला गर्ग का रिश्ता उनके पिता से जुड़ा। इनकी रचनात्मक जिन्दगी को संवारने में इनके पिता का बड़ा योगदान है। आत्मा के भीतर झाँकने की क्षमता उनमें अपने पिता की बौद्धिकता के कारण ही पैदा हुई। संरक्षण, वात्सल्य, जो बच्चों को अपनी माँ से मिलता है, वह इन्हें अपने पिता से मिला। माँ–बाप दोनों की भूमिकाएँ पिता ने ही निभाई। मृदुला जी के पिता आजाद खयालात के थे। अलग–अलग जगहों पर रहने की वजह से उन्हें कई संस्कृति एवं लोगों के तौर–तरीकों को परखने का मौका मिला था। उनके पिता भी सहनशील वैचारिक एवं संवेदनशील थे, जिनकी ये तारीफ करने से नहीं चूकती थीं तथा इन्हें अलग–अलग लोगों एवं उनकी समस्याओं को जानने का मौका मिला था। स्वयं इन्हीं के शब्दों में, ''मैं एक उदार (पक्षपातहीन) परिवार से संबंध रखती हूँ, जहाँ पुत्र व पुत्री में कोई भेद नहीं किया जाता। हम पाँच बहने व एक भाई हैं। मेरे माता–पिता दोनों उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी साहित्य बहुत रुचि से पढ़ते ही रहते थे। हमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने व देर से विवाह करने एवं सबसे बढ़कर अपने बारे में विचार करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। आर्थिक रूप से हम सम्पन्न थे। मेरे पिताजी स्वनिर्मित व्यक्ति थे। उन्हें अपने पिता की सहायता के बिना उन्नति प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा। वास्तव में उनके पिता ने अपने भाई द्वारा लिए गए ऋाण को चुकाने के लिए अपनी सारी संपत्ति बेच दी थी और तब अपने व अपने भाई के परिवार के पालन–पोषण के लिए (पिता ने) नौकरी कर ली।''[1]

मृदुला जी की माँ हमेशा बीमार रहती थी। वह घर का काम भी नहीं करती थी। इनके पिताजी ने ही नौकरों की मदद से सभी बच्चों को पाला। इनके पिता को पाँच बेटियाँ होने का कभी अफसोस नहीं रहा,बल्कि उन्हें अपनी बेटियों पर फख्र था। इनके परिवार में साहित्य के प्रति लगाव भी बहुत ज्यादा था। बीमार रहने के बावजूद इनकी माँ बहुत पढ़ती रहती थी। उन्होंने अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू इन तीनों भाषाओं का साहित्य पढ़ा था। मृदुला जी को साहित्य पढ़ने की प्रेरणा अपनी माँ से मिली। इनका परिवार संयुक्त परिवार था, परंतु किसी ने उनकी माँ के द्वारा घर का काम न करने पर कभी उँगली नहीं उठाई। इनकी माँ कभी झूठ नहीं बोलती थी और बहुत ईमानदार थी। माँ के दिए संस्कार और साहित्य के प्रति सम्मान बचपन से ही मृदुला जी के अवचेतन मन में बैठ गए।पिता का स्नेह व प्रोत्साहन इतना बढ़िया था, कि बारह साल की आयु में ही शेक्सपियर, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव से रू–ब–रू करा दिया। इनके पिता ने अपनी लड़कियों को भी लड़कों के समान आजादी दी। पिता के ऐतिहासिक शौक का इन्हें भी चस्का चढ़ गया और ये घुमक्कड़ी की और आकृष्ट हुईं। तुगलकाबाद के कई खंडहरों व ऐतिहासिक स्थलों का मुआईना मृदुला जी ने किया था। मृदुला जी के व्यक्तित्व पर इनके पिता का व्यक्तित्व काफी प्रभाव छोड़ गया, जिसने इन्हें हर तकलीफ एवं मुसीबतों से जूझने की शक्ति प्रदान की।

मृदुला जी ने अपनी माँ के बारे में लिखा है कि ''मेरी माता अपने समय की दूसरी स्त्रियों से भिन्न थी। उनको खाना बनाने व अपने बच्चों को पालने में कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने न कभी खाना बनाया और न कभी अपने बच्चों को दुलराया। किंतु किसी ने भी कभी भी उनको बुरी पत्नी या बुरी माता नहीं कहा। मेरे पिता ने हम सबकी बहुत अच्छी तरह देखभाल की और हमने अपनी माता की देखरेख की, जो कि एक सुंदर, कोमल हृदय वाली परंतु लगभग अपंग स्त्री थी।''[2] सारे परिवेश के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मृदुला जी का बचपन माँ के संरक्षण के अभाव से पीड़ित तो रहा, परंतु पिता ने अपने वात्सल्य में निरंतर इन्हें डुबोए रखा, जिसके कारण ये अध्ययन के क्षेत्र में अधिक रुचि लेने लगीं।

शिक्षा व जीवन संदर्भ :

मृदुला गर्ग जब तीन साल की थीं, तो इनके पिता का तबादला कलकत्ता से दिल्ली हो गया था, इसलिए इनकी संपूर्ण शिक्षा दीक्षा दिल्ली में ही पूर्ण हुई। सेहत की कमजोरी के कारण ये करीब तीन साल तक स्कूल नहीं जा पाई थीं और घर पर ही रहकर पढ़ाई की थी। पढ़ाई में तेज होने के कारण इनका साल बर्बाद नहीं हुआ तथा समय पर ही अपनी पढ़ाई पूरी

की। ये बचपन से ही एकांतप्रिय थीं और साहित्य पढ़ने में काफ़ी रुचि रखती थीं। इसका परिणाम यह निकला कि साहित्य इनके भीतर समा गया और मन में निहित बड़े साहित्यकारों का डर भी समाप्त हो गया। इन्होंने लिखा भी है, कि ''स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण मेरा बचपन चिंतारहित नहीं था। मैं बहुत शर्मीली एवं अपने में ही सीमित रहने वाली लड़की थी। मेरी कोई सहेली नहीं थी। 14 वर्ष की आयु तक ही मैंने लगभग सभी रूसी लेखक जिनमें 'दोस्तोवस्की' व 'तुर्गनेव' भी शामिल थे, पढ़ लिए थे।''[3]

मृदुला जी मेधावी थीं। इन्होंने अर्थशास्त्र की बी.ए. ऑनर्स परीक्षा में विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त किया और देहली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में एम.ए. की परीक्षा में योग्यता छात्रवृत्ति प्राप्त की। इस समय तक इनका झेंपू तथा लज्जालू स्वभाव इनसे विदा ले चुका था। धीरे–धीरे एक अंतर्मुखी व्यक्तित्व की बहिर्मुखी व्यक्तित्व में परिणति होने लगी। मृदुला जी ने स्कूल के अन्तिम दो वर्षों में नाटकों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। नाटकों में भाग लेने में न केवल इनकी रुचि ही थी, बल्कि इसे इन्होंने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप भी पाया। नाटकों के अतिरिक्त वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में भी ये भाग लेने लगीं। मृदुला जी ने 1960 से लेकर 1963 तक के तीन वर्षों तक दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज और जानकी देवी कॉलेज में प्राध्यापिका के रूप में अध्यापन कार्य किया।

वैवाहिक जीवन :

मृदुला गर्ग ने प्रेम विवाह नहीं किया था। इन्होंने अपने पिता के कहने पर ही विवाह किया था। ये खुद कहती हैं कि ये हमेशा पुस्तकों में गुम रहती थीं। इस बीच इन्होंने सिर उठाकर किसी को देखा नहीं और कोई लड़का भी तो इनके आगे पीछे नहीं मंडरा पाता। मृदुला जी के महाविद्यालय में दोस्तों के रूप में स्त्रियाँ कम और मर्द ज्यादा थे, परंतु फिर भी किसी से प्रेम करने का खयाल नहीं आया, क्योंकि अधिकतर सहपाठी गंभीर नहीं थे। वे अपरिपक्व थे। यद्यपि इन्होंने परिवार वालों की इच्छानुसार शादी की, पर शादी से पहले ही ये एक–दूसरे को अच्छी तरह से जान चुके थे। यह शादी दोनों की पसंद से हुई। मृदुला जी का विवाह 1963 में आनन्दप्रकाश गर्ग के साथ हुआ। विवाह से पूर्व ये 1960 से 1963 तक प्राध्यापिका के रूप में कार्य करती थीं, किंतु विवाह के पश्चात् नौकरी छोड़ दी। घर–गृहस्थी में तालमेल एवं सुचारूपन से निर्वहन हेतु इन्होंने अपनी नौकरी का त्याग करने में भी तनिक संकोच नहीं किया। इनकी प्रबल धारणा रही है कि ममता एवं पारिवारिक कीमत पर नारी–नौकरी अर्थहीन है और संबंधों में कटुता और दूरी का कारण बनती है। इसलिए इन्होंने ममता, परिवार और नौकरी में से ममता और परिवार को चुना। ये अपने पति के साथ डालमिया नगर (बिहार), दुर्गापुर (बंगाल), बागलकोट (कर्नाटक) आदि औद्योगिक नगरों तथा छोटे कस्बों में 1963 से 1971 तक रही।

मृदुला जी ने यद्यपि नौकरी न की हो, परंतु गैर व्यावसायिक तौर पर नाटक में अभिनय करके कई मुसीबत के मारे लोगों के लिए धन की सहायता की थी। नाटकों द्वारा ये पैसा इकट्ठा किया करती थीं। नाटक, निर्देशक और अभिनय का तो इन्हें पहले से शौक था। औद्योगिक नगरों में महाविद्यालय न होने के कारण अध्यापन कार्य नहीं हो सकता था। अतः इन्होंने वैवाहिक जीवन का पूर्ण आनंद लिया और दो पुत्रों को जन्म दिया। नाटकों में अभिनय ये शादी के बाद भी करती रहीं तथा डालमिया नगर में अकाल पड़ने पर परमार्थ के लिए नाटकों के मंचन द्वारा पर्याप्त धन संचित किया। कर्नाटक में इन्होंने एक स्कूल भी खोला जिसे बाद में सरकारी मान्यता भी प्राप्त हुई। अपने बच्चों को भी मृदुला जी ने उसी साधारण स्कूल में पढ़ाया।

मृदुला गर्ग अपने लेखन को परिवार में संतुलन और तालमेल बनाए रखने के लिए दूर रखती हैं। पारिवारिक जीवन और बच्चों को नकार कर कभी इस क्षेत्र में भाग नहीं लिया। उन्होंने सदा अपने व्यक्तिगत घरेलू जीवन को प्राथमिकता दी। मृदुला जी का अध्ययन का क्षेत्र

केवल साहित्य तक सीमित न होकर अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र तक के विस्तृत फलक तक व्याप्त था। वस्तुतः उन्होंने इतना अधिक अध्ययन किया कि इनकी अध्ययन सीमा में आने वाले दो–चार दार्शनिकों अथवा विद्वानों के नामों की परिगणना करना दुष्कर होगा, क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित न होकर इन्होंने अपने समग्र अध्ययन से ही दिशा–दृष्टि प्राप्त की।

मृदुला गर्ग का व्यक्तित्व :

मृदुला जी का व्यक्तित्व प्रभावशाली, मृदु और प्रेरक है। मृदुलता इनके नाम में ही नहीं बल्कि स्वभाव में भी कूट–कूटकर भरी है। छरहरा बदन, छोटा कद, बड़ी–बड़ी आँखें, अपनी कहानी बयान करती भौंहें, कंधे तक कटे बाल, गोरा रंग, सलीकेदार रहन–सहन, मृदु व्यवहार, दृढ़ विचार, दूसरों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहने की सहजवृत्ति आदि मृदुला जी के व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देती हैं। ये जो करने का सोचती हैं, करके ही दम लेती हैं। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व तभी पूर्ण होता है, जब उसके बाह्य व आंतरिक व्यक्तित्व का ज्ञान हो। इसी के जरिए किसी को व्यक्तित्व में ढाला जा सकता है। मृदुला जी की आंतरिक सच्चाई यह है, कि ये बहुत जिज्ञासु और अपने भीतर सिमटे रहने वाले लोगों में थीं। इसी कारण इनका कोई करीबी दोस्त नहीं था। इनके जो भी दोस्त बने, स्त्रियों से ज्यादा पुरुष थे, जो महाविद्यालय में पहुँचकर प्राप्त हुए। यहाँ तक आते–आते इनके स्वभाव में काफी बदलाव आ गया। ये शर्मीली, संकोची, लज्जीली से स्वतंत्र, दृढ़ और विवादी हो गईं। ये वाद–विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने लगीं और इसी दौरान इनकी प्रतिभा निखरकर सबके सामने आई। बड़े माइने में इनका व्यक्तित्व सामाजिक चेतना, विद्रोह की प्रवृत्ति, घुमक्कड़ी वृत्ति, संवेदनशीलता, बागवानी का शौक, कलात्मकता, सौंदर्य प्रेम, रसोई और पकाने के शौकों में बँटा है। इनके बीच इनकी लेखनवृत्ति कभी कमजोर नहीं पड़ी। इसमें भी कई आयाम मौजूद हैं। सृजन, पसंदीदा साहित्यकार, रचनाएँ, पुस्तकें, पठन–लेखन में एकांतप्रियता, उसके लिए निर्दिष्ट समय, पाठ्यवस्तु की प्रतिक्रिया और अपने द्वारा रचित रचनाओं का वर्गीकरण आदि।

सामाजिक चेतना :

मृदुला जी ने एक स्कूल का संचालन किया था। यह एक ऐसा स्कूल था, जहाँ पर विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों के बच्चे पढ़ने आते थे। इसे चलाने का उद्देश्य हिंदी, अंग्रेजी और स्थानीय भाषा कन्नड़ में शिक्षा प्रदान करना तथा अन्य प्रदेशों में अपने शुभ कदम विद्यार्थियों द्वारा बढ़वाना था। यह स्कूल 1971 में 'बागलकोट' (कर्नाटक) में चलाया गया था। 1974 तक ये इसे बरकरार रख पाईं और बाद में ये दिल्ली आ गईं। परंतु तब तक कर्नाटक सरकार ने उसे स्वीकृति दे दी थी। आज भी यह विद्यालय अपनी जगह पर कायम है। नाट्य–मंचन, उसका आयोजन आदि के लिए मृदुला जी खुद बच्चों के साथ भाग लिया करती थीं। तथा कार्यशालाएँ चलाया करती थीं। स्कूल की खासियत थी, कि सभी वहाँ घुल–मिलकर रहा करते थे तथा किसी के प्रति कोई भेदभाव नहीं किया जाता था।

विद्रोह की प्रवृत्ति :

अन्याय के खिलाफ विद्रोह करने की प्रवृत्ति इनमें सदैव हिचकौले खाती रहती थी। इसी आक्रोश का जीता जागता नमूना हम इनकी साहित्यिक रचनाओं में भी देख सकते हैं। ये खुद लिखती हैं– ''किसी भी मूल्य या स्थिति को मैं केवल स्वीकार नहीं कर पाती, क्योंकि वह है और सर्वमान्य है, होती आई है और सुरक्षा प्रदान करती है। अपने चारों तरफ घटते अन्याय को देखकर मैं शांत, स्थिर नहीं रह पाती। .... अर्थशास्त्र के मेरे अध्ययन ने इसे और तीव्र किया है। व्यवस्था के लिए शेष और यथास्थिति को लेकर शंका, इन्हीं की नींव पर मेरा लेखन खड़ा है। लगता है, हर पल अपने सम्मुख खड़ी हूँ और पूछ रही हूँ। अभी एक शंका और है उसका समाधान ? लिखने के बजाय मैं आन्दोलन क्यों नहीं चलाती, लेखक क्यों हूँ, नेता क्रांतिकारी क्यों नहीं, इस शंका का समाधान कौन करेगा ? शायद समय ?''[4]

प्रकृति प्रेम :

मृदुला जी पेड़ पौधों को अपना मूक दोस्त मानती हैं, जो इन्हें और इनके जज्बातों को समझते हैं। इनका यह लगाव कृत्रिम नहीं है। दिल्ली आने के पूर्व इन्होंने अपने आँगन में बगीचे लगवाए थे। इन्हें तो जंगली पौधा भी भा जाता है। जितना क्षणभंगुर होगा वह उतना ही अच्छा लगता है। दिल्ली में किराए के मकान की बालकनी में पौधे लगवाए थे, तो इनके मकान मालिक के कहने पर कि 'क्या जंगल बना रखा है' इन्हें वे पौधे हटाने पड़े थे। इन्हें इस बात का बहुत दुःख हुआ था। इनकी बागवानी ने इनके अपने घर की बालकनी को 'पौधों वाली बालकनी' का नाम दिया। ये पेड़–पौधों के संबंध में कहती हैं – ''मूक वे जरूर थे पर बधिर नहीं। आवाज उठाकर उनसे बोलने की जरूरत नहीं होती थी। मेरी हल्की से हल्की फुसफसाहट वे सुन सकते थे। मेरे हर्ष और विषाद के क्षणों के साक्षी ही नहीं, भावात्मक हिस्सेदार भी थे वे।''[5] फूलों के प्रति इनके नजरिए ने फूलों के प्रति इनके प्रेम को उजागर किया है। ये जो भी नए पौधे देखती हैं तो उनकी तरफ आकृष्ट हो जाती हैं। मृदुला जी को नौकरानी के घर लगा 12 साल पुराना पौधा इतना भा गया कि उसके संबंध में इन्होंने ये शब्द लिखे – ''कैक्टस पर खिले फूल का सौंदर्य आम फूल से बिल्कुल भिन्न होता है। अवर्णनीय, अनुपम।'' अपने पिता की वजह से लेखिका में घुमक्कड़ी वृत्ति पहले से पनप चुकी थी। इन्हें ऐतिहासिक इमारतों और स्थलों का मुआईना करने का बड़ा शौक बचपन में पैदा हो चुका था। पति के साथ एक जगह से दूसरी जगह तबादले ने इस वृत्ति को पोषित कर दिया। इनकी कहानियों और उपन्यासों में भी यायावरी का रुझान दिखाई देता है।

संवेदनशीलता–समाजधर्मिता :

मृदुला जी न समाजसेविका हैं, न चुनाव लड़ने वाली महिला, फिर भी ये समाज की व्यथा से खुद दुखी हो जाती हैं। शुरू से ही मृदुला जी का स्वभाव समाजिक अन्याय को सहन करने के पक्ष में नहीं था। लेखिका की बहन अचला जी के अनुसार, ''वह न समाजसेवी हैं, न प्रतिबद्ध नारी मुक्ति समर्थक। बस एक ऐसी औरत है, जिसे अपनी अस्मिता का पूरा ज्ञान है और उस पर गर्व भी। साथ ही उसमें इतनी निष्ठा है कि जब किसी सामाजिक काम को हाथ में लेती है तो उसे मुकाम तक पहुँचाकर ही दम लेती है। धोबिन के बेटे को नामी स्कूल में दाखिला नहीं मिला तो वह बिफर गई। अन्याय बर्दास्त नहीं कर पायी और उसे दाखिला दिलवाकर ही मानी।''[6] बागलकोट में रहते समय में भी बच्चों के लिए स्कूल खोला और उस स्कूल में पढ़ने वाली पोलियोग्रस्त लड़की को भी इन्होंने तहेदिल से सहायता की थी। इसी विकलांग लड़की ने मृदुला जी की सहायता के कारण ही नाटक में हिस्सा लेकर अपने आत्मविश्वास को मजबूत बनाया। मृदुला जी ने उस जमीन में शिरीष, बबूल, कीकर, झाऊ, पीपल के पेड़ लगवाए। लोग वहाँ आते, बैठते, बतियाते और अपनी समस्याओं पर विचार करते। आठ साल तक वहाँ के टी.बी. के रोगियों में टी.बी. की दवाई मुफ्त में बाँटी। बहुत महंगे दाम पर मिलने वाली टी.बी. की दवाई को लेखिका ने मुफ्त में बाँटकर अपनी मानवीयता का परिचय दिया। रचनाधर्मिता के साथ समाजधर्मिता भी इनके कण–कण में बसी है।

प्रिय साहित्य और साहित्यकार :

मृदुला जी के प्रिय साहित्य व साहित्यकार निम्नलिखित हैं :–

1. भारतीय साहित्य और विश्वसाहित्य के लेखक – 14 वर्ष की उम्र तक शरतचंद्र और ऑस्कर वाइल्ड तथा 14 वर्ष के बाद दोस्तोवयस्की और चेखब।

2. समकालीन लेखक – निर्मल वर्मा और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित भारत में और विश्व में सैलबेलो, गैबरियल, टोनी मॉरिसन।

3. समकालीन लेखिकाएँ– चित्रा मुद्गल, ममता कलिया, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मंजुल भगत, गीता श्री, दीप्ति खंडेलवाल, राजी सेठ, उषा प्रियम्वदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृणाल पांडेय, सूर्यबाला, शशिप्रभा शास्त्री, शिवानी, सिम्मी हर्षिता, नमिता सिंह, कुसुम अंसल, मणिका मोहिनी, ऋतु शुक्ला, चन्द्रकिरण, उषा देवी मित्रा आदि।

मृदुला गर्ग का कृतित्व :

हिंदी साहित्य जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली मृदुला गर्ग बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं। सृजनात्मकता को इन्होंने अपनी जिन्दगी में अन्य चीजों से अधिक महत्त्व दिया है। इन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम लेखन को बनाया तथा 1970 के आसपास लेखन कार्य में जुट गईं। इन्हें साहित्यकार बनाने का मूल कारण इनके जीवन के अनुभव हैं। साहित्यिक कृति की जन्म संबंधी पीड़ा का अनुभव वही साहित्यकार कर सकता है जिसने इसे झेला है। रचनात्मक पीड़ा बिल्कुल वैयक्तिक होती है और साथ–ही–साथ इतनी भयानक और असहय भी होती है। ये अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य को अनिवार्य बताने के साथ सामाजिक व्यवस्था में अन्याय के प्रति अपना आक्रोश भी प्रकट करती हैं। ये लिखती हैं– ''जीवन में जो कुछ घटता है, जो गहरे छूता है, व्यथित करता है, जो नाकाबिले बर्दाश्त होता है – सभी तो मन के उन गुप्त कोनों में छिपे होते हैं। जहाँ मेरे परिचित, दोस्त, सगे–संबंधी झाँककर नहीं देख सकते। सब कुछ बिल्कुल अकेले झेलती चली जाती हूँ। फोड़ो की तरह यह अनुभसव दुखते टीसते हैं। धीरे–धीरे पकते हैं और आखिर एक दिन फूट ही जाते हैं – कहानी, उपन्यास के रूप में। जो कुछ सोचती हूँ, महसूस करती हूँ, जो व्यवस्था मुझमे वितृष्णा जगाती है, अन्याय जो क्रोध का उफान लाता है, वही तो इन कहानियों और उपन्यासों का कथ्य है।''[7] प्रारम्भ से ही लेखन को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम मानने वाली इस रचनाकार के अध्ययन और अनुभव के समन्वय से साहित्य दृष्टि निर्मित हुई है। इनका कहना है कि ये किसी विशेष विचारधारा से प्रेरित होकर नहीं लिखती बल्कि वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवनदृष्टि के आधार पर लिखती हैं।

आठवें दशक के सशक्त कथा साहित्य में मृदुला जी ने साहित्यकार के रूप में अपनी अच्छी और मान्य जगह बनाई है। कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, व्यंग्य संग्रह, यात्रा संस्मरण आदि गद्य विधाओं पर इनका पूर्ण अधिकार है। आत्मकथा के रूप में इन्होंने कोई कृति नहीं रची। इनका हिंदी और अंग्रेजी पर समान अधिकार होने के कारण ये अनुवादक के रूप में भी काफी प्रशंसनीय रही हैं। पत्र–पत्रिकाओं में भी अनुवाद के अलावा कॉलम लिखने का कार्य किया। 'रविवार' पत्रिका में 'परिवार' नामक स्तम्भ लेखन किया। इन्होंने शोध कार्य के रूप में 'पर्यावरण के ह्रास का बच्चों पर प्रभाव' शीर्षक चुना। इनकी कई साहित्यिक रचनाओं का अंग्रेजी, जर्मन, चेक, रूसी आदि भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। ये कई पुरस्कारों से भी सम्मानित हुई हैं। ये एक प्रखर वक्ता हैं तथा पर्यावरण के प्रति सजगता प्रकट करती रही हैं। महिलाओं व बच्चों के हित में समाज सेवा के कार्य करती रही हैं। इन्होंने इंडिया टुडे के हिंदी संस्करण में लगभग तीन साल तक 'कटाक्ष' नामक स्तंभ लिखा है, जो अपने तीखे व्यंग्य के कारण खूब चर्चा में रहा। ये संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय में 1990 में आयोजित एक सम्मेलन में ''हिंदी साहित्य में महिलाओं के प्रति भेदभाव' विषय पर व्याख्यान भी दे चुकी हैं। विभिन्न घटनाओं के प्रति ये अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती रही हैं। इनके द्वारा रचित साहित्य को निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है –

1. मृदुला गर्ग का कथा साहित्य – कहानी और उपन्यास।

2. मृदुला गर्ग का कथेतर गद्य साहित्य – निबंध, नाटक, संस्मरण, यात्रा–वृत्तान्त, लेख–संग्रह।

3. मृदुला गर्ग का अनुवाद साहित्य – हिंदी से अंग्रेजी, अंग्रेजी से हिंदी में।

पुरस्कार व सम्मान :

मृदुला गर्ग ने लिखना बहुत देर से शुरू किया गया था। इन्होंने शादी के बाद 32 साल की उम्र में लिखना शुरू किया था। 1971 में इनकी पहली कहानी 'रुकावट' छपी, जो सारिका पत्रिका में कमलेश्वर के संपादन में छपी। बाद में 'लिली आफ दि वैली', 'दूसरा चमत्कार', 'हरी बिंदी' भी 'सारिका' में ही छपीं। 1972 में दूसरी कहानी 'कितनी कैदे' को 'कहानी' पत्रिका द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ। दिल्ली में 1974 ई. में स्वतंत्र लेखन शुरू किया।

1.कथा–साहित्य :

(1) **कहानी संग्रह** : कितनी कैदें (1975), टुकड़ा–टुकड़ा आदमी (1977), डैफोडिल जल रहे हैं (1978), ग्लेशियर से (1980), उर्फ सैम (1982), दुनिया का कायदा (1983), शहर के नाम (1990), चर्चित कहानियाँ (1993), समागम (1996), मेरे देश की मिट्टी अहा (2001), हरी बिंदी (2004), स्थगित कल (2004), जूते का जोड़, गोभी का तोड़ (2006), संगति–विसंगति (दो वोल्युम)–(1973 से 2003 तक की संपूर्ण कहानियाँ), दस प्रतिनिधि कहानियाँ (2008), यादगारी कहानियाँ (2009), श्रेष्ठ कहानियाँ (2009), स्त्री मन की कहानियाँ (2010), संकलित कहानियाँ (2011), मंजूर नामंजूर (2013), मेरे संग की औरतें (लघु कहानी) (2013), हर हाल बेगाने (2014), लोकप्रिय कहानियाँ (2015), वसु का कुटुम (2016)।

(2) **उपन्यास** : उसके हिस्से की धूप (1975), वंशज (1976), चित्तकोबरा (1979), अनित्य (1980), मैं और मैं (1984), कठगुलाब (1996), मिलजुल मन (2009)

2. कथेतर गद्य साहित्य :

नाटक– एक और अजनबी (1978), जादू का कालीन (बालनाटक) – 1993, तीन कैदें (1995), साम दाम दंड भेद (2003)

निबंध संग्रह– रंग–ढंग (1995), चुकते नहीं सवाल (1999)

व्यंग्य संग्रह– कर लेंगे सब हजम (2007)

कटाक्ष लेख– खेद नहीं है (2006 से 2008 तक के कटाक्ष लेख) – 2010

संस्मरण –कुछ अटके कुछ भटके (यात्रा संस्मरण) – 1996

दीदी की याद में (साहित्य अमृत सितंबर 1998 में प्रकाशित)

एक महा आख्यान लघु उपन्यास सा निबट गया (हंस सितम्बर 1998 में प्रकाशित)

कृति और कृतिकार (स्मृति लेख) – 2013

अन्य पुस्तकें– मेरे साक्षात्कार – 2012

बिसात – तीन बहने तीन आख्यान – 2015

3. अनुवाद साहित्य :

(1) 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास का अंग्रेजी में –'A touch of sun' नाम से अनुवाद।

(2) 'डैफोडिल जल रहे हैं' नामक हिंदी कहानियों का अंग्रेजी में 'defodils on fire' नाम से अनुवाद।

(3) योगेश गुप्त की कहानियों का ‘Sky Scr aper’ नाम से अंग्रेजी में अनुवाद।

(4) ‘अगली सुबह’ कहानी का अंग्रेजी में ‘The morning after’ नाम से अंग्रेजी में अनुवाद।

(5) आस्ट्रियन लेखिका बिकी बाम का सुप्रसिद्ध उपन्यास ‘Man Neverf Know’ का हिंदी अनुवाद ‘एक तिकोना दायरा’ के रूप में अक्षर प्रकाशन, दिल्ली से।

(6) इजेबल एंडूस के एकांकी ‘ब्राइड फाम द हिल्स’ का हिंदी रूपांतरण स्वयं द्वारा ‘दलहिन एक पहाड़ की’ नाम से।

पुरस्कार व सम्मान :

1. साहित्यकार सम्मान – 1988 हिंदी अकादमी दिल्ली।
2. सेठ गोविंददास पुरस्कार 1993 – मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा – नाटक जादू का कालीन के लिए।
3. प्रथम नाटक ‘एक और अजनबी’ – 1978 में आकाशवाणी द्वारा पुरस्कृत ।
4. ‘महाराजा वीरसिंह’ पुरस्कार – 1975 मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा उपन्यास ‘उसके हिस्से की धूप’ के लिए।
5. साहित्य भूषण सम्मान – 1999– उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा।
6. आजीवन साहित्य सम्मान – 2003 – विश्व हिंदी सम्मेलन, सूरीनाम।
7. ज्ञानपीठ का ‘वाग्देवी’ पुरस्कार 2003 – कठगुलाब के लिए।
8. व्यास सम्मान – 2004 – कठगुलाब के लिए।
9. साहित्य अकादमी पुरस्कार – 2013 – ‘मिलजुल मन’ उपन्यास के लिए ।
10. राममनोहर लोहिया सम्मान (2016) उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा
11. डी.लिट. ‘‘औनोरिस कौसा’’ आई.टी.एम विश्वविद्यालय, ग्वालियर (2016)

मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य :

साहित्यकार अपने समय के प्रति प्रतिबद्ध रहता है। प्रत्येक सजग साहित्यकार समय का अंश अपने साहित्य में प्रकट करता है। वह युगीन परिवेश, संस्कार, रूढ़ियाँ, गतिविधियाँ आदि से प्रभावित होता है। स्वयं की संवेदनशीलता तथा साहित्यिक सजगता का आधार लेकर वह साहित्याभिव्यक्ति करता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में अपनी अहम् भूमिका निभाते हुए रचनाकारों ने विसंगतियों एवं विविध विषमताओं को प्रकट किया है। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, मणिमधुकर, गिरिराज किशोर आदि रचनाकारों ने समय की नब्ज टटोलकर साहित्य में सभी सूत्रों को अभिव्यक्त किया। झूठ, फरेब, परंपरागत स्थापनाओं का विखंडन, मानसिकता में परिवर्तन, नारी–शोषण, महानगरीय जीवन का संत्रास, कुंठा, घुटन, दांपत्य जीवन आदि सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को अपनी रचनाओं के माध्यम से उजागर किया है।

साहित्य समाज की गतिविधियों से प्रभावित होने के साथ ही समाज में नये विचार, नये आदर्श, नई प्रेरणा भी प्रस्तुत करता है। युगानुसार समाज में परिवर्तन होता है, समाज की मान्यताओं एवं धारणाओं में बदलाव आता है। राजनीति व व्यवहार बदलते हैं, जिसका प्रभाव साहित्यकार पर पड़ता है और वह उसकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास ऐसी विधा है, जिसमें यह सामाजिक सरोकार सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त होता है। उसमें परिवार, राजनीतिशास्त्र, अर्थव्यवस्था, धर्म इन सबके साथ मनुष्य के रिश्तों के सामाजिक जगत का पुनः सृजन किया जाता है। व्यक्ति समाज के अन्तःप्रयाण, साँस कृतिक अवमूल्यन और विघटन के कार्य–कारण संबंध, समाज के विराट राजनीतिकरण, देशकाल में अविराम संक्रमण और व्यक्ति के द्वंद्वों, तनावों की मूल मानसिकताओं और पीड़ाओं को गहन विश्लेषण से उद्घाटित करता है। उपन्यास बदलते सामाजिक संबंधों की गतिशीलता को प्रामाणिकता से व्यक्त करने वाला सर्वाधिक सशक्त साहित्यिक माध्यम बनता जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उपन्यास विधा को समृद्धि प्रदान करने में महिला कथाकारों का विशिष्ट योगदान है। जीवन की सच्चाइयों का गंभीर विश्लेषण, जीवन संदर्भ, व्यक्तिगत कुंठाओं, पीड़ाओं, अतृप्त आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने में वे सफल रही हैं। नारी के अस्तित्व को इन्होंने अत्यंत गंभीरता के साथ उद्घाटित किया है। इन्होंने समाज की विषमताओं, मूल्यहीनताओं तथा अन्तर्विरोधों को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं के साथ–साथ नारी मन के अनछुए पहलुओं का भी स्पर्श किया है। अपने उपन्यास–साहित्य में सदियों से चल रहे नारी–शोषण की ओर ध्यानाकृष्ट करती हैं तथा पुरुष समाज से अपने प्रति मानवीय दृष्टिकोण की अपेक्षा करती हैं। समकालीन महिला रचनाकारों में चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, नासिरा, शर्मा, प्रभा खेतान, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, शिवानी, कृष्णा सोबती, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, मैत्रेयी पुष्पा, मालती जोशी, मृदुला गर्ग, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला सिन्हा, मेहरूनिसा परवेज, दीप्ति खंडेलवाल, मृणाल पाण्डेय, निरूपमा, सूर्यबाला और राजी सेठ आदि ने अपनी अनुभूतियों को अत्यन्त सुविचारित और आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। इन समस्त लेखिकाओं ने पुरानी जीर्णशीर्ण और वर्तमान समय में अनुपयोगी और प्रभावहीन मान्यताओं को तोड़ा है। परिवर्तित होते हुए युगबोध के साथ–साथ महिला रचनाकारों के उपन्यास–साहित्य में नैतिक मूल्यों का बदलाव भी है तथा आर्थिक राजनीतिक चिंतन भी। ये सभी समाज के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं।

प्रख्यात रचनाकार मृदुला गर्ग अपने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए 'उपन्यास' को सर्वाधिक सशक्त माध्यम मानती हैं, क्योंकि यही वह माध्यम है, जिसमें ये अपनी अभिव्यक्ति को पूरे विस्तार के साथ रख पाती हैं। स्त्री–पुरुष संबंध तथा जीवन की प्रवृत्तियों का कलात्मक रूप आदि आधुनिक बोधयुक्त विभिन्न सामाजिक तत्त्व इनके उपन्यास साहित्य में प्रस्तुत हैं। मौन प्रश्नों, कुंठाओं के संदर्भ में नारी की मानसिकता, नारी के प्रेम और वासनात्मक जीवन पर इन्होंने अपना एक विशेष दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया है। प्रेम, तलाक, दहेज, सेक्स आदि विषयों का खुला अंकन करके महिला–लेखन को एक नया आयाम प्रदान किया है। राजनीतिक परिवेश, आर्थिक असमानता, शोषण, दांपत्य–जीवन का तनाव, अन्तर्द्वन्द्व, वर्ग–संघर्ष जैसी अनेक समस्याओं को वास्तविक रूप से अभिव्यक्ति मिली है। जीवन की अनेक परतों को खोलकर रखने में इनका प्रयास सशक्त है। ये नारी–मुक्ति की प्रबल आकांक्षी रही हैं। इनके उपन्यासों में परिवार और समाज के बीच आज की नारी की अस्मिता को खोजने का प्रयास किया गया है। ये नारी को आजाद देखना पसंद करती हैं। इसी विचारधारा का प्रतिपादन इनके उपन्यासों में पाया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में इनके उपन्यासों का परिचय दिया जा रहा है, जिससे उनके उपन्यास साहित्य को समझा जा सकता है।

मृदुला गर्ग के समकालीन उपन्यासों में 'उसके हिस्से की धूप' (1975), 'वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य' (1980) 'मैं और मैं' (1984) 'कठगुलाब' (1996) तथा

'मिलजुलमन' (2009) की गणना की जाती है। इनकी पहचान अभिजातीय वर्ग की नारी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से उभरती है। इनके उपन्यासों का परिचय निम्नलिखित हैं –

1. उसके हिस्से की धूप (1975) :

'उसके हिस्से की धूप' मृदुला गर्ग का प्रथम उपन्यास है, जो सन् 1975 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक त्रिकोणात्मक प्रेम कथा है। संपूर्ण उपन्यास तीन पात्रों मनीषा, जितेन और मधुकर के इर्द गिर्द घूमता है। इसमें एक विवाहित नारी मनीषा की कहानी है, जो पहले जितेन के साहचर्य में, फिर मधुकर के सम्पर्क में और अन्ततः अपने अकेलेपन को बाँटने की अकुलाहट में पति और प्रेमी बदलती रहती है। पति जितेन की व्यस्तता पर पत्नी मनीषा का दाम्पत्य किस तरह दाम्पत्येतर संबंधों में परिणित हो जाता है और दोनों के बीच उदासीनता का निर्माण हो जाने के कारण बात तलाक तक पहुँच जाती है। इसके माध्यम से नारी के अन्तर्द्वन्द्वों, अन्तर्विरोधों और अबूझ निर्णयों को मृदुला जी ने अपने उपन्यास में चित्रित किया है।

उपन्यास की कथा की मूल समस्या प्रेम नहीं बल्कि स्त्री–पुरुष के संबंधों में व्याप्त स्वतंत्रता की अनुभूति है। जो स्वतंत्रता पुरुष के लिए अहं मुद्दा है, वही स्त्री के लिए पैरों की जंजीर तो नहीं बन रहा है। इस मूल्यवान अर्थ को टटोलती हुई उपन्यास की कथा जितेन, मनीषा और मधुकर के आस–पास घूमती है। विवाह मनीषा की स्वतंत्रता का पर्याय नहीं बनता है। नायिका को निजता का अनुभव तब होता है, जब उसकी अपनी कृति का सृजन होता है। 'स्व' की तलाश करती नायिका मनीषा अपने दोनों पति, जितेन व मधुकर से असंतुष्ट रहती है। मनीषा बचपन से ही प्रेम–विवाह या स्वेच्छा से विवाह करने के पक्ष में थी, परंतु जितेन से उसका प्रबन्धित विवाह हो जाने के कारण बचपन से पोषित उसका प्रेम–विवाह वाला विचार अधूरा रह जाता है। अपनी अधूरी इच्छा को पूरी करने के लिए वह मधुकर से प्रेम करने लगती है और उससे विवाह कर लेती है, किंतु प्रेम का यह उबाल विवाह के चार वर्षों के उपरांत ही ठंडा पड़ने लगता है। चार साल बाद मनीषा की मुलाकात अचानक अपने पूर्व पति जितेन से नैनीताल में हो जाती है तथा दोनों पुनः एक–दूसरे के नजदीक आ जाते हैं। पहले जितेन पति होते हुए भी बाधा नहीं था, लेकिन आज मधुकर पति है, परंतु आशंका का कारण भी है। पात्र बदल जाते हैं, जितेन की जगह मधुकर आ जाता है, परंतु मनीषा वैसी की वैसी है, जहाँ की तहाँ। स्वतंत्रता की इच्छा के लिए, स्वतंत्र निर्णय लेती हुई, कभी विद्रोही बनती है, तो कभी–कभी घुट जाने पर मजबूर।

मनीषा अपने जीवन की सार्थकता पहले जितेन और फिर मधुकर में खोजती है। जब वह पाती है कि जितेन के पास अतित्यस्तता के कारण उसकी भावनाओं को समझने का समय ही नहीं है, तब उसे निरर्थकता का बोध होने लगता है। मानसिक द्वंद्व के चलते वह प्रेम की दार्शनिक बहस में पड़ जाती है और वह मानने लगती है कि उसका प्रेम–विवाह होता तो जीवन कुछ और ही तरह का होता। मनीषा के अनुसार –''एक–दूसरे को सचमुच चाहकर विवाह करो तो दूसरी बात होती है। प्रेम साधारण से साधारण मनुष्य को भी महान बना देता है। एक–दूसरे को पाने की सच्ची ललक कठोर से कठोर साधना करा देती है, बड़े से बड़ा आत्मत्याग।'' मनीषा की यह सोच उसे समस्या के समाधान की जगह एक अन्य समस्या की ओर ले जाती है। उसका प्रेम भी चुक जाता है, अब वह प्रेम नहीं, प्रेम का अभिनय करने लगती है। मनीषा जो जितेन के पास पाती है, वह मधुकर के पास नहीं मिलता और मुधकर के पास है, उसके लिए जितेन के जीवन में समय नहीं। मनीषा के पास सारी सुख–सुविधाएँ हैं, लेकिन आत्मिक सुख नहीं। मनीषा को यह अहसास होता है, कि जीवन की सार्थकता गेंद की तरह जितेन और मधुकर के बीच लुढ़कने में नहीं है, अपितु अर्थ तो अपने भीतर से ही तलाशना होता है। ऐसे में उसका भीतरी रचनाकार सक्रिय होता है और वह अपने जीवन की सार्थकता को लेखन में पूरा करती है।

यह उपन्यास नारी–स्वातंत्र्य की ही नहीं, अपितु व्यक्ति–स्वातंत्र्य की खोज का भी उपन्यास है। उपन्यास के अन्त में मनीषा का बुद्धिवाद प्रखर हो उठता है और बाह्य परिस्थितियों को स्वीकार करती हुई वह अपने भीतर लौटती है। वह जितेन व मधुकर दोनों से ही ऊबकर आखिरकार अपने जीवन की सार्थकता की तलाश में जुट जाती है और उसके उपादान भी खोज लेती है– ''सहसा उसे कल का वह क्षण याद आ गया, जब जितेन ने उसके हाथ में कलम थमाकर उससे उसके कहानी संकलन पर हस्ताक्षर कराए थे। जाना–पहचाना छोटा सा अपना नाम उसने मुखपृष्ठ पर लिख दिया था। मनीषा। अपना नाम, बस अधिक कुछ नहीं। पर उस मनीषा के 'म' के पृष्ठ पर फैलतै–फैलते उसने जिस आत्म गौरव और संतोष का अनुभव किया था, वह शायद और कभी नहीं किया, मधुकर का प्रेम जीतने पर भी नहीं।''[8] मनीषा लेखन में परितोष का अनुभव करती है। ऐसा नहीं है कि वह बहुत महान लेखिका थी, लेकिन वह उसकी अपनी वस्तु है, जिसके लिए वह किसी की मोहताज नहीं थी। प्रेम इस उपन्यास की समस्या नहीं है, अपितु यह इस सत्य की प्रतीति जरूर कराता है, कि प्रेम जीवन लक्ष्य नहीं हो सकता है। मृदुला जी का मानना है, कि प्रेम में इतना घनत्व नहीं होता कि वह अंतरिक्ष जैसे फैले जीवन के शून्य को सदैव के लिए भर सके। इस उपन्यास में जिप्सी प्रवृत्ति की नायिका के मानसिक और रचनात्मक मनोभावों, द्वंद्वों, विचारधाराओं, क्रिया–प्रतिक्रियाओं और प्रसुप्त कामनाओं का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो यह निष्कर्ष दे जाता है, कि सुख और अर्थवत्ता व्यक्ति को अपने भीतर ही से मिलती है।

2. वंशज (1976) :

वंशज मृदुला जी का दूसरा उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1976 में हुआ। इस उपन्यास में अंग्रेजी शासन में पुरानी पीढ़ी की आस्था तथा नयी पीढ़ी का उससे विद्रोह को अभिव्यक्त करती हुई दो पीढ़ियों के संघर्ष की कथा है। दो पीढ़ियों के बीच बढ़ते अन्तराल को सुधीर और शुक्ला साहब के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें नौकरशाह वर्ग के परिवार की एक जीवन्त कहानी है, जहाँ दो पीढ़ियों के मूल्यों और आचार–विचारों का सीधा संघर्ष है। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है, जैसे यह राजनीतिक उपन्यास है। वास्तव में स्वतंत्रता–संघर्ष की थोड़ी बहुत दास्तान, सुधीर द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बन जाना, गांधी जी की हत्या आदि घटनाएँ ही ऐसा भ्रम उत्पन्न करती हैं। लेकिन ध्यान से देखा जाए तो यह उपन्यास शुक्ला साहब और सुधीर के माध्यम से दो पीढ़ियों के बीच बढ़ती खाई की कहानी को व्यक्त करता है। 'वंशज' एक त्रिकोणात्मक संघर्ष–कथा है। मि. शुक्ला और सुधीर, जो कि पिता और पुत्र हैं, चाहकर भी एक–दूसरे को नहीं समझा पाते। संघर्ष का तीसरा कोण है, सुधीर की बहन रेवा, जिसे परिवार में सुधीर की अपेक्षा अधिक तवज्जो दी जाती है। जज शुक्ला साहब, रेवा और सुधीर के स्वभाव के अन्तर को समझने का प्रयास करते हैं, किंतु भूल जाते हैं, कि उनकी अपनी ही कुंठाओं का विकृत रूप बनकर सुधीर उनके सामने आ रहा है। सुधीर अपने आप को इस द्वंद्व से बाहर नहीं निकाल पाता है, कि एक ही माता–पिता की दो संतानों के बीच यह भेद या सौतेलापन कैसा ? सौतेलेपन का जो जहर शुक्ला साहब अपने बेटे के लिए घोल रहे हैं, उसी के कारण वे बेटी के लिए 'पिता' और बेटे के लिए 'साहब' हो जाते हैं। आपसी समझ तथा भावात्मक संवाद के अभाव में यह दूरी और भी बढ़ती चली जाती है। एकाकीपन से त्रस्त सुधीर परिस्थितियों के कहर को न सह पाने के कारण अन्ततः मानसिक विकृत्ति की हालत में पहुँच जाता है।

उपन्यास की कथा में मिस्टर शुक्ला कानपुर सेशन्स कोर्ट के महामान्य जज हैं। उनके एक पुत्र सुधीर तथा पुत्री रेवा है। रेवा जब चार वर्ष की थी, तभी जज साहब की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। जज साहब बच्चों के कारण दूसरा विवाह नहीं करते। माँ के दुलार से वंचित रेवा को तो जज साहब से ममता मिल जाती है, परंतु सुधीर दुलार की उपेक्षा के रेगिस्तान में भटकता रहता है। सुधीर हमेशा इसी इंतजार में रहता है कि उसके पिता उसे बेटा कहकर कब बुलाएंगे। सुधीर और रेवा के बीच अंतर का कारण जज साहब की पारंपरिक धारणा है कि पुत्री पराया धन होती है, परंतु पुत्र वंशज होता है। इसी कारण सुधीर को कुछ बनाने के प्रयत्न में

उस पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और मान्यताओं को थोपने का प्रयत्न करते हैं। अनुशासन संबंधी गलत धारणा के कारण वे सुधीर के लिए ''डैडी' से 'जज साहब' मात्र बनकर रह जाते हैं। शुक्ला साहब पाश्चात्य रीतियों से प्रभावित हैं और अनुशासन को अपनाते हैं। परिणामस्वरूप सुधीर बेहद विद्रोही चरित्र बन जाता है। वह बिना सोचे समझे ही वह सब करने लगता है, जिससे जजसाहब का विरोध कर सके। इसके लिए वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बन जाता है। उनके कार्यों में आस्था न होने पर भी वह सिर्फ जजसाहब का विरोध करने में ही अपनी संतुष्टि पाता है। जजसाहब लाख प्रयत्न करने पर भी सुधीर के निरंतर विद्रोही व्यवहार का कारण नहीं समझ पाते हैं। सुधीर के जीवन में आने वाले सभी चरित्र उसकी बहिन यहाँ तक कि पत्नी भी उसकी समस्याएँ बढ़ाते चले जाते हैं। सुधीर की पत्नी सविता उसके पागलपन में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है। जीवनसंगिनी के दायित्व को हमेशा से नकारती वह जजसाहब की पुत्रवधू मात्र इसीलिए बनी रहती है, क्योंकि उनके पास पैसा है, कोठी है, ऐश्वर्य है तथा सुख–सुविधाएँ हैं। सविता का उद्देश्य एक व्यापारी की तरह उन सब चीजों को अपने तथा अपने बच्चों के लिए हथियाना है। वह अपने पति की हीनभावना की खाई को और भी गहरा कर देती है। सुधीर के विश्वास को खंडित करने वाले अनेक लोग हैं, किंतु समझने वाला कोई भी नहीं है। अविश्वास और एकाकीपन से उपजा पागलपन सुधीर को लील जाता है। उसके जीवन की परिणति बड़ी ही मार्मिक होती है।

यह उपन्यास न सिर्फ पारिवारिक समस्या को ही चित्रित करता है, अपितु विरासत के तौर पर दी गई अंग्रेजों की नौकरशाही व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध तथा पाश्चात्य आचार–विचार एवं अनुशासन के कायल जजसाहब की वैचारिक संघर्ष की गाथा भी है। दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष, टकराहट, द्वंद्व तथा अंतराल को इस उपन्यास ने वाणी दी है। सुधीर नई पीढ़ी का है और नौकरशाही का विरोध करता है, जबकि शुक्लासाहब पाश्चात्य रीतियों से प्रभावित हैं और अनुशासन को अपनाते हैं।उपन्यास में सविता और सुधीर का दांपत्य–जीवन विचारों का तालमेल न होने के कारण दुःखमय है। सुधीर दूसरों की मदद करने वाला है जबकि सविता पैसों की लोभी, कंजूस गृहस्थिन है। उसे पैसा ही चाहिए वस्तुतः पति नहीं। संदीप और रेवा का दांपत्य जीवन सुखमय है तथा वे एक–दूसरे की इच्छाओं को महत्त्व देते हैं।

वर्तमान पूँजीवादी समाज में शारीरिक परिश्रम करने वाले मजदूरों का भीषण शोषण होता है। 'वंशज' उपन्यास का मैनेजर भादूड़ी जब गरीब मजदूरों का शोषण करता है, तब सुधीर इसके विरोध में आवाज उठाता है। फलतः मजदूरों के हितचिंतक इंजीनियर सुधीर को ही नौकरी से निकाल दिया जाता है। आज सिफारिश और भ्रष्टाचार का जमाना है। जिसकी सिफारिश करने वाले लोग हैं, वो दुर्लभ नौकरी भी पा जाते हैं। सुधीर को अंग्रेजीयत में डूबे पिता से नफरत है। इसलिए उनकी सिफारिशों से भी नफरत है। इसीलिए वह संदीप से कहता है – ''ठीक है ऐसा कीजिए, डैडी की सिफारिश से यही वाली नौकरी भी आप ही कर लीजिए। इंजीनियर तो आप हैं ही, माइनिंग न सही, केमिकल सही। डैडी की सिफारिश से क्या पता डिग्री भी बदल जाए।''[9] इस उपन्यास में यह विडंबना जाहिर है, कि हम अपने ही समाज, वर्ग–परिवार और परिवेश के समीप रहते हुए भी एक–दूसरे से औपचारिक दूरियाँ अनुभव करने लगे हैं। आज एक पीढ़ी अपनी बात दूसरी पीढ़ी को समझाने में असमर्थ पा रही है। आज के आधुनिक समाज में युवा और बुजुर्ग पीढ़ी में जो अंतर दिखाई दे रहा है, वह केवल वय के अंतर के कारण ही नहीं हैं अपितु उसके पीछे मूल्यगत मान्यताएँ और उनके स्वीकार–अस्वीकार का भाव भी जुड़ा हुआ है। वृद्ध होती हुई पीढ़ी के प्रति आज की युवा पीढ़ी कभी–कभी द्वंद्वात्मक और कभी विद्रोहात्मक भाव भी अनुभव करती है। वे एक–दूसरे के प्रति भावात्मक कम और बुद्धिवादी अधिक होते जो रहे हैं। अतः 'वंशज' का यह संघर्ष आज भी जीवंत है और यह एक ज्वलंत संघर्ष को पेश करता है।

3. चित्तकोबरा (1979) :

'चित्तकोबरा' मृदुला जी का तीसरा प्रमुख और महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। मार्च 1979 में प्रकाशित मृदुला गर्ग का सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद उपन्यास है, किंतु विडंबना यह रही है, कि यह अपने कथ्य की ताजगी और शिल्प की नवीनता की वजह से नहीं, बल्कि तीन पृष्ठों के ऐसे प्रसंग के कारण चर्चावृत्त में स्थापित हुआ है,जो अष्लीलता की श्रेणी में माने जाते हैं। यह उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की अगली कड़ी है। लेखिका ने खुद ही स्वीकार किया है कि जहाँ से 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा की कथा खत्म होती है, वहीं से चित्तकोबरा की मनु यात्रा आरंभ करती है। यह उपन्यास जहाँ मृदुला जी के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है, वहीं श्लील–अश्लील विषय को लेकर विवादित रहा। बात इस कदर तक बढ़ी कि 'सारिका' पत्रिका में इसके अंश–विशेष को अलग से फोकस करके लंबा विवाद पैदा कर दिया गया। इस 'अश्लीलता' के प्रश्न ने लेखिका को विवादों के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया। इसकी वजह से मृदुला जी को गिरफ्तार भी होना पड़ा।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका यही कहना चाहती है कि प्रेम जीवन को गहराई देता है, फैलाव देता है और उसे संकुचित भी करता है। उपन्यास की कथा रिचर्ड और मनु के प्रेम की कथा है। मनु एक विवाहित स्त्री है और रिचर्ड एक विवाहित पुरुष। उपन्यास की नायिका मनु, महेश की पत्नी है, किंतु रिचर्ड से प्यार करती है। रिचर्ड एक वृक्ष की निर्जीव छाया की तरह है, अपनी आवश्यकतानुसार मनु कभी उसके नीचे बैठना पसंद करती है, किंतु इस बैठने में आत्मा का लगाव नहीं है। उनका प्रेम स्वार्थों, सरहदों और भौतिक संकीर्णताओं से नितांत दूर है। दोनों की मुलाकात जमशेदपुर के ड्रामेटिक क्लब में होती है। ड्रामा करते–करते मनु और रिचर्ड में प्रेम हो जाता है। उनका प्रेम शारीरिक है, लेकिन धीरे–धीरे अमूर्त रूप धारण कर लेता है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका स्वीकारती है – ''मैं जानती हूँ, प्रेम अपने मूल में प्लेटोनिक होता है, यानी उसकी परमगति प्रेमी से एकान्त होने में है, एक शरीर होने में नहीं। प्रेम अपने आदर्श रूप को तभी प्राप्त करता है, जब प्रेमी–प्रेमिका के लिए शारीरिक का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। आत्मा का तब इतना घनिष्ठ समागम हो जाता है, कि एक दूसरे की उपस्थिति अनुपस्थिति भी महत्त्वहीन हो उठती है। इष्ट का अस्तित्व ही सब कुछ है, उसकी उपस्थिति नगण्य है। इष्ट के एब्सट्रेक्ट रूप में स्थापित होते ही प्रेम सार्वभौमिक रूप पा जाता है। ऐसा ही है चित्तकोबरा का प्रेम।''[10] इस प्रकार पूरा उपन्यास एक आदर्शवाद को साथ लेकर चलता है।

लेखिका ने इस उपन्यास में आधुनिक सिनेमा के समान शारीरिक चेष्टाओं का खुला वर्णन किया है। लेखिका स्वयं कहती हैं कि इस प्रकार के वर्णन की बहुत आवश्यकता न थी, फिर भी इस प्रकार के शारीरिक वर्णन का महत्त्व एक दूसरी दृष्टि से यह है कि पुरुष की तरह नारी भी अपने भाव व्यक्त करना चाह सकती है। उपन्यास के सभी पात्र, चाहे वह रिचर्ड हो, मनु या फिर महेश सबकी अपनी अलग पहचान है। महेश एक ऐसा पति है, जिसका परिचय मनु का पति होना नहीं है, वह सिर्फ महेश है। उसका रूप और मिजाज बहुत व्यावहारिक है और वह आधुनिक विचारों का समर्थक है। पुरुष के इस प्रकार का रूप भी निस्संदेह इसलिए उभरकर सामने आया है कि पुरुष के सामने एक सशक्त नारी खड़ी है, जो निर्भीक है तथा प्रेम और सेक्स में पाप–पुण्य के सम्मोहन से ऊपर उठ चुकी है। महेश परिस्थितियों को दूर बैठे दर्शक की तरह देखता और पहचानता आया है। वह जानता है कि मनु ने शादी के बाद एक आदर्श पत्नी तरह समर्पण किया है और वह उससे निहायत प्यार करती आई है। लेकिन साथ ही वह यह भी स्वीकारता है कि वह उससे प्यार नहीं करता। असल में महेश के लिए मनु से विवाह एक तयशुदा, सुनिश्चित विवाह से अधिक कुछ नहीं था।

मनु, महेश की पत्नी है तथा दो बच्चों की माँ भी है। वह महेश को बेहद चाहती है। महेश की प्रत्येक इच्छा ही मनु की अपनी इच्छा हो जाती है। स्वाभाविक है कि मनु महेश से ऐसी ही अपेक्षा करती है। महेश विवाह के इस संबंध को गहराई से नहीं लेता है और वह इसे रस्म अदायगी से अधिक महत्त्व देने को तैयार नहीं है– ''विवाह के बंधन में मेरा विश्वास नहीं

है मनु।''[11] यह छोटा सा वाक्य मनु के भीतर तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। वह अपने जीवन की सार्थकता के लिए तीसरे की खोज का प्रयास करती है और इस तरह से रिचर्ड उसके पास आ जाता है। मनु के मानसिक बदलाव को समझकर आखिर महेश अपनी पत्नी के पास लौट आता है। महेश का चरित्र बहुत उदात्त है, जो शायद ही वास्तविक धरातल पर मिले। स्थिति की विडंबना यह है, कि महेश और मनु दोनों ही एक वक्त एक–दूसरे से प्रेम नहीं कर पाते। जिस क्षण मनु उसे प्रेम करना बंद करती है, महेश उसे उसी क्षण से प्रेम करने लगता है। महेश मनु को प्यार करके खुश है। वह इस बारे में कोई तहकीकात नहीं करना चाहता कि उसके जीवन में दूसरा पुरुष कौन है। व्यक्ति के तौर पर मनु स्वतंत्र है। मनु के विकर्षण से आकर्षक उत्पन्न होता है। मनु और रिचर्ड का प्रेम जो प्लैटॉनिक (अशरीरी) होने की सीमा तक खिंचा हुआ है और इस स्तर पर पहुंचने के पहले शरीर माध्यम का सहारा लिया गया है। मनु और रिचर्ड के बीच का आत्मिक आकर्षण ऐसी प्रगाढ़ता में बदलता है कि उनके बीच सारी दीवारें ढह जाती हैं। वे तन और मन से एक होकर एक नई स्फूर्ति का अनुभव करते हैं।

विवाह संस्था आज कितनी अप्रासंगिक तथा अर्थहीन हो गई है, इसकी मिसाल रिचर्ड और मनु के वैवाहिक संबंधों में देखी जा सकती है। जैनी से विवाह कर तीन बच्चे पैदा करके भी रिचर्ड उसे आत्मिक एकत्व के स्तर पर स्वीकार कर पाने में असमर्थ है, क्योंकि उनके व्यक्तित्व की असमानता इसमें बाधक है। इसी प्रकार महेश से वैवाहिक संबंध के पश्चात् उसके दो बच्चों की माँ बनकर भी मनु महेश से मन से एकाकार नहीं हो पाती, क्योंकि उनकी रुचियों में बड़ी असमानता है। महेश आधुनिक मशीनी सभ्यता के एक सक्रिय अंग के रूप में वस्तुनिष्ठ भोग में दिलचस्पी लेने वाला कुशल प्रशासक एवं उद्योगपति है। मनु उसकी प्रतिष्ठा एवं सफलता में भागीदार एक कठपुतली बनकर रह गई है, जो उसकी संवदेनशील मानसिकता के लिए एक गहरा आघात है। अतः दो समानधर्मी व्यक्तित्व अपनी स्थितियों–परिस्थितियों से जूझते हुए यदि अपने अधुरेपन को पूरा करने के लिए एक दूसरे से जुड़कर गहरी आत्मिक संतुष्टि का अनुभव करते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। वैवाहिक जीवन की विडंबना इससे बढ़कर और क्या हो सकती है कि शारीरिक रूप से एक–दूसरे से जुड़कर भी पति–पत्नी आत्मिक रूप से जुड़ने में विफल हैं। 'चित्तकोबरा' उपन्यास के माध्यम से मृदुला जी ने प्रेम की सार्वकालिक समस्या को एक नई मानसिकता के तहत रूपायित कर, उन आयामों को छुआ है, जो आज के संदर्भ में बड़ी अहमियत रखते हैं। नैतिकता–अनैतिकता से परे स्वच्छन्द स्त्री–पुरुष संबंधों को प्रस्तुत किया है। इसमें नायिका का भावात्मक द्वंद्व मुखर हो उठा है। 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा के समान मनु के द्वंद्वों की परिसमाप्ति भी सृजन में ही होती है।

4. अनित्य (1980) :

'अनित्य' उपन्यास की रचना मृदुला जी ने भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो अहिंसात्यक असहयोग आंदोलन और क्रांतिकारी आंदोलन चले थे, उन्हीं की पृष्ठभूमि पर की है। इसमें पचास वर्षों से निरंतर ह्रासोन्मुख हो रहे सामाजिक परिवेश को प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती तीनों उपन्यासों से भिन्न है। स्वतंत्रता आंदोलन के स्वरूप और उसकी परिणति से बहुत से लोगों को संतोष नहीं हुआ, लेखिका को भी नहीं। कारण यह रहा कि जिन उद्देश्यों को इस आंदोलन में प्रमुखता देनी चाहिए थी, वे गौण हो गए और सत्ता–हस्तांतरण को प्रमुखता मिली। अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध स्वतंत्रता आंदोलन पर लिखे गए इस उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले और पश्चात् व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न द्वंद्वों को चित्रित किया गया है। उपन्यास की पार्श्वभूमि में सातवें दशक का दिल्ली शहर है। अंग्रेजों की तरह हिन्दुस्तानियों ने गद्दी संभाल ली, लेकिन हालात वैसे के वैसे ही रहे। सत्ताधारियों के सिर्फ चेहरे बदले, मानसिकता नहीं बदली।उपन्यास के चौथे संस्करण की भूमिका में लेखिका ने अपने मत को व्यक्त किया है, कि स्वतत्रंता–आंदोलन में गांधीवादी और क्रांतिकारी मार्गों में अंतर केवल हिंसा और अहिंसा को लेकर नहीं था, बल्कि दोंनो के उद्देश्यों में ही मूलभूत अंतर था। भगतसिंह के पास बाकायदा एक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रोग्राम था, जिसका उद्देश्य समाज के मौजूदा ढाँचे को बदलकर समाजवाद लाना था। गांधीजी से उनका विरोध

भी इसी तथ्य को लेकर था, जबकि गांधीजी बलपूर्वक सत्ता ले लेने को असंभव मानते थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों से सत्ता ले लेने पर वे पूँजीवाद से भी निबट लेंगे। लेखिका का मानना है, कि परिणाम इसके ठीक विपरित हुए और पूँजीवाद तथा अवसरवाद की जड़ें और भी अधिक गहरी होती गई। 'अनित्य' उपन्यास ऐसे ही पतनशील समाज की कहानी को अविजित के माध्यम से कहता है।

उपन्यास 'अनित्य' दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग 'दुविधा' में हर पात्र अपने आप में दुविधाग्रस्त है और द्वितीय भाग है– 'प्रतिबोध'। इसमें आजादी की लड़ाई फ्लैशबैक में चलती है और वर्तमान में अविजित के परिवार की कथा है। इस उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मानस पर दीर्घकालीन रूप से क्या प्रभाव पड़ता है और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे यहाँ की अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने में उनकी क्या भूमिका रही है। इस प्रकार की स्थिति से व्यक्ति अपना व्यक्तित्व पूरी तरह से खो देता है तथा हर संबंध को वह उसकी उपयोगिता के आधार पर आंकता है और एक प्रकार की संबंधहीनता में जीने पर मजबूर है। परंपरागत स्त्री–पुरुष संबंधों से हटकर रचा गया 'अनित्य' राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक विसंगतियों का सशक्त चित्र पेश करता है। राजनीतिक चेतना से युक्त इनका 'अनित्य' गांधीजी की अंहिंसा नीति के तुलना में भगतसिंह के क्रांतिकारी रुख का समर्थन करता है।

उपन्यास का आरम्भ अविजित के द्वंद्व से होता है। उसकी बीमार पत्नी शैयाधीन है, जो कभी अपने सौंदर्य के लिए पूरे लखनऊ शहर में प्रसिद्ध थी। अविजित, इस उपन्यास का नायक तथा केंदीय पात्र है। वह ऐसा व्यक्ति है, जो जीवन में स्वयं को वही सारी चीजें करता हुआ पाता है, जिन्हें वह कभी भी करना नहीं चाहता था। उसके भी मूल्य हैं, लेकिन उन्हें बनाए रखने की क्षमता नहीं है। काजल के प्रेम को ठुकराकर वह एक धनाढ्य परिवार की बेहद् खूबसूरत लड़की से शादी कर लेता है। उसकी पत्नी श्यामा शारीरिक रूप से अस्वस्थ है। वह अविजित की किसी भी इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ है, क्योंकि उसे लाचारी की आदत सी पड़ गई है। अविजित वर्तमान में रहते हुए भी हमेशा अपने भूत के बारे में सोचता रहता है। मैं पहले क्या था और अब क्या से क्या हो गया, यह उसकी चिंता का प्रमुख बिंदु रहता है। वह जब भी अपने किसी पुराने साथी से मिलता है, तो उसे अपने बीते दिनों की याद स्वभावतः आ ही जाती है। जैसे ही वह अपनी पुरानी मित्र काजल से मिलता है, तो उसके भीतर उसका अतीत खदबदाने लगता है। काजल के साथ जिये गए प्रेमसिक्त क्षण उसे टीसने लगते हैं और वह अतीत–वर्तमान के अन्तर्द्वन्द्व में झूलता रहता है। ऐसे ही दौर में जब संगीता उसके सामने आ जाती है, तो वह बेबस हो जाता है और संगीता के साथ अन्याय कर बैठता है। उसकी दोनों बेटियाँ शुभा और प्रभा जीवन के प्रति नितांत भिन्न दृष्टिकोण को अपनाती हैं। शुभा शांत और आज्ञाकारी है, जबकि प्रभा विद्रोही प्रवृत्ति की तथा अपनी वैयक्तिकता का अहसास करा देने वाली लड़की है।

अविजित डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए संगीता की सहायता तो करता है, पर उसकी सहायता में द्याभावना है। अपने से कहीं बहुत कम उम्र की संगीता के लिए वह कामांध हो जाता है और किसी भी साधारण आदमी की तरह बदले में वह अपनी क्षुद्र इच्छाओं को पूरा करता है। छली जाने की प्रतिक्रियास्वरूप संगीता बहुत बड़े उद्योगपति से शादी करती है, जो कि बहुत धनवान है, किंतु देखने में बदसूरत है। जब वह अविजित को अपनी शादी का कार्ड देने आती है, तब अपने क्रोध को व्यक्त करने के लिए व्यंग्य करती है – ''लेडी डॉक्टरों से आपका सरोकार ? बच्चे गिरवाने का धंधा तो नहीं करने लगे। अविजित जी दो बातें याद रखिए। चंदे से पढ़ी हुई लड़कियाँ अपने प्रेमी के नाम के आगे भी जी लगाती हैं और शादी भी मालदार सेठों के बेटों से करती हैं।''[12]

दूसरी ओर काजल बैनर्जी और चड्ढ़ा हैं, जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनके चरित्र में देशभक्ति के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं। एक ओर जहाँ अविजित भौतिक

सुख–सुविधाओं के पीछे जीवन मूल्यों को त्याग देता है, वहीं दूसरी और काजल बनर्जी है, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक रूप से स्थापित अपने पति को चुनौती देने का साहस है। चड्ढा जिस मार्ग को चुनता है, मृत्युपर्यन्त उसी रास्ते पर चलते हुए अपनी सत्यनिष्ठा को बनाए रखता है। प्रभा क्रांतिकारियों के ग्रुप में सम्मिलित हो जाती है और वह सब करती है, जो अविजित चाहते हुए भी नहीं कर सका। अविजित का अनुज अनित्य अपने क्रांतिकारी विचारों और आधुनिक सोच के साथ उसकी रूढ़ीवादी और संकीर्ण मानसिकता पर भारी पड़ता है। वह जिप्सी प्रकृति का है। उसका चरित्र उपन्यास की सोच को अभिव्यक्त करता है। उसका महाजनी सभ्यता से पूर्णतः मोहभंग हो चुका है। मानसिक धरातल पर वह सदैव अविजित के साथ रहता है और उसके अपराधबोध को बढ़ाता है। हमेशा साथ रहने वाला अनित्य भी अंत में अविजित को छोड़कर चला जाता है। उपन्यास के अंत में सभी पात्र चले जाते हैं और रह जाते हैं, श्यामा, अविजित, सुधांशु और खोखी। अतीत में निभाई भूमिका से अविजित में इतना ज्यादा अपराधबोध बढ़ जाता है, कि वह डिलीरियम की हालत में पहुँच जाता है। इस यातना में सिर्फ वह है और उसका अपराधबोध, साथ ही उसका भविष्य है – सुधांशु, मानसिक रूप से मंद और तुतलाने वाला।

5. मैं और मैं (1984) :

'मैं और मैं' मृदुला जी का पाँचवा उपन्यास है, जो 1984 में प्रकाशित हुआ। इसमें मृदुला जी ने अहं की तृष्टि में संतोष पाने वाली लेखिका के आर्थिक एवं नैतिक शोषण का जिक्र किया है। एक निम्नवर्गीय लेखक कौशल कुमार अपने अधिकारबोध के कारण असत्य का सहारा लेकर लेखिका का आर्थिक व मानसिक शोषण करता है। 'मैं और मैं' झूठ और और फरेब की फैंटेसी की दुनिया गढ़ता है। आर्थिक अभावों में व्यक्ति कितना गिर जाता है, इसका उल्लेख कौशल कुमार के माध्यम से किया गया है। उपन्यास का कथ्य दोनों लेखकों के अहं की टकराहट है। यह उपन्यास स्त्री–पुरुष की कोमल अनुभूतियों का दस्तावेज नहीं है, अपितु इसमें आर्थिक वैषम्य, वर्गीय संघर्ष, उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय आक्रोश – इन सबको अहंवादी भूमिका और बौद्धिक सहानुभूति के धरातल पर बरबस ढोया गया है। नायिका माधवी के रूप में एक ब्लैकमेल की गई लेखिका की दशा वर्णित है। एक गृहिणी के रूप में 'मैं' घर और परिवार की जिम्मेदारियों का वहन करती है और एक लेखिका के रूप में 'मैं' अपने दायित्वों' का निर्वाह भी करती है। एक लेखिका के रूप में स्त्री अपनी महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति हेतु धूर्त एवं मक्कार पुरुष के जाल में फंसती जाती है तथा आर्थिक और मानसिक रूप से द्वंद्वग्रस्त होती है। इस संघर्ष में ''मैं'' का व्यक्तित्व निखरकर आया है।

उपन्यास की नायिका माधवी एक लेखिका है। लेखिका होने के कारण वह बुद्धि और तर्क के आधार पर मानवीय विभेदों को, वर्ग–वैषम्य को, ऊँच–नीच की भावना को स्वीकार नहीं करना चाहती। इसमें नायिका माधवी का एक अलग ही नारी रूप उभरकर सामने आया है, जो पाठक को भावात्मक और वैचारिक दोनों ही धरातलों पर झिंझोड़ता है। इस उपन्यास में स्त्री–पुरुष संबंधों का रूप केवल प्रेमी–प्रेमिका या पति–पत्नी का नहीं है। यह उपन्यास चित्रित करता है, कि एक कामकाजी महिला, किस प्रकार के पुरुषों को अपने चारों ओर पाती है। माधवी एक लेखिका है और हर प्राणी की तरह आगे बढ़ने की ललक उसमें भी है। हालाँकि उसकी अपनी इच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ ही ऐसे ताने–बाने बुनती हैं, कि वह उनमें फँसती चली जाती है। यही ललक उसे एक छद्म चरित्र कौशल कुमार से मिलाती है, जिसका चित्रण माधवी स्वयं इस प्रकार करती है – ''अब किसी आदमी से यह तो कहा नहीं जा सकता– आप बेपनाह बदसूरत हैं, आपकी सूरत देखकर मैं वितृष्णा से सिहर उठती हूँ।''[13] कौशल कुमार अपनी शतरंज पर माधवी को गोटी बनाकर चलता है और माधवी भी उसकी चाल में आ जाती है। लेखिका ने कौशल कुमार का चित्र पूरी निष्ठा से खींचा है, जो लेखिका के व्यापक अनुभव और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचायक है। दैनिक जीवन के व्यवहार, जिनमें चालाकी धोखेबाजी आदि का भी पुट रहता है, को उपन्यास में बखूबी प्रस्ततु किया गया है। कौशल कुमार हमेशा माधवी से पैसा ऐंठता रहता है। उपन्यास का एक वक्तव्य – ''अवश्य लौटाऊँगा।

सौ रुपये मिलते ही आपका पैसा लौटा दूंगा। इस वक्त हाथ तंग है। ऐसा कीजिए आप मुझे बीस रुपये और दे दीजिए। पैसा मिलते ही इकट्ठा तीस दे जाऊंगा। कौशल ने एक साँस में इस अहंकार के साथ कहा, कि संकुचित माधवी उसकी तरफ आँख उठाकर देखने का साहस न कर सकी, चुपचाप अंदर से बीस रुपये लाकर उसके हाथ पर रख दिये।''[14] धन के अभाव में व्यक्ति किस हद तक निम्न स्तर तक उतर सकता है और किस तरह जीवन से लड़ता हुआ, थक हारकर अपने को पशु–तुल्य बना लेता है। यही 'मैं और मैं' के कथ्य में उभरकर आया है।

यह उपन्यास गरीब के प्रति सिर्फ बौद्धिक सहानुभूति रखने वाले उच्च–मध्यवर्गीय व्यक्तियों के द्याहीन चेहरे को ही सामने लाता है। माधवी घरेलू नौकर हरिचरण को पत्नी की बीमारी में भी एडवांस नहीं देती है, जबकि कौशल कुमार समय–समय पर रुपये ऐंठता रहता है। उत्पादन में सक्रिय भागीदारी करने वाले श्रमिकों के खून पर पलने वाले परजीवी जोंकनुमा लोग और वर्गों में घटित यह फरेब निश्चय ही बुराई है, जहाँ वे एक–दूसरे को ज्यादा से ज्यादा धोखा देकर जीवित रहने की बात सोचते हैं। कौशल का निष्क्रिय स्वाभिमान, अहं इसी प्रक्रिया का परिणाम है, जिसके चरम् सीमा पर पहुँचते ही सारे नैतिक मूल्य व आदर्श ढह कर गिर जाते हैं। महानगरीय जीवन की यह त्रासदी है कि यहाँ के आम आदमी अपने चारों तरफ एक लक्ष्मण रेखा खींचकर, उसी के मध्य जीवन बसर करते हैं और रेखा के बाहर के व्यक्तियों से उनका कोई संबंध नहीं। फलतः उनके परिचय का क्षेत्र और साथ ही मानवतावादी भावनाएँ भी सिमट कर रह गई हैं। मृदुला जी ने इस उपन्यास में दर्शाया है कि किस प्रकार एसिड के कारखाने में काम करने वाले बच्चों की दुर्गति, अपने बेटे की तपेदिक बीमारी में मेहतरानी की आर्थिक विवषता तथा पुस्तक छपवाने के एवज में कौशल, माधवी और राकेश की आर्थिक सहानुभूति प्राप्त करके धीरे–धीरे उनके लिए समस्या बन जाता है।

कौशल कुमार एक प्रभावशाली लेखक है, लेकिन कुरूप चेहरे की तरह उसके मन की भावनाएँ भी कुरूप हैं। वह एक कुंठित व्यक्ति है, मार्क्सवाद और प्रगतिवाद के नाम पर सिद्धांतवादी बातें करता है, लेकिन उसका व्यवहार एक लिजलिजे आदमी की तरह है। वह अपनी रचनाओं पर विमर्श के बहाने धीरे–धीरे माधवी की जिंदगी में घुसपैठ कर लेता है। माधवी के मन में उसकी रचनाओं के प्रति सम्मान है, लेकिन कौशल माधवी के लेखन की प्रशंसा की आड़ लेकर धीरे–धीरे उसकी जिंदगी में मकड़ी की तरह जाल बुनता चला जाता है। पहली बार ऑटो के लिए दस रुपए माँगने से लेकर उसके पति से हजारों रुपए ऐंठने के बाद भी उसकी लपलपाती जीभ काबू में नहीं आती है। रुपए लेकर उसकी सोच पर प्रकाश डालती कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं – ''चौड़ी सड़क पर आकर उसने जेब से दस का नोट निकालकर परखा। एकदम करारा नोट। बेदाग और खूबसूरत उस घर की मालकिन की तरह। उसके होठों ने मुरकी खाई।''[15] कौशल की कुंठाओं के कई कारण हैं– उसके जीवन में उसके अनुसार कुछ भी सुंदर नहीं है। चेचक के दागों से गुदे बीबी के चेहरे से लेकर घर से सटे उस पोखर तक, जिसके किनारे बूचड़खाने के कसाई जानवरों की खाल उतारते हैं। कौशल की मानसिकता यह है कि उसे अपने अस्तित्व के आतंक से वशीभूत माधवी का फलता–फूलता अस्तित्व चाहिए था।

इस उपन्यास में ''मैं और मैं'' माधवी तथा कौशल ही हैं। दोनों का द्वंद्व ही इस उपन्यास की कथा को बुनता चला जाता है। माधवी एवं कौशल दोनों ही लेखक वर्ग से संबंध रखने वाले हैं, लेकिन माधवी अपने पूँजीपति पति के कारण बहुत ही सुख–सुविधा से रहती है, जबकि कौशल की स्थिति उसके बिल्कुल विपरती है। इसलिए उसके मन में अपने से हीनभावना होती है तथा माधवी के प्रति विद्रोही भावना। कौशल ऐसा लेखक है, जो अमीरों से नफरत करता है। जब भी उसे अमीरों के प्रति नफरत दिखाने का मौका मिलता है, तो वह चूकता नहीं है। माधवी को अपने लेखन पर गर्व है, लेकिन कौशल कहता है कि जिस शोषण की कहानी माधवी कहती है, वह अनुभव से नहीं कहती। अनुभवहीन लेखक वास्तविकताओं से बहुत परे हैं। कौशल कहता है – ''तुम नहीं जानती क्योंकि तुम पीड़ा के सूक्ष्म शेड पकड़ सकती हो, उसके आधारभूत स्थूल रंग को नहीं। मैं जानता हूँ स्थूल पीड़ा को। जब बासी रोटी को कच्चे प्याज से खाने के लिए आदमी तरस जाता है, जब घर के भीतर बच्चा जन्म ले रहा

होता है और बाहर मकान की कुर्की हो रही होती है, जब घर का सामान उठाकर बाहर फैंक दिया जाता है और तेज बुखार से कंपकंपाते बच्चे को खुली सड़क के हवाले कर देना पड़ता है।''[16] कौशल के माध्यम से यह व्यक्त किया गया है कि न्याय से वंचित बहुसंख्यक समुदाय अब अपने आस–पास घटित वास्तविकताओं को ज्यादा सजग होकर देख रहा है।

आधुनिक उपन्यास लेखन अधिक आक्रामक, सामाजिक जीवन की विसंगतियों के कारण आक्रोश से भरा हुआ तथा युवा पीढ़ी की जुझारू मानसिकता को तोड़ने वाली सत्ता के विभिन्न चेहरों की पहचान में सजग और सतर्क है। कौशल मन में सोचता है – ''वर्ग चेतना को परिपक्व होने में न जाने कितने दशक लगेंगे। पर जब तक हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठा जा सकता। बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए अपने को तैयार करना पड़ता है और उसके लिए जरूरी है कि छोटी–छोटी मुठभेड़ों में जीत हासिल करके अपना हौसला बढ़ाते रहें। एक–एक सर्वहारा, एक–एक बुर्जुआ को हरा सके, यह भी कोई कम नहीं।''[17] कौशल की वर्ग–विद्वेष से उपजी कुंठा, लेखिका का आभिजात्य रहन–सहन, साहित्य जगत की कटु वास्तविकताएँ, लेखिका की संवेदनशीलता और उसका दुरुपयोग आदि के माध्यम से मृदुला जी ने सामाजिक मोहभंग को जिस नजरिये से देखा है, यह केवल सृजन और कला के अवरोध तक सीमित न होकर पूरे समाज में व्याप्त जड़ता, फरेब और परजीवीपन का परिणाम है। यह उपन्यास लेखक, लेखन और वास्तविक जिदंगी के संबंधों की जाँच पड़ताल करता है। झूठ और सत्य के सापेक्ष पारदर्शी पर्दे के पीछे मायालोक के रहस्यों को दिखाता है।

6. कठगुलाब (1996) :

मृदुला गर्ग के अब तक के उपन्यासों में सबसे सशक्त उपन्यास है। – 'कठगुलाब'। यह उपन्यास नारी के दमन शोषण के साथ–साथ नारी–संघर्ष एवं चेतना को भी दर्शाता है। मृदुला जी द्वारा सन् 1996 में रचित उपन्यास 'कठगुलाब' उन स्त्रियों की कथा है, जो क्रुरताओं, कड़वाहटों, मानसिक तनावों को झेलने के बाद बाहर से तो कठगुलाब की तरह सख्त और भूरी दिखाई दे रही हैं, परंतु अन्दर से वे अब भी हार्दिकता और आस्था के आधारभूत गुणों के कारण कोमल, नरम हैं, साथ ही आर्थिक शोषण व उसके फलस्वरूप स्त्री की प्रतिक्रिया, आत्मनिर्भररता तथा पुरुष सत्ता के बराबर पहुँचने की होड़ करती हुई दिखाई दे रही हैं। यह उपन्यास स्त्रियों को आत्मनिर्भरता और आत्माभिमान से दीप्त कररने की प्रेरणा देता है। यह नारी के दमन–शोषण के साथ–साथ नारी के संघर्ष व चेतना को अभिव्यक्त करता है।

मृदुला गर्ग कहती हैं कि पुरुष अनादिकाल से प्रकृति का अनवरत दोहन और स्त्री का मानसिक शोषण करता आया है, जिसके चलते आज धरती और स्त्री दोनों बंजर हो गई हैं। दुलार और स्नेहिल स्पर्श से दोनों लहलहा सकती हैं। नारी को ऊसर करती जा रही सामाजिक व्यवस्था को दृष्टिगत करते हुए ही इन्होंने 'कठगुलाब' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास की रचना की। यह इनके अब तक के उपन्यासों में सबसे सशक्त उपन्यास है, जो पाँच खंडों में विभाजित है – स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा व विपिन। इन पाँच पात्र रूपी मनकों को कथा रूपी माला में गूंथकर 'कठगुलाब' की रचना की गई है। ये सभी पात्र स्वभाव व प्रकृति में एक–दूसरे से भिन्न हैं। जीवन को अपने–अपने नजरिए से देखते और व्याख्यायित करते हैं। उदाहरण के लिए – 'मेरा नाम स्मिता है। कोई बीस साल बाद मैं अपने घर लौटी हूँ। वही मिट्टी से भरा घर'' तथा ''मेरा नाम मारियान है। स्मिता ने बताया होगा। मैं उसके साथ 'रिलीज फॉर एब्यूज्ड वुमेन रॉ' में काम किया करती थी।'' इस उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का निर्वाह हुआ है। आत्मकथात्मक शैलीवाचक 'स्मिता' अपने जीवन की कहानी एक जोड़ी चश्में में कैद किए हुए है। यही उसकी जिन्दगी का आधार है। स्मिता कहती है, कि ''देखा आपने, मेरी जिन्दगी का आधार था, एक जोड़ी चश्मा। क्या आधुनिक सौंदर्य बोध है। आज मैं अपने जीवन के इस विद्रूप पर हँस सकती हूँ। बहुत मेहनत करके हँसना सीखा है, मैंने। वही आज मेरी एकमात्र पूंजी है।''[18] 'कठगुलाब' उपन्यास के हर अध्याय में पात्र अपनी जुबान से बोलता है। स्मिता की तरह पढ़ी–लिखी या स्वयं चुनकर विवाह करने वाली स्त्री, मारियान जैसी प्रबुद्ध, कर्मठ, स्वावलंबी

विदेशी महिला, नर्मदा जैसी बड़े–बड़े सिद्धांतों से नितांत दूर देशी औरत और असीमा जैसी घोर फेमिनिस्ट सभी उपन्यास में हैं। न सिर्फ ये पात्र, बल्कि मारियान द्वारा सृजित रूथ, रॉकजान आदि सभी नारी पात्र सताए गए हैं। इन सभी का जीवन त्रासद है, और यही त्रासदी उन्हें एक दूसरे से जोड़ती भी है। इन सभी पात्रों में घोर पीड़ा है – यह पीड़ा सृजन की है। माँ बनने को सभी व्याकुल हैं, लेकिन त्रासद स्थिति यह है कि कोई भी माँ नहीं बन पाती। यहाँ तक की विपिन जैसा पुरुष भी इसी बंजर अनुभव का शिकार है। नीरजा की किराए की कोख से भी विपिन पिता नहीं बन पाता और तब ही उसे यह अहसास होता है, कि स्त्री केवल कोख या देह–भर नहीं है, बल्कि इससे आगे जाकर और भी बहुत कुछ है। स्त्री पर पुरुष द्वारा होने वाला आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण और उनके फलस्वरूप स्त्री की प्रतिक्रिया, आत्मनिर्भरता व पुरुष सत्ता के बराबर पहुँचने की होड़ ही उपन्यास का मूल कथ्य है।

'कठगुलाब' उपन्यास की नारी पाश्चात्य नारी की भाँति पितृसत्तात्मक सत्ता के विरुद्ध स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करती नजर आती है। इस उपन्यास में मृदुला जी ने चार नारी पात्रों के माध्यम से नारी के विविध स्वरूपों को चित्रित करते हुए, उसके जीवन संघर्ष तथा उसकी सामाजिक और मानसिक पीड़ा को व्यक्त किया है। इस उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि क्या स्त्री को संतान को जन्म देने हेतु पुरुष की इच्छा पर निर्भर रहना होगा ? लेखिका ने तीन तरह की औरतों की चर्चा की है – प्रथम – वे एब्यूल्ड विमेन, जो लाँछित, प्रताड़ित, बलात्कृत और पिटी औरतें हैं। इन औरतों की अपार सहनशक्ति होती है। द्वितीय– वे औरतें जो शारीरिक शोषण का शिकार हैं, जो 'रॉ' नामक संस्था को करूणा और संवेदना के साथ मदद करना चाहती हैं। तीसरी– वे स्त्रियाँ हैं, जिनमें करूणा कम और दंभ ज्यादा है, वे कभी दलित और शोषित नहीं रहीं, उनके साथी पुरुष हमेशा उनके दबदबे से आक्रान्त रहे, फिर भी वे पुरुष मात्र को हिकारत की नजर से देखती हैं। इस उपन्यास की चारों नायिकाएँ समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

'कठगुलाब' स्त्री–पुरुष संबंधों के ऊसर होते चले जाने की कथा है। यह स्त्री–पुरुष के बीच की खाई को बढ़ाता नहीं हैं, बल्कि साझी दुनिया का स्वप्न बुनता है, कि नारी और पुरुष परस्पर पोषक हों, द्वंद्व के मोहरे नहीं। चाहे स्त्री हो या पुरुष सृजन की चाह सभी में है। सृजन की चाहत का पूरा नहीं हो पाना अत्यधिक पीड़ादायक होता है, जिसमें उपन्यास के पाँचों पात्र पूर्णतः डूबे हुए हैं। यह उपन्यास व्यक्त करता है, कि असल में औरत का व्यक्ति हो जाना, संवेदनाओं से समृद्ध होना, स्वाभिमान से जीना ही 'फेमिनिज्म' है। मारियान, नमिता की तरह मजबूर लोगों से प्रतिशोध नहीं लेती है, बल्कि माँ न बन पाने की पीड़ा को शब्द सृजन से कम कर लेती है और अपने जीवन को सार्थक करती है। उपन्यास में सबसे ऊँचा और प्रभावशाली व्यक्तित्व है – दर्जिन बीबी का। वह एक स्वाभिमानी व आत्मसम्मान से युक्त प्रभावशाली व्यक्तित्व की धनी नारी है। उसे पति के लिए 'देह' बन जाना मंजूर नहीं था और न ही चरित्रहीन पति के टुकड़ों पर पलना स्वीकार्य था। अपनी मेहनत से अपने बच्चों का पालन–पोषण करती है। उसे अबला बनकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं है। वह असीमा की भाँति सिद्धान्त नहीं बधारती, बल्कि व्यवहार में लाकर एक मिसाल कायम करती है। विवाह बंधन से उसका भी विश्वास उठ गया है, तभी तो वह असीमा को बगैर विवाह किए विपिन के साथ रहने की इजाजत दे देती है। स्मिता का व्यक्तित्व भी तभी निखर पाता है, जब वह सारी हीन भावना से मुक्त हो जाती है।

'कठगुलाब' उपन्यास में मुख्य रूप से दो बिन्दु समाहित हैं – एक, स्त्री की मातृत्व के प्रति अदम्य लालसा। दूसरा, इस उपन्यास की स्त्रियों का जीवन के प्रति परिपक्व, संतुलित एवं संवेदनशील दृष्टिकोण। इस उपन्यास की नारी मर्द नहीं सृजक होना चाहती है। सजृन के लिए ही अर्थात् बच्चे के लिए ही वह पुरुष की पति या प्रेमी के रूप में खोज करती है। इस एक मोह को छोड़ दे तो पाएंगे कि जिन्दगी की असल नेमत है, औरत की दोस्ती। वह प्रत्येक जन्म में औरत ही रहना चाहती है – ''हाँ हम औरत ही ठीक हैं। इस जन्म में, अगले जन्म में, पूर्व–पश्चिम, किसी देशकाल में, हम औरत ही रहना चाहती हैं। दर्द और पीड़ा से घबराती तो

मर्द क्यों, मशीन न होना चाहती।''[19] सहचर पुरुष के अमानवीय व्यवहार ने भले ही स्त्री को कदम–कदम पर छला है, लेकिन फिर भी वे अगले जन्म में मर्द नहीं बनना चाहती हैं। इस उपन्यास की स्त्रियाँ आँसुओं से चीत्कारों में प्रतिशोध का कतराभर बहाने को तैयार नहीं हैं, वरन् अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखना चाहती हैं, पीड़ा की राह से गुजरकर ही वे अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहती हैं, क्योंकि पीड़ा के बिना कोई सृजन संभव नहीं है। स्मिता हिन्दुस्तान लौटकर प्रकृत्ति की गोद में पीड़ा की एक–एक चोट को प्यार में बदलकर प्रतिशोध को रचनात्मक दिशा देना चाहती है, तो मारियान अपने उपन्यासों में सृजन कर कहती है, कि यही मेरा प्रतिशोध होगा और यही मेरी क्षमा। 'कठगुलाब' की नारी तमाम क्रूरताओं, मानसिक तनावों और नफरत के उन्मादों को झेलने के बाद बाहर से कठगुलाब की तरह सख्त और भूरी अवश्य हो गई है, परंतु अंदर से वह गुलाब की तरह अब भी हार्दिकता और आस्था के आधारभूत गुणों के कारण कोमल, नरम और सदाबहार है। वह प्रकृत्ति की तरह हर आघात को धैर्यपूर्वक सहकर खामोशी से निष्ठापूर्वक अपना सफर तय करने वाली है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में समसामयिक नारी के चिंतन और व्यवहार में आए परिवर्तन को चित्रित किया है। उपन्यास की नारी, नारी–स्वतंत्रता की पक्षधर है। स्त्री का संवेदनशील और जुझारू रूप व्यक्त हुआ है। उपन्यास की नारी का व्यक्तित्व परिस्थितियों के कारण विशिष्ट रूप ग्रहण करता है। नारी का जीवन परिस्थितियों के कारण कितना जटिल व कष्टमय बन जाता है, इसका चित्रण स्मिता के माध्यम से किया गया है। दाम्पत्य व दाम्पत्येतर संबंध, नारी जीवन की परिवर्तित स्थिति, पति–पत्नी के बनते बिगड़ते संबंध, नारी का दमन–शोषण, नारी में व्यक्ति स्वातंत्र्य की छटपटाहट व अपने अस्तित्व के प्रति चेतना आदि की अभिव्यक्ति हुई है। अपने हक के लिए लड़ने वाली व अन्याय के प्रति आवाज उठाने वाली ये नारियाँ स्वाभिमानी हैं। उपन्यास की ये पंक्तियाँ – ''पेड़ सूखा पर सिकुड़ा नहीं। सूखी टहनियाँ ताने आसमान को चुनौती देता रहा। वृक्ष ने खुद अपने पुष्पों का आविष्कार कर लिया। शाखाओं को घुमाया–लचकाया और गुलाब का आकार दे दिया। हर साख पर हजार–हजार गुलाब उग आये। .... बहुत शक्ति है उसके पास। दुःख की निस्सीम शक्ति। वह आजाद है।''[20] नारी की अदम्य शक्ति को व्यक्त करता है। यह उसका प्रायश्चित है – दूसरी आधी दुनिया के प्रतिनिधि के रूप में, और यही उसकी साधना है। श्रद्धा व सहयोग के द्वारा ही नारी जाति को उत्थान की ओर ले जाया जा सकता है।

7. मिलजुल मन (2009) :

समकालीन हिंदी उपन्यास लेखिकाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली वरिष्ठ उपन्यासकार मृदला गर्ग का नवीनतम उपन्यास है– ' मिलजुल मन'। आकर्षक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व की धनी मृदुला गर्ग ने सन् 2009 में 'मिलजुल मन' की रचना करके हिंदी उपन्यास जगत को और अधिक समृद्ध किया है। सन् 2013 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त उपन्यास 'मिलजुल मन' मृदुला जी के लेखन की तरोताजगी व उनकी जिंदादिली की एक मिसाल है। 'मिलजुल मन' का कथ्य गुल व मोगरा नामक दो बहनों को लेकर सृजित किया गया है। आत्मकथात्मक व पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया, उनका यह उपन्यास स्वतंत्रता–पश्चात् की बदलती हुई राजनीतिक, सामाजिक व समसामयिक अर्थगत नीति का, व्यक्ति की बदलती हुई सोच का तथा समय के साथ परिवर्तित होते हुए जीवन–मूल्यों का परत–दर–परत उद्घाटन करता है। एक ओर यह लेखिका के बचपन के विविध परिदृश्यों, उस समय की सामाजिक–साँस कृतिक दशाओं से परिचित कराता है, तो दूसरी ओर मध्यम वर्ग की जिन्दगी और सामाजिक–पारिवारिक स्तर पर आने वाले बदलाव तथा उसी के समानान्तर स्वतंत्र भारत के मूल्यों की गहन पड़ताल विभिन्न पात्रों के माध्यम से करता है।

इस उपन्यास में लेखिका अनेक विषयों को लेकर चली हैं। यहाँ पर न तो सिद्धान्त छूट रहे हैं पूँजीवाद के न साम्यवाद के। आजादी के तुरंत बाद के होने वाले घटनाचक्रों का उल्लेख करते हुए एक नवीन वर्ग की परिकल्पना की गई है, जिसकी आँखों में नवीन भारत के

सपने हैं। उपन्यास में तीन कथावस्तुएँ घुल–मिलकर एक साथ चलती हैं – प्रथमः गुल तथा मोगरा, दो बहनों की कथा मुख्य है, जिसमें गुलमोहर, मृदुला गर्ग की बहन मंजुल भगत व मोगरा, स्वयं मृदुला गर्ग हैं। द्वितीय : स्वातंत्र्योत्तर भारत के उच्च वर्ग से संबंधित है तथा तृतीय : कथा में समकालीन राजनीतिक–आर्थिक पहलुओं को चित्रित किया गया है। उपन्यास में यदि एक ओर लेखिका के बचपन के विविध परिदृश्यों व उस समय की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थितियों से परिचित करवाया गया है, तो दूसरी ओर स्वतंत्रता–पश्चात् की भारतीय राजनीतिक व सामाजिक स्थिति को भी चित्रित किया गया है। पचास के दशक के मध्यम वर्ग की जिंदगी और पारिवारिक–सामाजिक स्तर पर आने वाले बदलाव और उसी के समानान्तर स्वतंत्र भारत के मूल्यों की गहन अभिव्यक्ति गुलमोहर, मोगरा, कनकलता, बैजनाथ, डॉ. कर्ण सिंह, मामाजी, जुग्गी चाचा व दादाजी के माध्यम से हुई है। इन सभी पात्रों का अलग–अलग वजूद होते हुए भी कहीं न कहीं आपस में मिले हुए हैं। इनके मन रूपी मनके मिलजुलकर उपन्यास की कथा–संरचना बुनते हैं।

देश की वर्तमान स्थिति जैसे–राजनीतिक अस्थिरता, अराजकता, भ्रष्टाचार के बीज तो आजादी से पहले ही बोए जा चुके थे। जिस ओर देखो अराजकता व भ्रष्टाचार के कारण निराशा दिखाई दे रही है तथा सत्ता की लड़ाई के दो पाटों के बीच जनता पिस रही है। इसी भावबोध की अभिव्यक्ति 'मिलजुल मन' में हुई है। 'अनित्य' की ही भाँति द्वंद्वात्मक स्थितियों का वृहत भावबोध इस उपन्यास में है। लेखिका का यह कथन ''उनके साथ दिक्कत थी तो यह कि ऊपर से पुख्ता नजर आते पर भीतर–भीतर दुविधा में हिचकोले खा रहे होते। दुविधा में रहना, आप जानो, जेहनी आदमी की पहली पहचान है।''[21] तथा ''दुविधा कई मुद्दों को लेकर थी। पूँजीवाद और साम्यवाद के उसूलों के बीच, जिनमें से एक को भी हम छोड़ने को तैयार न हुए। सोवियत संघ और नाटो मुल्कों में दोस्ती के बीच, जिन्हें हमने सम पर बनाए रखने का रास्ता चुना।''[22] कथन उपन्यास में द्वंद्वात्मक स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् निर्मित हुए नवीन मध्यवर्ग की कथा को कहता हुआ यह उपन्यास अपने नवनिर्मित सपनों के द्वारा भारत को पुनः विश्वगुरु के रूप में देखना चाहता है। स्वतंत्र भारत में उच्च वर्ग की परिवर्तित होती हुई मानसिकता को चित्रित करने के लिए राजनीतिगत, अर्थगत और समाजगत परिवर्तनों का चित्रण मुख्य रहा है। राष्ट्र के सभी स्तरों पर उभरी भ्रष्ट आर्थिक व्यवस्था, अनियमित सामाजिक व्यवस्था आदि को लेते हुए कथानक बारंबार गुल और मोगरा पर ही आ जाता है। गुल के चरिरत्र का निर्माण करते हुए लेखिका ने उसे तेज और स्वतंत्र विचारों वाली नारी के रूप में अभिव्यक्ति दी है। ''गुल के उन पक्षों पर भी एक संपूर्ण नजर है, जो एक लड़की, एक मनुष्य, एक प्रेमिका, एक पत्नी और एक कथाकार के अलग–अलग किरदारों में रमे हैं। उपन्यास के केंद में जो दर्द की अभिव्यक्ति है, वह गुलमोहर के लिए ही है। जीवन और साहित्य की समानांतर यात्रा एक–दूसरे में गुंथकर, एक दूसरे की वजह बन–बनकर चली है। पाँचवे दशक की दिल्ली को केंद ने रखकर गुल एवं मोगरा के चरित्र के विविध रूपों को उभारा है। दोनों बहनों के बचपन व कौमार्य के साथ–साथ वैवाहिक जीवन के माध्यम से भारतीय मध्यमवर्गीय महिला की समाज में स्थिति का चित्रण किया गया है। पिता के घर से पति के घर तक में स्त्री के जीवन के सफर का सफल चित्रण किया गया है। ऊपर से खुश दिखने वाली गुल अंदर से त्रासद जिंदगी जी रही है। मोगरा के जीवन में भी कोई स्वच्छंदता दिखाई नहीं दे रही है। इन दोनों बहनों के माध्यम से स्त्री की व्यथा को स्वतंत्र रूप से चित्रित किया गया है। द्वंद्व और विरोधाभास ही उसके चरित्र को अधिक वास्तविक बनाता है। जिंदगी हमेशा सीधी रेखा में नहीं चलती और न ही कोई भावना स्थायी होती है। सत्य तो यही है कि जीवन की तमाम विसंगतियों के बावजूद दोनों बहने अपने व्यक्तित्व का एक निजी क्षेत्र सुरक्षित रखती है, वह है उनकी सृजनात्मकता अर्थात लेखन।

अतीत और वर्तमान के घटनाचक्र के बीच घुसपैठ करना इस उपन्यास की विशेषता है। लेखिका ने इसे आपबीती और जगबीती दोनों माना है। यह आत्मकथात्मक व पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया उपन्यास है, परंतु आत्मकथा नहीं है। मृदुला जी ने एक नजदीकी रिश्ते और

सशक्त कथाकार के बीच किस्सागोई व संवेदनशीलता से उपन्यास की कथावस्तु को गढ़ा व रचा है। यह एक अलग ही ढंग से लिखा गया उपन्यास है, जो सामान्य पाठक वर्ग के लिए समझने व कथा से जुड़े रहने की दृष्टि से कुछ जटिल है। उर्दू शब्दों की अधिकता व अतीत–वर्तमान के बीच की घुसपैठ ने उपन्यास में कथा की रोचकता में बाधा उत्पन्न की है। उपन्यास की कथावस्तु वर्तमान को अभिव्यक्त करते हुए अतीत में तथा अतीत को अभिव्यक्त करते हुए वर्तमान में पहुँच जाती है, जो तारतम्यता में बाधा उत्पन्न करती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि उर्दू शब्दों की बहुतायतता के होने के बावजूद भी यह एक विशिष्ट उपन्यास है। यह वास्तव में वर्तमान दौर के हिंदी साहित्य में बहुत कुछ नया जोड़ता है। जीवन के विविध क्षेत्रों से अनुभवों को बटोरते हुए आजादी के मोहभंग से उत्पन्न राजनीतिक व आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालने वाला उपन्यास है। इसके माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। दो स्त्री पात्रों की मुख्य कथा के साथ ही वर्तमान स्त्री जीवन की विसंगतियों और समस्याओं तथा सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। 'मिलजुल मन' आंतरिक जीवन में 'औरत–मर्द में भेद न करके दोनों को अभिव्यंजित करता है।

उपर्युक्त औपन्यासिक कृतियों के विवेचन से स्पष्ट होता है, कि मृदुला गर्ग का नाम एक साहसी लेखिका के रूप में उभरा है। उनके उपन्यासों की कथा प्रायः स्त्री को विभिन्न परिवेशों और परिस्थितियों में रखकर घटित होती है। उनकी नारी आधुनिक नारी है, जो कि भीतर से मुक्त होने व अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए छटपटाती रहती है। इनकी आधुनिक नारी अपनी स्वतंत्रता स्वयं अर्जित करके सामाजिक प्रतिबंधों को तोड़ने में संलग्न है। इनके उपन्यासों में एक और मध्यमवर्गीय नारी अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुषप्रधान समाज द्वारा हो रहे अवमूल्यन से टकरा रही है, वहीं दूसरी ओर समाज में हो रहे अत्याचार, शोषण, अन्याय आदि का खुला प्रतिवाद करती है। वह अपने ऊपर होने वाले अन्याय व अत्याचार के प्रति सचेत व सजग है। अपने उपन्यासों के माध्यम से मृदुला जी ने तात्कालीन समाज के यथार्थ को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है।

(ग) प्रेरक पृष्ठभूमि : चिंतन – अनुचिंतन :

मृदुला गर्ग ने साहित्य सृजन 1970 से अहिंदी प्रदेश के एक छोटे से कस्बे बागलकोट (कर्नाटक) से प्रारम्भ किया। इनके साहित्य का सृजन प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष शक्तियों द्वारा शुरू हुआ। जन्म से अर्जित संस्कार, परिवार का संवेदनशील वातावरण, समाज, देश व संसार में घटित होने वाली घटनाएँ, गहन अध्ययन व चिंतन आदि प्रेरक शक्तियों ने इनके साहित्य को समृद्धि प्रदान की। इनकी रचनात्मक जिंदगी को सँवारने में इनके माता–पिता का बड़ा योगदान रहा है। आत्मा के भीतर झाँकने की क्षमता इनमें अपने पिता की बौद्धिकता के कारण ही पैदा हुई। पिता का स्नेह व प्रोत्साहन इतना बढ़िया था, कि आप बारह साल की उम्र में ही शेक्सपियर, दॉस्ताएवस्की, तुर्गनेव से रू–ब–रू हो गई। साहित्य पठन से इनका लगाव बचपन से ही था। इनका स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण ये अक्सर बिस्तर पर रहती थीं और साहित्य ही इनका एकमात्र आश्रय था। बचपन से ही साहित्याध्ययन करने के कारण वह इनके खून में समा गया और इनके दिलोदिमाग का हिस्सा बन गया। आप कहती हैं कि, ''साहित्य पठन से मेरा लंबा लगाव रहा था, बचपन से। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, अक्सर बिस्तर पर रहती थी। साहित्य ही मेरा एकमात्र आसरा था। वह मेरे खून में समा गया, मेरे दिलोदिमाग का हिस्सा बन गया। चूंकि उसने मेरे जीवन में बहुत जल्द प्रवेश कर लिया था, इसलिए बड़े नामों से मुझे डर नहीं लगता था। मेरे लिए दॉस्ताएवस्की भी लेखक थे, कामू भी, ऑस्कर वाइल्ड और जैनेन्द्र भी। कामू की 'अजनबी' मैंने, बिना यह जाने पढ़ी थी, कि वह कामू ने लिखी थी, क्योंकि उसका कवर पन्ना फटा हुआ था। मैंने उसे अन्य किसी किताब की तरह पढ़ डाला था। वैसे भी मेरे परिवार में सभी अंग्रेजी, बांग्ला, उर्दू, रूसी साहित्य के अनुवाद खूब पढ़ा करते थे। जब मैं दिल्ली छोड़कर बिहार के छोटे कस्बे में रहने गई तो मुझे तब तक का पढ़ा–पढ़ाया

अर्थशास्त्र बहुत 'फिक्शनल' लगा। उसका वहाँ कोई साक्ष्य नहीं था। तब मैंने सोचा, अगर फिक्शन में ही जीना है, तो ईमानदार फिक्शन क्यों न लिखा जाए।''[24]

जब मृदुला जी दिल्ली में 'अर्थशास्त्र' पढ़ा रही थी, तभी इनकी शादी हो गई और ये बिहार के छोटे–से कस्बे, डालमियानगर चली गईं। वहाँ कोई कॉलेज न होने के कारण, इनका पढ़ाने का कार्य छूट गया तथा न कोई साथी ही था, जिससे वैचारिक आदान–प्रदान कर पातीं। संवाद, वादविवाद के साधन छूट जाना भी इनके लिखने का एक कारण बना। इसके अतिरिक्त इनके व्यक्तिगत कारण भी थे, जिनसे ये लिखने के लिए प्रेरित हुईं। आप स्वयं कहती हैं, कि– 'जब पहली बार माँ बनी तो जाना कि सुख और आह्लाद होता क्या है। ऐसा कुछ जिसमें जिस्म और दिलोदिमाग एक साथ हिस्सेदारी करें। वही रचना को जन्म देता है। फिर भी शिशु को रचने और उपन्यास को रचने में बहुत बड़ा अन्तर है। एक में शरीर की भागीदारी ज्यादा होती है, दूसरे में दिलोदिमाग और स्मृत्ति की भागीदारी ज्यादा होती है। विभिन्न लोगों के अनुभव अलग हो सकते हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, कह सकती हूँ, मैंने जो रचा, अपने गर्भ की गहराई से रचा।''[25] मृदुला जी शुरू से ही बहुत कम बोलती थीं। इन्होंने बौदधिकता और वैचारिकता को अधिक महत्त्व दिया। इन्होंने अपनी भावनाओं को अपने नियंत्रण में रखा। अपने पहले बच्चे के जन्म के पश्चात् इनके भीतर जड़ भावात्मक लावा बाहर आ गया और इन्होंने अपनी भावनाओं पर शर्मिंदा होना छोड़ दिया, जो रचनात्मकता के लिए आवश्यक है। आप लेखन में दो अनुभूतियाँ प्रमुख मानते हुए कहती हैं, कि– ''वास्तव में मेरे लेखन में दो अनुभूतियाँ प्रमुख हैं। पहली, मन और षरीर के बीच का अंतर और दूसरी, देश की स्वतंत्रता, जो हमें एक विद्रूप की तरह मिली थी। स्वतंत्रता का आभास दिलाने वाली धोखेबाजी थी वह, वास्तव में स्वतंत्रता नहीं थी, सत्ता–हस्तांतरण भर था। वह क्यों हुआ, और उसने हम सबको कैसे प्रभावित किया, ये प्रश्न मेरे लेखन में उभरकर आए। दो धाराएँ थीं, जिन्होंने मेरे लेखन को छुआ और लोगों को नाराज किया।''[26]

मृदुला जी उन लोगों में से हैं, जो देश और विश्व की समस्याओं पर चिंतन करते हैं। उनको गहराई से महसूस करके ही आप लिख पाती हैं। इन्होंने अपने चारों तरफ जो भी बनते–गढ़ते देखा, वही अपनी रचनाओं में उकेर दिया। जब आजादी मिली तो इनकी उम्र महज नौ वर्ष थी, पर आजादी मिलने से पहले और उसके बाद वर्षों तक इनके घर में भगतसिंह के क्रांतिकारी आंदोलन और गांधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के बारे में होने वाली चर्चा ने इनकी मानसिकता पर, इनके निजी अनुभवों से भी अधिक प्रभाव डाला। बचपन के यही भावबोध इनके 'अनित्य' उपन्यास में दिखाई देते हैं। इतिहास का घटनाक्रम, राजनीतिक सोच और सामाजिक बोध इनके पात्रों के चेतना–प्रवाह के प्रमुख अंग बन गए। जीवन में पढ़े साहित्य व जीवन में आए अनेक अनुभवों से मिलकर इनकी जीवन–दृष्टि अर्थात विश्वदृष्टि बनी है। इनके उत्कट अनुभव ही रचना का आधार बने। इनके जीवन की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएँ रही हैं– देश की आजादी (1947), आपातकाल की घोषणा (1975), भौपाल गैस कांड (1984) और सोवियत राष्ट्र संघ का विघटन (1991) आदि। इन घटनाओं ने इनके चिंतन और भावबोध को प्रभावित किया, जिसका प्रभाव इनके साहित्य चिंतन पर पड़ा।

साहित्यकार के सृजन का आधार उसके अनुभव व परिवेश होता है। प्रेरक पृष्ठभूमि के रूप में मृदुला जी के अनुसार अनुभव को समृद्ध बनाने के लिए स्मृति, संवेदनशक्ति और इच्छा आदि ही कार्य करती हैं। विगत में हुए अनुभवों की स्मृति में नये अनुभवों को मिलाना अर्थात उनका परिमार्जन व परिशोधन करना तथा कल्पना द्वारा समृद्ध अनुभव व पूर्वसंचित जीवनदृष्टि की परस्पर प्रतिक्रिया से मन में एक नये संसार की संरचना करना ही साहित्यिक कृति को जन्म देती है। इनके जीवन के अनुभव ही साहित्यकार बनने का मूल कारण हैं। साहित्यकार की कृति के जन्म संबंधी पीड़ा बिल्कुल वैयक्तिक होती है जिसमें उसके अनुभव व्यक्त होते हैं। इन्होंने लिखा है – ''जीवन में जो कुछ घटता है, जो गहरे छूता है, व्यथित करता है, जो नाकाबिले बर्दाश्त होता है – सभी तो मन के उन गुप्त कोनों मे छिपे होते हैं। जहाँ मेरे परिचित, दोस्त, सगे–संबंधी झाँककर नहीं देख सकते। सब कुछ बिल्कुल अकेले

झेलते चली जाती हूँ। फोड़ों की तरह यह अनुभव दुखते–टीसते हैं। धीरे–धीरे पकते हैं और आखिर एक दिन फूट ही जाते हैं – कहानी, उपन्यास के रूप में। जो कुछ सोचती हूँ, महसूस करती हूँ, जो व्यवस्था मुझमें वितृष्णा जगाती है, अन्याय जो क्रोध का उफान लाता है, वही तो इन कहानियों और उपन्यासों का कथ्य है।''[27]

अतः प्रारंभ से ही लेखन को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम मानने वाली रचनाकार मृदुला गर्ग के अध्ययन और अनुभव के समन्वय से ही साहित्य–दृष्टि निर्मित हुई है। इन्होंने किसी विशेष विचारधारा से प्रेरित होकर नहीं लिखा, बल्कि वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवनदृष्टि के आधार पर ही लिखा है। इनकी रचनाओं में इनका सामाजिक परिवेश प्रतिबिंबित होता है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला गर्ग का जन्म 25 अक्टूबर 1938 को कलकत्ता के एक संभ्रांत, उदारचेता और सम्पन्न परिवार में हुआ। इनके पिता श्री विरेन्द्र प्रसाद जैन पेशे से मैनेजर थे और माता रविकांता जैन गृहिणी थी। मृदुला जी पाँच बहनों व एक भाई में से दूसरे नम्बर की संतान हैं। मृदुला जी जब तीन साल की थीं, तभी इनके पिता का तबादला कलकत्ता से दिल्ली हो गया। तदुपरांत लेखिका की शिक्षा–दीक्षा दिल्ली में ही पूर्ण हुई। बचपन में ही मृदुला जी ने हिंदी व अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में मौलिक व अनूदित रचनाएँ पढ़ीं। यह एकांतप्रिय और साहित्य पढ़ने में काफी रुचि रखती थीं। कई महान लेखकों की रचनाएँ उन्हें जुबानी याद थीं। इसका परिणाम यह निकला की साहित्य उनके भीतर समा गया और मन में निहित साहित्यकारों का डर भी समाप्त हो गया। 'थ्रू द लुकिंग ग्लास' नामक कहानी बचपन में पढ़ी तो उन्हें अहसास हुआ 'दौड़ोगे नहीं तो ठौर पर खड़े नहीं रह पाओगे'। एम.ए. अर्थशास्त्र से करते वक्त एन.राज जी की बात 'तेज' नहीं दौड़ोगे तो पीछे धकेल दिये जाओगे' उनके हृदय पर असर कर गई। 14 वर्ष की आयु तक ही इन्होंने लगभग सभी रूसी लेखक जिनमें 'दोस्तोवस्की' व 'तुर्गनेव' भी शामिल थे, पढ़ लिए थे।

मृदुला जी मेधावी थीं। इन्होंने अर्थशास्त्र की बी.ए. ऑनर्स परीक्षा में विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त किया और देहली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में एम.ए. की परीक्षा में योग्यता छात्रवृत्ति प्राप्त की। मृदुला जी ने 1960 से लेकर 1963 तक के तीन वर्षों तक दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज और जानकी देवी कॉलेज में प्राध्यापिका के रूप में अध्यापन कार्य किया। मृदुला जी का विवाह 1963 में आनन्दप्रकाश गर्ग के साथ हुआ। विवाह से पूर्व ये 1960 से 1963 तक प्राध्यापिका के रूप में कार्य करती थीं, किंतु विवाह के पश्चात् नौकरी छोड़ दी।

मृदुला जी ने यद्यपि नौकरी न की हो, परंतु गैर व्यावसायिक तौर पर नाटक में अभिनय करके कई मुसीबत के मारे लोगों के लिए धन की सहायता की थी। नाटकों में अभिनय ये शादी के बाद भी करती रहीं तथा डालमिया नगर में अकाल पड़ने पर परमार्थ के लिए नाटकों के मंचन द्वारा पर्याप्त धन संचित किया। कर्नाटक में इन्होंने एक स्कूल भी खोला जिसे बाद में सरकारी मान्यता भी प्राप्त हुई। अपने बच्चों को भी मृदुला जी ने उसी साधारण स्कूल में पढ़ाया।

इन्होंने इतना अधिक अध्ययन किया कि इनकी अध्ययन सीमा में आने वाले दो–चार दार्शनिकों अथवा विद्वानों के नामों की परिगणना करना दुष्कर होगा, क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित न होकर इन्होंने अपने समग्र अध्ययन से ही दिशा–दृष्टि प्राप्त की। अन्याय के खिलाफ विद्रोह करने की प्रवृत्ति इनमें सदैव हिचकौले खाती रहती थी। इसी आक्रोश का जीता जागता नमूना हम इनकी साहित्यिक रचनाओं में भी देख सकते हैं। मृदुला जी न समाजसेविका हैं, न चुनाव लड़ने वाली महिला, फिर भी ये समाज की व्यथा से खुद दुखी हो जाती हैं। शुरू से ही मृदुला जी का स्वभाव समाजिक अन्याय को सहन करने के पक्ष में नहीं रही हैं। बागलकोट में रहते समय में भी बच्चों के लिए स्कूल खोला और उस जमीन में शिरीष,

बबूल, कीकर, झाऊ, पीपल के पेड़ लगवाए। लोग वहाँ आते, बैठते, बतियाते और अपनी समस्याओं पर विचार करते। आठ साल तक वहाँ के टी.बी. के रोगियों में टी.बी. की दवाई मुफ्त में बाँटी। बहुत महंगे दाम पर मिलने वाली टी.बी. की दवाई को लेखिका ने मुफ्त में बाँटकर अपनी मानवीयता का परिचय दिया। रचनाधर्मिता के साथ समाजधर्मिता भी इनके कण–कण में बसी है।

मृदुला जी के प्रिय साहित्य व साहित्यकार निम्नलिखित हैं :–भारतीय साहित्य और विश्वसाहित्य के लेखक – 14 वर्ष की उम्र तक शरतचंद्र और ऑस्कर वाइल्ड तथा 14 वर्ष के बाद दोस्तोवयस्की और चेखब। इनके समकालीन लेखक – निर्मल वर्मा और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित भारत में और विश्व में सैलबेलो, गैबरियल, टोनी मॉरिसन। इनके द्वारा रचित साहित्य को निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है –कथा साहित्य – कहानी और उपन्यास। कथेतर गद्य साहित्य – निबंध, नाटक, संस्मरण, यात्रा–वृत्तान्त, लेख–संग्रह। अनुवाद साहित्य – हिंदी से अंग्रेजी, अंग्रेजी से हिंदी मे

मृदुला गर्ग ने लिखना बहुत देर से शुरू किया गया था। इन्होंने शादी के बाद 32 साल की उम्र में लिखना शुरू किया था। 1971 में इनकी पहली कहानी 'रुकावट' छपी, जो 'सारिका'पत्रिका में कमलेश्वर के संपादन में छपी। बाद में 'लिली आफ दि वैली', 'दूसरा चमत्कार', 'हरी बिंदी' भी 'सारिका' में ही छपीं। 1972 में दूसरी कहानी 'कितनी कैदे' को 'कहानी' पत्रिका द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ। दिल्ली में 1974 ई. में स्वतंत्र लेखन शुरू किया। मृदुला गर्ग के समकालीन उपन्यासों में 'उसके हिस्से की धूप' (1975), 'वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य' (1980) 'मैं और मैं' (1984) 'कठगुलाब' (1996) तथा 'मिलजुलमन' (2009) की गणना की जाती है। इनकी पहचान अभिजातीय वर्ग की नारी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से उभरती है। प्रख्यात रचनाकार मृदुला गर्ग अपने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए 'उपन्यास' को सर्वाधिक सशक्त माध्यम मानती हैं, क्योंकि यही वह माध्यम है, जिसमें ये अपनी अभिव्यक्ति को पूरे विस्तार के साथ रख पाती हैं। स्त्री–पुरुष संबंध तथा जीवन की प्रवृत्तियों का कलात्मक रूप आदि आधुनिक बोधयुक्त विभिन्न सामाजिक तत्त्व इनके उपन्यास साहित्य में प्रस्तुत हैं। मौन प्रश्नों, कुंठाओं के संदर्भ में नारी की मानसिकता, नारी के प्रेम और वासनात्मक जीवन पर इन्होंने अपना एक विशेष दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया है। प्रेम, तलाक, दहेज, सेक्स आदि विषयों का खुला अंकन करके महिला–लेखन को एक नया आयाम प्रदान किया है। राजनीतिक परिवेश, आर्थिक असमानता, शोषण, दांपत्य–जीवन का तनाव, अन्तर्द्वन्द्व, वर्ग–संघर्ष जैसी अनेक समस्याओं को वास्तविक रूप से अभिव्यक्ति मिली है। जीवन की अनेक पर्तों को खोलकर रखने में इनका प्रयास सशक्त है। ये नारी–मुक्ति की प्रबल आकांक्षी रही हैं। इनके उपन्यासों में परिवार और समाज के बीच आज की नारी की अस्मिता को खोजने का प्रयास किया गया है। ये नारी को आजाद देखना पसंद करती हैं। इसी विचारधारा का प्रतिपादन इनके उपन्यासों में पाया जाता है।

<u>संदर्भ ग्रंथ</u>

1. जैन, सत्या. (2010). जैनेन्द्र और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित नर–नारी संबंध. नई दिल्लीः शारदा प्रकाशन. पृ. सं. – 157.
2. वही, पृ. सं. – 157.
3. वही, पृ. सं. – 157.
4. साक्षात्कार. (अक्टूबर, 1984). सरिका. दिनेश द्विवेदी से मृदुला गर्ग की बातचीत. पृ. सं. – 46.
5. गर्ग, मृदुला. (1995). रंग–ढंग. नई दिल्लीः विद्या विहार. पृ. सं. – 15.
6. वही, पृ. सं. – 32
7. यादव, वीरेन्द्र सिंह. (2011). महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना. दिल्लीः पैसिफिक पब्लिकेशन. पृ. सं. – 227.
8. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. दिल्लीः राजकमल पेपरबैक्स. पृ. सं. –98.
9. गर्ग, मृदुला. (1978). वंशज. नई दिल्लीः अक्षर प्रकाशन. पृ. सं. – 169.
10. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – भूमिका.
11. वही, पृ. सं. – 89.
12. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल पेपरबैक्स. पृ. सं. – 15.
13. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल पेपरबैक्स. पृ .सं. – 09.
14. वही, पृ. सं. – 20.
15. वही, पृ. सं. – 13.
16. वही, पृ. सं. – 78.
17. वही, पृ. सं. – 206.
18. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 18.
19. वही, पृ. सं. – 115.
20. वही, पृ. सं. – 264.
21. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 33.
22. वही, पृ. सं. – 09.
23. वही, पृ. सं. – फ्लेप.
24. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 170.
25. वही, पृ. सं. – 170.
26. वही, पृ. सं. – 171.
27. यादव, वीरेन्द्र सिंह. (2011). महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना. दिल्लीः पैसिफिक पब्लिकोन.

:– तृतीय अध्याय :–

मृदुला गर्ग की विश्वदृष्टि

साहित्य और समाज के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्य और समाज के बीच के संबंध में साहित्यकार एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जो साहित्य का निर्माण करता है। साहित्यकार भी एक समाजिक प्राणी है, जो समाज से मुक्त साहित्य–सृजन नहीं कर सकता है। अपनी रचना के एकांत गहन क्षणों में भी साहित्यकार अपने समाज का अंश होता है। समाज से उसकी युक्तता का प्रकार उसकी कृति का दिशा–निर्देशन करता है। इस प्रकार प्रत्येक युग की महत्त्वपूर्ण कृति अपने समाज का प्रतिबिंब होती है। महत्त्वपूर्ण कृति वही कृति मानी जाती है, जिसमें सामाजिक यथार्थ एवं कलात्मक सौंदर्य के अनुपात में संतुलन हो। जब तक साहित्यकार अपने भाव, विचार, अनुभूति आदि की शब्द, अर्थ, रस, बिंब–विधान आदि के माध्यम से उस अनुभूति को अभिव्यक्त करते हुए एक कृति का रूप नहीं दे देता, तब तक साहित्य का समाज के साथ संबंध होना कठिन है। साहित्यकार न केवल पाठक समुदाय को आनन्द प्रदान करने के लिए साहित्य का निर्माण करता है, बल्कि आनन्द के साथ–साथ ज्ञान व प्रेरणा प्रदान करना भी उसका दायित्व होता है।

मृदुला गर्ग की विश्वदृष्टि का अध्ययन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है, कि 'विश्वदृष्टि क्या है ?'

विश्वदृष्टि के सिद्धांत के निर्माण में यूरोपीय विद्वान 'लूसिए गोल्डमान' का नाम महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार एक निश्चित कालखण्ड में एक वर्ग या समूह की जीवन–जगत के बारे में सुसंगत दृष्टि विश्वदृष्टि है, जिसका निर्माण एक वर्ग की पूर्णतम संभावित चेतना ही करती है और जिसकी अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य में होती है और यह सामाजिक वर्ग की ऐतिहासिक स्थितियों से संबद्ध है। साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य समाज से साहित्य के संबंध की खोज है। साहित्य के समाजशास्त्र के इतिहास में इसके दो रूप मिलते हैं – एक तो सामाजिक यथार्थ में साहित्य में व्यक्त यथार्थ के संबंध का विश्लेषण और दूसरे, कृति में व्यक्त, चेतना के सामाजिक उद्गम की खोज। गोल्डमान दूसरी प्रक्रिया को स्वीकार करते हैं। इस दूसरी प्रक्रिया के भी दो रूप हैं – एक है – साहित्यिक कृति में सामाजिक चेतना के प्रतिबिंब की खोज और दूसरी है – कृति में मौजूद चेतना की संरचनाओं से समाज के किसी समूह या वर्ग की चेतना की संरचनाओं के संबंध का विवेचन। गोल्डमान कृति की विश्वदृष्टि और वर्ग की विश्वदृष्टि की संरचनाओं के बीच समानधर्मिता की खोज करते हैं।

गोल्डमान के अनुसार प्रत्येक कृति किसी लेखक की रचना होती है और वह लेखक के विचारों तथा अनुभूतियों को व्यक्त करती है। लेखक के वे विचार और भाव समाज तथा वर्ग के दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार और चिंतन से प्रभावित होते हैं। उनके स्वरूप को लेखक के अपने वर्ग या समूह और समाज के दूसरे व्यक्तियों के विचारों और भावों से जोड़कर अंतर्वैयक्तिक संबंध भावना के रूप में ही समझा जा सकता है। विश्वदृष्टि साहित्य के समाजशास्त्र की बुनियाद है। किसी एक वर्ग या समूह की जीवन–जगत के बारे में सुसंगत दृष्टि ही विश्वदृष्टि है। उसका विकास कोई समूह या वर्ग ही सामाजिक–ऐतिहासिक प्रक्रिया में करता है। यह विश्वदृष्टि उस वर्ग के कर्म, चिंतन और भावों में प्रकट होती है। रचना के स्तर पर धारणा और कल्पना के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति होती है। यह विश्वदृष्टि अनुभवगम्य वास्तविकता नहीं है, यह वैचारिक प्रारूप है, लेकिन इसका जीवन में वास्तविक आधार होता है, इसलिए यह काल्पनिक भी नहीं है। इसे समूह या वर्ग के संदर्भ में ही समझा जा सकता है, व्यक्ति के नहीं। व्यक्ति की रचना में अभिव्यक्त विश्वदृष्टि ही वर्ग की विश्वदृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है। इसका विकास होता है, इसकी सृजना नहीं होती है। यह सामाजिक वर्ग के जीवन में निहित होती है, लेकिन यह दर्शन, कला और साहित्य में व्यक्त होती है। इसलिए विश्वदृष्टि की खोज का आरंभ कृति के अध्ययन से होता है, न कि वर्ग के अध्ययन से।

यथार्थ के चयन में समाज की अनेक दृष्टियों के साथ लेखक की निजी दृष्टि भी होती है, जो उसकी वैचारिक स्थिति, अनुभूतियों के साथ–साथ समाज तथा वर्ग द्वारा प्रभावित होती है। सामाजिक यथार्थ के चयन में लेखकीय दृष्टि की सक्रिय भूमिका है, जो समाज द्वारा ही निर्मित हुई है। साहित्यिक कृति और समाज का अन्तर्संबंध लेखक की वैचारिक दृष्टि में व्यक्त होता है। रचनादृष्टि का मूल संबंध जीवनशैली से व जीवनदृष्टि से होता है। इसलिए रचनाकार की अपनी वर्गीय स्थिति या सामाजिक परिवेश का भी अपना महत्त्व होता है। दृष्टि संपन्न रचनाकार चाहे जिस वर्ग का हो जीवन की जड़ता या ठहराव से संघर्ष का मोर्चा चुन लेता है। लूसिए गोल्डमान के इस सिद्धांत के आधार पर, कि किसी कृति की विश्वदृष्टि की संरचनाएँ लेखक की निजी निर्मित नहीं होती, बल्कि उसके वर्ग के दूसरे व्यक्ति भी उस विश्वदृष्टि के सहभागी होते हैं। इसका निर्माता कोई एक व्यक्ति न होकर पूरा एक वर्ग या समुदाय ही होता है। विश्वदृष्टि का स्वरूप केवल समूह या वर्ग के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। अतः मृदुला गर्ग के उपन्यासों में व्यक्त विश्वदृष्टि को असल में मृदुला गर्ग के युग के वर्ग या समाज की विश्वदृष्टि कह सकते हैं। सारांश में विश्वदृष्टि की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, कला और साहित्य में होती है और रचना के स्तर पर धारणा तथा कल्पना के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति होती है। साहित्य में अभिव्यक्त विश्वदृष्टि और वास्तविक जीवन के तत्त्व के बीच समानता का होना स्वाभाविक होता है, जिसे गोल्डमान ने समानधर्मिता कहा है। विश्वदृष्टि का विकास होता है, इसकी सजृना नहीं होती है। इसके विकास के लिए जीवन–संघर्ष और आंदोलन की जरूरत होती है।

विश्वदृष्टि का व्यक्ति से सीधा संबंध नहीं हो सकता, पर कृति के माध्यम से अभिव्यक्त विश्वदृष्टि और लेखक के बीच में तो जरूर संबंध होता है, क्योंकि लेखक के व्यक्तिगत अनुभव ही सृजन कार्य की ओर उसको प्रेरित करके विश्वदृष्टि के निर्माण में सहायता देते हैं। लेखक भी अन्य व्यक्तियों की तरह समाज में रहता हैं, वहाँ तरह–तरह के अनुभव होते रहते हैं। ये अनुभव व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक जीवन से संबंधित हैं, ठीक वैसे ही विश्वदृष्टि भी समाज से संबंध रखती है। इस स्थिति में लेखक के व्यक्तिगत अनुभव का प्रभाव रचना की विश्वदृष्टि पर पड़ना स्वाभाविक है। अतः यहाँ मृदुला गर्ग के उपन्यासों की विश्वदृष्टि के अध्ययन के लिए इनके व्यक्तिगत जीवन की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

मृदुला गर्ग के घर में साहित्यिक वातावरण होने के कारण अनायास ही इन पर बहुत ही कम उम्र में साहित्य का प्रभाव पड़ा। हिंदी, अंग्रेजी दोनों ही साहित्याध्ययन ये अपने बचपन से करती रहीं। अपनी साहित्याशक्ति को लेकर ये लिखती हैं – ‘‘साहित्य पठन से मेरा लंबा लगाव रहा था, बचपन से। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, अक्सर बिस्तर पर रहती थी। साहित्य ही मेरा एकमात्र आसरा था। वह मेरे खून में समा गया, मेरे दिलोदिमाग का हिस्सा बन गया।’’[1] कम उम्र में महान साहित्यकारों को पढ़ने का नतीजा यह हुआ कि वह साहित्य इनकी चेतना का अंग बन गया। किसी न किसी कृति का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है, जैसे गांधी जी पर रस्किन का ‘अनटू द लास्ट’ कृति का प्रभाव पड़ा था, वैसे ही मृदुला जी पर एक कहानी का प्रभाव पड़ा था। ‘थ्र द लुकिंग ग्लास’ नाम की कहानी को पढ़कर जीवन में रफ्तार के साथ दौड़ना सीखा। पिताजी के घर का वातावरण तो साहित्य का था ही, पति का सहयोग भी सृजन–प्रक्रिया में साथ रहा। इनके पिता समाज की स्वाधीनता की ओर सजग तथा विस्तृत साँस कृतिक दृष्टि रखने वाले प्रगतिशील व्यक्ति थे। वे उस युग में भी स्त्री–शिक्षा को अत्यन्त महत्त्व देते थे तथा पुत्र व पुत्री में कोई भेद नहीं करते थे। जीवन के प्राथमिक स्तर पर इन्होनें जो कुछ देखा या अनुभव किया, उसका गहरा प्रभाव इनके मन पर पड़ा और इनकी रचना के मूल में भी उसकी छाप दिखाई देती है। यही अनुभव मृदुला जी के प्रबुद्ध विचारों का एक स्रोत बना।

इनके जीवन पर जिन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का प्रभाव पड़ा, वे हैं – द्वितीय विश्वयुद्ध, देश की आजादी का आंदोलन (1947), भगतसिंह की क्रांतिकारी भावना, आपात्कालीन घोषणा (1975), भोपाल गैस कांड (1984) आदि। इन ऐतिहासिक घटनाओं से प्रभावित मृदुला जी की

चिंतनधारा व्यापक और विशाल हो गई। मृदुला जी कहती हैं – ''वास्तव में मेरे लेखन में दो अनुभूतियाँ प्रमुख हैं – पहली, मन और शरीर के बीच का अंतर और दूसरी, देश की स्वतंत्रता, जो हमें एक विद्रूप की तरह मिली थी। स्वतंत्रता का आभास दिलाने वाली धोखेबाजी थी वह, वास्तव में स्वतंत्रता नहीं थी, सत्ता हस्तांतरण भर थी। वह क्यों हुआ, कैसे हुआ और उसने हम सबको कैसे प्रभावित किया? ये प्रश्न मेरे लेखन में अभरकर आए।''[2] इन घटनाओं के साथ मार्क्सवाद और समाजवाद का भी गहरा प्रभाव हुआ। मृदुला जी ने परिवार, समाज, लोकतंत्र, भाषा, पर्यावरण आदि से संबधित लेख लिखे। लेखिका की दृष्टि सदैव मानव पर केन्द्रित होती है। ये धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के जरिये लोगों को कभी भी नहीं देखती हैं। यह इनके असंख्य व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा निर्मित एक दृष्टि है।

(क) परिवार–समाज :

समय के प्रति साहित्यकार प्रतिबद्ध रहता है। हर सजग साहित्यकार समय का अंश साहित्य में प्रकट करता है। वह युगीन परिवेश, संस्कार, रूढ़ियों, गतिविधियों आदि से प्रभावित होता है। स्वयं की संवेदनशक्ति तथा साहित्यिक सजगता का आधार लेकर वह साहित्याभिव्यक्ति करता है। संसार में ऐसा कोई समाज नहीं जिसमें परिवार न हो। जन्म से मृत्यु तक सारी गतिविधियाँ परिवार में होती हैं। परिवार मानव का निर्माता, ज्ञानदाता, आश्रयदाता और मुक्तिदाता है। परिवार समाज की प्रमुख तथा प्रारंभिक संस्था है, उसी पर प्रत्येक समाज का अस्तित्व निर्भर है। सदस्य संख्या व सत्ता के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते हैं – संयुक्त व एकल परिवार तथा पितृसत्तात्मक व मातृसत्तात्मक परिवार।

संयुक्त परिवार– संयुक्त परिवार पारंपरिक हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो आकार में बड़ा होता है। इसमें तीन या अधिक पीढ़ियों के व्यक्ति रहते हैं, तथा संपत्ति का उपभोग संयुक्त रूप से किया जाता है। भोजन, एक ही चुल्हे पर बनाया जाता है तथा धार्मिक कार्य संयुक्त रूप से परिवार के मुखिया के नियंत्रण में किए जाते हैं। आज अधिकतर संयुक्त परिवार पितृसत्तात्मक हैं।

एकल परिवार– एकल परिवार में सदस्य संख्या कम होती है। पति–पत्नी और अविवाहित बच्चे होते हैं। जबकि संयुक्त परिवार में दादा–दादी तथा विवाहित बच्चे भी होते है। आधुनिक काल में एकल परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है और संयुक्त परिवारों का विघटन होता जा रहा है।

आज संयुक्त परिवार का ढाँचा बिखर गया है। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, नौकरी, व्यवसाय अथवा काम की तलाश में स्थान परिवर्तन करने की मजबूरी के कारण संयुक्त परिवार का स्थान एकल परिवार ने ले लिया है। किंतु आज एकल परिवार की धुरी पति एवं पत्नी के संबंधों में भी मधुरता समाप्त हो रही है, जिसका कारण है, एक–दूसरे से बढ़ती हुई अपेक्षाएँ। मृदुला जी में तत्कालीन समाज में स्वयं द्वारा झेला हुआ व्यक्तिगत अनुभव, समाज में व्याप्त दुर्दशा को परखने तथा उसके मूल को समझने की दृष्टि है। इनके मन में सामाजिक दुर्दशा के प्रति गहरा आक्रोश है। तत्कालीन समाज और संस्कृति ने मृदुला जी की विश्वदृष्टि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मृदुला जी जिस समाज में रहती थीं, उस समाज में महत्त्वपूर्ण घटना स्वाधीनता आंदोलन थी। स्वतंत्रता–संग्राम और स्वतंत्रता–प्राप्ति के बीच संक्रांति काल में मृदुला जी का जीवन व्यतीत हुआ, जिसने इनकी विश्वदृष्टि के निर्माण में कैसे योगदान दिया यह विचारणीय है। साहित्यकार में दूरदर्शिता का होना अनिवार्य है। समाज के संक्रांति काल में राजनीति तथा अनुशासन के सभी वर्चस्व से मुक्त रहकर जनता का प्रतिनिधित्व करना साहित्यकार का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। मृदुला जी के साहित्य में स्त्री जाति में जागरण लाने का स्वर सदा सुनाई देता है। ये अपनी कृति के माध्यम से स्वयं सजग स्त्री जनता का प्रतिनिधित्व करके स्वस्थ समाज की अनुकूलता के ढाँचे में स्त्री की दशा को उपयुक्त बनाने का प्रयास करती हुई दिखाई देती हैं।

मृदुला गर्ग के अधिकांश उपन्यासों में एकल परिवार को चित्रित किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'मैं और मैं', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'कठगुलाब', सभी उपन्यासों के पात्र एकल परिवार से ताल्लुक रखते हैं। इनका एकमात्र उपन्यास 'मिलजुल मन' संयुक्त परिवार को चित्रित करता है। इनकी कथावस्तु के केंद में मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार के बजाय एकल परिवार ही है। इनके पात्र एकल परिवार में ही यकीन रखते हैं, क्योंकि संयुक्त परिवार में उन्हें अपना निजी कोना नहीं मिलता, जिसे वे चाहते हैं। अशिक्षित नारी तो संयुक्त परिवार में शोषण से समझौता कर लेती है, परंतु शिक्षित नारी ने इन सबके प्रति विद्रोह करके इस प्रथा को तोड़ने का प्रयास किया है। मृदुला गर्ग व्यक्त करती हैं, कि पढ़ी–लिखी स्त्री अपने व्यक्तित्व को ध्वस्त होता देखती है, तो उसके मन में स्वतंत्रता की चाहत पैदा हो जाती है। अक्सर महानगरों में ऐसा देखा जाता है।

संयुक्त परिवार में विघटन का एक और मुख्य कारण पुरानी एवं नई पीढ़ी की वैचारिकता में अन्तर है। पीढ़ियों का यह संघर्ष केवल व्यक्तियों का संघर्ष नहीं है, बल्कि मान्यताओं और मूल्यों का संघर्ष भी है। यही पीढ़ियों का संघर्ष इनके 'वंशज' उपन्यास में दिखाई देता है। 'वंशज' उपन्यास में भी शुक्ला साहब द्वारा थोपी गई मान्यताओं, शिक्षा और नौकरी को ठुकराकर बेटा सुधीर धनबाद और रानीगंज में कोयला खान में माइनिंग इंजीनियर का काम करने चला जाता है। वह वहीं अपना घर भी बसाना चाहता है। मृदुला जी के उपन्यासों के सभी पात्र एकल परिवार में जीते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा और जितेन या फिर मनीषा और मधुकर। 'वंशज' में सुधीर, सविता और जज शुक्ला साहब। वहाँ भी सुधीर अलग रहना चाहता है। इसकी वजह घरवालों के बीच के मतभेद ओर नई एवं पुरानी पीढ़ी के विचारों के बीच की खाई है। सुधीर के उसूल, जज शुक्ला साहब के उसूलों से टकराते हैं। पिता–पुत्र का संघर्ष सुधीर को अलग रहने पर मजबूर करता है। 'मैं और मैं' में माधवी, राकेश और उनके बच्चे, 'चित्तकोबरा' में महेश, मनु और दो बच्चे, 'अनित्य' में अविजित, श्यामा और चार बच्चे, 'कठगुलाब' में नमिता व उसका पति तथा दो बच्चे प्रदीप व नीरजा तथा दर्जिन बीबी के यहाँ असीम, असीमा और दर्जन बीबी का पति आदि अलग रहने को विवश हो गए, परंतु 'मिलजुल मन' में पाँच बच्चे और माता–पिता का जिक्र कर पुनः संयुक्त परिवार के प्रति अपना मोह मृदुला जी प्रकट करती हैं। इस परिवार में दादाजी, जुग्गी चाचा, मामा, नाना, ताई जी आदि का जिक्र हुआ है, जो मृदुला गर्ग के परिवार की ही कथा व्यक्त करते हैं। यह संयुक्त परिवार आज की मांग सी प्रतीत होता है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में उच्च मध्यमवर्गीय समाज को केंद में रखकर कथावस्तु की रचना की है। इन्होंने अपने उपन्यास 'वंशज' में जज शुक्ला साहब के जरिए एक उच्च मध्यमवर्गीय पिता की अपने बेटे के प्रति चिंता दर्शायी है, तभी पिता मौत से पहले वसीयत उसके नाम कर देता है। मृदुला जी के उपन्यासों में परिवार, समाज व संस्कृति के परंपरागत आयामों की उपेक्षा की गई है। इनमें परंपरागत नैतिक–मूल्यों व सामाजिक आदर्शों का बहिष्कार दिखाई देता है। इनके उपन्यास साहित्य में समाज के उच्च मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण किया गया है। नौकरीपेशा मध्यमवर्ग का रूप 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, 'मैं और मैं' की माधवी, 'चित्तकोबरा' की मनु एवं 'अनित्य' की काजल बनर्जी, शुभा आदि के माध्यम से देख सकते हैं। मनीषा कॉलेज में हिंदी की प्रोफेसर है। 'मैं और मैं' की माधवी लेखिका है और 'चित्तकोबरा' की मनु भी लिखने का काम करती है। 'अनित्य' की काजल बनर्जी इतिहास की प्रोफेसर तथा संगीता डॉक्टर है। इनके उपन्यासों की नारी शिक्षित होने के साथ–साथ कामकाजी भी है। मनीषा, माधवी की तरह स्मिता, मारियाम, असीमा, नर्मदा, दर्जन बीबी आदि सभी स्त्री पात्र किसी–न–किसी रूप में कामकाजी हैं।

परिवार की मजबूती के लिए स्त्री–पुरुष अर्थात पति–पत्नी के संबंधों में मजबूती होना आवश्यक है, परंतु मृदुला जी द्वारा रचित उपन्यासों में पति–पत्नी के बीच अलगाव की भावना है। विवाह संस्था की विसंगति और दांपत्य जीवन की असंगति का चित्रण किया गया है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों के पति–पत्नी मे शरीरी प्रेम बराबर होने पर भी मानसिक तृप्ति का

अभाव होने के कारण वे लोग घर के बाहर आकर्षण ढूँढ़ते हैं। इनके उपन्यासों के मध्यमवर्गीय परिवार में पति–पत्नी दोनों ही दांपत्य जीवन में टूटन व बिखराव के उत्तरदायी हैं। दोनों के बीच खुला व्यवहार न होने के कारण अनेक गलत फहमियाँ पनपती रहती हैं, जो बढ़कर भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। पति–पत्नी की एक–दूसरे के प्रति शंकालु होने की स्थिति में भी दांपत्य जीवन में टूटन आ जाती है तथा अत्यधिक व्यस्तता भी दांपत्य जीवन में बिखराव का कारण बन जाती है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, अपने पति जितेन की हर वक्त की व्यस्तता से परेशान है और यही कारण है, कि वह मधुकर के पास चली जाती है। राकेश व माधवी का वैवाहिक बंधन भी इस व्यस्त जीवन शैली में खो सा गया है, परंतु माधवी व राकेश के दांपत्य जीवन में बिखराव नहीं आया है। माधवी अपने बच्चों व पति के प्रति सजग नारी है, वह लेखन के साथ–साथ ही अपनी गृहस्थी का भी ध्यान रखती है। 'चित्तकोबरा' में मनु व महेश का दांपत्य जीवन भी सफल नहीं है। मनीषा, मनु, सविता, स्मिता, नमिता, दर्जिन बीबी, नर्मदा, मारियान, काजल, संगीता आदि सभी का दांपत्य बिखराव में है। कुछ अहं की वजह से तो कुछ अत्याचार के कारण। वे अपना परिवार खुद बनाती हैं। माधवी व रेवा का दांपत्य सफल है। श्यामा को भी भारतीय नारी के संस्कारयुक्त दिखाया गया है। 'मिलजुल मन' में गुलमोहर, मोगरा व उनके माता–पिता का दांपत्य सफल है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'वंशज' में सविता और सुधीर के माध्यम से टूटते दांपत्य को दिखाया है, वहीं रेवा और उसके पति संदीप का दांपत्य जीवन सुखदायी है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में भी पारिवारिक संबंधों में सुधार हुआ है। इसमें दांपत्य संबंध टूटते–बिखरते हुए नहीं दिखाये गए हैं, अपितु कितनी भी मुश्किल आने पर भी पति–पत्नी साथ ही बने रहते हैं। अंदर से त्रासद जिन्दगी जीते हुए भी गुल हमेशा ऊपर से खुश ही दिखाई देती है। माधवी व राकेश का दांपत्य जीवन भी सफल है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में विवाह–संबंधों के खोखलेपन को भी उजागर किया है। इनके उपन्यासों में प्रेम की सार्वकालिक समस्या को एक नई मानसिकता के तहत रूपायित किया गया है। निरंतर ह्रासोन्मुख समाज का विश्लेषण किया गया है। पुरुष वर्ग द्वारा षोषित–पीड़ित नारी–चित्रण के साथ ही पुरुष के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने वाली विद्रोहिणी नारी की अभिव्यक्ति भी इनके उपन्यासों में हुई है। इनकी नारी पति से तिरस्कृत एवं अपमानित होने पर परंपरागत हिन्दू नारी की भाँति गिड़गिड़ाती नहीं और न ही अपनी भावनाओं, विचारों का दमन करती है, वरन वह पति के विशेषाधिकारों को चुनौती देते हुए विद्रोह करती है। वह परंपराओं और रूढ़ियों को तोड़कर नवीन सामाजिक मान्यताओं को स्थापित करना चाहती है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप दांपत्य जीवन में टूटन, एकाकीपन की समस्या, मानवीय संबंधों में आए खोखलेपन, संबंधों की टूटन और कड़वाहट, आधुनिक समाज में प्राचीनता व नीवनता के मध्य संघर्ष अर्थात प्राचीन व नीवन विचारधाराओं का संघर्ष, बदलते पति–पत्नी के संबंध, सामाजिक आदर्शों व परंपरागत नैतिक मूल्यों का बहिष्कार, निरंतर ह्रासोन्मुख होता सामाजिक परिवेश, संयुक्त परिवार का विघटन व एकल परिवार की स्थापना आदि पारिवारिक व सामाजिक स्थितियों का चित्रण लेखिका ने प्रबुद्धता से किया है। मृदुला जी सामान्यतः उच्चवर्गीय समाज की स्त्रियों की ऊब और आकांक्षाओं की लेखिका हैं। इनके उपन्यासों में एक बौद्धिक तेवर है, जो किसी विशेष दृष्टि की ही उपज है। इन्होंने वर्तमान समाज में पारिवारिक जीवन की विडंबनाओं और आडंबरों के मध्य झाँकती जीवन की सच्चाइयों को निरूपित किया है। इनके उपन्यास रूढ़ियों, मान्यताओं पर व्यंग्य करते हुए परंपराओं से परे जीवन जीने की आशा करते हैं। इनकी रचनाओं में घटित परिवार व समाज की स्थिति का चित्रण मात्र घटित यथार्थ का विवरण नहीं है, अपितु रचना में घुली–मिली चिंतन से उत्पन्न मृदुला जी की जीवन दृष्टि है।

(ख) वर्ग–चेतना :

मनुष्य समाज में रहता है। विभिन्न सामाजिक अवधारणाओं, रीति–रिवाजों का मानव–मन पर जाने–अनजाने प्रभाव पड़ता ही रहता है और इससे मनुष्य की सोचने–विचारने की क्रिया को दृष्टि मिलती है, जिसे चेतना का नाम दिया जा सकता है। चेतना को ही समाज की उपज कहा जा सकता है। सामाजिक सत्ता ही मनुष्य की चेतना को निश्चित करती है। चेतना का संबंध सदैव मानवीय अनुभूतियों से होता है। मनुष्य की पारिवारिक स्थिति, शिक्षा–दीक्षा तथा आर्थिक और सामाजिक स्थिति का प्रभाव उसकी चेतना पर अवश्य पड़ता है।

वर्ग–चेतना वह स्थायी भाव है जिससे व्यक्तियों का अपने तथा अन्य वर्गों के सदस्यों के बीच संबंध निर्धारित होता है। वर्ग–चेतना किसी वर्ग का आंतरिक पक्ष है, जो ऐसे लोगों को एक साथ बाँधता है, जो अन्य वर्गों से अपने को भिन्न समझते हैं। इसी के कारण अन्य वर्गों से दूरी होती है, जो वर्ग–भेद का आवश्यक तत्त्व है। वर्ग–चेतना श्रेष्ठता के विश्वास से उद्भूत होती है। वर्ग विभाजन को उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर थोपा हुआ माना गया है। परंपरानुसार निम्न वर्गों द्वारा उच्च वर्गों को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है तथा जब परंपरा कमजोर पड़ने लगती है, तो वर्ग–संघर्ष व वर्गीय–चेतना का जन्म हो जाता है। वर्गवादी समाज में कामगर से लेकर पूँजीपति तक की सामाजिक चेतना हर स्थिति में अपने वर्ग की चेतना होती है, जिसे हम सामाजिक चेतना कहते हैं। वस्तुतः यह वर्ग चेतना है। प्रत्येक जीवित प्राणी में चेतना का स्तर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान होता है, चाहे वह नर हो या नारी। नारी चेतना भी पुरुष के समान ही कार्य करती है, किंतु चेतना का स्तर सभी में भिन्न भिन्न हो सकता है। रचनाकार का जन्म जिस वर्ग में होता है, उसके संस्कार, वर्ग बोध के प्रभाव उसकी अन्तस्चेतना में रचे–बसे होते हैं। जिस रचनाकार का जीवनयापन जैसे समाज व परिवेश में होता है, उसी के शब्द–चित्र उसकी दृष्टि में उपलब्ध होते हैं तथा उसी का चित्रण उसकी रचना में होता हैं। चेतना का संबंध वर्ग से जुड़ा है। रचनाकार का आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक और साँस कृतिक परिप्रेक्ष्य भी वर्गबोध का नियामक होता है। मृदुला जी के उपन्यास साहित्य में महानगरीय जीवन के परिवेश का चित्रण मिलता है, जिन उच्च–मध्यमवर्ग व निम्न–मध्यमवर्ग के पात्रों का कलात्मक स्वरूप उपलब्ध होता है, वे प्रकारांतर से मृदुला जी की वर्गीय चेतना के ही विभिन्न रूप हैं।

मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार कोई भी साहित्यिक कलाकृति सामाजिक चेतना का ही प्रतिफलित रूप है। मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांत के अनुसार समाज में सदैव दो वर्ग होते हैं – एक– उच्च वर्ग, जिसे बुर्जुआ या पूँजीपति वर्ग कह सकते हैं। दूसरा– निम्न वर्ग, जिसे सर्वहारा या मजदूर वर्ग कह सकते हैं। इन दोनों के बीच एक वर्ग और होता है – मध्यम वर्ग। मध्यम वर्ग को भी तीन भागों में विभाजित किया गया है – निम्न मध्यमवर्ग, मध्य मध्यमवर्ग, उच्च मध्यमवर्ग। पूँजीपति व सर्वहारा वर्ग के बीच चलने वाला संघर्ष सामाजिक चेतना अर्थात वर्गीय–चेतना को प्रभावित व परिवर्तित करता रहता है। मनुष्य की चेतना सामाजिक सत्ता से प्रभावित होती है, तो उसे प्रभावित भी करती है।

मृदुला जी ने उच्च मध्यमवर्गीय जीवन को केंद में रखकर अपने उपन्यास जगत की रचना की है, उन्होंने प्रबुद्ध स्त्रियों की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और स्वप्नों के साथ–साथ बुर्जुआ व सर्वहारा वर्ग के बीच के वर्गभेद व चेतना को भी चुना है। संपन्नता व विपन्नता के बीच वर्ग–चेतना को अभिव्यक्त किया है। निम्न वर्ग के होने वाले क्रूर शोषण व बाल–श्रम के द्वारा बच्चों के होने वाले शोषण की ओर हमारा ध्यानाकृष्ट करती हैं। 'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार के माध्यम से शोषित व पीड़ित सर्वहारा वर्ग में उत्पन्न होने वाली नई अधिकार भावना, वर्ग–चेतना और साम्यवादी जीवनदृष्टि का चित्रण किया है। 'अनित्य' उपन्यास के माध्यम से सामाजिक व राजनीतिक चेतना जाग्रत करना मृदुला जी का उद्देश्य रहा है। 'वंशज' उपन्यास के माध्यम से नौकरशाही वर्ग की आलोचना की गई है। इनके उपन्यासों में इनकी समाजिक–राजनीतिक चेतना के साथ–साथ वर्ग–चेतना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

'मैं और मैं' का कौशल कुमार व माधवी दोनों ही लेखक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। कौशल निम्न मध्यमवर्ग तथा माधवी उच्च मध्यमवर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। कौशल एक ऐसा लेखक है, जो अमीरों के प्रति नफरत की भावना से ओतप्रोत है। जब भी उसे अमीरों के प्रति नफरत दिखाने का मौका मिलता है, तब वह चूकता नहीं है। माधवी को अपने लेखन पर गर्व है, लेकिन कौशल का मानना है, कि माधवी अपने लेखन में जिस शोषण की कहानी कहती है, वह अनुभवजन्य नहीं है तथा अनुभवहीन लेखन वास्तविक पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है। कौशल कहता है, कि – ''तुम नहीं जानती क्योंकि तुम पीड़ा के सूक्ष्म शेड पकड़ सकती हो, उसके आधारभूत स्थूल रंग को नहीं। मैं जानता हूँ स्थूल पीड़ा को। जब बासी रोटी को कच्ची प्याज से खाने के लिए आदमी तरस जाता है; जब घर के भीतर बच्चा जन्म ले रहा होता है और बाहर मकान की कुर्की हो रही होती है; जब घर का सामान उठाकर बाहर फेंक दिया जाता है और जब तेज बुखार में कंपकंपाते बच्चों को खुली सड़क के हवाले कर देना पड़ता है; जब ...... छोड़ो।''[3]

कौशल के माध्यम से ही पूँजीपति वर्ग के प्रति सर्वहारा वर्ग की नफरत को अभिव्यक्ति दी गई है – ''पर आपके वर्ग के लोग ऐसा नहीं समझते। कैसे समझेंगे! समाज का पैसा बटोरकर लाखों लोगों को भूखा मरने के लिए मजबूर करते हैं पर उसे चोरी नहीं मानते। हाँ, उनके अपने घर से कोई दो रोटी उठा ले जाए तो चोर–चोर की चीखोपुकार से आसमान सिर पर उठा लेते हैं। नफरत है मुझे आपके वर्ग के लोगों से....।''[4] वह अपने विचारों से पूँजीपति वर्ग के प्रति विद्रोह की आँधी लाना चाहता है और शोषक वर्ग को नष्ट–भ्रष्ट कर देना चाहता है – ''वाह बढ़िया है आए आँधी। सब कुछ उड़ जाए, मिट जाए, ध्वंस हो जाए। काश आँधी नहीं, जलजला आ जाए। आसमान से उतनी आशा बेकार है, पृथ्वी विद्रोह करके खुद अपना पेट फाड़ लेगी तभी ध्वंस का लावा उठेगा, तभी ये भव्य अट्टालिकाएँ और सदियों से उन्हें छाँव देते पुराने पेड़ जड़ से उखड़कर गिरेंगे; आग और पानी मिलकर तांडव–नृत्य करेंगे और कौशल हँसेगा।''[5] तथा ''मेरी पूरी जिन्दगी ही नाइनसाफी के खिलाफ लड़ाई है। आज नहीं तो कल......।''[6]

'मिलजुल मन' में भी लेखिका पूँजीवादी व साम्यवादी उसूलों की चर्चा करते हुए एक गुटनिरपेक्ष और मिली–जुली अर्थव्यवस्था का ऐसा संसार बनाने के लिए चिंतनशील है, जिससे हमारे देश का दुनिया लोहा माने। वह इसके माध्यम से सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक चेतना को जाग्रत करने का सफल प्रयास करती हुई दिखाई देती हैं। 'उसके हिस्से की धूप' में भी मधुकर व जितने के संवादों के माध्यम से पूँजीपति वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना व उनके द्वारा किए जाने वाले शोषण की ओर इंगित किया है। 'अनित्य' उपन्यास में भी वर्ग–चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। प्रभा का यह कथन – ''सत्ता का नशा होता ही ऐसा है कि हाथ में आते ही आदमी सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए काम करने लगता है। न भी करे तो देश की अर्थव्यवस्था बदले बगैर वर्ग–भेद मिट नहीं सकता। देश के अधिकांश लोग शोषित और गरीब बने रहेंगे।''[7] वर्ग भेद को समाप्त करने के लिए क्रांति की आवश्यकता बताते हुए कहती है – ''क्रांति होने पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था बिल्कुल टूट जाती है, पर नयी व्यवस्था स्थापित होने में समय लगता है। जब तक नये और पुराने का संघर्ष चलता रहता है.......... एक बार आर्थिक समानता स्थापित हो जाने पर लाभ के लिए श्रम करने की प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है और एक समय आता है जब किसी प्रकार के दमन या बल–प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती।''[8] शुभा का यह कथन वर्ग–भेद की ओर इंगित करता है – ''इतने लोग आये थे वहाँ। बढ़िया पौशाकें पहने, उम्दा गाड़ियों में बैठकर, ढेर सारा खाना साथ लिये। दूसरी तरफ भूखे बाढ़–पीड़ितों की कतार थी। उन्हें खाना चाहिये था ...... खाना मिला भी पर .....।'' तथा '' एक समाज में रहने वाले लोग इस तरह क्यों बंटे कि एक वर्ग के पास इतना हो कि वह मदद करने की सामर्थ्य रखे और दूसरे वर्ग के पास कुछ न हो, कि उसे मदद की जरूरत पड़े।'' [9] यह इस बात के लिए हमें सचेत करता है कि जब तक अवसर की समानता न हो, आर्थिक समानता न हो, तो लोकतंत्र या गणतंत्र की बात करने से क्या फायदा। उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के बीच बढ़ती हुई खाई को दूर करने के लिए लेखिका की चेतना की अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई

देती है। इनके माध्यम से यह अभिव्यक्त किया गया है, कि न्याय से वंचित बहुसंख्यक समाज अब अपने आस–पास घटित वास्तविकताओं को ज्यादा सजग होकर देख रहा है। समाज में समानता स्थापित होने की आवश्यकता के प्रति चेतना की अभिव्यक्ति हुई है।

औद्योगीकरण के विकास ने वर्ग–भेद की खाई को और अधिक गहरा किया है, जिससे वर्ग–संघर्ष बढ़ा है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से उथल–पुथल हुए सामाजिक परिवेश में आंतरिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता तथा सांप्रदायिकता जैसी सामाजिक समस्याओं के प्रति अपने अनुभवों को गहराई व ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। परिवार और समाज के बीच आज की नारी की अस्मिता को महत्त्व देते हुए राष्ट्रीय चेतना, शोषण के प्रति विद्रोह के साथ–साथ नारी–चेतना व वर्ग–चेतना को भी अभिव्यक्ति दी है।

रचनाकार की रचनादृष्टि का मूल संबंध उसकी जीवन–शैली व जीवन–दृष्टि से होता है जिसके कारण वह अपनी वर्गीय स्थिति व सामाजिक परिवेश से प्रभावित होता है। वह चाहे जिस वर्ग का हो अपने निजी अनुभवों, संवेदनाओं व कल्पनाओं की छाप अपनी रचना में अवश्य छोड़ता है। मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य तथा उनके जीवन पर भी इन अनुभवों व संवेदनाओं का असर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

(ग) सामाजिक–आर्थिक चिंतन :

व्यक्ति जिस सामाजिक परिवेश में जीता है, उसी में उसका व्यक्तित्व निर्माण व विकास होता है। जिस स्थान पर वह रहता है, उस स्थान, परिवेश, समाज व राष्ट्र के प्रति उसके हृदय में आत्मीयता की भावना जागरुक होती है। उस सामाजिक परिवेश की परिवर्तित होने वाली परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती हैं। साहित्यकार भी समाज–संबद्ध प्राणी होने के कारण इन परिवर्तित होती हुई सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है और साहित्य–सृजन की ओर प्रेरित होता है। वह सदैव अपनी जमीन, अपने परिवेश और अपने अनुभव–यथार्थ से ही साहित्य सृजन करता है। अपने परिवेश के अहसास के साथ लेखन–यात्रा की ओर अग्रसर होता है।

मृदुला जी ने सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवनदृष्टि के आधार पर अपने उपन्यासों की रचना की है। आपके जीवन में, सामाजिक परिवेश में, जो कुछ घटित हुआ तथा जो आपने अनुभव किया, महसूस किया वही उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। आपकी साहित्यिक रचनाओं में समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था के साथ–साथ आलोचनात्मक विचार भी उद्घटित हुए हैं। समाज में होने वाले परिवर्तनों से प्रत्यक्षतः समाज और परिवार प्रभावित हो रहे हैं। अस्तव्यस्त यांत्रिक जीवन, नये–पुराने मूल्य–संदर्भों से उपजी पीढ़ी–अंतराल की समस्या और अर्थ–प्राप्ति की लालसा ने मानव–जीवन में कई समस्याओं को जन्म दिया है। आजादी–प्राप्ति के बाद का समय, मोहभंग के साथ हर क्षेत्र में एक बिखराव की स्थिति तथा उस काल की घटनाओं ने जन–जीवन को अंदर तक आहत किया। देश–विभाजन ने आपसी प्रेम व भाईचारे की स्थितियों में भी परिवर्तन किया, जिससे जनता का जीवन त्रासद हो गया था। इनके उपन्यासों में रूढ़ियों, मूल्यों तथा संघर्ष करती हुई मानवीय अस्मिता व अपने स्वत्व को समाज में जीवन्त रखने का सफल प्रयास दिखाई देता है। अपने औचित्य एवं विवेकपूर्ण ढंग से खुद निर्णय लेने की सामर्थ्य वाली आत्मसजग स्त्री की छवि को उभारा एवं उकेरा है।

मृदुला जी के साहित्य में नई सामाजिक चेतना और वैचारिक स्फूर्ति स्पष्ट दिखाई देती है। राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से उथल–पुथल हुए सामाजिक परिवेश ने आंतरिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता तथा सांप्रदायिकता को बढावा दिया है। सामाजिक व आर्थिक स्थिति पर चिंतन मनन के आधार पर ही इन्होंने साहित्य की सृजना की है। इनके उपन्यासों में सामाजिक व आर्थिक जीवन की सच्चाई व्याप्त रही है, जिससे इनके साहित्य में प्रामाणिकता व विश्वसनीयता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। मृदुला जी के उपन्यासों में टूटते मूल्य, विघटित मर्यादा से बदलती मनःस्थिति को व्यक्त किया गया है। वर्तमान समाज में मनुष्य के बाह्य जीवन की

अपेक्षा उसके आंतरिक जीवन की संघर्षशीलता को अभिव्यक्त किया है। मनीषा, मनु जैसी स्त्रियों का आंतरिक जीवन संघर्षशील रहा है। मनुष्य के बाह्य सामाजिक जीवन की भाँति उसका आंतरिक मानसिक जीवन भी जटिल बन गया है।

वर्तमान समाज में अर्थ का महत्त्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। प्रत्येक कार्य अर्थ के माध्यम से ही सम्पन्न होता है, फिर चाहे वह व्यक्तिगत कार्य हो या समाजगत कार्य। अर्थलोलुपता के कारण व्यक्ति रिश्तों को तोड़ने में थोड़ी भी हिचक महसूस नहीं करता है। अर्थ प्राप्ति हेतु मनुष्य मानवता का हनन कर डालता है। अर्थ के प्रति बढ़ती महत्त्वाकांक्षा के कारण समाज अनैतिकता, भेदभाव, हीनता आदि अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है। समाज में व्यवहार, संबंध, रिश्ते आदि का निर्धारण भी आर्थिक ढाँचे पर ही आधारित है। आर्थिक अभावों के कारण समाज में जीवन– प्रक्रिया भी जटिल होती जा रही है। मृदुला जी ने भी अपने उपन्यासों में अर्थाभाव से उत्पन्न घुटन, जीवन–संघर्ष को रेखांकित किया है। जीविकोपार्जन संबंधी समस्या 'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार के माध्यम से व्यक्त की गई है। इनके उपन्यासों में तत्कालीन समाज में स्वयं झेला हुआ व्यक्तिगत अनुभव, सामज में व्याप्त दुर्दशा को परखने तथा उसके मूल को समझने की दृष्टि और दुर्दशा के प्रति गहन करूणभाव की अभिव्यक्ति हुई है। जीवन की सच्चाइयों का गंभीर विश्लेषण, जीवन–संदर्भ, कुंठाओं, पीड़ाओं, अतृप्त आकांक्षाओं को अभिव्यकत करने में इन्होंने सफलता प्राप्त की है।

मृदुला जी के उपन्यासों में भोगे हुए सामाजिक व आर्थिक स्थिति के यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। अपने आसपास के सामाजिक व आर्थिक जीवन की सभी स्थितियाँ इनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित हुई हैं। इनकी रचनाओं में तात्कालिक समय व समाज के साथ–साथ इनके चिंतन की अभिव्यक्ति स्पष्ट दिखाई देती है। नष्ट होते हुए पुराने व उदित होते हुए नये सामाजिक यथार्थ के पीछे छिपी चेतना इनकी रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आज का समाज अर्थ पर आधारित है। समाज के व्यवहार संबंध आदि का निर्धारण भी आर्थिक ढाँचे के आधार पर ही होता है। आर्थिक अभाव की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। अर्थाभाव से उत्पन्न घुटन, छटपटाहट, जीवन–संघर्ष की ओर मृदुला जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से ध्यानाकृष्ट किया है। युग विशेष का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व आर्थिक जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है। समाज के इन विभिन्न घटकों को अभिव्यक्ति प्रदान करके ही एक साहित्यकार अपने युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। मृदुला जी ने भी अपने उपन्यास–साहित्य में अपने युग के न केवल सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की है वरन् आर्थिक जीवन और उससे संबंधित समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है।

समाज की आर्थिक व्यवस्था संपूर्ण समाज की जीवन–पद्धति होती है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। वहाँ की आर्थिक स्थिति संपूर्ण समाज की अर्थव्यवस्था की द्योतक होती है। किसी भी समाज की आर्थिक स्थिति व अर्थव्यवस्था का आधार कृषि व उद्योग–धंधे होते हैं। मृदुला जी को समाज के आर्थिक चित्रण में गाँव के कृषक–जीवन की अपेक्षा शहरों में चल रहे उद्योग–धंधों ने अधिक आकर्षित किया है। आर्थिक जीवन का चित्रण करते हुए किसानों से संबद्ध सुख–दुख भरे चित्र की अपेक्षा मजदूर व पूँजीपति वर्ग का चित्रण इनके उपन्यासों में विशेष रूप से उभरकर सामने आया है। मृदुला जी ने तत्कालीन समाज में स्वयं के झेले हुए व्यक्तिगत अनुभव, समाज में व्याप्त दुर्दशा, तत्कालीन सामाजिक–साँस कृतिक–आर्थिक परिस्थितियों, जीवन की उलझनों, जटिलताओं व संघर्षों को आधार बनाकर अपने उपन्यासों में तात्कालिक व आधुनिक समाज की छवि को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। इनके उपन्यासों में एक ओर तो मनु, माधवी, मनीषा, जैसी विशिष्ट वर्ग की नारी–समस्याएँ हैं, तो दूसरी ओर स्मिता, नर्मदा, स्वर्णा, संगीता जैसी नारियाँ हैं, जो आर्थिक अभावों और सामाजिक विसंगतियों से जूझ रही हैं।

(घ) लोकतांत्रिक परिवेश :

लोकतांत्रिक व्यवस्था वह है, जिसमें जनता की सहभागिता हो, जनता की संप्रभुता हो। जनता ही सत्ताधारी होती है तथा उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। लोकतंत्र एक विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली ही नहीं है, वरन् एक विशेष प्रकार के राजनितिक संगठन, सामाजिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था तथा नैतिक एवं मानसिक भावना भी है। लोकतंत्र जीवन का समग्र दर्शन होता है, जिसकी व्यापक परिधि में मानव–जीवन के सभी पहलू आ जाते हैं। अब्राहम लिंकन ने लोकतंत्र को जनता द्वारा, जनता के लिए शासन बताया है। यह केवल शासन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समाज का एक संगठन भी है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतांत्रिक परिवेश वह सामाजिक परिवेश होता है, जिसमें कोई विशेषाधिकारयुक्त वर्ग नहीं होता और न ही जाति, धर्म, वर्ण, वंश, धन, लिंग आदि के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति के बीच भेदभाव किया जाता है।

लोकतंत्र में लोकनिष्ठा व लोकभावना का समावेश होता है। जन–कल्याण की भावना से सभी कार्य संपन्न किए जाते हैं। सबकी भावनाओं का सम्मान होता है और अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से प्रकट करने का पूरा अवसर मिलता है। भेदभाव, विषमता व असमानता के लिए कोई स्थान नहीं होता है। समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने विकास का समान अवसर व भौतिक सुविधाएँ मिलें, लोगों के बीच आर्थिक विषमता न हो तथा एक दूसरे का शोषण न किया जा सके। समाज में व्याप्त घोर निर्धनता व विपुल संपन्नता की गहरी खाई से युक्त वातावरण में लोकतंत्रात्मक राष्ट्र का निर्माण असंभव है। लोकतंत्र का आधार समता, सहिष्णुता, आदर की भावना, व्यक्ति की गरिमा का सिद्धांत ही होते हैं। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली का किसी राष्ट्र में होना इस बात का संकेत होता है, कि राष्ट्र के शासन में प्रत्येक व्यक्ति की समान भागीदारी है।

मृदुला जी समाज में व्याप्त असमानता की ओर इंगित करते हुए कहती हैं कि विशिष्ट वर्ग और आम जनता के बीच का फर्क लोकतांत्रिक परिवेश के लिए बाधक है। विशिष्ट वर्ग को यहाँ सब सुविधाएँ प्राप्त हैं और आम जनता को एक भी सुविधा उपलब्ध नहीं है। हमारे समाज में धन पर जनसंख्या के एक बहुत छोटे प्रतिशत हिस्से का अधिकार है, जिससे ऊँची शिक्षा, पद, उद्योग–धंधे और सत्ता इसी वर्ग के वंशजों के हाथों में रहती चली जाती है। जब तक अवसर की समानता नहीं होगी, तब तक आर्थिक समानता या लोकतांत्रिक परिवेश की स्थापना कर पाना असंभव है।

(ड.) मानवीय अस्मिता :

मानवीय अस्मिता से तात्पर्य– एक मनुष्य की अपनी विशिष्टता व पहचान से है। अपने 'स्व' की पहचान कराना, उसके विचारों में परिवर्तन लाना तथा उसे उसके अधिकारों के प्रति सचेत करना है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या नारी, अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग होता है, क्योंकि उसका व्यक्तित्व ही समाज में उसकी पहचान कराता है। अपने अस्तित्व की पहचान द्वारा ही व्यक्ति अपने जीवन को सत्य, शिव और सुंदर बना देता है। मनुष्य असीम संभावनाओं से युक्त ऐसा पूँजीभूत रूप है, जो अपने स्वतंत्र कर्म द्वारा अपनी उच्चतम सफलताओं को प्राप्त कर सकता है।

अस्मिता की अवधारणा से तात्पर्य है 'स्व' की पहचान तथा अपने होने का बोध। इसी बोध के कारण लिंग, जाति, रिश्ते–नाते, समाज–धर्म, देश–राष्ट्र, बोली तथा व्यवसाय के आधार पर मानव अपनी अस्मिता की पहचान करता है। अपने अस्तित्व की पहचान मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण व सर्वोपरि है। समाज से अपने रिश्ते की पहचान कर, मनुष्य उसका छोर थामकर अपने 'स्व' की तलाश में भीतर की ओर मुड़ता है। समाज से उसका निजी संबंध ही बहुत बड़े स्तर पर मानव की 'स्व' की तलाश का स्वरूप तय करता है। आज मनुष्य परिवार व समाज में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। वह संघर्ष चाहे अर्थ के लिए हो,

चाहे अस्मिता के लिए हो या अधिकारों की प्राप्ति के लिए हो। मानव समाज में स्त्री भी एक ऐसी सम्पूर्ण मानवीयता है, जो शारीरिक भिन्नता लिए असीम संभावनाओं का वैसा ही पूंजीभूत रूप है, जो अपनी आंतरिकता, वैयक्तिकता और स्वतंत्रता द्वारा जीवन के उच्चतम सौपानों को स्पर्श कर सकती है।

मृदुला गर्ग ने अपने लगभग सभी उपन्यासों में स्त्री को ही महत्त्व दिया है, क्योंकि वर्तमान में भी नारी अपनी इच्छा से कार्य नहीं कर पाती है। आज भी नारी को पुरुष से कमतर ही आंका जाता है। आज भी स्त्री अपना जीवनसाथी चुनने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। इसलिए मृदुला जी चाहती हैं, कि उनकी स्त्री चाहे नौकरीपेशा हो या घरेलू, शिक्षित हो या अनपढ़, पर वह स्वावलंबी हो। अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हो। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों को आत्मनिर्भर व स्वावलंबी बनने की प्रेरणा दी है। उनका मानना है कि स्त्री को अपने आपको लाचार व कमजोर नहीं समझना चाहिए। 'कठगुलाब' की मारियान के अनुसार "अपने को कमतर मानने वाली औरतें मर्द होना चाहती हैं।"[10] नारी–स्वतंत्रता में बाधक नैतिकता के प्रतिमानों का विरोध करते हुए नारी को पहचान देने का प्रयत्न किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों के विषयरूप में प्रेम, सेक्स, अस्तित्व, क्षण को चुना है। इनका मानना है कि प्रेम से बढ़कर कुछ नहीं है और इसी प्रेम के माध्यम से इन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री–अस्मिता की तलाश का प्रयास किया है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्तकोबरा' में विवाहित स्त्री के द्वंद्व , भावनात्मक टकराहट तथा उसके निर्णय लेने की स्थिति को दर्शाया गया है, तो 'कठगुलाब' में वर्तमान स्त्री के संघर्ष और उसकी इच्छाओं को अभिव्यक्ति दी है।

मृदुला गर्ग अपने उपन्यासों में पुरानी विचारधाराओं और नारी विकास में बाधक परंपराओं का विरोध करती हैं। नारी की पूर्ण स्वतंत्रता और परंपराओं के बंधन से मुक्ति के लिए नारी की शिक्षा, आत्मविश्वास, आर्थिक आत्मनिर्भरता व उसके अस्तित्व को महत्त्व दिया है। इनके उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र नारी स्वातंत्र्य में बाधक परंपरावादी सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए, उपेक्षाओं और तिरस्कारों, शोषण व अत्याचारों का विद्रोह करते हुए अपने अस्तित्व को व्यक्त करती हैं। इनके उपन्यासों की नारी सशक्त है, जो अपने विकास में बाधक मूल्यों का विरोध करती है। इन्होंने स्त्री को उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि जीवित व्यक्तित्व माना है। इनके उपन्यासों में एक ओर मनु, माधवी, मनीषा जैसी विशिष्ट वर्ग की नारी समस्याएँ हैं, तो दूसरी ओर स्मिता, नर्मदा, स्वर्णा, संगीता का वर्ग है, जो आर्थिक अभावों और सामाजिक विसंगतियों दोनों से जूझ रहा है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नारी सशक्तीकरण की अभिव्यक्ति को महत्त्व दिया है। इनका सशक्तीकरण से तात्पर्य मानस को सशक्त करना, चेतना, प्रज्ञा, अस्मिता को सशक्त करने से है। इनके उपन्यासों की नारी सशक्त व सक्षम रूप में जीवन पथ पर अग्रसर होती हुई दिखाई देती है, जिसे इन्होंने एक मनुष्य के रूप में स्थापित किया है। नारी की सामाजिक स्थिति व मानसिकता को गहराई से अभिव्यक्त किया है। 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो विवाह के पश्चात अपनी मर्जी से जीना चाहती है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न व आत्मनिर्भर मनीषा दो पुरुषों के मध्य एकाकीपन को भरने का प्रयास करती है। वह उच्च मध्यमवर्ग की पढ़ी–लिखी विचारवान नारी है, जो अपनी अस्मिता के प्रति सजग होती हुई दिखाई देती है। वह निर्णय लेने में सक्षम है और यह जान जाती है, कि जीवन का एकाकीपन किसी पुरुष के प्रेम से नहीं भर सकता है। अपने बल पर, कर्म द्वारा अपने भीतर से ही परिपूर्णता मिलती है। अपने आत्मपरितोष के लिए साहित्य सृजन करके अपनी एक अलग पहचान बनाती है – "मनीषा ने उसके हाथ से दोनों चीजें थाम लीं और अकम्पित लिखाई में अपना नाम मुखपृष्ठ पर लिख दिया। मनीषा। यह उसका अपना नाम है। इसका ताल्लुक न जितेंद्र राय से है, न मधुकर नागपाल से। मनीषा के 'म' के मुखपृष्ठ पर फैलते–फैलते, उसके होठों पर भी संतुष्ट मुस्कुराहट फैल गई। जिस आत्म– गौरव का अनुभव उसने इन कहानियों को लिखते समय और फिर उन्हें संकलन–रूप में देखकर किया था, आज जितेन के सामने उन्हें अपना घोषित करते हुए फिर उसके अंतर को गहरे से छू गया। हस्ताक्षर

कर देने के बाद भी कुछ देर तक, वह किताब को कसकर थामें रही, और नजर मुखपृष्ठ पर जमाये रही। लगा, जीवन की तमाम विचलता के बीच एक ऐसा बिंदु भी है जो सदा अपनी जगह स्थिर रहेगा।''[11] तथा – ''वह सीधी अपने कमरे में रखी अपनी लिखाई की मेज पर जा पहुँची और वहाँ पड़ा कलम हाथ में थाम लिया। तुम मुझे लेखिका मानो–न–मानो, मधुकर, कुछ फर्क नहीं पड़ता, उसने मन–ही–मन कहा। मैं लिखूँगी, अवश्य लिखूँगी और वह, जो मुझे परितोष दे सके। उससे और कोई नतीजा न भी निकले, कम–से–कम मुझे तसल्ली तो होगी कि जो कुछ भी कर सकती थी मैंने किया।''[12]

इनके उपन्यासों की नारी अपने परिवेश के प्रति सजग है। अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत है तथा अपने अस्तित्व के प्रति उत्तरदायी है। वह भावुकता से नहीं बल्कि बौद्धिकता से काम लेती है, जिसके कारण उसके सोचने–समझने और महसूस करने के ढंग, उसके दृष्टिकोण सभी में बदलाव आया है। 'वंशज' की सविता भी एक व्यवहारकुशल नारी है, जो भारतीय नारी की बदलती छवि को अभिव्यक्त करती है। 'चित्तकोबरा' की नायिका मनु के रूप में एक चिंतनशील नारी की अभिव्यकित मिलती है, जो अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। अन्य पुरुष रिचर्ड से उसका लगाव है, जो शारीरिक मोह के कारण न होकर मानसिक तुष्टि की वजह से है। महेश व रिचर्ड दोनों के साथ रहते हुए भी वह अपनी अस्मिता को बनाये रखना चाहती है। वह महेश के साथ अपने बेमेल विवाह को साहस के साथ नकारती है तथा उसके भीतर आत्मविश्वास द्वारा अपने जीवन को बदलने की अदम्य क्षमता है। अंत में मनु निर्णय लेकर कविताओं द्वारा अपने मन की भावनाओं को अभिव्यक्त करके अपने व्यक्तित्व को सार्थक करती है।

लेखन की तरह ही इनकी नारी राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी स्वतंत्र पहचान बनाती हुई दिखाई देती है। 'अनित्य' उपन्यास की काजल राजनीति में रुचि रखती है। उसके मन में देश की राजनीतिक व्यवस्था सुधारने की ललक है। वह इतिहास को दुहराना चाहती है और जो अधुरा रह गया था, उसे पूरा करना चाहती है। 'मैं और मैं' की माधवी भी एक गृहिणी होने के साथ–साथ महत्त्वाकांक्षी और बौद्धिकता से युक्त लेखिका है। आर्थिक अभावों का शिकार कौशल कुमार जो कि एक सशक्त लेखक है, माधवी के महत्त्वाकांक्षी स्वभाव का फायदा उठाता है, परंतु माधवी उसकी हर कोशिश को नाकामयाब कर देती है। 'कठगुलाब' की स्मिता अपने जीजा द्वारा बलात्कार का शिकार होने के बावजूद अपने मन में प्रतिशोध की भावना लिए आगे की पढ़ाई पूरी करती है। इस उपन्यास की स्त्रियाँ वैवाहिक, पारिवारिक, सामाजिक बंधनों व अत्याचारों से मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं तथा उनमें निर्णय लेने की, पारिवारिक व आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता हासिल करने की क्षमता है। ये सभी नारियाँ अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं।

(च) मूल्य बोध :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण व विकास होता है तथा उस समाज में घटित होने वाली घटनाएँ उसके मन–मस्तिष्क को प्रभावित व उद्वेलित करती हैं। अपनी बुद्धि व विवेक के कारण मानव सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी माना जाता है। मानव–जीवन को सुखमय व निरापद बनाने की दृष्टि से मनुष्य ने अपने विवेक और बुद्धि के आधार पर कुछ मानदंड स्थापित किए हैं, जिनका निर्धारण मानव–जीवन के सामूहिक हितों को ध्यान में रखकर किया गया है। मानव जीवन को उच्छृंखलता से बचाने के लिए निर्धारित मानदंड ही मानव–मूल्य अर्थात जीवन–मूल्य कहलाते हैं। मूल्य वे अमूर्त धारणाएँ हैं, जो किसी वस्तु, भाव अथवा विचार के प्रति बनाई जाती हैं और मानव–मस्तिष्क एवं हृदय से संबंधित होती हैं। समाज में मूल्यों का अपना अस्तित्व होता है। वे समाज में अवस्थित रहते हैं। मूल्य किसी भी समाज के आचार–व्यवहार, भाषा, धर्म, संस्कृति आदि में निहित होते हैं तथा काल–सापेक्ष होते हैं। मानव–जीवन को सही दिशा में आगे ले जाने के लिए मूल्य आवश्यक हैं, जो मानव–जीवन को सुखमय बनाने में सहायक होते हैं।

समाज में रहते हुए ही व्यक्ति द्‍वारा समाज में घटित होने वाली घटनाओं को समझना एवं अपनाना आरंभ किया जाता है। वह सामाजिक, साँस कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिवेश के अनुसरण द्‍वारा ही ज्ञानार्जन करता है तथा समाज द्‍वारा मान्यता–प्राप्त, विकसित एवं प्रचलित कुछ मानदंडों, इच्छाओं एवं लक्ष्यों को अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित कर लेता है। समाज में नैतिक, धार्मिक, साँस कृतिक परंपराएँ, मान्यताएँ और धारणाएँ होती हैं, जिनके अनुरूप आचरण करना पड़ता है। समाज की ये परंपराएँ, मान्यताएँ व धारणाएँ मूल्य कहलाती हैं। मूल्य की रचना–प्रक्रिया में मनुष्य की चेतना कार्य करती है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास से संबद्‍ध होती है। मूल्यों के निर्माण में पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षण संस्थाएँ एवं सामाजिक क्रियाकलाप व व्यवहार का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जीवन में मूल्यों के अर्जन व विकास में माता–पिता व परिवार के साथ–साथ गुरु का बड़ा योगदान होता है। समाज की आवश्यकताओं पर आधारित मूल्यों का समाज के साथ–साथ ह्‍रास–विकास होता रहता है।

सामाजिक मूल्यों से ही व्यक्ति की चेतना प्रभावित होती है। व्यक्ति का हित समाज के हित में ही निहित होता है तथा सामाजिक मूल्यों में विश्वास रखने से ही समाज–कल्याण संभव होता है। व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि जीवन अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण भिन्न होता है, जो मानव मूल्यों को आधार प्रदान करता है। व्यक्ति द्‍वारा उच्चादर्शों की प्राप्ति का मानदंड मूल्य ही होते हैं, जिनसे मानव का उत्कर्ष संभव है। मानव के बौद्धिक विकास के साथ–साथ पुराने जीवन–मूल्य टूटते हैं, फिर बनते हैं तथा विकसित होते हैं, और यह क्रम निरंतर चलता रहता है।

साहित्य अपने समाज की संस्कृति के मूल्यों का वाहक होता है। चूंकि साहित्य की रचना मानव–जगत के लिए की जाती है, इसलिए वह हमारे बाह्‍य और आंतरिक जीवन को प्रभावित करता है। ''जीवन ही साहित्य बनाता है और यदि साहित्य जीवन–मूल्यों से विच्छिन्न हो जाए तो वह केवल मनोरंजन का साधन–मात्र बनकर रह जाएगा, जीवन के साथ उसका कुछ भी संबंध नहीं होगा। साहित्य एवं जीवन–मूल्य के परस्पर संबंध को स्पष्ट करते हुए मैथ्यू आर्नाल्ड ने साहित्य को जीवन की व्याख्या कहा है।''[13] अर्थात साहित्य का संबंध जीवन के सर्वांगीण पक्ष से है। जीवन के शाश्वत मूल्यों–सत्यं, शिवं, सुंदरं–की सामंजस्यपूर्ण प्रतिष्ठा ही साहित्य की सफलता की पराकाष्ठा है। इसमें जीवन का संदेश निहित होता है। इसकी आधारभूमि जगत है।

मूल्यों से संपृक्त होकर ही कोई साहित्यिक कृति प्रयोजनीय होती है। साहित्यकार, जीवन मूल्यों और मानव विकास की संभावनाओं पर चिंतन करता है। वह युगीन परिस्थितियों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होता है, क्योंकि ये परिस्थितियाँ ही उसके मानस को उत्तेजित व उद्वेलित करती हैं। वह अपने पाठकों में जीवन–मूल्यों की चेतना को जाग्रत करने तथा उन्हें जीवन में उतारने की प्रेरणा देता है। कृति के माध्यम से जीवन–मूल्यों की सच्चाई अभिव्यक्ति पाती है। साहित्यिक कृति में आए सामाजिक चित्रण, सामाजिक संबंधों, सामाजिक व्यवस्था के प्रति दृष्टि, युगीन ज्वलंत समस्याओं व प्रश्नों से जूझने का प्रयास आदि के द्‍वारा साहित्य में जीवन–मूल्यों का बोध कराया जाता है। मानव–जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करना ही साहित्य का प्रयोजन होता है तथा यह अर्थवत्ता जीवन–मूल्यों की चेतना से प्राप्त होती है। ''साहित्य में जीवन मूल्य कल्पनाजन्य न होकर रचयिता के अनुभूत सत्य होते हैं, किंतु इनकी सार्थकता सामाजिक संदर्भो में ही है। यही लेखक की प्रतिबद्‍धता है। अनुभव चाहे कितना ही व्यक्तिगत और विशिष्ट क्यों न हो, यथार्थ का भोग चाहे कितना ही निजी और स्वानुभूतिवादी क्यों न हो, वह मानवीय अनुभव और मानवीय यथार्थ का विरोधी नहीं हो सकता। उस अनुभव की प्रामाणिकता भी व्यापक सामाजिक और मानवीय संदर्भो में ही हो सकती है।''[14] लेखक का रचनाकर्म व्यक्तिगत होते हुए भी मूलतः समाज के लिए ही होता है। जीवन–मूल्यों के आधार को ग्रहण किए बिना साहित्य की सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकती है, क्योंकि साहित्य का मूल

प्रयोजन ही मानवीय जीवन होता है। जीवन–मूल्यों में जब–जब बदलाव आता है, तब–तब साहित्य में भी क्रांतिकारी परिवर्तन होते रहते हैं।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में निरंतर संक्रमित होते जीवन–मूल्यों को चित्रित किया है और नवीन मूल्यों की स्थापना भी की है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह दर्शाने का सफल प्रयास किया है, कि परंपरागत मानवीय संबंधों का रूप विकृत हो चला है, रिश्तों में दारारें आने लगी हैं, पुराने मूल्य आधुनिकता की निरंतर चोट के कारण या तो टूट रहे हैं या फिर नए रूप में ढल गए हैं। जो आदर्शपरक जीवन–मूल्य स्वतंत्रता–संघर्ष की प्रेरक शक्ति बने थे, कालांतर में वे सब कुंठा, घुटन, अन्तर्द्वन्द्व में बदल गए। प्रेम, विवाह, शारीरिक पवित्रता, मातृत्व–भ्रातृत्व सबके अर्थ बदल रहे हैं। पीढ़ियों का अंतर तथा पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण मूल्यों का विघटन हुआ है। पारिवारिक संबंधों में निरंतर गिरावट, खोखले संबंध एवं आत्मीय संबंधों के बीच उपजी रसहीनता को इन्होंने अपने उपन्यास 'वंशज' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् देश में होने वाले औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप एक नई नैतिकता का जन्म हुआ है। व्यक्ति की मशीनी जिन्दगी के कारण आपसी संबंधों में हलचल मची हुई स्पष्ट दिखाई देती है। स्त्री–पुरुष संबंध, पति–पत्नी संबंध, पिता–पुत्र संबंध में परिवर्तन आया है। आज दांपत्य जीवन में मधुरता का अभाव व अलगाव तथा नीरसता निर्मित हुई है। वर्तमान समाज में मूल्यों का विघटन मृदुला जी के उपन्यासों में कथ्य के रूप में उभरकर आया है। पुराने मूल्य बिखरकर युगानुकूल नये मूल्य विकसित हुए हैं। इनके उपन्यास 'अनित्य' में भ्रष्टाचार जैसे अवमूल्यन हैं तथा अविजित का अपनी बेटी की उम्र की अपनी आश्रिता संगीता पर कुदृष्टि डालना जीवन–मूल्यों के अवमूल्यन को ही दर्शाता है। 'चित्तकोबरा' की मनु का अपने पति के रहते हुए किसी दूसरी औरत के पति से शारीरिक संबंध भी बदलती मानसिकता व मूल्यों के पतन को अभिव्यक्त करता है। 'मैं और मैं' में भी जिन मूल्यों को लेखिका अपने साहित्य में रचती है, वास्तविक जिंदगी में उन्हीं मूल्यों से मुँह मोड़ती चली जाती है तथा कौशल कुमार जिसके मन में समाज की बुराईयों के प्रति आक्रोश है, लेकिन वह स्वयं भी माधवी का मानसिक व आर्थिक शोषण करने से नही कतराता है और उसे धोखा देता है। 'कठगुलाब' में स्मिता के जीजा द्वारा बलात्कार में उसकी बहन नमिता की साझीदारी होना, नाबालिग नर्मदा का उसकी बहन के होते हुए बहन के पति से शादी करवाना, असीमा के भाई के साथ नमिता के अवैध संबंध, विपिन का स्मिता, असीमा व नमिता की बेटी नीरजा के साथ पिता बनने का आग्रह जताना, दर्जन बीबी के होते हुए उसके पति द्वारा दूसरा विवाह करना भी मूल्यों के अवमूल्यन को दर्शाता है। पति–पत्नी के जीवन–मूल्यों का अवमूल्यन अविजित, मनीषा, मनु के माध्यम से चित्रित किया गया है। इन्होंने वर्तमान समाज में पनपने वाली जीवन–मूल्यों के अवमूल्यन की स्थिति को अभिव्यक्त किया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नवीन परिस्थितियों के कारण परंपरागत सामाजिक मूल्यों का विघटन हुआ है। देश–विभाजन के पश्चात् सामाजिक जीवन में आए बदलाव तथा आपसी संबंधों में आए बदलाव को मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है। पारिवारिक व सामाजिक मूल्यों का विघटन, मानसिकता में परिवर्तन, कुंठा, घुटन, नारी–शोषण व विद्रोह, महानगरीय जीवन का संत्रास, असफल दांपत्य–जीवन, झूठ, रिश्वत, भ्रष्टाचार, छल आदि सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण इनके उपन्यास साहित्य में मुखरित हुआ है, जो सामाजिक मूल्यों के विघटन का द्यौतक है। मानव मूल्यों के परिवर्तन ने समाज तथा राष्ट्र को ही नहीं, अपितु साहित्य को भी प्रभावित किया है। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में परंपरागत सामाजिक एवं साँस कृतिक मूल्यों के परिवर्तित रूप को प्रस्तुत किया है। इन्होनें अपने उपन्प्यासों में ऐसी नारियों का चित्रण किया है, जो विवाह प्रथा का विरोध करती हुई तथा स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करती हुई दिखाई देती हैं। दांपत्य–जीवन संबंधी परंपरागत नैतिक मान्यताएँ शिथिल होती दिखाई देती हैं।

मृदुला जी ने पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक, साँस कृतिक आदि सभी स्तरों पर जिस बोध को आत्मसात किया है, उस सत्य की जीवन्त और सार्थक अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में हुई है। संशय, द्वेष, संत्रास और असुरक्षा के परिवेश में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखंडन तथा पारिवारिक मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। परिवारों में व्याप्त प्रेम, सोहार्द्र, अपनत्व, भाईचारा आज टूटन, कुढ़न, घुटन तथा टकराहट में परिवर्तित होता जा रहा है। मृदुला जी ने मानवीय संबंधों में आए खोखलेपन को अपने उपन्यासों में दृढ़ता से अभिव्यक्ति दी है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला गर्ग के उपन्यासों में व्यक्त विश्वदृष्टि को निर्मित करने में इनके पारिवारिक–सामाजिक परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कम उम्र में महान साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़ने के कारण साहित्य इनकी चेतना का अंग बन गया। 'थ्र द लुकिंग ग्लास' नाम की कहानी को पढ़कर जीवन में रफ्तार के साथ दौड़ना सीखा। इन्होंने जो कुछ भी लिखा वह अपने सामाजिक परिवेश से प्राप्त अनुभवों व साहित्याध्ययन से प्राप्त दृष्टि के आधार पर लिखा। इनकी दृष्टि सदैव मानव पर केन्द्रित होती है। स्वतंत्रता–संग्राम व स्वतंत्रता–प्राप्ति के बीच के संक्रांति काल ने इनकी विश्वदृष्टि को निर्मित करेन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। समाज में व्याप्त असमानता की ओर इंगित करते हुए लोकतांत्रिक परिवेश की स्थापना के लिए अक्सर की समानता पर बल दिया है। विशिष्ट वर्ग और आम जनता के बीच का फर्क लोकतांत्रिक परिवेश के लिए बाधक बताया है। इनके उपन्यास साहित्य की कथावस्तु के केंद में मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवार ही हैं। नारी–शिक्षा व नारी–उन्नति के कारण उसके मन में उत्पन्न स्वतंत्रता की चाहत ने एकल परिवारों को जन्म दिया है। पुरानी व नई पीढ़ी की वैचारिकता में अंतर व पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप महानगरीय मध्यमवर्ग में एकल परिवारों का महत्त्व बढ़ा है। व्यक्ति की बढ़ती महत्त्वकांक्षाओं के कारण सामाजिक नैतिक जीवन–मूल्यों के पतन व पारिवारिक–सामाजिक संरचना का विखंडन हुआ है।

मनुष्य को अपने 'स्व' की पहचान करते हुए अपने विचारों में परिवर्तन के साथ–साथ अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना भी मृदुला जी की दृष्टि में अंतर्निहित है। आज भी समाज मे नारी को कमतर ही आंका जाता है, इसीलिए इन्होंने नारी–स्वतंत्रता में बाधक प्रतिमानों का विरोध करते हुए नारी को पहचान देने का प्रयत्न किया है। नारी की पूर्ण स्वतंत्रता व परंपराओं के बंधन से मुक्ति के लिए नारी–शिक्षा, आत्मविश्वास, आर्थिक आत्मनिर्भरता व उसके अस्तित्व को महत्त्व दिया है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में समाज के निरंतर संक्रमित होते जीवन–मूल्यों के चित्रण के साथ ही नवीन मूल्यों की स्थापना भी की है। पारिवारिक व सामाजिक मूल्यों का विघटन, महानगरीय जीवन का संत्रास, भ्रष्टाचार के कारण परंपरागत नैतिक मान्यताएँ शिथिल होती दिखाई देती हैं, जिनके कारण मानवीय संबंधों में आए खोखलेपन ने व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखंडन व पारिवारिक मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। मृदुला जी के उपन्यास साहित्य में नई सामाजिक चेतना व वैचारिक स्फूर्ति को सामाजिक व आर्थिक स्थिति पर चिंतन–मनन के आधार पर ही अभिव्यक्त किया है। वर्तमान समाज में टूटते मूल्यों व विघटित मर्यादा से बदलती मनःस्थिति को व्यक्त किया है। अर्थ के प्रति बढ़ती महत्त्वकांक्षा के कारण तथा आर्थिक अभावों के कारण सामाजिक जीवन में उत्पन्न घुटन व जीवन–संघर्ष को रेखांकित किया है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गर्ग, मृदुला. (2012). मेरे साक्षात्कार. नयी दिल्लीः किताबघर प्रकाशन. पृ. सं. – 32.
2. वही, पृ. सं. – 32.
3. गर्ग मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 78.
4. वही, पृ. सं. – 71.
5. वही, पृ. सं. – 78.
6. वही, पृ. सं. – 136.
7. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 188.
8. वही, पृ. सं. – 188.
9. वही, पृ. सं. – 177.
10. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 31.
11. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 38.
12. वही, पृ. सं. – 148.
13. सेठी, हरीश कुमार. (2008). जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्लीः संजय प्रकाशन. पृ. सं. – 223.
14. वही, पृ. सं. – 225.

:– चतुर्थ अध्याय :–

मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

साहित्यकार अर्थात उपन्यासकार का भी अपना सामाजिक परिवेश होता है तथा उसी परिवेश में निहित विशेष सामाजिक परिस्थितियों को आधार बनाकर ही साहित्यिक कृति अर्थात उपन्यास की रचना–प्रक्रिया पूर्ण की जाती है। उपन्यास का संबंध मानव से, देशकाल–वातावरण से, सामाजिक परिस्थितियों से होता है, जो परिवर्तनशील होते हैं, जिसके कारण कालानुसार व स्थानानुसार उपन्यास का स्वरूप व अवधारणा भी परिवर्तित होते रहते हैं। उपन्यास में किसी समाज विशेष का समग्र जीवन अभिव्यक्त होता है। उस समाज में निवास करने वाले जन–समूह के विचारों, भावों, आशा–आकांक्षाओं का मूर्त रूप तात्कालिक औपन्यासिक कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। उपन्यासकार की व्यक्तिगत चेतना, उसका सामाजिक परिवेश, आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा शिक्षा और नैतिक मूल्यों का प्रभाव उसके उपन्यासों पर भी पड़ता है। किसी भी कृति की रचना में रचनाकार का सामाजिक दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। रचनाकार की जीवन–दृष्टि जितने स्वस्थ एवं प्रगतिशील सामाजिक मूल्यों पर आधारित होती है, उतनी ही उदात्त और मूल्यवान उसकी रचना भी होती है। उसकी रचनाओं में वैयक्तिक भावनाओं से अधिक जनता के सामाजिक संबंध प्रतिबिंबित होते हैं। रचनाकार की व्यक्तिगत चेतना भी सामाजिक चेतना से ही प्रभावित होती है। अतः उसकी सामाजिक चेतना का प्रभाव उसकी कृतियों में जाने–अनजाने आ ही जाता है। उसकी व्यक्तिगत चेतना, उसका जीवनादर्श, यथार्थ चित्रण की कलात्मकता में उसकी सामाजिक चेतना प्रतिबिंबित होती है। किसी भी रचना में रचनाकार का निजी व्यक्तित्व और उसकी सामाजिक चेतना दोनों समन्वित रहते हैं। उसकी दृष्टि समग्र समाज पर रहती है तथा वह समाज से प्राप्त अनुभवों को ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। वह समाज की गतिविधियों को अपना विषय बनाते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी सामाजिक स्थिति का चित्रण करता है, जिसमें तात्कालिक समाज के सुख–दुःख, आचार–विचार, रीति–रिवाज व मूल्यों की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। युगानुरूप होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ साहित्य में भी परिवर्तन आता रहा है तथा सामाजिक जीवन के अनेक स्तर उद्घाटित हुए हैं। उपन्यासकार के सामाजिक अनुभव ही उसके उपन्यासों का मूल स्वर होते हैं। वह गाँवों से लेकर महानगरों तक के सामाजिक परिवेश को अपने उपन्यासों के कथ्य में समेटता है। वह समाज में जैसा देखता है, महसूस करता है, वैसा ही वर्णन अपने उपन्यासों में करता है। उपन्यास में उपन्यासकार का सामाजिक बोध रेखांकित होता है तथा वह उसकी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है।

मृदुला गर्ग ने सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवन–दृष्टि के आधार पर अपने उपन्यासों की रचना की है। जो कुछ इनके परिवेश में घटित हुआ, जो इन्होंने महसूस किया और अनुभव किया, वही अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। आप अपने निजी अनुभवों, संवेदनाओं व कल्पनाओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करती हुई दिखाई देती हैं। इनके जीवन पर भी अपने सामाजिक परिवेश का असर दिखाई देता है। इन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, आडंबरों, मान्यताओं पर व्यंग्य करते हुए परंपराओं से परे जीवन को जीने की कामना की है। आप प्रत्येक स्थिति में स्वतंत्रता की समर्थक दिखाई देती हैं, यह स्वतंत्रता चाहे पारिवारिक हो या सामाजिक। आपने अपने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास को सर्वाधिक सशक्त माध्यम माना है, क्योंकि इसके माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को पूरे विस्तार के साथ रखा जा सकता है। इन्होंने अपने उपन्यासों में समाज की त्रासदियों व विरूपताओं को बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। इनके उपन्यासों में एक नई मूल्यपरक दृष्टि से समाज की ज्वलंत समस्याओं की परिवर्तनशीलता की अभिव्यक्ति के साथ–साथ मनुष्य की मानसिक विकृतियों, विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास दिखाई देता है। इनके उपन्यासों में जीवन के विविध क्षेत्रों से अनुभवों को बटोरते हुए आजादी के मोहभंग से उत्पन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

मृदुला जी ने जीवन व समाज को अपनी खुली आंखों से देखा व जाँचा–परखा है, अनुभव किया है और उसके बाद उस आँखों देखे सत्य, अनुभव किए व भोगे हुए यथार्थ को अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वर्तमान समाज में घर–परिवार, दांपत्य–संबंधों, सामजिक–राजनीतिक विसंगतियों, टूटते जीवन–मूल्यों, दमन–शोषण, नारी–उत्पीड़न, सांप्रदायिक विद्वेष, टूटते–बिखरते रिश्ते, आम आदमी के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त करने के साथ–साथ बेहतर समाज निर्माण की परिकल्पना इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त की गई है। इनके उपन्यासों में निहित सामाजिक परिप्रेक्ष्य को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट समझा जा सकता है –

(क) पारिवारिक व सामाजिक स्थिति :

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में महानगरीय मध्यमवर्गीय समाज को केंद में रखकर ही अपने शब्दों का ताना–बाना बुना है। इन्होंने समाज की बदलती गतिविधियों पर बराबर नजर रखकर अपने अनुभवों के आधार पर अपने उपन्यासों में उन्हें साकार करने का सफल प्रयास किया है। अपने समाज के मानवजीवन की सूक्ष्मता को कृति का रूप देकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों में गहन अंतर्दृष्टि का अंतर्भाव ही रचनाकार को महान बनाता है। वह सामाजिक जीवन की सतह में गहरे प्रवेश करके, उन स्थितियों का उद्घाटन करता है, जिसमें स्त्री–पुरुष समाज का अनुभव करते हैं। सामाजिक व्यवस्था में परिवार के अन्य संबंधों के साथ ही माता–पिता और बच्चों के संबंध में तथा पति–पत्नी के संबंधों में तेजी से आने वाले बिखराव का चित्रण इन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है। आज के समाज में मानवीय संबंधों में आए खोखलेपन को बड़ी दृढ़ता से अभिव्यक्त किया है।

मृदुला जी के उपन्यासों में महानगरीय सामाजिक परिवेश में एकल परिवार को केंद में रखा गया है। 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'मैं और मैं', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'कठगुलाब' सभी उपन्यासों के पात्र एकल परिवार से ताल्लुक रखते हैं। इनका एकमात्र उपन्यास 'मिलजुल मन' संयुक्त परिवार को चित्रित करता है। इनके 'कठगुलाब' उपन्यास के अंत में गोधड़ नामक गाँव के माध्यम से ग्रामीण परिवेश की अभिव्यक्ति मिलती है। महानगरीय सामाजिक परिवेश में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखंडन व पारिवारिक मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। परिवार में व्याप्त प्रेम, सौहार्द्र, अपनत्व, भाईचारा आज टूटन, घुटन व टकराहट में परिवर्तित होता हुआ दिखाई देता है। इनके उपन्यासों में तात्कालिक सामाजिक–साँस कृतिक दशाओं को चित्रित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर समाज में मध्यमवर्ग की जिंदगी और सामाजिक–पारिवारिक स्तर पर आने वाले बदलाव व व्यक्ति की बदलती हुई सोच का, समय के साथ परिवर्तित होते हुए जीवन–मूल्यों का परत–दर–परत उद्घाटन अपने उपन्यास साहित्य में किया है।

मृदुला जी के उपन्यासों में नगरीय जीवन पर प्रकाश डाला गया है। बढ़ते शहरीकरण व औद्योगीकरण का प्रभाव परिवार व्यवस्था पर पड़ा है। संयुक्त परिवारों का ह्रास होकर एकल परिवारों की निर्मिती हो रही है। संबंधों में बढ़ती हुई संकीर्णता को अभिव्यक्त किया है। बढ़ते हुए भौतिकवाद व शहरी संस्कृति का प्रभाव परिवार व समाज पर पड़ने से सामाजिक जीवन–मूल्यों का पतन इनके उपन्यास साहित्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। समकालीन परिवेश और सामाजिक चेतना को उभारने की प्रवृत्ति भी मृदुला गर्ग के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है। इनके उपन्यासों की मुख्य धारा सामाजिक व आर्थिक संबंधों और जीवन की बुनियादी सच्चाईयों से संबद्ध है। समाज के उन संघर्षों, जटिलताओं, आकांक्षाओं, समस्याओं एवं अन्तर्विरोधों का कलात्मक प्रस्तुतीकरण है, जो जीवन में घटित हो रहे हैं। इनके सभी उपन्यास किसी–न– किसी क्षेत्र विशेष के सामाजिक–साँस कृतिक परिवेश को केंद्र में रखकर रचे गए हैं। मध्यमवर्गीय स्त्री–जीवन से जुड़ी विविध समस्याओं को चित्रित करने के साथ ही समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को भी अपने उपन्यास साहित्य में उजागर किया है। इनके सभी उपन्यास जीवन की वास्तविकताओं और समस्याओं से जुड़े हुए हैं, जो अलग–अलग समस्याओं

की ओर पाठक का ध्यानाकृष्ट करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की रचना स्त्री की आत्मसार्थकता की तलाश को केंद्र में रखकर की गई है, जिसमें सामाजिक दौर में स्त्री की बदलती छवि के साथ–साथ दांपत्य–दांपत्येतर संबंधों को उजागर किया है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास की रचना प्रेम के अभिव्यक्ति दर्शन व वैवाहिक जीवन में प्रेमहीन संबंध को अभिव्यक्त करती है। 'वंशज' उपन्यास में दो पीढ़ियों के वैचारिक वैमनस्य से उत्पन्न संघर्ष व उत्तराधिकारी की समस्या की ओर इंगित किया गया है। 'अनित्य' उपन्यास में ऐतिहासिक व राजनीतिक विसंगतियों को अभिव्यक्त करने के साथ ही समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व पुरुष की नारी के प्रति मानसिकता का चित्रण किया गया है। 'कठगुलाब' उपन्यास में नारी पर होने वाले अत्याचारों, उसकी सामाजिक समस्याओं व नारी के बदलते स्वरूप को दर्शाया गया है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में पचास के दशक के दरम्याने वर्ग की जिंदगी और समाज में आनेवाले बदलाव के साथ–साथ आजाद भारत में उसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

मृदुला गर्ग ने अपनी सूक्ष्म पारखी लेखनी द्वारा पारिवारिक व सामाजिक घटनाक्रम के यथार्थ बोध को अपने उपन्यास साहित्य में प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में स्त्रीजन्य समस्याओं को प्रमुख स्थान दिया है। यथार्थ बोध से तात्पर्य सत्य या उचित तथ्यों को स्वीकारना व ग्रहण करना होता है। समाज की सच्चाइयों व घटनाओं को साहित्यिक भाषा में प्रकट करते हुए समाज के अभिजात्य वर्ग के दुःख–दर्द को अपने साहित्य में स्थान दिया है। पारिवारिक–सामाजिक स्थिति एवं स्त्री–पुरुष अन्तर्संबंध आदि मानवीय व्यवहारों का विशिष्ट रूप, जिसमें जीवन की जटिलताएँ, संघर्ष, वैमनस्य, सफलता, असफलता, प्रेम, द्वेष, विचार, भाव आदि जटिल भावनाओं और पारिवारिक संबंधों को अभिव्यक्त करते हुए मृदुला जी ने पारिवारिक पहलू को विशिष्टता के साथ चित्रित किया है। 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'मैं और मैं' का पारिवारिक दृश्य सामान्य परिवार के चित्रण से भिन्न है। इन उपन्यासों में चित्रित परिवारों का दृश्य सामान्य है, परंतु किसी घटना विशेष से प्रभावित है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में भारतीय पारिवारिक–सामाजिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न होते हुए दिखाई देती है। विवाहित स्त्री के पतिव्रता रूप को खंडित होते हुए दिखाया गया है। 'चित्तकोबरा' की मनु भी प्रेम को लेकर स्वच्छंद विचार रखती है तथा पति व प्रेमी दोनों के साथ जीवन जीते हुए दिखाई देती है। विवाहित होते हुए भी अन्य पुरुष की ओर भागना एक नई संस्कृति को जन्म देता है। 'अनित्य' में भी अविजित, संगीता, काजल आदि पात्र पारिवारिक–सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करते हुए दिखाई देते हैं।

भारतीय समाज की सबसे अच्छी व्यवस्था है – परिवार। परिवार में रहकर व्यक्ति एक–दूसरे के साथ अपने सुख–दुःख को बाँटता है तथा निकट भविष्य के सुंदर स्वप्न सजाता है। समाज का स्वच्छ होना भी पारिवारिक–सामाजिक संबंधों पर ही निर्भर होता है, किंतु आज समाज की मानसिकता बदल रही है। मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में आज के समाज की इसी बदलती मानसिकता और पारिवारिक परिवेश को चित्रित किया है। समाज की रूढ़िवादी परंपराओं का खुलासा करते हुए सामाजिक–परंपराओं को प्रस्तुत किया है। समाज में पति–पत्नी संबंध, पिता–पुत्र संबंध के साथ–साथ नारी की स्थिति, भ्रष्टाचार, शोषण आदि को अभिव्यक्त किया गया है। सभ्य समाज में औरतों को सम्मान के साथ देखा जाता है, किंतु अपनी ही साली के साथ फूहड़ मजाक करना व उसका शारीरिक शोषण करना आदि आम घटना होता जा रहा है, जैसे वह कोई जीवित प्राणी न होकर, निर्जीव वस्तु हो। 'कठगुलाब' उपन्यास में स्मिता, नर्मदा के माध्यम से लेखिका ने समाज की आम होती हुई इस पारिवारिक घटना को चित्रित किया है। इसी पारिवारिक दृश्य को स्मिता का यह कथन अभिव्यक्त करता है – "यह मेरी साली है स्मिता। क्या चीज है यार। घर में रहती है तो समझो...लार टपकती रहती है, अपनी...(फुसफुसाकर) साली आधी घरवाली...हा–हा–हा।"[1] बीबी की बहन पर गलत नजर रखना अपना अधिकार समझने वाला पुरुष उसकी जिम्मेदारी उठाना मुसीबत का काम समझता है। स्मिता का जीजा जो उस पर अपना अधिकार समझाता है, लेकिन उसकी पढ़ाई के लिए खर्चा देते हुए अपनी पत्नी पर चिल्लाता है – "तुम्हारा बाप कारूँ का खजाना छोड़ गया है न, जो निकालकर एकमुश्त हजार रुपया पकड़ा दूँ। एक तुम्हे पाल रहा हूँ, एक इसे और सिर पर

लाद लूँ। डेढ़ बीवी रखवानी थी तो दहेज भी ड्योढ़ा देता तुम्हारा बाप।''[2] यह पारिवारिक दृश्य आम है, जो परिवार में स्त्री की स्थिति के साथ–साथ दहेज प्रथा जैसी कुरीति को भी उजागर करता है। स्त्री के भोलेपन का पुरुष अपनी कुटिल चालों से खूब फायदा उठाता है। स्त्री पुरुष से प्रेम करती है, उसका भी वह नाजायज फायदा उठाता है तथा समाज के समक्ष यह दिखावा करता है, कि वह स्त्री का खयाल बखूबी रखता है। पुरुष की इसी प्रवृत्ति को मृदुला जी ने स्मिता के पति जिम जारविस, मारियान के पति इर्विंग के माध्यम से चित्रित किया है। जिम जारविस की कुटिल प्रवृत्ति का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''भावुक होकर, जिम जारविस अदालत के बीचोंबीच सीधा स्मिता से मुखातिब होकर भीगे स्वर में पुकार उठा था'' ''घर वापस चलो, स्मिता। मैं अब भी तुमसे प्यार करता हूँ, तुम्हारी देखभाल करना चाहता हूँ।''[3] जिम के इस कथन में पुरुष की कुटिलता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

परिवार में पुरुष कमाऊ, सदस्य होने के कारण स्त्री के साथ मारपीट करना अपना अधिकार समझता है तथा अपने पर आश्रित पारिवारिक सदस्यों पर बेवजह ही अत्याचार करता है। स्त्री को अपनी इच्छानुसार जीवन जीने के लिए बाध्य करता है। दर्जन बीबी का पति, नर्मदा व स्मिता का जीजा इसी प्रकार के पुरुष हैं, जो भारतीय समाज की इस पुरानी और घटिया अपसंस्कृति को ही चित्रित करते हैं। नर्मदा का यह कथन इसे अभिव्यक्त करता है – ''बहन की पिटाई और चोटों का पता उसे, उसके कराहने–कोसने से ही चला था। ''बावला भाई और रोगन बहन, हरामी, मेरे ही किस्मत में लिखे थे'', वह दिनोंदिन कोसती रही थी।''[4] एक ही परिवार में साथ–साथ जीवन यापन करने वाले पति–पत्नी के बीच बढ़ती संवादहीनता के कारण संबंधों में खोखलापन भर जाता है। संवादहीनता के कारण परिवार में पति–पत्नी में एक–दूसरे के सुख–दुःख बाँटने की भावना समाप्त होती जाती है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा व 'चित्तकोबरा' की मनु दोनों के माध्यम से ही इस पारिवारिक समस्या को चित्रित किया गया है, कि पति के पास समय न होने के कारण दोनों के दांपत्य संबंधों में मधुरता समाप्त हो जाती है और बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पारिवारिक संबंध विश्वास की नाजुक डोर से बंधे हुए होते हैं, जिसके साथ परिवार चलता है। मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में परिवार में समाप्त होते हुए प्रेम, विश्वास व भाईचारे को चित्रित किया है।

मृदुला जी ने भारतीय समाज व परिवार का यथार्थ चित्रण किया है। भारतीय समाज में प्राचीन समय में महिलाएँ केवल घर का संचालन करती थीं, तब वे भारतीय साँस कृतिक मान्यताओं को आसानी से मान लेती थीं, किंतु बदलते परिवेश में नारी इन सामाजिक मान्यताओं को तोड़ते हुए दिखाई देती है। आधुनिक युग में नारी शिक्षित व कामकाजी हो गई है, फिर भी उसे सबसे अधिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। यह प्रताड़ना पारिवारिक हिंसा, गाली–गलौज और आस–पड़ोस की फब्तियाँ, ऑफिस में किये जाने वाले कमेंटस हो सकते हैं। हमारे समाज में लड़के व लड़की में किया जाने वाला भेदभाव व लड़की थोड़ी–सी बड़ी होते ही उसके विवाह की चिंता करना सामान्य बात है, जिसे मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में चित्रित किया हे। 'कठगुलाब' में समाज की इन समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। नमिता को भी अपनी बहन स्मिता के विवाह की चिंता है – ''मैं शादी नहीं करना चाहती। न अधेड़ से, न जवान से। मैं पढ़ना चाहती हूँ।'' स्मिता बार–बार कहती। ''मैं कितने दिन तुझे घर में रखूँगी। मर्दों का कोई भरोसा नहीं होता। तू अपने घर चली जाएगी तभी शांति मिलेगी,'' नमिता कहती।''[5] हमारे समाज में लड़की अपनी पढ़ाई पूरी भी नहीं कर पाती, कि उसकी शादी की चिंता लग जाती है। जिस आदमी के साथ जिन्दगी भर रहेगी उसे अपने पति को चुनने का अधिकार भी नहीं है।

(ख) पारिवारिक संरचना का विखंडन :

समाज की प्रमुख इकाई व्यक्ति है। व्यक्ति–जीवन की महत्त्वपूर्ण संस्था परिवार है। व्यक्ति व समाज परस्पर पूरक हैं, जो एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। समाज से प्रतिबद्ध होने के कारण साहित्यकार समाज में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन को सबसे पहले पहचान लेता

है। भारतीय समाज व्यवस्था का प्रमुख आधार संयुक्त परिवार रहा है। परिवार ही समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है। संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के व्यक्ति साथ में रहते हैं और वे संपत्ति, आय तथा पारस्परिक कर्तव्यों और अधिकारों के बंधन से आबद्ध रहते हैं। इसके सदस्य आपस में सामंजस्य का जीवन व्यतीत करते हैं तथा सबमें मानवीयता पर अधिष्ठित सहिष्णुता, अनुशासन और संयम के भाव विद्यमान रहते हैं। आज धीरे–धीरे संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं और इस विश्रृंखलता में समष्टीवादी के बदले व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभर रहा है। संबंधों में स्थापित संकल्पना आज कमजोर हो रही है तथा मूल्य संक्रमण के कारण पारिवारिक संबंधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

पारिवारिक विघटन के कारण व्यक्ति लक्ष्यहीन बनता जा रहा है। पारिवारिक संबंधों में आने वाले अलगाव के कारण ईर्ष्या, घुटन, कुंठा आदि भाव पनपने लगे हैं। राजनीतिक जोड़–तोड़, नवीन बौद्धिक चेतना, बेरोजगारी, आर्थिक अभाव, पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति, नारी–जागरण व व्यक्ति–स्वातंत्र्य की जिद के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज व्यवस्था में पारिवारिक व्यवस्था व मूल्यों में दरार आने लगी है। संयुक्त परिवार की परंपरा के लुप्त होने व पाश्चात्य सभ्यता–संस्कृति के प्रभावस्वरूप पारिवारिक व सामाजिक संबंधों में शिथिलता आई है। परिवार में भौतिकता और व्यक्तिवाद के कुप्रभाव से पारिवारिक संबंधों में तनाव आ गया है। पारिवारिक विघटन का मूल कारण पीढ़ी अंतराल व पीढ़ी संघर्ष है। पुरानी व नई पीढ़ी की वैचारिक टकराहट तथा दांपत्य जीवन की तकरार पारिवारिक संरचना के विखंडन का मूल कारण है।

पारिवारिक विघटन से उत्पन्न समस्याओं का सजीव चित्रण मृदुला गर्ग के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। परिवार में सदस्यों की कमी के कारण 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा अपने आपको अकेला महसूस करती है। संयुक्त परिवार होता तो मनीषा व उसके पति के मध्य इस प्रकार का तनाव व प्रेमहीनता की स्थिति नहीं आती और उसे अकेलापन महसूस नहीं होता। वह अपने अकेलेपन की पूर्ति के लिए कॉलेज जाती है और वहाँ उसका परिचय मधुकर से होता है। मधुकर व मनीषा एक दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं तथा मनीषा सोचती है, कि दुनिया का सबसे प्रिय व्यक्ति मधुकर ही है। वह अपने पति से तलाक लेकर मधुकर से विवाह कर लेती है, परंतु उसके साथ भी वह खुश नहीं रह पाती है, क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है, कि वह उसे बाह्य ऐशोआराम दे सके। मृदुला जी के उपन्यासों के पात्रों को समाज में अपयश की परवाह नहीं है। पति के होते हुए भी 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा अन्य पुरुष मधुकर से, 'चित्तकोबरा' की मनु भी रिचर्ड से तथा 'कठगुलाब' की नमिता अपने पति के होते हुए असीम से प्रेम करती है।

पारिवारिक जीवन का मूल आधार है – दांपत्य जीवन। परिवार में पति–पत्नी दोनों का ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक व सहायक होते हैं। दांपत्य जीवन के मधुरतम होने से ही धर्म, अर्थ व काम का समन्वय स्थापित हो पाता है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में सिकुड़ते संयुक्त परिवारों को जगह दी है, जिसमें आज भाईचारा नहीं, प्रेम नहीं, एकता नहीं तथा संबंधों की गरमाहट और अपनत्व की भावना अब कड़वाहट और दोगलेपन में बदल चुकी है। दांपत्य जीवन–संबंधी परंपरागत नैतिक मान्यताएँ शिथिल होती दिखाई देती हैं। संयुक्त परिवार का ढाँचा बिखर गया है तथा पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव व नौकरी, व्यवसाय अथवा काम की तलाश में स्थान परिवर्तन करने की मजबूरी के कारण संयुक्त परिवार का स्थान एकल परिवार ने ले लिया है, किंतु आज इस एकल परिवार की धुरी पति–पत्नी के संबंधों में मधुरता समाप्त हो रही है, जिसका कारण है – एक दूसरे से बढ़ती हुई अपेक्षाएँ। मृदुला जी के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा की स्थिति भी एकल परिवार के कारण ही ऐसी हुई, अगर संयुक्त परिवार होता तो उसे खालीपन व अकेलापन महसूस नहीं होता और वह दो पुरुषों के मध्य झूलती हुई स्थिति में नहीं रहती। पारिवारिक संबंधों की संवादहीनता का प्रसार दांपत्य जीवन में तेजी से बढ़ रहा है, जिससे दांपत्य जीवन में टूटन दिखाई पड़ रही है। मृदुला जी के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, 'चित्तकोबरा' की मनु, 'कठगुलाब' की

नमिता, मारियान आदि नारी पात्रों के दांपत्य जीवन में अस्थिरता का मूल कारण पारिवारिक संरचना का विखंडन ही है।

मृदुला जी के उपन्यास इस बात को अभिव्यक्त करते हैं, कि वर्तमान में भारतीय अपनी संस्कृति को भूलकर तेजी एवं रफ्तार की जिंदगी में गुम होते जा रहे हैं। इन्होनें बरसों पुराने भारतीय पारिवारिक ढाँचे के टूटते हुए स्वरूप को चित्रित किया है। इनके उपन्यासों के सभी पात्र एकल परिवार में जीते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा और जितेन या मीनषा व मधुकर, 'वंशज' में सुधीर सविता और जज शुक्ला साहब, 'मैं और मैं' में माधवी, राकेश और उनके दो बच्चे, 'चित्तकोबरा' में मनु, महेश और दो बच्चे, 'अनित्य' में अविजित, श्यामा और चार बच्चे, 'कठगुलाब' मे ंदर्जन बीबी और उसके दो बच्चे, असीम व असीमा, नमिता व उसका पति तथा दो बच्चे आदि एकल परिवार में ही जीवनयापान करते हैं।

(ग) नारी का बदलता स्वरूप :

मानवीय सौंदर्य एवं चेतना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति होने के साथ ही सृष्टि का मूल भी नारी ही है। इस सृष्टि का अविभाज्य अंग है – नारी। सृष्टि के उषाकाल से ही नारीत्व की चिरंतनधारा पुरुष के आकर्षण और उपेक्षा के कगारों के बीच कभी द्रुत व कभी मंथर गति से प्रवाहमान रही है। नारी ने कभी पुरुष की कोमल भावनाओं को उभारा है तो कभी उसे जीवन–संग्राम में जूझने का दृढ़–संकल्प और आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा भी दी है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति युगीन आदर्शों और जीवन–मूल्यों के साथ–साथ परिवर्तित होती रही है। पुरुष की ही भाँति नारी भी स्थूल सृष्टि का अविभाज्य अंग है। आज की आधुनिक नारी शक्तिरूपा है। सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी नारी अपने बौद्धिक विकास के कारण आज पुरुष पर भारी पड़ रही है। आर्थिक स्वावलंबन के कारण आज की शिक्षित व जागरूक नारी ने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार किया है। आज नारी विषम व जटिल सामाजिक स्थितियों से जूझकर भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व कायम करती हुई दिखाई देती है। आज की शिक्षित व बौद्धिक चेतना से युक्त तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग नारी पूर्ण रूप से मानवीय गरिमा के साथ जीना चाहती है। बदलते समय–संदर्भों के साथ नारी की भूमिकाएँ भी बदली हैं, जिनका असर उसके व्यक्तित्व और चारित्रिक आयाम पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। बदलती हुई शिक्षित नारी को जिन्दगी के एक ही ढर्रे पर चलना पसंद नहीं । इन्हें अपनी काबिलियत पर भरोसा है तथा पुरुष के साथ स्पर्धा करके दुराग्रहों से स्वयं को मुक्त करना और अपने अस्तित्व को बनाये रखना है।

समकालीन हिंदी लेखिकाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखने वाली मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नारी–जीवन की विभिन्न समस्याओं को उद्‌घाटित करते हुए नारी की बदलती मानसिकता का चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में अधिकतर उच्च मध्यमवर्गीय नारी पात्र हैं। इनके उपन्यासों का केंद बिन्दु नारी ही है। इन्होंने नारी के नैसर्गिक रूप से लेकर उसके बदलते आधुनिक विचारों को अपने उपन्यासों में केन्द्रित किया है। नारी के आधुनिक बदलते स्वरूप व संघर्षो का चित्रण किया है। इनके उपन्यासों की नारी अपने स्वाभिमान और अपनी आत्मरक्षा के लिए पुरुष और समाज दोनों से निरंतर संघर्षरत है। स्वतंत्रता के पश्चात नारी की स्थिति व परिस्थितियों में सुधार हुआ है। जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। अतः हमें साहित्य में भी नारी का बदला हुआ रूप दिखाई देता है। वैसे देखा जाए तो आज भी नारी की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है तथा पुरुष ने किसी–न–किसी रूप में आज भी स्त्री पर अंकुश कर रखा है, लेकिन फिर भी आधुनिक उपन्यास साहित्य के माध्यम से लेखिकाओं ने परंपराओं की परवाह किए बिना नारी को जीने का मकसद बताया है। स्वातंत्र्योत्तर समाज में चारों ओर व्याप्त परिवर्तन की लहर से भारतीय समाज में चेतना के नए क्षितिजों का उदय हुआ, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की मानसिकता प्रभावित हुई और संपूर्ण भारत में परिवर्तन आया, चुंकि साहित्य में भी एक नया मोड़ आया। नारी ने भी मुक्ति के लिए एक व्यक्ति के रूप में कदम बढ़ाए जिससे नारी–जीवन में सुखद परिवर्तन आए। नारी में आने वाला यह परिवर्तन

हिंदी उपन्यासों में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में नारी की नवीन मानसिकता को बड़ी कुशलता के साथ रूपायित किया गया है।

मृदुला गर्ग ने अपने अनुभवों के आधार पर नारी जीवन को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। अपने उपन्यासों में नारी की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियों में आए परिवर्तनों को एक नया आयाम दिया है। इनकी नारी पुरानी मान्यताओं को तोड़कर नवीनता को अपनाती हुई दिखाई देती है। बौद्धिकता के कारण नारी की मनासिकता ने एक नया रूप धारण किया है। इन्होंने केवल स्त्री–पुरुष संबंधों को ही नहीं बल्कि दांपत्य संबंधों के अलावा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं को भी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'कठगुलाब', 'चित्तकोबरा' नारी जीवन पर आधारित हैं। नारी के इस बदलते स्वरूप का उसके दांपत्य जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आज के नयेपन की तलाश में भटककर वह अपना कल भी नष्ट कर रही है। आपसी मतभेद, अहम्, टकराहट और विश्वास के समूल नाश की वजह से ये नारियाँ अपने आने वाले कल को बर्बाद करने पर तुली हुई हैं। आज की नारी का रूप पहले से कहीं अधिक जटिल और उलझा हुआ है।

मृदुला जी के उपन्यासों में आधुनिक नारी–चेतना की प्रेम एवं सेक्स विषयक मानसिकता को ही अधिक उभारा गया है। इनके उपन्यास 'चित्तकोबरा' की मनु अपने पति महेश को तलाक दिये बिना ही प्रेमी और पति दोनों के साथ संबंध बनाये रखती है। यहाँ नारी, भारतीय नारी की पति के प्रति एकनिष्ठा होने की बात पर कुठाराघात करती है, जो आज की नारी की बदलती मानसिकता को दर्शाता है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा अपने पति से तलाक लेकर मधुकर से विवाह कर लेती है तथा चार वर्ष बाद जब उसे पुनः जितेन मिलता है, तो उसके साथ शारीरिक संबंध बना लेती है। विवाहेतर संबंध पति–पत्नी के संबंधों की अस्तित्वहीनता व खोखलेपन को दर्शाते हैं। ऐसे संबंधों के पीछे एक ओर अतृप्त कामवासना है, तो दूसरी ओर मनचाहे प्रेम की प्राप्ति का अभाव है। इनके उपन्यासों में टूटते मानवीय संबंधों में विशेषकर पति–पत्नी संबंध, स्त्री की बदलती स्थितियों व शोषण के प्रति विद्रोहिणी नारी को अभिव्यक्ति दी गई है।

'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा अपने पति जितेन की व्यस्तता के कारण मधुकर की ओर आकर्षित होती है तथा उसका दांपत्य संबंध, दांपत्येतर संबंधों में परिणत हो जाता है। जितेन व मनीषा में तलाक हो जाता है और मनीषा का मधुकर के साथ विवाह हो जाता है, परंतु विवाह मनीषा की स्वतंत्रता का पर्याय नहीं बन पाता है। अंत में मनीषा को अपने अस्तित्व का आभास होता है तथा 'स्व' की तलाश करती हुई मनीषा अपनी कृति का सृजन करती है। मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'वंशज' में भी सविता के माध्यम से अर्थप्रधान मनोवृत्ति वाली नारी की बदलती सोच की ओर संकेत किया है। 'मैं और मैं' उपन्यास की नायिका माधवी भी व्यक्तित्व की स्थापना के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। इसमें माधवी का कौशल द्वारा शोषण तथा उस शोषण से मुक्ति पाने की कथा है। इनके उपन्यासों में चित्रित किया गया है, कि आज की आधुनिक नारी विवाह के संबंध में अपने स्वतंत्र विचार रखती है। अपने जीवन के अहम् फैसले खुद करती है। तेजी से बदलते हुए समय के साथ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर आधुनिक नारी की मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं।

मृदुला जी के उपन्यास साहित्य की नारियाँ सदैव ही उन्मुक्त, अपराधबोध के भाव से रहित तथा बौद्धिक रूप से सचेत रही हैं। इन्होंने नारी की परंपरागत रूढ़ियों में दबी छवि को तोड़कर मानसिक रूप से बदलती हुई स्वाभिमानी नारी को चित्रित किया है। इनकी रचनाओं में नारी की वैयक्तिक चेतना दिखायी देती है, जिसके फलस्वरूप नारी की मानसिकता में अभूतपूर्व बदलाव आया है। इनके उपन्यासों की नारी प्रेम, सेक्स और विवाह जैसे जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर स्वयं सोच–समझकर निर्णय लेते हुए दिखाई देती है, जिसका उसके दांपत्य–जीवन पर भी गहरा असर पड़ा है। आपसी मतभेद, अहम्, टकराहट, के कारण विश्वास की जड़ें हिलती हुई दिखाई देती हैं। आज की नारी का रूप पहले से कहीं अधिक जटिल व

उलझा हुआ है, जिसका मूल कारण है – सिकुड़ते हुए संयुक्त परिवार, संबंधों की गरमाहट और अपनत्व का अभाव तथा नारी का कई टुकड़ों मे बँटा हुआ रूप, जिसके कारण ये नारियाँ संतुष्ट नजर नहीं आती हैं। मृदुला जी ने अपनी बोल्ड लेखनी द्वारा 'चित्तकोबरा' उपन्यास के माध्यम से नारी के प्रेम व सेक्स विषयक विचारों में बदलाव का परिचय दिया है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में भी उच्चवर्गीय नारी के उन्मुक्त प्रेम एवं सेक्स के विषय में आए बदलाव को चित्रित किया है। अपने 'चित्तकोबरा' उपन्यास पर अश्लीशता का आरोप लगने पर लेखका कहती हैं –''चित्तकोबरा' की स्त्री, साहित्य की तब तक की स्त्री से भिन्न थी तो यूं कि, उसमें अपने आचरण को लेकर कोई अपराध बोध नहीं था। उससे पहले मातृत्व की भांति, अपराधबोध भी स्त्री को लेखन का एक रूपक बना हुआ था।''[6] मृदुला जी ने अपने ऊपर लगाए गए सभी आरोपों की परवाह न करते हुए आधुनिक नारी–चेतना की प्रेम व सेक्स के प्रति बदलती मानसिकता को अभिव्यक्त किया है। इनके उपन्यास 'कठगुलाब' में भी अन्तर्मन को भीतर तक भेद देने वाली एक मानवीय पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है। इसमें मन को मथने वाले कटु सत्यों को चित्रित किया गया है कि आज के आधुनिक युग की नारी स्वतंत्र होकर भी किस प्रकार समाज और पुरुष के अत्याचारों का भाजन बनती है। अपने उपन्यासों के बारे में मृदुला जी कहती हैं, कि –''आखिर लेखन किया ही जाता है, सोई हुई अनुभूतियों और खोई हुई जिज्ञासाओं को दुबारा जगाने के लिए।''[7]

इनके उपन्यासों की आधुनिक नारी अपने तेज के साथ दृष्टिगोचर होती है, जो अपने परिवेश के प्रति सजग है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत व अस्तित्व के प्रति उत्तरदायी नारी है। नारी के सोचने–समझने तथा महसूस करने के ढंग में, उसके दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है तथा वह भावुकता से नहीं अपितु बौद्धिकता से काम लेती है। शिक्षित नारी के दृष्टिकोण में भी विवाह और स्तर को लेकर परिवर्तन दिखाई देते हैं। इनके उपन्यासों मे पति–पत्नी संबंधों की जानी पहचानी मानसिकता व स्त्री–पुरुष संबंधों के द्वंद्व को चित्रित किया गया है तथा इन्हीं संबंधों और द्वंद्वों से गुजरती हुई नारी का बदलता हुआ व्यक्तित्व उभरता हुआ दृष्टिगोचर होता है। नारी मन के तनावों संघर्षों को अभिव्यक्त किया गया है। इनके उपन्यासों की नारी ने स्वानुभूत सत्य के आधार पर नवीन मूल्यों की रचना करते हुए अपनी पहचान और अस्मिता का स्वर बुलंद किया है। इनकी नारी पुरुष की आदिम मानसिकता व तानाशाही पर निर्मम प्रहार करती हुई दिखाई देती है। इनकी नारी की प्रसिद्धि उसकी निजता की चेतना का ही परिणाम है। मृदुला जी कहती हैं, कि –''मैं यह मानती हूँ कि सामंती संस्कृति के अवशेषों और पिछड़े संस्कारों से लड़े बिना नारी–मुक्ति आज भी दिवास्वप्न है। 1979 में जब 'चित्तकोबरा' छपा, तो जंगल एकजुट होकर मुझ पर टूट पड़ा। अपना हमला फिर कभी वापस नहीं लिया। यह उपन्यास बरदाश्त क्यों नहीं होता? इसलिए कि यह मर्द के अहं पर चोट करता है, खासकर शादीशुदा मर्द के अहं पर। जो अपना रोज का अनुभव हो, जिसकी सच्चाई हमारे अहसास का हिस्सा हो; उसे लिखा देखकर बरदाश्त वही कर सकता है, जिसका दिमाग खुला हो और दिल साफ।''[8] नारी के इस बदलाव का उसके दांपत्य जीवन पर गहरा असर पड़ा है। मनीषा व मनु जैसी नारियाँ अपने ही बनाये गए मार्ग में उलझकर भटक सी गई हैं तथा अपने नयेपन की तलाश के चक्कर में अपना वर्तमान व कल भी नष्ट करती हुई दिखाई देती हैं। ये नारियाँ आर्थिक रूप से सक्षम होते हुए भी कुंठित सा जीवन जीती हैं।

(घ) नारी–शिक्षा व नारी–उन्नति :

आधुनिक हिंदी लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व नैतिक स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इन्होनें शिक्षा के माध्यम से नारी की सोई हुई महत्त्वाकांक्षाओं को जाग्रत किया है तथा नारी को उसकी शक्तियों से परिचित कराया है। नारी को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाकर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक युग में बौद्धिकता के कारण नारी की मानसिकता ने एक नया रूप धारण किया है, जिसके कारण नारी ने पुरानी परंपराओं को तोड़ना व नवीनता को अपनाना शुरू किया। शिक्षा और जीवन के बदलते मूल्यों

ने ही नारी को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ठोस जमीन प्रदान की है, जिसके कारण उसमें चेतना का संचार हुआ है। शिक्षा के कारण नारी आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनी है, जिससे नारी अपना जीवन जीना सीख गई है। आज आर्थिक रूप से स्वावलंबी नारी हर क्षेत्र में पुरुष के समक्ष खड़ी दिखाई देती है, जो नारी–जीवन की एक उपलब्धि है। आज शिक्षित नारी जीवन के हर क्षेत्र में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रति सजग है। वह अपने प्रति किसी भी आरोपित व्यवहार को नकारती है तथा अपने जीवन को दूसरों की नहीं अपितु अपनी शर्तों पर जीना चाहती है। वह पुरुष की अनुगामिनी मात्र न होकर स्वयं शिक्षा प्राप्त करके आत्मनिर्भर होकर अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करती हुई दिखाई देती है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य का ताना–बाना नारी की विभिन्न स्थितियों को मध्य रखकर बुना गया है। इनके साहित्य की पहचान अभिजातीय वर्ग की नारी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से उभरती है। इन्होंने अभिजातवर्गीय नारी के स्वातंत्र्य, प्रेम–विवाह, वैवाहिक जीवन की एकरसता, ऊब आदि विभिन्न मनःस्थितियों को अच्छी तरह से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। इन्होंने समसामयिक विषयों की गहरी पड़ताल करते हुए अपने जीवनानुभवों की तर्ज पर अपने उपन्यास साहित्य की नींव रखी है तथा इनमें पुरानी विचारधाराओं और नारी विकास में बाधक परंपराओं का विरोध किया गया है। नारी की पूर्ण स्वतंत्रता और परंपराओं के बंधन से मुक्ति के लिए नारी की शिक्षा, आत्मविश्वास, आर्थिक निर्भरता व उसके अस्तित्व को महत्त्व दिया गया है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में नारी–जीवन के विविध आयाम प्रस्तुत किए हैं, उनमें नारी के भिन्न–भिन्न रूप व स्थितियाँ–परिस्थितियाँ हैं तथा नारी को उन्हीं के अनुरूप चित्रित व अभिव्यक्त किया है। इनकी नारियों में माँ, बहन, बेटी और पत्नी का रूप भी है, तो आदर्श और त्यागमयी नारी के साथ–साथ विद्रोहिणी, संघर्षशील, तलाकशुदा व पढ़ी–लिखी आत्मनिर्भर व स्वाभिमानी नारी भी है। इनके लेखन में नारी को सिर्फ घर–परिवार और उसकी चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं रखा गया है, अपितु नारी को अलग कार्यक्षेत्र में स्थापित करते हुए उसके सृजनात्मक स्वरूप को अभिव्यक्त किया है। इनके उपन्यासों के नारी पात्र जागरूक व आत्मनिर्भर हैं, जो कि नारी शिक्षा व उसकी उन्नति की ओर संकेत करते हैं।

मृदुला जी के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य', 'चित्तकोबरा', 'मैं और मैं', 'कठगुलाब', 'वंशज' तथा 'मिलजुल मन' में चित्रित नारी पात्र शिक्षित होने के साथ–साथ नारी स्वातंत्र्य में बाधक परंपरावादी सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए, उपेक्षाओं और तिरस्कारों, शोषण व अत्याचारों का विरोध करते हुए अपने सशक्त व्यक्तित्व को व्यक्त करते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा उच्च शिक्षा प्राप्त है तथा कॉलेज में पढ़ाती है। 'वंशज' की सविता भी पढ़ी लिखी है। 'चित्तकोबरा' की मनु भी शिक्षित है तथा लेखन कार्य करती है। 'मैं और मैं' की माधवी एक लेखिका है, तो 'अनित्य' की काजल, संगीता, प्रभा, शुभा भी शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं –काजल कॉलेज में इतिहास की प्रोफेसर है, संगीता एक डॉक्टर है, प्रभा कॉलेज की छात्रा है तथा क्रांतिकारी विचारों वाली है, जो एक जागरूक नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। 'मिलजुल मन' की मोगरा, गुलमोहर भी शिक्षित व स्वावलंबी नारी को दर्शाती हैं। मोगरा कॉलेज में अर्थशास्त्र की प्रोफेसर है तथा गुलमोहर एक सफल लेखिका है। 'कठगुलाब' में स्मिता, मारियान, नीरजा, असीमा सभी शिक्षित व स्वावलंबी नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन सभी नारी पात्रों के माध्यम से इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी के शिक्षित, स्वावलंबी, विद्रोहिणी, संघर्षशील तथा जागरूक व आत्मनिर्भर रूप को अभिव्यक्ति दी है।

समाज में स्त्री का दर्जा उसकी आर्थिक स्वतंत्रता पर आधारित होता है तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शिक्षा का होना अत्यावश्यक होता है। समाज में आर्थिक रूप से पराधीन नारी का स्थान निम्न व गौण होता है तथा आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी सामान्य रूप से ऊँचा दर्जा प्राप्त करती है। शिक्षित महिलाओं के दृष्टिकोण में, खासकर विवाह और स्त्री–पुरुष संबंधों के प्रति सोच में पर्याप्त परिवर्तन आए हैं। बदलते हुए परिवेश एवं हालात ने नारी में आत्मसम्मान व स्वाभिमान की भावना को जन्म दिया है। अब नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व

की घोषणा करती हुई तथा शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ती हुई, आत्मनिर्भर होकर अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करती हुई दिखाई देती है। समाज में व्याप्त असंगत धारणाओं का विरोध करते हुए उनमें परिवर्तन लाकर वैयक्तिक प्रतिमानों को उजागर करने की ओर अग्रसर है। आज शिक्षा के साथ–साथ नारी–विषयक सामाजिक धारणाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हुए दिखाई दे रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावस्वरूप नारी के भीतर स्वातंत्र्य के जो अंकुर प्रस्फुटित हो रहे हैं, उन्होंने नारी को घर से बाहर निकालकर कार्यशील होने की जरूरत का आभास करवाया तथा इसी आभास के कारण नारी एक अभूतपूर्व बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रही है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास नारी की शिक्षा, उसकी सामाजिक व आर्थिक चेतना, जो उसे आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर करती है, कुरीतियों, रिवाजों, परंपराओं व समाज की पुरानी मान्यताओं को ठुकराकर आगे बढ़ती हुई नारी की सामाजिक चेतना आदि को प्रस्तुत करते हैं। 'कठगुलाब' की स्मिता अपने जीजा के द्वारा बलात्कार किए जाने के कारण शारीरिक व मानसिक पीड़ा से गुजरती है, किंतु वह अपनी शिक्षा के कारण ही विदेश में जाकर नौकरी करती है और अपने विदेशी पति जिम जारविस से विद्रोह करती है तथा साथ ही अपनी हीन भावना व मानसिक पीड़ा से मुक्त भी होती है। 'अनित्य' की काजल बनर्जी व संगीता, 'कठगुलाब' की मारियान, 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, 'मैं और मैं' की माधवी 'चित्तकोबरा' की मनु, 'वंशज' की सविता तथा 'मिलजुल मन' की गुल व मोगरा आदि सभी नारी पात्र शिक्षित हैं तथा नारी की वैयक्तिक चेतना के साथ–साथ सामाजिक मनोवृत्ति का भी परिचय देते हैं। इनके उपन्यासों की नारी शिक्षित और आत्मनिर्भर है तथा उसे लोकलाज का भय नहीं है। वह अपना जीवन समाज और परिवार की मान्यताओं को ठुकराकर जीती हुई दिखाई देती है।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों की नारी जागरूक है तथा नारी के वैचारिक संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। इन्होंने शिक्षित, आत्मनिर्भर, आधुनिक विचारों वाली, स्वतंत्र तथा हर प्रकार से समर्थ नारी की एक नवीन व्याख्या कर उसकी आधुनिक सामाजिक चेतना को दर्शाया है। इनके उपन्यासों में अधिकतर नारी पात्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व शिक्षित हैं, जो स्वावलंबी जीवन जीने में विश्वास रखते हैं। इनके नारी पात्र अपने परंपरागत दायरों को तोड़कर एक नये विस्तृत आयाम को तलाशते नजर आते हैं। मृदुला गर्ग जी ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है, कि नारी के शिक्षित होने से उसमें आत्मनिर्भरता आती है। शिक्षा ने नारी को नई दिशा दी, नई सोच दी और पाँव जमाने के लिए ठोस जमीन दी। आज समाज में शिक्षित नारियों का एक बड़ा वर्ग समाज की पुरानी परंपराओं को तोड़कर उनकी परवाह किए बिना घर की चहारदीवारी को लाँघकर कार्यक्षेत्र में उतर पड़ा है। स्वतंत्रता–पश्चात् नारी जीवन में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से काफी परिवर्तन आए हैं। मृदुला जी ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी की बदलती सोच व बदलती मानसिकता का परिचय दिया है।

(ड.) नारी–शोषण व नारी–विद्रोह :

आधुनिक काल में नारी उन्नति के लिए अनेक अभियान चलाए जा रहे हैं, परंतु उन्नति व मुक्ति तभी संभव है, जब उसे समाज में समानता का दर्जा दिया जाएगा। हमारी पुरुषप्रधान संस्कृति ने नारी को उसके जैविक रूप में एक जनन यंत्र के रूप में ही स्वीकारा है। नारी कोई यंत्र न होकर इस समाज में नारी केवल नारी है, जो पुरुष की भाँति ही स्थूल सृष्टि का अविभाज्य अंग है। इस सृष्टि में स्त्री व पुरुष दोनों का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि जीवन रूपी रथ को सुचारू रूप से गतिमान रखने के लिए स्त्री–पुरुष रूपी दोनों पहियों की समान आवश्यकता होती है। एक के बिना दूसरा अधूरा है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। शारीरिक कोमलता और हृदय की सरलता के कारण पुरुष द्वारा नारी का सदैव शोषण किया गया है। सदियों से ही नारी अपने अस्तित्व व प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करती आ रही है, क्योंकि पुरुष की भोगवादी प्रवृत्ति के कारण नारी पल–पल प्रताड़ित व शोषित होती रही है। पुरुषप्रधान समाज के अत्याचारों का शिकार रही नारी कहने को तो आज स्वतंत्र है, परंतु बराबर की स्वतंत्रता न तो उसके परिवार को स्वीकार है और न ही समाज को।

आधुनिक काल में शिक्षा व साहित्य ने नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित किया, जिसके कारण नारी को शिक्षा, रोजगार व राजनीति में सहभागी किया गया । नारी सबलीकरण की दृष्टि से किए गए नारी मुक्ति आंदोलनों ने नारी की स्थिति में सुधार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। विज्ञान के इस युग में समाज का बहुत विकास हुआ है और इस विकसित समाज में नारी की स्थिति में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। कई क्षेत्रों में तो नारी पुरुष से आगे भी निकल चुकी है। आज नारी ने समाज में प्रायः सभी व्यवसायों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है और अपनी प्रतिभा का लोहा भी मनवाया है, फिर भी नारी के प्रति हमारे समाज में मध्ययुगीन दृष्टि ही व्याप्त है। नारी शिक्षा के द्वारा आर्थिक रूप से स्वावलंबी व आत्मनिर्भर बनी है, परंतु फिर भी वह चाहे गाँव की हो या शहर की, कामकाजी हो या गैर कामकाजी, इनकी जीवन–विसंगतियों में मामूली परिवर्तन ही आ पाया है तथा कहीं–कहीं तो पहले से भी दुष्कर जीवन स्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं। पुरुषों की स्वार्थी और विश्वासघाती प्रवृत्ति से रक्षा के लिए सजग रहते हुए भी वह कई बार धोखा खा जाती है।

आज की नारी अपनी सर्वांगीणता पर जोर दे रही है, पुरुषों की दासता को तोड़कर स्वतंत्र जीवन को अपनाना तथा अपने हक के लिए लड़ना–बोलना सीख रही है। नई सदी की महिला लेखिकाओं के उपन्यास साहित्य में नारी की इसी बदलती छवि को अभिव्यक्त किया गया है। मध्यमवर्गीय नारी अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुषप्रधान समाज द्वारा अवमूल्यन से टकरा रही है तथा समाज में हो रहे अत्याचार, शोषण, अन्याय आदि का खुला विरोध करते हुए स्पष्ट दिखाई देती है। मृदुला गर्ग ने भी एक ओर अपने उपन्यासों में उच्च मध्यमवर्गीय समाज की स्त्रियों की ऊब और आकांक्षाओं का चित्रण किया है, तो साथ ही दूसरी ओर निम्न व मध्यमवर्ग की स्त्री, जो कि पीड़ित व शोषित होने के साथ–साथ विद्रोहिणी भी है, को भी चित्रित किया है। अपने बौद्धिक व वैचारिक समन्वय द्वारा इन्होंने संबंधों की सूक्ष्म परतों को भी निरावृत किया है। इनके उपन्यासों में चित्रित नारी आधुनिक विचारों से युक्त है, जो कि अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने व मुक्त होने के लिए छटपटाते हुए दिखाई देती है।

मृदुला जी के उपन्यासों के नारी पात्र रूढ़ियों, मान्यताओं पर व्यंग्य करते हुए परंपराओं से परे जीवन जीने की आशा करते हैं, फिर वो वाहे 'चित्तकोबरा' की मनु हो या 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा या फिर 'कठगुलाब' की नीरजा। 'चित्तकोबरा' की मनु के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, कि सेक्स का खुला चित्रण नारी के ऊपर थोपी गई मान्यताओं का निषेध है तथा इनकी आधुनिक नारी अपनी स्वतंत्रता स्वयं अर्जित करके अनावश्यक रूप से थोपे गए प्रतिबंधों को तोड़ने में संलग्न है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा शिक्षित व आत्मनिर्भर नारी है, जो प्रत्येक स्थिति में स्वतंत्रता चाहती है। अपने पति जितेन की व्यस्तता के कारण वह स्वयं को अकेली महसूस करती है तथा अकेलेपन से ऊबकर वह मधुकर की ओर आकृष्ट होती है और उससे प्रेम करने लगती है। इस उपन्यास में एक विवाहित नारी के प्रेम का त्रिकोणात्मक संघर्ष चित्रित किया गया है। एक नारी को विवाह के पुराने नैतिक मूल्यों का विरोध करते हुए चित्रित किया गया है तथा आधुनिकता के नये मानदंडों को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। स्त्री–पुरुष में समानता की पक्षधर मनीषा शिक्षित व विवेकसम्पन्न नारी है। वह वैवाहिक जीवन के बारे में सोचती है, कि–''यह वैवाहिक–जीवन भी अजीब चीज है, वह सोच रही थी। जो करो एक साथ। साथ बैठो, साथ बोलो, चाहे बोलने को कुछ हो, चाहे नहीं, साथ घूमो, साथ दोस्त बनाओ, चाहे एक का दोस्त दूसरे को कितना ही नामुराद क्यों न लगे, साथ खाओ और साथ सोओ, चाहे एक के खर्राटे दूसरे को सारी रात जगाये क्यों न रखें। वह थका है दिमाग से, और कसरत करना चाहता है, वह थकी है जज़्बात से और अकेले रहना चाहती है, पर चूँकि वे विवाहित हैं, इसलिए जरूरी है कि जो भी वे करें; दोनों करें, चाहे उससे एक को कितनी ही कोफ़्त क्यों न हो।''[9] अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट मनीषा द्वंद्वग्रस्त रहती है तथा जितेन से विमुख होकर मधुकर नागपाल की ओर आकर्षित होती है और उससे विवाह कर लेती है। अंत में वह महसूस करती है कि प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं है और वह स्वीकार करती है, कि–''प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। जितेन के लिए यह सत्य है, मनीषा

पहले से जानती थी, आज उसने समझा कि यह केवल जितेन के लिए ही नहीं, सभी के लिए सत्य है। यह भी समझा कि उसके अपने जीवन का खालीपन इसलिए बराबर बना रहा है, क्योंकि वह उसे किसी–न–किसी पुरुष के प्रेम से भरने का प्रयत्न करती रही है। इतना घनत्व प्रेम में नहीं होता, कि वह अन्तरिक्ष–जैसे फैले जीवन के शून्य को सदैव के लिए भर सके।"[10] वह प्रेम की इस द्वंद्वग्रस्तता की स्थिति से हटकर अन्त में जीवन की सार्थकता की ओर मुड़ जाती है तथा अपने 'स्व' की पहचान के लिए लेखन कार्य में तन्मयता से जुट जाती है।

मृदुला गर्ग का उपन्यास 'कठगुलाब' भी नारी के अन्तर्मन को भीतर तक भेद देने वाली एक मानवीय पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इसमें मन को मथ देने वाला वह कड़वा सत्य है, जो नारी–पीड़ा व शोषण को चित्रित करते हुए व्यक्त करता है, कि आज के आधुनिक युग में नारी स्वतंत्र होकर भी समाज और पुरुष के अत्याचारों का भाजन बनती है। प्रमुख रूप से देखा जाए तो इनकी नारी चाहे वह भारत की हो या विदेश की, उसका आर्थिक, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शोषण होता रहा है। नारी इस दमन–शोषण के चक्र में निरंतर पिसती जा रही है, परंतु कुछ नारी संगठन आगे बढ़कर नारी को शक्ति प्रदान करके, उसे संगठित–एकजुट करके, उस पर किए जाने वाले शोषण के खिलाफ खड़ा करने के लिए प्रयासरत हैं। पूर्वी और पश्चिमी दोनों समाजों मे औरत का दैहिक, मानसिक और बौद्धिक शोषण किया जाता है, जिसका सामना ये स्त्रियाँ अपने आत्मिक बल व संगठन के द्वारा किस प्रकार करती हैं, इसकी अभिव्यक्ति 'कठगुलाब' में हुई है। विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से लेखिका ने नारी के कर्म, मर्म और धर्म का निरूपण करते हुए, नारी जीवन के संघर्ष और जद्दोजहद को चित्रित किया है। इस उपन्यास के नारी पात्र प्रतिशोध और विद्रोह की मुद्रा लिए हुए हैं। इसमें पुरुष द्वारा प्रवंचित, प्रताड़ित और इस्तेमाल की गई नारियों की ही कथा है।

'कठगुलाब' उपन्यास की नारी पुरुषप्रधान पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करती हुई नजर आती है। इस उपन्यास में लेखिका ने चार नारी पात्रों के माध्यम से नारी के विविध स्वरूपों को चित्रित करते हुए उनके जीवन–संघर्ष तथा उनकी सामाजिक व मानसिक पीड़ा को व्यक्त किया है। इसकी कथावस्तु में तीन तरह की औरतों का वर्णन प्रमुख रूप से किया गया है – पहली, वे औरतें, जिन्हें एब्यूज्ड विमेन कहते हैं। लाँछित, प्रताड़ित, बलात्कृत और पिटी हुई औरतें। इनको जख्म देने वाले अजनबी हो सकते थे या उनके रिश्तेदार, स्वयं के पति या प्रेमी। बरसों तक सहते रहकर उन्हे पीड़ा की आदत पड़ चुकी थी, परंतु जब पानी सिर से ऊपर गुजरने लगा तो बरसों से सोई पड़ी आत्मशक्ति को जगाते हुए अपनी मदद करने की चुनौती उठाती हैं। दूसरी, वे औरते हैं, जो स्मिता की तरह शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार हैं। कोई न कोई कहर उन पर टूट चुका था, जो 'रॉ' नामक संस्था को संवेदना और करुणा के साथ मदद करना चाहती हैं। तीसरी, वे औरतें हैं, जिनमें करुणा कम और दंभ ज्यादा है। उन्हें अपनी शिक्षा, व्यक्तित्व और पद का गर्व ज्यादा है। वे कभी दलित और शोषित नहीं रही हैं तथा उनके साथी पुरुष हमेशा उनके दबदबे से आक्रांत रहे हैं। इसके बावजूद वे पुरुष मात्र को हिकारत की नजर से देखती हैं, क्योकि उनका ज्ञान व अध्ययन उन्हे बताता है, कि पुरुष स्त्री का शोषक है। उन्होंने मन में ठान रखी है, कि वे कभी पुरुष का शासन स्वीकार नहीं करेंगी।

उपन्यास के सभी स्त्री पात्र किसी न किसी रूप में पुरुषों द्वारा सताए गए हैं तथा इन सभी स्त्री पात्रों का जीवन किसी न किसी तरह से त्रासद है। ये सभी किसी न किसी रूप में पुरुषों द्वारा शोषित व पीड़ित होने के कारण प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त हैं। सभी पुरुष किसी न किसी रूप में नारी का शोषण करते हैं तथा इनमें नारी की कोमल भावनाओं को समझने व संरक्षित करने का सामर्थ्य नहीं है। स्मिता का जीजा अर्थात नमिता का पति व नर्मदा का जीजा गणपत दोनों ही साली को हथियाने की पुरुषोचित काम लोलूपता की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। जिम जारविस जो एक मनोविश्लेषक तथा स्मिता का पति है, अपनी पेशेवर सूझबूझ का दुरुपयोग करते हुए धूर्त व मक्कार के रूप में सामने आता है। मारियान के दोनों पति, इर्विंग व गैरी कपूर नारी के प्रति असंवेदनशील हैं। असीम जो दर्जन बीबी का बेटा है, वह

अपनी माँ व बहन के प्रति भी संवेदनशील नहीं है। प्रदीप जो नमिता का बेटा है, बेहया है। उपन्यास के ये सभी पुरुष पात्र किसी न किसी रूप में नारी को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करते हैं।

अपने जीजा की आमानुषिक हवस का शिकार स्मिता के अंतर्मन में हमेशा के लिए तेज रोशनी व आदमकद शीशों का खौफ जड़ें जमा लेता है तथा मनोचिकित्सक के भेष में वहशी भेड़िया उसका पति जिम जारविस भी उसकी कोख पर लात मारकर उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को जन्म से पहले ही मार देता है। इस प्रकार दोनों ही उसे शारीरिक व मानसिक पीड़ा पहुँचाते हैं। मारियान भी पुरुष–शोषण का शिकार होती है। मारियान का उसके पति इर्विंग व्हीटमैन द्वारा किया जाने वाला बौद्धिक शोषण भी नारी की दर्दभरी दास्तान बयान करता है। इर्विंग भी अपने लेखन के स्वार्थ को पूरा करने के लिए मानसिक व भावानात्मक रूप में उसका शोषण करता है और उसके उपन्यास 'वुमेन ऑफ द अर्थ' को हड़पकर नाजायज कब्जा कर लेता है। वह उसकी बातों में आकर अपनी चाहत व इच्छाओं का दमन करती है तथा मानसिक व शारीरिक शोषण का शिकार होती है। उसके बाद वह गैरी कपूर से शादी करती है, लेकिन उसको तीन बार गर्भपात हो जाता है और वह चाहकर भी माँ नहीं बन पाती है। वह एक बच्चा गोद लेना चाहती है, लेकिन गैरी कपूर बच्चा गोद लेने के लिए तैयार नहीं होता है, क्योंकि वह निहायत ही आत्मकेन्द्रित वृत्ति का मनुष्य था। नमिता भी बार–बार अपने पति से प्रताड़ित होती रहती है। यह जानते हुए भी कि उसकी बहन स्मिता पर उसकी बुरी नजर है, वह दयनीय स्थिति में जीती हुई अपने पति को चुप कराने के लिए अन्यमनस्क भाव से भोजन और अपना शरीर परोसती रहती है तथा वह उसका शारीरिक व मानसिक शोषण करता रहता है। नर्मदा की कहानी भी कष्टप्रधान, दुःखपूर्ण और कारुणिक रही है। बचपन में चूड़ियों के कारखाने में, बड़ी होने पर लोगों के घरों में तथा बाद में कपड़ों की सिलाई का कार्य करने वाली दर्जन बीबी के यहाँ काम करनेवाली नर्मदा का आर्थिक, मानसिक व शारीरिक शोषण उसका जीजा गणपत करता है। चूड़ियों के कारखाने में भट्टी के पास काम करके फफोलों की पीड़ा व मालिक की डाँट तथा जीजा की मार व गालियाँ सहती है और जवान होने पर अपनी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह उसके जीजा गणपत से ही करवा दिया जाता है और वह चाहकर भी उसका विरोध नहीं कर पाती है तथा अपने जिस अधपगले भाई के लिए सबकुछ सहती रही, वह भाई भी विवाह करके उसे छोड़कर अलग चला जाता है। दर्जन बीबी का पति उसे छोड़कर दूसरी औरत से इसलिए शादी कर लेता है, क्योंकि वह उसके अनुसार देह बनकर नहीं जीना चाहती है।

मृदुला जी के उपन्यास 'मैं और मैं' की माधवी एक गृहिणी होने के साथ–साथ महत्त्वाकांक्षी और बौद्धिकता से युक्त लेखिका भी है। वह एक आदर्श पत्नी व दो बच्चों की माँ है तथा लेखनकार्य द्वारा अपनी अस्मिता बनाना चाहती है। आर्थिक अभावों का शिकार रहा कौशल कुमार, जो कि सशक्त कहानीकार है, माधवी के महत्त्वाकांक्षी स्वाभव का फायदा उठाता है। कौशल कुमार द्वारा माधवी आर्थिक व मानसिक शोषण का शिकार होती है, परंतु धूर्त कौशल कुमार के बारे में उसके इरादे जानने के पश्चात् वह उसकी हर कोशिश को नाकामयाब कर देती है। 'अनित्य' उपन्यास की काजल व संगीता भी अविजित द्वारा शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार होती हैं तथा 'मिलजुल मन' उपन्यास की ऊपर से खुश दिखनेवाली गुल अन्दर से त्रासद भरी जिंदगी जी रही है। ससुराल में पति की नालायकी की तोहमत उसी के सिर पर थी। शराबी–कबाबी पति को वश में रखने के लिए तमाम उपाय करती हुई तथा जुड़वा बच्चों का व गृहस्थी का बोझ अकेले ढोती हुई गुल जीवन की प्रतिकूलताओं से जूझती हुई दिखाई देती है। उसकी पूर्व की ओजस्वी छवि खंडित होती हुई दिखाई देती है। मोगरा का यह कथन गुल की स्थिति को अभिव्यक्त करता है – "उसके कदम लड़खड़ाए से लगे थे, पर वहम भी हो सकता था मेरा। पूरा जायज़ा ले पाती उससे पहले वह आँखों से ओझल हो गया। नज़र गुल की तरफ़ पलटी तो देखा, सहेली उसे करवा थमा, कह रही थी, 'जल्दी से अर्ध्य दे लो, चाँद कब का निकल लिया, कब तक उपासी रहोगी।' मैंने सोचा अब गुल की हँसी की खनक सुनाई देगी और चेहरे पर चमक लौट आएगी। तमाम औरतों की निगाहें उस पर टिकी थीं।

मेरी तरह उसने भी महसूस की होंगी। नाउम्मीद उसने नहीं किया। हँसी जरूर, खनक भी बरकरार रही पर चेहरे का उपासा बादल न छँटा।............ 'गुल ने गले की चेन बेचकर स्टील की अलमारी खरीदी थी, ख़ास आप लोगों के लिए।''[11] पढ़ी–लिखी मोगरा जो कि दिल्ली के ही एक कॉलेज में अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका है, परंतु पिता के द्वारा ढूँढे गए पति के साथ बिहार के एक कस्बे में आकर जीवन व्यतीत करती हुई नजर आती है। जीवन की तमाम विसंगतियों के पश्चात् भी दोनों बहने अपने लेखन के द्वारा अपने अस्तित्व को बनाये रखती हैं।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों की ये सभी स्त्रियाँ आँसुओं से चीत्कारों में प्रतिशोध का कताराभर बहाने को तैयार नहीं हैं, बल्कि अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखना चाहती हैं। पीड़ा की राह से गुजरकर ही अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहती हैं। पीड़ा के बिना कोई सृजन संभव नहीं है। स्मिता का यह कथन इनकी प्रबल प्रतिशोध की भावना को व्यक्त करता है –''फिर एक बालात्कार। पहले अस्मिता पर, अब शिशु पर। मेरी चीख ने अस्पताल के दरो–दरवाजे हिला दिये। बचपन के बँधे–रूँधे बलात्कार के क्षण से, आँतों में घुटी जो पड़ी थी। उसके बाद मैंने ओंठ कस लिये। मुट्ठियाँ भींचकर भीतर उठती चीखों को वापस घोंट दिया। आदत थी। मुझे अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखनी थी। प्रतिशोध! बन्दूक से दागी गोली की तरह, वह एक शब्द बार–बार दिमाग में बज रहा था।

एक दरिन्दा मर गया। इंतकाम का मौका दिये बगैर मर गया। भाग निकला वाजिब सजा की गिरफ्त से। अब इस आदमखोर, जिम जारविस, को फरार होने का मौका नहीं दूँगी। ऐसा बदला लूँगी कि .... रूह की मौत का बदला, रूह को मारकर ही लिया जा सकता था।.............अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखनी थी।''[12] इसी क्रम में स्मिता का यह कथन –''कमजोरी पर विजय पाने में बहुत समय निकल गया, पर अब मैं बच्ची नहीं हूँ, मजलूम भी नहीं हूँ, पूरी तरह समर्थ हूँ। मेरे पीछे रॉ की स्त्री–शक्ति है। बस जो कुछ करना है, तत्काल करना होगा। ऐसा न हो कि मैं रोती–कलपती रह जाऊँ और मेरा अपराधी, सजा पाने से पहले, एक बार फिर, खुद अपनी मौत मर जाए।''[13]

पुरुष के हाथों विकराल मर्माघात सह चुकी प्रतिरोध की ज्वाला में जल रही औरतों के अतिरिक्त ऐसी भी औरतों का चित्रण उपन्यास में किया गया है, जिन्होंने खुद कभी कोई चोट नहीं खाई थी, पर दूसरों की कहानियाँ सुनकर पुरुष मात्र को आततायी घोषित कर चुकी थीं। इन औरतों का मानना था, कि मर्द नाम का प्राणी, खुदगर्ज और जालिम तो होता ही है। 'कठगुलाब' उपन्यास की नारी पात्र असीमा इसी श्रेणी की औरतों का प्रतिनिधित्व करती है। समाज में लड़की व लड़के के बीच किए जाने वाले भेद के प्रति उसके मन में आक्रोश है। उसका यह आक्रोश का भाव इन पंक्तियों में व्यकत होता है – ''कभी सुना है किसी लड़की का नाम असीमा? नहीं न? लड़कों का, अलबत्ता, सुना होगा असीम। सारा खेल मेल शॉविनिज्म का है। सीमा में बँधे रहने का ठेका लड़कियों ने जो ले रखा है। मेरे माँ–बाप ने कौन–सा मेरा नाम असीमा रखा था। वही घिसा–पीटा सीमा। मेरे पिद्दी भाई को जरूर असीम नाम दिया था। वह तो मैंने खुद बदलकर असीमा कर लिया।''[14] इनकी नजर में सभी पुरुष एक से एक बढ़कर हरामी होते हैं। उसको मर्दों से नफरत है तथा अपने कराटे की किक से मर्दों को पीटने में उसे आन्नद आता है। उसका यह कथन इसे व्यक्त करता है, कि उसके मन मे मर्दों से कितनी घृणा है– ''अब आये तो कोई मर्द मेरी सीमा में, टाँग तोड़कर पूँछ बना दूँ। मुझे मर्दों से नफरत है। सब एक–से–एक बढ़कर हरामी होते हैं। सबसे बड़ा हरामी था, मेरा बाप। लम्बा, तगड़ा, खूबसूरत हरामी।''[15] मर्दों को देखते ही उनके दिलोदिमाग पर चोट करने और निशान छोड़ने का मन करता था। उनकी बात का सफल विरोध करने की, बहस में उन्हें हराने की, तिरस्कृत करके उन्हें तिलमिलाने की तीव्र ललक उसके मन में उठती रहती है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नारी के शोषित व पीड़ित रूप का चित्रण करने के साथ–साथ नारी के विद्रोहिणी, स्वावलंबिनी तथा स्वाभिमानिनी स्वरूप को भी चित्रित किया है। इनके उपन्यासों की नारी, वह चाहे मनीषा, मनु, माधवी, काजल, संगीता, स्मिता, मारियान,

नर्मदा, असीमा, दर्जन बीबी आदि में से कोई भी हो, अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध करते हुए दृष्टिगोचर होती है। नर्मदा जैसी देशी औरत जो अपने जीजा गणपत के हाथों शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार होती है, समय के साथ–साथ उसका व्यक्तित्व दबंग बन जाता है। जब एक दिन उसका जीजा, उसके रहते, अचानक असीमा के घर आ टपकता है, तो वह शेरनी की तरह दहाड़ते हुए उसे फटकारती है – ''फिर कभी इस घर में आने की हिम्मत की तो दोनों टाँगें तोड़ के सड़क पर फेंक दूँगी। भड़ुवे जा अपनी बीवी के पल्लू में जाके सो। मैं तेरी रखैल ना थी, तू मेरी रखैल था। कमा–कमा के तुझे खिलाया मुस्टंडे, इसलिए, कि तू और तेरी बीवी मिलके मेरा हक मारो। जा, नामर्द समझ के अपना हिस्सा माफ किया। पर याद रख, एक दिन आके वसूल कर लूँगी। वह मेरी बहन ना दुसमन है, पहले जान लेती तो तुम दोनों की बोटी–बोटी काट के चील–कौवों को खिला देती। हिम्मत हो तो आ मेरे सामने।''[16] 'कठगुलाब' की नारी स्वावलंबिनी है, जो किसी पर आश्रित नहीं रहना चाहती है। दर्जन बीबी का यह कथन कि – ''औरत अपने बच्चे खुद पाल सकती है। मैं अब भी कह रही हूँ, तू यहाँ आ जा, एक बार पूरा काम सीख जा, हमेशा के लिए आजाद हो जाएगी।''[17] वह स्वाभिमान व आत्मसम्मान से युक्त नारी है। जिसे अपमान मान लिया, मान लिया। उसे पति के लिए देह बनना मंजूर नहीं है और न ही चरित्रहीन पति से पैसा लेना ही उसे स्वीकार है। वह स्पष्ट कहती है, कि – ''जिसका मैं सम्मान नहीं कर सकती, जिसने मेरे आत्मसम्मान को चोट पहुँचाई, उससे पैसा क्यों लूँ?''[18] जब उसका पति दूसरा विवाह कर लेता है, तब भी वह न तो तलाक माँगती है और न ही जेब खर्च। उलटे छाती ठोककर ऐलान कर देती है, कि – ''मेरे सिद्धांत मुझे ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाजत नहीं देते, जो किसी और का पति बन चुका हो।''[19] उसके पति ने वैवाहिक संबंध की अनन्यता को तोड़कर उसे ठेस पहुँचाई है, लेकिन उसे किसी प्रकार की दया, सहानुभूति और आर्थिक सहायता प्राप्त करना स्वीकार नहीं है। एक सिलाई मशीन के सहारे मेहनत करके वह अपने बच्चों का पालन–पोषण करती है।

नारी का जीवन परिस्थितियों के कारण कितना जटिल व कष्टमय बन जाता है, इसका चित्रण 'कठगुलाब' उपन्यास में स्मिता के माध्यम से चित्रित किया गया है। अपने हक के लिए लड़ने वाली, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने वाली ये नारियाँ परिस्थितियों से लड़नेवाली व हिम्मत न हारने वाली हैं। अपने उपन्यासों में लेखिका ने नारी के दमन–शोषण के साथ–साथ नारी–संघर्ष व नारी–चेतना को अभिव्यक्त किया है। शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार यह नारी अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुषप्रधान समाज से टकरा रही है तथा अपने ऊपर हो रहे अत्याचार, शोषण व अन्याय का खुला विद्रोह करती हुई दिखाई दे रही है। विद्रोहिणी व स्वाभिमान से युक्त यह नारी हालात के थपेड़ों से परास्त नहीं होती है, बल्कि सशक्त ढंग से खड़ी होकर जीवन–संघर्ष के रणक्षेत्र में साहस के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

(च) दांपत्य–संबंध :

पारिवारिक जीवन का मूल आधार है – दांपत्य जीवन। परिवार में पति–पत्नी दोनों का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं तथा एक–दूसरे के सहायक हैं। परिवार में दांपत्य संबंधों के मधुरतम होने से ही धर्म, अर्थ व काम का समन्वय स्थापित हो सकता है। आधुनिक भौतिकतावादी युग में मानव संशय, द्वेष, संत्रास और असुरक्षा के कारण अमानवीय जीवन जीने लगा है तथा ऐसे परिवेश में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखंडन तथा पारिवारिक मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है। परिवार के अन्य संबंधों की तरह ही दांपत्य–संबंधों भी में तेजी से बिखराव आया है। परिवार की धुरी पति–पत्नी के संबंधों में मधुरता समाप्त हो रही है, जिसके कारण विवाह–विच्छेद की समस्या बढ़ रही है, जिसका मूल कारण है– एक दूसरे की बढ़ती हुई अपेक्षाएँ।

समकालीन स्थितियों और दांपत्य–संबंधों का यथार्थपरक चित्रण मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में बखूबी किया है। दांपत्य–संबधों में आई टूटन–बिखराव का कारण नारी की

आर्थिक आत्मनिर्भरता, समानाधिकार की भावना व उसकी अतिवादी विचारधारा के साथ–साथ पुरुष का अहं, अन्य पुरुष का आगमन तथा मुक्त यौन–संबंधों के पीछे भागने की प्रवृत्ति भी है। इनके उपन्यासों में ऐसी नारियों का चित्रण हुआ है, जो विवाह प्रथा का विरोध करती हुई दिखाईदे रही हैं। ये नारियाँ स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करती हैं। पति–पत्नी संबंधों में परंपरागत धारणा की दृष्टि से परिवर्तित रूप देखने को मिलता है। आधुनिक नारी बुद्धिवादी है तथा वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अन्य पुरुष की ओर अपने को खींच ले जाती है, जिसके कारण दांपत्य जीवन में बिखराव आया है। इनके उपन्यासों में दुःखद व सुखद दोनों ही तरह के दांपत्य–संबंधों का चित्रण हुआ है। 'मैं और मैं' व 'मिलजुल मन' उपन्यासों में सफल दांपत्य–संबंधों का चित्रण हुआ है, तो 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'अनित्य', 'चित्तकोबरा' व 'कठगुलाब' आदि उपन्यासों में असफल दांपत्य–संबंधों की अभिव्यक्ति हुई है।

पारिवारिक संबंधों की षिथिलता के कारण संवादहीनता का प्रसार दांपत्य–जीवन में तेजी से बढ़ा है, जिसके कारण दांपत्य–संबंधों में खोखलापन व बिखराव आ रहा है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में पति–पत्नी संबंधों में आए खोखलेपन व बिखराव की स्थिति को बड़ी दृढता से अभिव्यक्त किया है। इनके उपन्यास साहित्य में सारे संबंध शब्द मात्र में सिमटते हुए तथा दांपत्य–जीवन संबंधी परंपरागत नैतिक मान्यताएँ शिथिल होती दिखाई देती हैं। आर्थिक दृष्टि से सुधार हेतु अर्थोपार्जन करने के लिए व्यक्ति की व्यस्तता से भी दांपत्य–जीवन में दरार पैदा होने की संभावनाएँ बढ़ती हैं। इनके उपन्यासों में दांपत्य–जीवन में आए तनाव तथा महानगरीय सभ्यता और उससे उत्पन्न मानसिकता को व्यक्त किया गया है। दांपत्य स्तर पर स्त्री की घुटन, दिशाहीनता एवं स्वच्छंदता का चित्रण किया गया है। मनीषा व मनु विवाहित होते हुए भी पर पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर लेती हैं, यहाँ विवाह–संबंध का छिछलापन व्यक्त होता हैं। इनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा और जितेन का सुनियोजित विवाह होकर भी दो वर्ष बाद दांपत्य–जीवन में दरार पड़ जाती है। 'चित्तकोबरा' की मनु व महेश का दांपत्य–जीवन भी असफल है तथा 'कठगुलाब' की नारियों के दांपत्य–जीवन भी असफल हैं, फिर वह चाहे नमिता, दर्जन बीबी, स्मिता, मारियान, नर्मदा कोई भी हो, इन सभी का दांपत्य–जीवन कोई संतोष प्रदान नहीं करता है। 'अनित्य' की काजल व संगीता का दांपत्य–जीवन भी सुखी नहीं है। इन उपन्यासों के अधिकांश पात्रों के दांपत्य–संबंधों की असफलता का कारण विवाहेतर प्रेम–संबंधों का होना तथा प्रेम व सेक्स संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन आना है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा अपने पति जितेन से इसलिए तलाक ले लेती है, कि उसका पति जितेन अपनी पत्नी मनीषा से ज्यादा समय अपनी फैक्टरी को देता है। प्रस्तुत उपन्यास में सुखद व स्वस्थ दांपत्य–संबंधों का अभाव परिलक्षित होता है। मनीषा एक कॉलेज में प्राध्यापिका है तथा लेखिका भी है। उसका विवाह जितेन के साथ हुआ है, जो एक फैक्टरी मैनेजर होने के कारण अतिव्यस्त रहता है। वह अपने खाली समय में अपने पति के साथ रहना चाहती है, परंतु जितेन अपनी व्यस्तता के कारण उसके साथ अधिक समय व्यतीत नहीं कर पाता है। जितेन की अतिव्यस्तता व अपने खाली समय को भरने के लिए ही वह अपनी आत्मसार्थकता की तलाश में नौकरी करती है। सभी भौतिक सुख सुविधाएँ प्राप्त होते हुए भी उसका जीवन पति–प्रेम से रिक्त है। उसके वैवाहिक संबंधों में ऊब व असंतोष का निर्माण करनेवाली परिस्थितियाँ हैं तथा पति–पत्नी के मधुर व सौहार्दपूर्ण संबंधों का अभाव है। जितेन के जीवन का लक्ष्य प्रेम न होकर कर्म है तथा वह एक धीर–गंभीर व समझदार व्यक्ति है, परंतु उसमें रोमांटिक प्रवृत्ति का अभाव है। अपने पति की व्यस्तता के कारण मनीषा व जितेन की वैवाहिक जिंदगी एकरस व आनंद रहित हो जाती है, जिसके कारण विवाह–विच्छेद हो जाता है।

वर्तमान जीवन की यांत्रिकता और आपाधापी के कारण मनुष्य का जीवन जड़ और नीरस बनता जा रहा है, जो दांपत्य संबंधों को खोखला कर रहा है। मनीषा भी अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट, द्वंद्वग्रस्त और उद्विग्न रहती है तथा ऐसी स्थिति में जितेन से विमुख

होकर एक अन्य पुरुष, अपने कॉलेज–सहकर्मी मधुकर नागपाल की ओर आकर्षित होती है और दांपत्येतर संबंध स्थापित करती है। मनीषा और मधुकर की नजदीकियाँ बढ़ जाती हैं और वह जितेन से तलाक लेना चाहती है। वह सोचती है, कि –''जिस आदमी को उससे दो बात करने तक की फुर्सत नहीं है उससे कैसा लगाव? जो रिश्ता रात के अँधेरे में जन्म लेता है और चन्द घण्टे कायम रहकर दिन के उजाले के साथ–साथ खत्म हो जाता है, उसे तोड़ने में कैसा संकोच?''[20] जब मनीषा जितेन को अपना तलाक का निर्णय सुनाती है, तो वह उसे समझाने का प्रयास करता है तथा कहता है – '' किसी भी स्त्री–पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता कि वह विवाह करें ही करें। आकर्षण ऐसी चीज है जो वक्त के साथ टिकती नहीं। तुम जानती हो मैं उतने तंग खयालों का आदमी नहीं हूँ। मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ हो भी गुजरा हो तो उसे भुलाया जा सकता है। इसमें तलाक की जरूरत नहीं है।''[21] वह आगे कहता है, कि – ''यह जानना महज आकर्षण है या जिसे तुम कहती हो, प्रेम। जब वह चुक जायेगा तब क्या करोगी?''

''प्रेम चुकता नहीं।''

''प्रेम जरूर चुक जाता है, यही उसकी नियति है।''

''नहीं।''

''और यही उसकी त्रासदी।''

''तुम प्रेम के बारे मे क्या जानते हो?''

'' यही कि प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं होता।''

''ठीक है। तब तुम्हें एतराज ही क्या है? मुझे तलाक दे दो।''

जितेन कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, ''चुनने का अधिकार सबको है, मनीषा। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि एक बार और सोच लो। तलाक की जरूरत मैं नहीं समझता।''[22]

वह मानता है कि प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता है क्योंकि प्रेम चुक जाता है। वह मनीषा से कहता है, कि – ''यह भावुकता में कही गयी बात है।'' ....''जबरदस्ती करके तुम्हें नहीं रोकूँगा, मनीषा। एक इन्सान का दूसरे पर इतना अधिकार मैं नहीं मानता। इतना जरूर कहूँगा, एक बार और सोच लो। मैं तुम्हें चाहता हूँ, चाहता हूँ तुम न जाओ। इसके अलावा सिर्फ यह कह सकता हूँ, कभी लौटना चाहो तो लौट आना।''[23] परंतु अपनी भावुकता के कारण मनीषा अपना विवाह–विच्छेद कर लेती है। मुधकर का प्यार पाकर उसे लगता है, कि – ''पास खिले जवाकुसुम ने आहिस्ता से उसके होंठों को अपनी मृदुल पंखुडी से छू दिया है। इतना नन्हा–सा सपर्श! और उसके अन्तरतम तक वह पारुल बिखेर गया। प्रथम चुम्बन! उसने सोचा। उसके होंठों के साथ–साथ उसके शरीर के अनगिनत रोम–छिद्र उस कोमल मधुर स्पर्श से रोमांचित हो उठे। प्रथम चुम्बन, उसने फिर सोचा, ऐसा ही होता है प्रथम चुम्बन! जन्म से तृषित दग्ध देह को पल–भर में रसाप्लावित कर देता है।''[24] उसे लगता है कि जीवन में पहली बार किसी ने उसे प्यार किया है। वह मधुकर के उत्साह, सरगर्मी, जोश, और गर्म मिजाज से प्यार करती है। एक अच्छे पति के होते हुए अन्य पुरुष की ओर आकर्षित होना दांपत्य–संबंधों को कमजोर बनाता है।

मधुकर से विवाहोपरान्त भी मनीषा खुश नहीं रहती है तथा उसे अपनी गलती का अहसास होता है और वह जितेन और मधुकर के बीच द्वंद्वग्रसत होकर झूलने लगती है। मधुकर के साथ बिताए चार वर्षों में ही उसे ऊब होने लगती है और जब वह नैनीताल में जितेन से मिलती है, तो जितेन से पुनः संबंध बनाती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मनीषा व मधुकर के दांपत्य–संबंधों में भी मधुरता का अभाव है। चार वर्ष पहले के मुधकर व आज के

मधुकर के साथ के जीवन में उसे साम्य नहीं दिखाई देता है और वह सोचती है, कि – ''आज के उसके और चार वर्ष पहले के मधुकर के साथ के जीवन में कहीं कोई साम्य नहीं है। जो कभी एक के बाद एक एक सीढ़ी चढ़ने के समान अनायास था, आज कमंद डालकर दीवार पर चढ़ने के समान सचेष्ट हो गया है। पहले जो सत्य था, अब नाटक बनकर रह गया है। प्रेम करते–करते ऊब उठे, वह और मधुकर, प्रेम का नाटक करने लगे हैं।''[25] जितेन से पुनः मिलने पर वह सोचती है, कि – ''क्या जो जितेन ने चार वर्ष पहले कहा था, वहीं सच था? प्रेम चुक जाता है, यही उसकी त्रासदी है, यही उसकी नियति। क्या मधुकर के लिए उसका प्रेम चुक गया है? या चुका नहीं सिर्फ रोजमर्रा की वस्तु बन गया है।''[26] मनीषा महसूस करती है कि विवाह के बाद प्रेम नाटक मात्र रह जाता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि आज पति–पत्नी संबंधों की घनिष्ठता के लिए काम–संबंधों की संतुष्टि आवश्यक है। उपन्यास में असफल दांपत्य–संबंधों को चित्रित किया गया है।

पति–पत्नी के विवाहोपरान्त संबंधों में जिस असंतोष–अतृप्ति का चित्रण 'उसके हिस्से की धूप' में किया गया था। 'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी उसी असफल दांपत्य–संबंध का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास में मनु और महेश दोनों पति–पत्नी हैं, जो अपने दांपत्य संबंधों से असंतुष्ट हैं। महेश की सारी सुख–सुविधाओं का ध्यान रखते हुए भी मनु यह महसूस करती है कि महेश उसके प्रति उदासीन है और वह उससे प्यार नहीं करता है। महेश यह मानता है कि एक सुव्यवस्थित समाज के लिए विवाह आवश्यक है तथा पत्नी की आवश्यकताओं को एक पति अपने कर्तव्यों की खातिर पूरा करता है, प्यार की खातिर नहीं। महेश की उदासीनता के कारण ही मनु रिचर्ड की तरफ आकर्षित हो जाती है। मनु जब महेश की प्रतिक्रिया जानने के लिए उससे पूछती है, तो महेश कहता है कि, ''जब हमारी शादी हुई तो तुम मुझे प्यार करती थी और वह सब कुछ करना चाहती थी, जो तुम्हारे खयाल से आम हिन्दुस्तानी औरत पति को खुश करने के लिए करती है। .... और तुम?.........मैं तो तुम्हें प्यार नहीं करता था। .....मैं हमेशा जानती रही हूँ........ जब उससे विवाह किया था, तब भी जानती थी.....महेश के लिए वह एक तयशुदा, सुनिश्चित विवाह से अधिक कुछ नहीं है। प्यार सिर्फ मेरी तरफ है, सिर्फ मेरी।''[27] महेश स्वच्छन्दतावाद को पसंद तो करता है, परंतु अपनी पत्नी के जीवन में किसी दूसरे व्यक्ति का प्रवेश पसंद नहीं करता। जब मनु महेश से पूछती है, कि ''अगर विवाहित रहते हुए किसी और से प्यार हो............लंबी कशमकश के बाद उसने धीमे पर स्पष्ट स्वर में कहा '' विवाह के बंधन में मेरा विश्वास नहीं है मनु।''.....बोलो न, अगर मुझे किसी से प्रेम हो?.......... आखिर महेश ने चुप्पी तोड़ दी। उसी धीमे–संजीदा स्वर में कहा, ''हो सके तो मुझसे कहना मत।''[28] महेश यह मानता है, कि एक सुव्यवस्थित समाज के लिए विवाह जैसी संस्था का होना अनिवार्य एवं सार्थक है। प्रेम के विषय में महेश के विचार भिन्न हैं। वह कहता है – ''अगर समाज में रहने वाले हर पति को अपनी पत्नी से प्यार होगा और हर पत्नी को पति से, तो समाज की भला कौन परवाह करेगा? बच्चों की परवरिश बंद हो जाएगी। व्यापार–व्यवसाय ठप्प हो जाएँगे। राजनीति का भट्ठा बैठ जाएगा। बड़े–बूढ़े मर–खप जाएँगे। सभी स्त्री–पुरुष एक–दूसरे में डूबे रहेंगे और देश रसातल को चला जाएगा। प्यार होने पर और कुछ नहीं सूझता, है न?''[29] महेश के विचारों में पति–पत्नी संबधों में प्यार और कर्तव्य अलग–अलग चीजें हैं। महेश की इसी भावना के कारण वह रिचर्ड की तरफ आकर्षित होती है, परंतु फिर भी अपने पत्नी के कर्तव्य से पतित नहीं होती, पति के प्रति पूर्णरूप से समर्पित रहती है। रिचर्ड से प्रेम करते हुए भी उनके दांपत्य संबंधों में कहीं टूटन नहीं आती है, उनके दांपत्य–संबंध बिखरते नहीं हैं। रिचर्ड व मनु दोनों ही एक–दूसरे को अगाध प्रेम करते हैं, परंतु दोनों ही अपने दांपत्य–संबधों में दरार नहीं आने देते हैं।

मृदुला जी के उपन्यास 'अनित्य' में भी दांपत्य–संबंधों में मधुरता का अभाव दिखाई देता है। इनके अन्य उपन्यासों में पत्नी अपने पति से असंतुष्ट दिखाई देती है, लेकिन इस उपन्यास में अविजित भी अपने दांपत्य–संबंधों से असंतुष्ट दिखाई देता है। वह विवहापूर्व व पश्चात् अन्य स्त्रियों से प्रेम–संबंध रखता है। अविजित की पत्नी सौंदर्य की स्वामिनी है तथा अक्सर बीमार रहती है। वह अपनी बीमारी की हालत में अपने पति का अधिकाधिक साथ चाहती है। अविजित

अपनी बीमार पत्नी को अधिक समय नहीं देता है तथा शुक्ला जी को देखरेख के लिए छोड़ देता है, परंतु श्यामा एक भारतीय नारी है, जो अपने पति का स्थान अन्य पुरुष को नहीं दे सकती है। वह कहती है – ''तुम्हारी जगह तो शुक्ल नहीं ले सकता।''[30] पति के सपर्श में भी उसे दवा का अहसास होता है – ''सिरदर्द तो बहाना है – स्पर्श को महसूस करने के लिए। देर तक रहे तो स्पर्श दवा बन जाता है।''[31] अविजित के अवैध संबंधों का जब उसे पता चलता है, तो वह शर्मिंदगी महसूस करती है, परंतु फिर भी जीवन के अंतिम दिनों में बिना किसी भेदभाव के उसकी सेवा करती है। 'अनित्य' उपन्यास में ही संगीता व सुरेश मांडलिया भी पति–पत्नी हैं। संगीता अविजित को प्यार करती है, जो विवाहित है तथा अपने पति से विवाह करके भी उससे प्यार नहीं करती है। वह केवल पैसों से मोह के कारण ही अमीर उद्योगपति सुरेश मांडलिया से विवाह करती है। संगीता व अविजित के वार्तालाप से यह स्पष्ट है –

''जिस आदमी के बारे में ऐसा सोचती हो उससे विवाह करोगी?''

''उसे बतलाउंगी थोड़ा।''

''शादी कर क्यों रही हो उससे?''

''मालदार है।''

''तुम्हें पैसों की क्या कमी है? डॉक्टरी खूब बढ़िया चल रही है।''[32]

जब अविजित कहता है कि – ''मैं कभी सोच भी नहीं सकता था, तुम बिना प्यार किये, सिर्फ पैसों के लिए शादी कर सकती हो।''

संगीता का संकोच उड़ गया। ''क्यों नहीं सोच सकते थे,'' उसने कहा, ''आप तो मेरी मां को जानते थे। उन्होंने हमेशा यही सीख दी, किसी मर्द से प्यार की खातिर शादी मत करो। प्यार लो, दो कभी नहीं।''[33]

वह विवाह के पश्चात् भी अविजित की ओर ही आकर्षित रहती है तथा अंत में वह अविजित को पाने के लिए अपने पति का खून तक कर देती है। सुरेश संगीता से प्यार करता है, लेकिन वह जानता है, कि वह उससे प्यार नहीं करती है, इसलिए उसे छूता तक नहीं है। एक दिन जब संगीता उससे पूछती है, कि – ''आखिर तुम चाहते क्या हो?''..............''मैं तुम्हारी बीवी हूँ या नहीं?''..........''फिर तुम मुझे छूते क्यों नहीं हो?''..........''शादी क्यों की थी मुझसे?''..........''मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, संगीता,'' गहरी वेदना से थर्राते स्वर में सुरेश ने कहा। प्यार करते हो? तो करो प्यार! रोते क्यों हो?''............''तुम मुझसे प्यार करती हो?''.............बहुत चाहने पर भी संगीता 'हाँ' न कह सकी।''[34] सुरेश के साथ संगीता के दांपत्य–संबंध सफल नहीं हैं तथा अविजित का साथ वह अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक चाहती ही रह जाती है।

'अनित्य' उपन्यास में ही काजल व मुकर्जी बाबू भी पति–पत्नी हैं। काजल का विवाह मुकर्जी बाबू से होता है, लेकिन काजल अविजित से प्रेम करती है। काजल के बाबा ने जेल से काजल को जो पत्र लिखा था, उसमें मुकर्जी बाबू के गुणों का वर्णन किया गया था। उस पत्र में किए गए गुणों के वर्णन से प्रभावित होकर ही काजल मुकर्जी बाबू से विवाह करती है। उन दोनों के एक पुत्र का भी जन्म होता है, लेकिन मुकर्जी बाबू को काजल के चरित्र पर संदेह होता है और वह उसे छोड़ देता है। काजल भी क्रांतिकारी व स्वाभिमानी नारी होने के कारण पति से संबंध–विच्छेद कर लेती है। इसी उपन्यास में स्वर्णा और लक्ष्मण भी पति–पत्नी के रूप में सामने आते हैं, जिसमें दोनों एक–दूसरे के प्रति समर्पित रहते हैं तथा प्रेमपूर्वक इकट्ठे रहते हैं।

'मैं और मैं' उपन्यास में माधवी अपने पति व बच्चों के प्रति कर्तव्यनिष्ठ है। माधवी और राकेश एक–दूसरे के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं तथा खुशहाल गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं।

माधवी अपने घर के दायित्वों के प्रति भी चिंतित दिखाई देती है तथा भारतीय संस्कारों से परिपूरित नारी है। उसका दांपत्य संबंध बिखरता नहीं है, जिसका कारण पति–पत्नी संबंधों के बीच की समझ है। वह राकेश जैसे पति को पाकर खुश है। वह कहती है, कि – ''कितना प्यारा पति पाया है उसने। भारतीय पुरुष और पत्नी के अकेलेपन की जरूरत समझे! ऐसा पति जिस स्त्री का हो उसे और क्या चाहिए?''[35] यहाँ दांपत्य–संबंध इसलिए मजबूत हैं, क्योंकि माधवी अपनी भूमिकाएँ बखूबी निभाती है तथा राकेश भी अपनी पत्नी की भावनाओं को समझता है। धूर्त कौशल के अनेक प्रयासों के बावजूद माधवी समझदारी से काम लेती है तथा अपने दांपत्य–संबंधों को बिखरने नहीं देती है। मृदुला जी ने दांपत्य–संबंधों के विविध रूपों का स्वाभाविक अंकन अपने 'वंशज' उपन्यास में भी किया है। इसमें सफल व असफल दांपत्य–संबंधों को चित्रित किया है। उपन्यास में रेवा और संदीप के दांपत्य–संबंधों में मधुरता दिखाई देती है, तो सुधीर और सविता का असफल वैवाहिक जीवन भी दृष्टिगोचर होता है। रेवा एक समझदार आदर्श गृहिणी है तथा संदीप और रेवा एक दंपती के रूप में एक–दूसरे की इच्छाओं को महत्त्व देते हैं, जिसके कारण उनका वैवाहिक जीवन मधुरतायुक्त है। इसके विपरीत सुधीर व सविता के बीच प्रारंभ में तो मधुर दांपत्य–संबंध दृष्टिगोचर होते हैं, परंतु आगे चलकर दोनों के बीच दांपत्य–संबंधों में कटुता आने लगती है। वैचारिक–विभिन्नता के कारण सुधीर और सविता के वैवाहिक जीवन में तनाव, नीरसता और कटुता आने लगती है। सुधीर मानवीयतायुक्त, संवेदनशील, दूसरों की मदद करनेवाला तथा स्वतंत्र विचारों वाला है, जबकि सविता दकियानूस, कंजूस तथा प्रेम से अधिक पैसों को महत्त्व देनेवाली नारी है। आपसी मतभेद के कारण दोनों में संघर्ष होता रहता है, जो उनके असफल दांपत्य–संबंधों का सूचक है।

'कठगुलाब' उपन्यास की रचना मृदुला जी ने स्त्री–पुरुष संबंधों को लेकर ही की है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने असफल दांपत्य–संबंधों को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास में पुरुष द्वारा प्रवंचति–प्रताड़ित और इस्तेमाल की गई नारियों की ही कथा है। 'कठगुलाब' में स्त्री–पुरुष संबंधों अर्थात दांपत्य–संबंधों का तो चित्रण है, परंतु पुरुष द्वारा स्त्री का तिरस्कार व शोषण ही प्रमुख रूप से उभरकर आया है। पुरुष द्वारा शोषण के परिणामस्वरूप स्त्री, पुरुष से अलग होकर संघर्ष की राह पर चल पड़ती है। वह पुरुष की सहगामिनी बनकर नहीं अपितु प्रतिस्पर्धी बनकर जीवन के रणक्षेत्र में उतरती है। उपन्यास की नमिता को उसका पति प्रताड़ित करता है तथा मारता है। समय आने पर नमिता भी उसे उपेक्षित छोड़ देती है तथा असीम के साथ दाम्पत्येतर संबंध बना लेती है। स्मिता व जिम जारविस भी पति–पत्नी हैं। मनोचिकित्सक के भेष में वहशी भेड़िया उसका पति जिम जारविस, उसकी कोख पर लात मारकर उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को जन्म से पहले ही मार देता है। मारियान का पति इर्विंग भी अपने लेखन के स्वार्थ हेतु उसका मानसिक व शारीरिक शोषण करता है तथा जब मारियान तलाक के पश्चात् गैरी कपूर से शादी करती है, तब वह भी निहायत आत्मकेंद्रित वृत्ति का मनुष्य होता है। उससे भी मारियान तलाक ले लेती है। दर्जन बीबी का पति उसे छोड़कर दूसरी औरत से इसलिए शादी कर लेता है, क्योंकि वह उसके अनुसार देह बनकर नहीं जीती है। नर्मदा का विवाह भी उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके जीजा गणपत से करवा दिया जाता है, पर वह अपनी वर्गीय मानसिकता के कारण कुछ भी नहीं कर पाती है और विवश होकर अपने अधपगले भाई भोला के लिए सबकुछ सहती रहती है। जब उसका भाई विवाह करके अलग हो जाता है, तो वह भी जीजा को छोड़कर एक स्कूल में नौकरी कर लेती है तथा अंत में नमिता के यहाँ उसके अपाहिज पति की सेवा और उसके दो बच्चों के पालन–पोषण में अपना अधिकांश जीवन गुजार देती है। नीरजा, नमिता की पुत्री है। वह भी बिना विवाह के ही विपिन के साथ रहकर उसके बच्चे की माँ बनने के लिए तैयार हो जाती है, परंतु वह माँ नहीं बन पाती है और अंततः एक विधुर डॉक्टर जोशी से विवाह करके उसकी पूर्व पत्नी के बच्चों की माँ बन जाती है। 'कठगुलाब' उपन्यास में दांपत्य–संबंधों में मधुरता का अभाव दिखाई देता है तथा पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते संबंध असफल दांपत्य–संबंधों को चित्रित करते हैं। सभी किसी न किसी कारण पति से अलग रहती हैं। कुछ अपने अहं की वजह से तो कुछ अपने ऊपर किए गए अत्याचार

के कारण पुरुष के साथ रहना स्वीकार नहीं करती हैं और अपना परिवार खुद बनाती हैं। 'कठगुलाब' में दांपत्य–जीवन पूरी तरह असफल है। मृदुला गर्ग के नीवनतम उपन्यास 'मिलजुल मन' में पति–पत्नी के रूप में बैजनाथ व कनकलता, गुल व शमित, मोगरा व पवन के सफल दांपत्य–जीवन को चित्रित किया गया है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में सफल दांपत्य–संबंधों की अभिव्यक्ति हुई है।

(छ) स्त्री–पुरुष संबंध व प्रेम–संकल्पना :

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में अपने सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवनदृष्टि के आधार पर वर्तमान समाज के अन्तर्गत घर–परिवार, सामाजिक परिवेश, सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों, टूटते जीवन–मूल्यों, दमन–शोषण, नारी–उत्पीड़न, दांपत्य–संबंध, स्त्री–पुरुष संबंध व प्रेम–संबंधों का चित्रण किया है। पुरातनता से मुक्त होने की छटपटाहट, आधुनिकता के मोहजाल में फँसे व्यक्ति की घुटन व स्त्री–पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। इन्होंने उच्च मध्यमवर्गीय जीवन को केंद में रखकर उसकी प्रबुद्ध स्त्रियों की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और स्वप्नों को चुना है, जिनकी परंपरागत अंधविश्वासों, प्रेम और विवाह को लेकर अपनी निजी मान्यताएँ होती हैं। इन्होंने शिक्षित व स्वतंत्रता की समर्थक नारी को उपन्यासों के केंद में रखा है, जिनमें आधुनिकता अधिक झलकती है, लेकिन इनकी नारी प्रेम, विवाह और काम की स्वतंत्रता को प्राप्त करके भी मानसिक अन्तर्दव्ंद्व से घिरी हुई दिखाई देती है। विवाह के पश्चात् भी इनके उपन्यासों की नारी अपनी मर्जी से जीना चाहती है तथा अपने पति के होते हुए भी अन्य पुरुष से प्रेम–संबंध स्थापित करते हुए दिखाई देती है, फिर वह चाहे 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा हो या फिर 'चित्तकोबरा' की मनु या 'कठगुलाब' की नमिता, जो अपने पति के होते हुए भी अन्य पुरुष के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती हैं।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में नारी के बदलते प्रेम संबंध तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित सामाजिक परिवेश से उखड़ी व कुंठित नारियों को अपने कथ्य का आधार बनाकर स्त्री–पुरुष संबंधों के खोखलेपन को दर्शाया है। नारी के प्रेम, सेक्स, विवाहेतर संबंधों के प्रति नारी की बदलती सोच पर प्रकाश डालते हुए चित्रित किया है कि आज की आधुनिक नारी प्रेम व विवाह के बारे में अपने स्वतंत्र विचार रखती है तथा अपने जीवन के अहम् फैसले खुद ही करते हुए दृष्टिगोचर होती है। तेजी से बदलते समय के साथ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर आधुनिक नारी की मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। आज की नारी विवाह करे या न करे यह उसका निजी मामला है। इनके 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'कठगुलाब', 'अनित्य' इन चारों उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों में नारी का स्वरूप तथा आधुनिक युग में बदलते हुए प्रेम–संबंधों का सशक्त रूप अभिव्यकत हुआ है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा व 'चित्तकोबरा' की मनु ऐसी सशक्त निर्भीक नारियाँ हैं, जो प्रेम और सेक्स में पाप–पुण्य के सम्मोहन से ऊपर उठ चुकी हैं तथा विवाह को मात्र मानसिक संतुष्टि का साधन मानती हैं।

मृदुला जी ने इन उपन्यासों में नैतिक–अनैतिक के प्रश्नों से परे हटकर स्त्री–पुरुष संबंधों का प्रतिपादन किया है तथा स्त्री–पुरुष के अनैतिक यौन–संबंधों को चित्रित किया है। इनके स्वच्छंद नारी पात्र अपनी कामभावनाओं की तृप्ति के लिए पति के पास होने पर भी किसी अन्य पुरुष से संबंध स्थापित करते हैं, जो स्वच्छंद और उन्मुक्त हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में पुरुष पात्रों की यौन उन्मुक्तता को भी चित्रित किया है, जो अपनी पत्नी के होते हुए अन्य स्त्री अर्थात अपनी साली पर बुरी नजर रखते हैं तथा उनका शारीरिक व मानसिक शोषण करते हैं। इनकी उपन्यासों के पुरुष पात्रों में – स्मिता का जीजा, नर्मदा का जीजा गणपत, असीम, दर्जन बीबी का पति, अविजित आदि ऐसे ही पुरुष पात्र हैं, जो यौन उन्मुक्तता को अभिव्यक्त करते हैं।

मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्सें की धूप' उपन्यास स्त्री–पुरुष संबंधों पर आधारित एक प्रौढ़, सर्वाधिक चर्चित व प्रथम उपन्यास है। इसमें मनीषा के माध्यम से एक स्त्री का अपने पति और प्रेमी से संबंधों के निर्वाह के बीच अपने निजी व्यक्तित्व की तलाश का चित्रण किया गया

है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम के संबंध में दो दृष्टिकोण, दो स्त्री–पात्रों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। उपन्यास की प्रमुख पात्र मनीषा है, जो प्रेम को ही सब कुछ मानती है तथा उसे इस बात का दुःख है, कि उसकी जितेन के साथ 'ऐरेंजड मैरिज' हुई है। यदि वह उसके साथ पहले प्रेम करती और फिर शादी करती, तो उसका जीवन अलग ही होता। वह अपनी दोस्त सुधा से कहती है, कि – ''प्रेम साधारण–से–साधारण मनुष्य को भी महान बना देता है। एक–दूसरे को पाने की सच्ची ललक हमसे कठोर–से–कठोर साधना करा देती है, बड़े–से–बड़ा आत्मत्याग।''[36] सुधा के विचार ठीक इसके विपरीत हैं तथा वह प्रेम के संबंध में तटस्थ और व्यावहारिक दृष्टिकोण रखती है। वह कहती है, कि ''प्रेम क्षणिक वस्तु है जब चुक जाता है, तो विवाहित जीवन ऐसा ही होता है।''[37] अंत में मनीषा को महसूस होता है, कि प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं है तथा प्रेम को जीवन का लक्ष्य मानने से ही उसके जीवन मे भटकाव की स्थिति उत्पन्न हुई है। वह स्वयं स्वीकार करती है, कि – ''उसके अपने जीवन का खालीपन इसलिए बराबर बना रहा है, क्योंकि वह उसे किसी–न–किसी पुरुष के प्रेम से भरने का प्रयत्न करती रही है।''[38] वह प्रेम की इस द्वंद्वग्रस्तता की स्थिति से हटकर अंत में जीवन की सार्थकता की ओर मुड़ जाती है तथा अपनी 'स्व' की पहचान के लिए लेखन कार्य में जुट जाती है।

मृदुला गर्ग ने अपने 'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी महेश–मनु–रिचर्ड के मध्य त्रिकोणात्मक प्रेम संबंधों को चित्रित किया है, जो स्त्री–पुरुष संबंधों की नैतिकता का उपहास उड़ाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। बदलते जीवन संदर्भो में स्त्री की बदलती हुई मानसिकता को लेकर यह उपन्यास लिखा गया है, जिसमें पुरुष की बराबरी करती हुई नारी की देह–गाथा भी है और मनःगाथा भी। प्रेम के संबंध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लेखिका ने कहा है –''प्रेम न स्थायी होता है, न आदर्श। प्रेम वैसा ही होता है, जैसा जीवन। उसके माध्यम से हम अपने व्यक्तित्व को व्यक्त करते हैं।''[39] प्रेम के संबंध में लेखिका आगे कहती है, कि– '' 'चित्तकोबरा' की जो भावना है, वह तो ऐसी है कि जो अनंतकाल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलेगी भी। आधुनिक काल की नारी होते हुए भी उसकी जो नायिका है, उसके मन की भावनाएँ वही हैं, जो एक प्लेटोनिक किस्म का प्रेम करनेवाली स्त्री की होती है। शायद यह समझना कठिन होता है, कि उसके प्रेम में न तो शरीर है, मगर असल में वह प्रेम एक प्लेटोनिक प्रेम है, क्योंकि समय के साथ शरीर बिलकुल नगण्य हो जाता है।''[40] मनु और रिचर्ड के प्रेम को अशरीरी बताने पर उसे स्प्ष्ट करते हुए वे लिखती हैं–''जब शरीर के एकीकरण होने पर, मन और तन का द्वैत पूरी तरह मिट जाए और अहं विसर्जन के साथ, दोनों में एकात्मक भाव स्थापित हो जाए। शरीर का आतंक तब मिट जाता है और भोग–लिप्सा स्वतः लुप्त हो जाती है। प्रेम के अनुभव से गुजरते हुए, दोनों पात्रों का जो आत्मोत्सर्ग होता है; उनके भावबोध में जो सूक्ष्मता, व्यापकता और गहनता आती है; संवेदन–शक्ति जिस प्रकार तीव्र होती है; अपने चारों तरफ के परिवेश से एक–दूसरे के माध्यम से, पहले से अधिक घनिष्ठ तारतम्य स्थापित करते हैं; वह उन्हें जीवन और जगत की सर्वांगीण समझ देता है। यह प्रेम, मानव मात्र से प्रेम में बाधक न होकर, सहायक होता है।''[41]

'चित्तकोबरा' उपन्यास की रचना प्रेम, विवाह और सेक्स इन मूलभूत तथ्यों को लेकर की गई है। आज प्रेम में भावुकता समाप्त हो रही है तथा स्वार्थ और वासना से युक्त प्रेम नया रूपान्तर बन गया है। 'उसके हिस्से की धूप' व 'चित्तकोबरा' उपन्यास विवाह की निरर्थकता को भी उद्घाटित करते हैं। विवाह एक से तथा प्रेम किसी दूसरे से किया जा रहा है। मनुष्य का मन विचित्र है, क्योंकि प्राप्त से उसका मन नहीं भरता है तथा अप्राप्त के प्रति उसके मन में आकर्षण सदैव रहता है। इन दोनों उपन्यासों की नायिका – मनु व मनीषा भी अनुपलब्ध के प्रति आकर्षण और उपलब्ध के प्रति निरर्थकता के भावात्मक तनाव में निरंतर कसमसाती रहती हैं। दोनों ओर प्रेम पलनेवाली स्थिति का अभाव आज पति–पत्नी में देखा जा सकता है। स्त्री–पुरुष को लेकर लेखिका कहती हैं, कि हमारे समाज में पति–पत्नी के रिश्ते में ही शारीरिक संबंधों की सीमा भी बँधी हुई है। पति–पत्नी से इतर व्यक्ति के साथ शारीरिक संबंध अनैतिकता की श्रेणी में आते हैं। पति–पत्नी के प्रेमहीन संबंधों की शिथिलता से उपजी सेक्स–समस्या को भी लेखिका ने उभारा है। मनीषा का यह कथन – ''मेरा नूतन जन्म हुआ

है जितेन। तुमसे विवाहित इन दो वर्षों में भी मैंने अपने को तुम्हारे इतने निकट महसूस नहीं किया, जितना इन चार महीनों में मधुकर के किया है, चार महीने क्या, चार दिन में ही कर लिया था। और जितेन, मैंने जीवन में पहली बार प्यार किया और पाया है। उसके आग्रह को मैं नहीं ठुकरा सकती। उसको मिटाना खुद को मिटाना होगा। मैं जा रही हूँ , मधुकर के साथ, मुझे जाना ही है।''[42] इसी प्रकार 'अनित्य' में भी स्त्री–पुरुष संबंधों को चित्रित किया गया है, जो विवाह पूर्व व विवाहेतर स्त्री–पुरुष संबंधों को चित्रित करते हैं। अविजित के संगीता के साथ शारीरिक संबंध अनैतिकता को चित्रित करते हैं। 'कठगुलाब' में भी स्त्री–पुरुष संबंधों व प्रेम–संबंधों पर पाश्चात्य संस्कृति व आधुनिकता का प्रभाव दिखाई देता है। यहाँ भी पति–पत्नी संबंध भी असंतोषजनक हैं, फिर चाहे वह दर्जन बीबी हो या नमिता, नर्मदा, स्मिता या मारियान; सभी के संबंधों में बिखराव तथा विसंगति दृष्टिगोचर होती है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास की नायिका मनु अपने पति महेश से सिर्फ तन से जुड़ी मन से नहीं। वह अपने पति के साथ संबंधों को सामाजिक रूप से निभाती है, परंतु अपने प्रेमी रिचर्ड के साथ वह मन से जुड़ी है, उससे वह प्रेम करती है तथा मानसिक संतुष्टि प्राप्त करती है।

अतः स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, कि मृदुला गर्ग के उपन्यासों में प्रेम–संबंधों में सामाजिक नैतिकता की अपेक्षा व्यक्तिगत नैतिकता को अधिक उजागर किया गया है। इन्होंने महानगरों एवं नगरों में तेजी से बदलते प्रेम संबंधों को दर्शाया है, जिसमें पुराने नैतिक मानव–मूल्यों का विरोध किया गया है तथा पति–पत्नी, स्त्री–पुरुष व प्रेमी–प्रेमिका के संबंधों को लेकर नई व्याख्या की गई है, उसमें स्त्री–पुरुष संबंधों में किसी न किसी कारण असंतोष एवं घुटन की भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है।

(ज) पीढ़ियों की टकराहट :

भारतीय समाज व्यवस्था का प्रमुख आधार संयुक्त परिवार रहा है। समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई परिवार ही है। संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के व्यक्ति साथ में रहते है और वे संपत्ति, आय तथा पारस्परिक कर्तव्यों और अधिकारों के बंधनों से आबद्ध रहते हैं। इसमें परिवार के सदस्य आपस में सामंजस्य के साथ जीवन व्यतीत करते हैं तथा सबमें मानवीयता पर अधिष्ठित सहिष्णुता, अनुशासन और संयम के भाव विद्यमान रहते हैं। आज भारत में धीरे–धीरे संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं, जिसके कारण समष्टिवादी के बदले व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभर रहा है। परिवर्तित भारतीय सामाजिक परिवेश में पारिवारिक संबंधों में स्थापित संकल्पना आज कमजोर हो रही है तथा मूल्य संक्रमण के कारण पारिवारिक संबंधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

परिवर्तित भारतीय सामाजिक परिवेश और आदर्शवादी मूल्यों की निरर्थकता से उत्पन्न वैचारिक आक्रोश ही पीढ़ी–संघर्ष है। पुरानी पीढ़ी के अपने संस्कार और मान्यताएँ–मर्यादाएँ होती हैं, जबकि नई पीढ़ी अपने द्वारा निर्धारित नये मानदंडों के अनुसार जीना चाहती है। पुरानी तथा नई पीढ़ी की वैचारिक भिन्नता के कारण ही संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है। दो पीढ़ियों के इस संघर्ष के कारण ही सामाजिक व्यवस्था में शिथिलता पनप उठी है। पुरानी पीढ़ी के अपने विचार व नई पीढ़ी के अपने अलग विचार होने के कारण ही परंपरा और आधुनिकता के मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है, जिससे मूल्यहीनता, पारिवारिक–मूल्यों का विघटन और निरर्थकता का जन्म हुआ है। पाश्चात्य प्रभाव, शिक्षा व नवीन विचारों के प्रभावस्वरूप ही आज युवा पीढ़ी अपने परंपरागत मूल्यों व प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करती हुई स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। मूल्य–संक्रांति व दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष ने सामाजिक जीवन में आंतरिक टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पीढ़ी अंतराल ही पारिवारिक विघटन व सामाजिक अराजकता का मूल कारण है। प्रत्येक पीढ़ी अपनी मान्यताओं, परंपराओं, मर्यादाओं और व्यवस्थाओं के साथ विद्यमान रहती है, जिन्हें आगे आनेवाली पीढ़ी अपने दृष्टिकोणानुसार अपनाती व परिवर्तित करती है, परंतु आज नई पीढ़ी में पुराने आदर्शों व नैतिक मूल्यों के प्रति

आस्था घटती जा रही है, जिसके कारण पारिवारिक मूल्यों का अवमूल्यन व वैचारिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि विदेशों की अपेक्षा भारतीय अपनी संस्कृति को भूलकर तेजी एवं रफ्तार की जिंदगी में गुम होते जा रहे हैं। इनके उपन्यासों में चित्रित परिवारों में बरसों पुराना भारतीय ढाँचा टूटता हुआ नजर आ रहा है। आधुनिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण सामाजिक संबंधों का पारंपरिक रूप विखंडित हो रहा है और नई पीढ़ी का एक स्वतंत्र अस्तित्वपूर्ण रूप सामने आ रहा है, जिसमें माता–पिता व उनकी संतानों के मध्य एक अंतराल की स्थिति उत्पन्न हो रही है। दोनों पीढ़ियों के विचारों व भावनाओं में गहरा अंतराल दिखाई देता है तथा दोनों ही एक दूसरे को समझने में असमर्थ होते जा रहे हैं, जिसके कारण दोनों ही पीढ़ियों के मध्य एक द्वंद्वात्मक व संघर्षात्मक स्थिति उत्पन्न हो रही है। दो पीढ़ियों की इस टकराहट का चित्रण मृदुला गर्ग जी ने अपने 'वंशज' उपन्यास में किया है। 'वंशज' उपन्यास में इन्होंने उच्च मध्यमवर्गीय शुक्ला साहब तथा उनके पुत्र सुधीर की विचारधाराओं, दृष्टिकोण और आचरण पद्धतियों में पाये जाने वाले अंतर को चित्रित करते हुए आधुनिक समाज में आये बदलाव तथा भारतीय संस्कृति की अपेक्षा पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण नयी व पुरानी पीढ़ी के मध्य उत्पन्न हो रही संघर्ष की स्थिति की ओर संकेत किया है। इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है, कि पिता व पुत्र का संबंध जितना आत्मीयतापूर्ण होना चाहिए, उतना नहीं है तथा बात–बात पर दोनों में टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उपन्यास के कथ्य में शुक्ला साहब कानपुर सेशन कोर्ट के जज हैं, जो पूँजीवाद के प्रबल समर्थक, अंग्रेजी सभ्यता व नीतियों, रीति–रिवाजों के कट्टर समर्थक व अत्यधिक अनुशासनप्रिय हैं तथा उनका पुत्र सुधीर उनके एकदम विपरीत है, जो अंग्रेजी सभ्यता की अतिवादी नीतियों का प्रबल विरोधी है। पिता–पुत्र की इस विपरीत विचारधारा के कारण सुधीर अपने पिता द्वारा चाहे गए मार्ग पर नहीं चल पाता और पिता–पुत्र संबंधों में संघर्ष और विद्रोह की स्थिति जन्म ले लेती है।

'वंशज' उपन्यास का पात्र सुधीर नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है तथा शुक्ला साहब पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है। जब नई पीढ़ी अपने आप को पुरानी पीढ़ी द्वारा स्थापित मूल्यों के साथ असहज महसूस करती है, तब दोनों में मानसिक व बौद्धिक स्तरों पर द्वंद्वात्मक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सुधीर अपने पिता से साधारण व्यक्ति–सा स्नेह चाहता है, परंतु शुक्ला साहब द्वारा उसे स्नेह की अपेक्षा अनुशासन की सीख दी जाती है तथा उस पर कठोर नियंत्रण रखना चाहते हैं। पिता की इस मानसिकता के कारण सुधीर को उनसे नफरत हो जाती है। जब तक रेवा की शादी नहीं होती है, वह पिता–पुत्र के मध्य संपर्क का माध्यम बनी रहती है, किंतु जब उसकी शादी हो जाती है और वह अपने पति के साथ चली जाती है, तब से दोनों के मध्य तनाव व दूरियाँ और बढ़ती जाती हैं। लेखिका का यह कथन – ''अब रह गये जज साहब और सुधीर। कोठी के बाहर या उसके बारह कमरों के भीतर, अलग–अलग जीवन जीते, जज साहब और सुधीर।''[43] पिता–पुत्र के मध्य स्वाभाविकता खत्म हो जाती है तथा द्वंद्व, अकेलापन, टकराहट आदि जटिल स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। आपसी तालमेल के अभाव से स्थितियाँ सामान्य नहीं हो पाती हैं। इस पीढ़ी अंतराल के कारण उत्पन्न तनावपूर्ण स्थिति के कारण सुधीर मानसिक तनाव में रहने लगता है तथा वह चाहकर भी कुछ नया नहीं कर पाता है, जिसके कारण खुद को असहाय महसूस करने लगता है। वह अपने समाज में चारों ओर फैली अव्यवस्था, नौकरशाही, शोषण, भूख व गरीबी को देखकर विचलित हो जाता है तथा उन्हें समाज से दूर करना चाहता है। सुधीर का यह कथन – ''क्या करूँ सविता, चारों तरफ गिलाजत देखकर सिर भन्ना जाता है। मुझे सब तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। तुम नहीं जानती, मैं अपने को कितना नाकारा महसूस करता हूँ। मैं चाहता हूँ, संसार के हाहाकार को एक झटके में दूर कर दूँ। दुनिया में जहाँ कहीं, जो कोई दुखी है, उसके दुख को हर लूँ। पर कर कुछ नहीं पाता।''[44] सुधीर अपने पिता से अपने इस सपने को पूर्ण करने की आशा करता है, परंतु पिता उसकी भावुकता के कारण उसको पैसा देना नहीं चाहता है।

शुक्ला साहब आदर्शवादी हैं तथा सुधीर यथार्थवादी है। सुधीर आम आदमी के पक्ष में खड़ा रहता है तथा निम्न व शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति रखता है। उच्च वर्ग जो मजदूरों का शोषण करता है तथा उत्पादन के संसाधनों पर कब्जा जमाकर बैठा है, उसके प्रति सुधीर आक्रोश का भाव लिए हुए है, परंतु शुक्ला साहब उच्च वर्ग के पक्षधर हैं। पिता–पुत्र के मध्य उत्पन्न द्वंद्व की स्थिति के कारण ही सुधीर एक प्राइवेट कंपनी में नौकरी करता है। सुधीर अंग्रेजी सामंती प्रवृत्ति का विरोधी है तथा उसका पिता सामंती प्रवृत्ति का पौषक है और अपने अधीन कार्य करने वाले क्लर्कों पर इस प्रवृत्ति का उपयोग करता है। शुक्ला साहब जिस क्लर्क को नौकरी में प्रताड़ित करते हैं, वही जब सुधीर को पढ़ाने के लिए आता है, तो अपनी खीझ शुक्ला साहब पर निकालता है – ''साला बड़ा अपने को अंग्रेज की औलाद समझ रहा था। बार–बार टोकिए मत मुझे बात पूरी कर लेने दीजिए। हूँ; सुन ली तेरी पूरी बात। अब देखना बच्चू, कौन बड़ा है, तू या मैं।''[45] तथा अपना गुस्सा सुधीर पर निकालता है। वह उच्च वर्ग का होते हुए भी आम आदमी के हित के बारे में सोचता है। वह आम आदमी के विकास में बाधक प्रत्येक भ्रष्ट निर्णय का विरोध करता है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला गर्ग ने अपने सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवन–दृष्टि के आधार पर, अपने निजी अनुभवों, संवेदनाओं व कल्पनाओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया किया है। समाज में व्याप्त रूढ़ियों, आडंबरों, मान्यताओं पर व्यंग्य करते हुए समाज की त्रासदियों व विरूपताओं को बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। आजादी के मोहभंग से उत्पन्न सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए समकालीन समाज के यथार्थ को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। समाज के उन संघर्षों, समस्याओं व अन्तर्विरोधों का कलात्मक प्रस्तुतीकरण किया है, जो मानव जीवन में घटित हो रहे हैं। सामाजिक दौर में स्त्री की बदलती छवि, वैवाहिक जीवन में प्रेमहीन संबंध, पुरानी व नई पीढ़ी का वैचारिक संघर्ष, समाज में आनेवाले बदलाव के साथ–साथ परिवार में समाप्त होते हुए प्रेम, विश्वास व भाईचारे की भावना को चित्रित किया है। आधुनिक समाज में संयुक्त परिवार धीरे–धीरे टूट रहे हैं तथा व्यक्ति में समष्टिवादी के बदले व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभर रहा है, फलस्वरूप संबंधों में स्थापित संकल्पना आज कमजोर होती जा रही है। पारिवारिक विघटन के कारण व्यक्ति लक्ष्यहीन बनता जा रहा है। पुरानी व नई पीढ़ी की वैचारिक टकराहट व दांपत्य जीवन की तकरार ही पारिवारिक संरचना के विखंडना का मूल कारण है। वर्तमान भारतीय परिवार अपनी मूल संस्कृति को भूलकर तेजी एवं रफ्तार की जिंदगी में गुम होते जा रहे हैं, जिससे दांपत्य–जीवन में अस्थिरता आई है, फलस्वरूप भारतीय पारंपरिक पारिवारिक संरचना विखंडित हो रही हैं।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है कि सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी में जकड़ी नारी अपने बौद्धिक विकास व आर्थिक स्वावलंबन के कारण आज की शिक्षित नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देती है। आज नारी सामाजिक विसंगतियों से जूझते हुए, संघर्ष करते हुए अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व कायम करके पूर्ण रूप में मानवीय गरिमा के साथ जीने में विश्वास रखती है। नारी की सामाजिक–आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियों में आए परिवर्तनों को मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में एक नया आयाम प्रदान किया है। आज की शिक्षित नारी जीवन के हर क्षेत्र में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रति सजग है। वह पुरुष की अनुगामिनी मात्र न होकर स्वयं शिक्षा प्राप्त करके आत्मनिर्भर होकर अपना र्मा स्वयं प्रशस्त करते हुए दिखाई देती है। इनके उपन्यासों में चित्रित नारी आदर्श व त्यागमयी नारी के साथ–साथ विद्रोहिणी, संघर्षशील, तलाकशुदा, पुरुष द्वारा छली व शोषित, पढ़ी–लिखी व आत्मनिर्भर स्वाभिमानी नारी भी है। इनके उपन्यासों की नारी शिक्षित और आत्मनिर्भर है तथा उसे लोकलाज का भय नहीं है। वह अपना जीवन समाज और परिवार की मान्यताओं को ठुकराकर जीती हुई दिखाई देती है। नारी अपनी सर्वांगीणता पर जोर दे रही है

तथा पुरुषों की दासता को तोड़कर स्वतंत्र जीवन को अपनाना व अपने हक के लिए संघर्ष व विद्रोह कर रही है।

मृदुला जी के उपन्यासों में परिवार की धुरी पति–पत्नी के संबंधों में, समाप्त होती हुई मधुरता तथा विवाह विच्छेद की बढ़ती समस्या की ओर ध्यानाकृष्ट किया गया है। नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता, समानाधिकार की भावना व उसकी अतिवादी विचारधारा के साथ–साथ पुरुष का आगमन तथा मुक्त यौन–संबंधों के पीछे भागने की प्रवृत्ति के कारण दांपत्य–संबंधों में टूटन बिखराव आया है। दांपत्य स्तर पर स्त्री की घुटन, दिशाहीनता व स्वच्छंदता का चित्रण किया गया है। विवाह के पश्चात् भी इनके उपन्यासों की नारी अपनी मर्जी से जीना चाहती है तथा अपने पति के होते हुए भी अन्य पुरुष से प्रेम संबंध स्थापित करते हुए दिखाई देती है। इनके उपन्यासों में स्त्री–पुरुष के बदलते प्रेम–संबंधों के खोखलेपन को दर्शाया है। इनके स्वच्छंद स्त्री व पुरुष पात्र अपनी काम भावनाओं की तृप्ति के लिए अपने पति–पत्नी के पास होने पर भी अन्य स्त्री–पुरुष से संबंध स्थापित करते हुए दिखाई देते हैं। इनके उपन्यासों में पति–पत्नी, स्त्री–पुरुष व प्रेमी–प्रेमिका के संबंधों को लेकर नई व्याख्या की गई है, जिसमें स्त्री–पुरुष संबंधों में किसी न किसी कारण असंतोष एवं घुटन की भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है। आधुनिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण विखंडित हो रहे सामाजिक संबंधों के पारंपरिक रूप को चित्रित किया है, जिसमें नई पीढ़ी का एक स्वतंत्र अस्तित्वपूर्ण रूप सामने आ रहा है, जिसमें मातप–पिता व उनकी संतानों के मध्य एक अंतराल की स्थिति उत्पन्न हो रही है। उनकी विचारधाराओं, दृष्टिकोण और आचरण पद्धतियों में पाये जाने वाले अंतर के कारण दोनों ही पीढ़ियों के मध्य एक द्वंद्वात्मक व संघर्षात्मक स्थिति उत्पन्न हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 15.
2. वही, पृ. सं. – 16.
3. वही, पृ. सं. – 118.
4. वही, पृ. सं. – 136.
5. वही, पृ. सं. – 15.
6. गर्ग, मृदुला. (2012). मेरे साक्षात्कार. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन. पृ. सं. – 76.
7. वही, पृ. सं. – 49.
8. वही, पृ. सं. – 49.
9. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 18.
10. वही, पृ. सं. – 137.
11. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 317.
12. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 59.
13. वही, पृ. सं. – 61.
14. वही, पृ. सं. – 165.
15. वही, पृ. सं. – 165.
16. वही, पृ. सं. – 189–190.
17. वही, पृ. सं. – 190.
18. वही, पृ. सं. – 166.
19. वही, पृ. सं. – 167.
20. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 123.
21. वही, पृ. सं. – 124.
22. वही, पृ. सं. – 126.
23. वही, पृ. सं. – 127.
24. वही, पृ. सं. – 94.
25. वही, पृ. सं. – 131.
26. वही, पृ. सं. – 132.
27. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 87–88.
28. वही, पृ. सं. – 89–90.
29. वही, पृ. सं. – 92–93.
30. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 197.
31. वही, पृ. सं. – 12–13.
32. वही, पृ. सं. – 14–15.
33. वही, पृ. सं. – 15.
34. वही, पृ. सं. – 215–216.
35. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 16.
36. गर्ग मृदुला. (2011). उसके हिस्से कीे धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 88.
37. वही, पृ. सं. – 87.
38. वही, पृ. सं. – 137.
39. गर्ग मृदुला. (2012). मेरे साक्षात्कार. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन. पृ. सं. – 71.
40. वही, पृ. सं. – 135.
41. वही, पृ. सं. – 145.
42. गर्ग मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 71.
43. गर्ग मृदुला. (2009). वंषज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स प्रकाशन. पृ. सं. – 57.
44. वही, पृ. सं. – 109–110.
45. वही, पृ. सं. – 39.

–: पंचम अध्याय :–

मृदुला गर्ग के उपन्यासों का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

रचनाकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने समाज और देश की सामाजिक, साँस कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक व ऐतिहासिक स्थितियों और घटनाओं से प्रभावित होता है तथा संवेदना के स्तर पर उनसे जुड़कर अपनी शैली का उपयोग करते हुए अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। वह युग विशेष के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व आर्थिक जीवन से परस्पर घनिष्ठ रूप से संबद्ध होता है। समाज के इन विभिन्न पार्श्वों को अभिव्यक्ति प्रदान करके ही साहित्यकार अपने युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सफल होता है। साहित्य और राजनीति में पारस्परिक संबंध स्थापित हो जाता है, क्योंकि साहित्य, समाज व युग की स्थिति में अनिवार्य संबंध होता है। आधुनिक समय में महिला उपन्यासकारों ने भी अपनी रचनाओं में साहित्य और राजनीति से जुड़े अनेक मुद्दों पर विचार प्रकट किए हैं। आज समाज पर राजनीति का गहरा प्रभाव पड़ रहा है, जिसके कारण आज का साहित्यकार भी राजनीति से प्रभावित दिखाई दे रहा है। मृदुला जी ने भी अपने उपन्यास साहित्य में अपने युग के न केवल सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक पक्ष को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है, बल्कि राजनीतिक जीवन और उससे संबंधित समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। इनके उपन्यासों में नई सामाजिक व राजनीतिक चेतना और वैचारिक स्फूर्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। राजनीतिक दृष्टि से उथल–पुथल हुए सामाजिक परिवेश ने आंतरिक–अस्थिरता, आर्थिक–विषमता तथा सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। राजनीतिक घटनाओं का चित्रण इनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'मैं और मैं', 'वंशज', 'अनित्य' व 'मिलजुल मन' में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर काल में उभरी राजनीतिक विसंगतियों व स्वाधीनता आंदोलन के दौरान किए गए संघर्ष को जहाँ इनके उपन्यासों में चित्रित किया गया है, वहीं आजादी के पश्चात् का मोहभंग, नेताओं की स्वार्थपरता व गांधीवादी मूल्यों के विघटन का पर्याप्त चित्रण किया गया है।

आधुनिक समाज की राजनीतिक विचारधाराओं ने महिला उपन्यासकारों को भी प्रभावित किया है। यह प्रभाव उनकी औपन्यासिक कृतियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। बदलते राजनीतिक संदर्भों का यथावसर मृदुला जी ने भी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में बदलती राजनीतिक स्थितियों के यथार्थ को निडरता के साथ उद्घाटित किया है। इनके उपन्यासों में इनकी वातावरण के प्रति सजगता परिलक्षित होती है। इन्होंने अपने उपन्यासों में स्वतंत्रताकालीन प्रयास का सफल चित्रण करते हुए क्रांतिकारी विचारधारा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के स्वर को अभिव्यक्त किया है। स्वतंत्रता–पश्चात् के मोहभंग को चित्रित करते हुए राजनीति के ह्रासोन्मुख रूप व भ्रष्ट राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है। देश विभाजन की त्रासदी व स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध पक्षों को भी अपने उपन्यासों के कथ्य में अभिव्यक्ति दी है। सरकारी नीतियों व योजनाओं की असफलता का चित्रण करने के साथ ही गांधी जी की समझौतावादी नीतियों की आलोचना करते हुए पूँजीवादियों की गलत नीति व देश की बिगड़ती स्थिति का चित्रण भी किया है। गलत नीतियों के कारण समाजवादी दल की स्थापना पर बल दिया गया है। इनके उपन्यास विशुद्ध राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी में तो नहीं आते हैं, परंतु इनके सामाजिक उपन्यासों में भी प्रसंगानुसार राजनीतिक स्थितियों का चित्रण अवश्य मिलता है। इनके द्वारा रचित उपन्यास 'अनित्य' को शुद्ध ऐतिहासिक–राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है।

मृदुला गर्ग ने अपनी रचनाओं में ऐसे राजनीतिक पहलुओं को उठाया है, जो नये तथ्यों की ओर संकेत करते हैं। इनके द्वारा रचित 'अनित्य' उपन्यास में स्वतंत्रताकालीन आंदोलनों व उसके बाद की राजनीतिक गतिविधियों को अभिव्यक्त किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' में भी स्वतंत्रता–पश्चात् की राजनीति को राष्ट्र की राजनीति की अपेक्षा व्यक्ति की राजनीति बताया गया है। 'वंशज' में भी अंग्रेजी जुल्मों की ओर संकेत करते हुए बताया गया है, कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारी शासन–व्यवस्था में आशानुकूल परिवर्तन नहीं हुए।

'चित्तकोबरा' में मनु व रिचर्ड के द्वारा गांधीवाद व मार्क्सवाद पर तुलनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। राजनीतिक संदर्भों को लेकर लिखे गए उपन्यासों में मृदुला जी का 'अनित्य' एक सशक्त राजनीतिक उपन्यास के रूप में परिणित किया जाता है। 'अनित्य' में लेखिका ने राजनीतिक विसंगतियों, असफलताओं एवं विचारहीनता पर प्रकाश डालते हुए अपनी प्रतिबद्धता तथा जागरूकता दर्शायी है। 'अनित्य' में गांधी नीतियों की आलोचना करते हुए भगतसिंह के क्रांतिकारी व देशप्रेमी रूप का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। लेखिका अपने विचारों को 'अनित्य' के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यकत करती हैं– ''अगर भगतसिंह कुछ दिन और जिंदा रहे होते और युवा वर्ग का नेतृत्व कर पाते तो शायद 1932 से 1942 तक के वे दस साल समझौतों की नजर न होते और देश के युवक अपने को बुरी तरह दुविधाग्रस्त न पाते। तब शायद आजादी कुछ ठोस अर्थ लिये आती ...।''[1]

'मैं और मैं' उपन्यास में भी देश विभाजन के समय हुए हिन्दू–मुस्लिम दंगों से जन–जीवन पर पड़े प्रभाव को चित्रित किया गया है।राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी के आदर्शवाद व नीतियों का विरोध करते हुए भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। मृदुला जी ने भारत की आजादी के आंदोलन को अपनी दृष्टि में रखते हुए ही 'अनित्य' उपन्यास की रचना की। स्वयं मृदुला जी कहती हैं कि – ''आजादी की लड़ाई में भी मैंने हिस्सा नहीं लिया। कारण, जब आज़ादी मिली तो मेरी उम्र महज़ नौ वर्ष थी। पर आज़ादी मिलने से पहले और उसके बाद वर्षों तक, हमारे घर में भगतसिंह के क्रांतिकारी आंदोलन और गांधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के बारे में रात–दिन कुछ इस तरह चर्चा रही कि उम्र के साथ–साथ, दोनों मेरे निजी अनुभवों से भी अधिक, मेरी मानसिकता के अंग बन गये। वैसे भी बचपन में जिन चीजों को हम महसूस करते हैं, वे इस तरह हमारे भावबोध का हिस्सा बन जाती हैं, कि फिर कभी अलग नहीं होतीं और बाद के सारे निजी अनुभव उनके सामने फीके लगते हैं। 'अनित्य' बचपन के बने इसी भावबोध में से आया हुआ उपन्यास है।''[2] तथा इसी क्रम में लेखिका कहती हैं कि – ''इसी जनसाधारण के वर्ग से आनेवाली, उपन्यास की एक पात्र है – स्वर्णा। स्वर्णा को मैंने स्वयं जीवन में झेला है। वह हमारे घर पर काम करती थी (मेरे बचपन में) और शरच्चंद्र के उपन्यासों के सेवकों की तरह वफादार होते हुए भी उसकी प्रतिक्रियाएँ तीख़ी, तल्ख और दो–टूक हुआ करती थीं। मौका आने पर जब उसे वफदारी और स्वतंत्र जीवन के बीच चुनना पड़ा, तो उसने स्वतंत्रता को ही चुना। स्वर्णा की बातों का असर कुछ ऐसा होता था कि मैं अक्सर खाने की मेज से बिना खाये उठ जाया करती थी। आठ–नौ बरस की उम्र में ही उसने एक अपराध–बोध मेरे भीतर जगा दिया था और उसी की प्रेरणा का नतीजा है यह उपन्यास 'अनित्य'।''[3] मृदुला जी ने स्वयं लड़ाई मे भाग नहीं लिया, परंतु घर में होने वाली राजनीतिक बहस की अत्यधिकता के कारण ही 'अनित्य' लिखा।

(क) राष्ट्रयी चेतना के स्वर की अभिव्यक्ति :

चेतना मानव मन की सहज प्रक्रिया है, जो निरंतर विकसित होती रहती है। मनुष्य की अंतरंग शक्ति का नाम ही चेतना है। चेतना रूपी शक्ति ही मनुष्य व पशु में अंतर करती है। मनुष्य में चेतना प्रस्फुटित होने से, उसके जीवन में एक नये दौर की शुरूआत होती है। समाज से घनिष्ठ संबंध होने के कारण समाज में घटित प्रत्येक घटना मनुष्य की चेतना को प्रभावित करती है। सामाजिक वातावरण व संस्कार ही चेतना को विकसित करते हैं। चेतना मूलतः आत्मकेन्द्रित होती है, जिसके मूल में जागृति का स्वर छिपा होता है तथा उसके प्रस्फुटन से समाज में नयी सोच व नये विचार विकसित होते हैं। चेतना को विभिन्न पहलुओं में विभाजित किया जा सकता है – सामजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, आर्थिक चेतना, वर्गीय चेतना, राष्ट्रीय चेतना आदि।

जनमानस में अपने निर्दिष्ट उद्देश्य के प्रति जागरूकता रहती है तथा इस प्रकार की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति को हम सामाजिक चेतना कहते हैं। समाज के साथ–साथ मनुष्य का अपने राष्ट्र के साथ भी गहन संबंध होता है। राष्ट्र की परंपरा से प्राप्त उदात्त मूल्यों के प्रति श्रद्धा

भाव रखना प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य होता है। प्रत्येक नागरिक को अपने राष्ट्र पर अभिमान होता है तथा राष्ट्र सेवा उसकी प्राथमिकता होती है। एक निश्चित भूखंड में रहने वाले जन–समूह की शैक्षिक, साँस कृतिक, आर्थिक, नैतिक समृद्धि की प्रचेष्टा में निरंतर संलग्न रहना और उसकी रक्षा करना ही राष्ट्रीय चेतना है। मानव प्रेम ही राष्ट्रप्रेम है तथा मनुष्य की सहज स्वाभाविक वृत्तियाँ ही उसे इस भावबोध से जोड़ती हैं। भारतीय पराधीनता के दंश को साहित्य के क्षेत्र में अनुभव करके इस तरह की भावाभिव्यक्ति मृदुला जी के उपन्यास 'अनित्य' में की गई है और जनजागरण का शंखनाद किया गया है। इससे अंग्रेजों की कूटनीति और अत्याचारों का अहसास हुआ है, जिससे बुद्धिजीवी वर्ग की दृष्टि भारत के अतीत पर गई तथा उसमें स्वाभिमान जागा और देश को एक करके अंग्रजों के विरुद्ध खड़ा करने का दृढ़ संकल्प उपजा। विदेशी शासन के प्रति आक्रोश, उनके अत्याचारों और आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त हुई है। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास 'अनित्य' में स्वाधीनता संघर्ष का चित्रण करके चड्ढा, अनित्य, काजल, प्रभा जैसे क्रांतिकारी चरित्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया है। उपन्यास में स्वतंत्रता के संबंध में उठाए गए प्रश्न भारत की जनता के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें राष्ट्रप्रेम की भावना निहित है। 'अनित्य' उपन्यास भगतसिंह जैसे देशभक्त क्रांतिकारी से प्रेरित उपन्यास है।

मृदुला गर्ग के 'अनित्य' उपन्यास से आज के नेताओं व युवा वर्ग को उन लोगों से प्रेरणा लेनी चाहिए, जिन लोगों ने निःस्वार्थ भाव से आजादी की लड़ाई लड़ी तथा किसी प्रकार की कोई अपेक्षा मन में नहीं रखी। शुभा जब अपने पिता 'अविजित' से कहती है कि, –''मेरी सहेलियाँ कहती हैं, तेरे पिताजी जेल गये थे तो उन्हें आज मिनिस्टर वगैहर कुछ होना चाहिए,'' शुभा ने कहा तो अविजित एकदम फट पड़ा। ''नहीं, शुभा, नहीं! ऐसा मत सोचो तुम लोग। कभी मत सोचो! आजादी के लिए हम सब अपने–अपने तरीके से लड़े थे; कुछ को मुआवजा मिल गया, कुछ को नहीं पर मुआवजे के लिए हम नहीं लड़े। एक गलती कभी मत करना। उन बातों का विश्वास मत कर लेना जिनका सबसे अधिक प्रचार हो रहा हो। देश को आजादी दिलवाने में सिर्फ़ उन लोगों का हाथ नहीं है जो आज सरकार चला रहे हैं। सैकड़ों क्रांतिकारी ऐसे हैं, जो हम लोगों की दो–दो साल की सजा के मुकाबले फाँसी के तख़्तों पर झूल गये थे, अंडमान के नरक में ता–उम्र सड़ते रहे थे। उनमें से न जाने कितने अभी भी ज़िंदा हैं और किसी पद की मांग नहीं कर रहे। फिर मुझे क्या अधिकार है...''[4] उपन्यास के पात्र चड्ढा में राष्ट्रप्रेम की भावना कूट–कूटकर भरी हुई है। वह अंग्रेजों के खिलाफ सीना तानकर खड़ा रहता है तथा जेल की यातनाएँ सहते हुए भी हार नहीं मानता है। उपन्यास का यह कथन उसकी राष्ट्रीय चेतना के स्वर को अभिव्यक्त करता है कि – ''लंगड़ा चड्ढा! फतेहगढ़ जेल से छूटकर आया, हड्डियों का ढाँचा चड्ढा!

'सी' क्लास का कैदी............बुखार आया.............मशक्कत पूरी न हुई मार पड़ी...........एक टांग टूट गयी.............अंधी कोठरी में बंद कर दिया गया...........कंबल छीन लिया गया..........बुखार निमोनिया में बदल गया..............''इससे वज़न कुछ घट गया, यही बीसेक पौंड,'' चड्ढा ने हँसकर कहा था, ''वरना अभी तेरे जैसे दो–तीन को...........'' और इतना कहकर ही वह हाँफ गया था।''[5] जब चन्द्रशेखर आजाद के शव को पुलिस के जवान ट्रक पर लादकर ले जा रहे थे, तब भी चड्ढा ही उनका विरोध करते हुए आजाद के शव को ले जाने से रोकने का प्रयास करता है – ''उन्होंने देखा था, पुलिस के जवान अपना शिकार ट्रक पर लाद रहे हैं............ ''आजाद का शव हमें दो! आजाद का शव हमें दो!'' चीखता चड्ढा सहसा अविजित का हाथ छुड़ाकर आगे दौड़ गया था।

....

अंग्रेज पुलिस अफसर और हिंदुस्तानी सिपाहियों के चेहरों पर नफ़रत और हिकारत ही नहीं, वहशियाना गर्व भी चिलक रहा था। सचमुच क्या ये लोग हिंदुस्तानी हैं, अविजित ने सोचा था और समझा था कि उस वक्त वे हिंदुस्तानी या अंग्रेज नहीं महज शिकारी थे, जिन्होंने

तभी–तभी शेर का शिकार खेला था। गीदड़ों की इस भीड़ की उनके लिए क्या हस्ती हो सकती थी। ....अपनी राइफल का कुंदा उसके सिर पर दे मारा।

खून से लथपथ चड्ढा अविजित की बांहों में आ गिरा और ....आजाद के शव के बजाय घायल चड्ढा को उठाये वे लोग बोर्डिंग हाउस लौट आये!''[6] इसी राष्ट्रप्रेम की भावना के कारण ही भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव जैसे क्रांतिकारी देशभक्त हँसते–हँसते फाँसी के फंदे पर झूल गए।

देश को आजाद करवाने के लिए जिस जनक्रांति की आवश्यकता थी, उसके लिए जनमानस को एक नेतृत्वकर्ता की आवश्यकता थी, जिसको वे भगवान समझें तथा उसके आदेशों की मूक पालना की जा सके। इस भगवान के रूप में उस समय गांधीजी ने जनमानस का नेतृत्व किया। उपन्यास में अविजित का यह कथन – ''गांधी जी के बिना कुछ नहीं हो सकेगा,'' अविजित ने समझदारी से कहा, ''दो–चार वारदातें कर देने से आज़ादी नहीं मिलेगी। क्रांति चाहे सशस्त्र हो चाहे अहिंसात्मक, सफल तभी हो सकती है जब पूरे हिंदुस्तान में फैल सके। उसके लिए ऐसे नेता की जरूरत है, जिसकी एक बात पर लोग मर–मिटने को तैयार हों।''[7] व्यक्त करता है कि गांधीजी ने उस समय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना के स्वर को जाग्रत किया।

उपन्यास की पात्र काजल व प्रभा में भी राष्ट्रीय चेतना के स्वर की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। प्रभा इस थोथी आजादी से लड़ने के लिए कमर कस लेती है। शुभा के पूछने पर कि क्या इस देश में क्रांति हो सकती है, तो प्रभा के ये शब्द उसके क्रांतिकारी रूप का बोध करवाते हैं – ''क्यों नहीं हो सकती? पर क्रांति सोचने या विवाद करने से नहीं होती। होती है करने से............तू हमारे साथ आयेगी?''[8] देश में जो कुछ भी गलत हो रहा है, उसके विरोध में आवाज उठाने के लिए काजल, प्रभा व उनके साथी हमेशा तत्पर रहते हैं। काजल के ये शब्द उसकी राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करते हैं – ''और सोयी हुई जनता को जगाकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने के लिए बम के धमाके काफ़ी नहीं हैं। बहुत जबरदस्त उफान की जरूरत है उसके लिए, बहुत महंगे प्रचार की। आत्म–बलिदान से महंगा प्रचार क्या हो सकता है?''

''तुम करना क्या चाहती हो काजल?''

''इतिहास को दुहराना चाहती हूँ। जो अधूरा रह गया उसे पूरा करना चाहती हूँ।''[9]

इसी क्रम में वह आगे कहती है – ''आठ अप्रैल 1929 को भगतसिंह ने असेंबली पर बम फेंका था और 23 मार्च 1931 को उन्हें फाँसी हुई। इन दो सालों के दौरान एक लमहे के लिए भी वे 'प्रोपोगेंडा बाई डेथ' के सिद्धांत से नहीं हटे।...................... भगतसिंह एक ईमानदार और सच्चे क्रांतिकारी हैं। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि वे इस कथन को लेकर पूरी सच्चाई से खड़े हैं कि दुनिया का सुधार वर्तमान सामाजिक ढाँचे को तोड़कर ही हो सकता है...........।''[10] तथा ''देश के युवा लोग हैं,'' काजल ने कहा।

''तुम सब इसी में विश्वास करते हो – प्रोपोगेंडा बाई डेथ ?''

''मैं करती हूँ। मैं क्रांति जगाना चाहती हूँ। मेरे साथी क्रांति लाना चाहते हैं।'' ''कैसे'' ''साधन और सत्ता पर कब्जा करके। आम लोगों की हुकूमत कायम करके।''...............किसी एक गाँव के भूमिहीन किसान अपने गाँव की जमीन पर कब्जा कर लेंगे, अपनी सरकार बना लेंगे। फिर प्रचार ....प्रचार.........मृत्यु से रंगा प्रचार!''[11] काजल अपने राष्ट्रप्रेम के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए शहादत चाहती है। उपन्यास का यह कथ्य स्पष्ट करता है – ''शहादत का नशा बहुत भयानक होता है। किसी लेनिन, मैज़िनी, टीटो या भगतसिंह के सिर चढ़कर बोले तो भावुकता से आगे जाकर रणकौशल बन जाता है पर तब भी कितने शहीद हैं जो रण में विजयी हो पाते हैं? काजल में वह विवेक बुद्धि और यथार्थवादिता है जो आत्मबलिदान को रणनीति बना दे?''[12]

मृदुला जी के उपन्यासों में स्वराज्य के साथ स्वतंत्र अधिकार और स्वायत संप्रभुता की चेतना भी जुड़ी हुई है। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का अपना अन्तर्विरोध यह था, कि हिंसक क्रांतिकारी और अहिंसा तथा क्रांति और शांति जैसी विरोधी धारणाओं पर व्यापक चिंतन की भूमिका बनी। मृदुला जी ने 'अनित्य' में स्वतंत्र अधिकार चेतना के संबंध में शांति अथवा क्रांति के औचित्य की चर्चा करते हुए रक्त संघर्ष के पक्ष में जो दलील दी है, उसका आधार यूरोप के स्वतंत्र देशों के इतिहास और राजनीति के चिंतन में निहित है। उनके अनुसार– ''...स्वतंत्र नीति निर्धारण का अधिकार क्या यूरोप के देशों का पुश्तैनी हक है? आजादी उनकी बपौती है? जब तक अपनी आजादी पर आँच नहीं आती वे शांति की देवी का आह्वान करते रहते हैं। पर दूर सुलग रही आग की गरम हवा उन्हें छू–भर जाए तो टेम्स के गंदले पानी में उसका विसर्जन कर आजादी की देवी को सत्तारूढ़ करने में ज़रा देर नहीं लगती। जंग के मैदान में मर–मिटना धर्म हो जाता है; शांति की पुकार गांधी जैसे पागलों का प्रलाप।''[13] 'अनित्य' दुर्दम क्रांतिकारी भगतसिंह के प्रतीक के रूप में चित्रित हुआ है, जो भगतसिंह द्वारा प्रवाहित क्रांति की धारा को सतत् प्रवाहमान रखने का कार्य करता है। स्वराज्य के अर्थहीन हो जाने पर यह क्रांतिधारा एक नये जोश के साथ लहरा उठी और उसकी क्रांति की राह पर न केवल 'अनित्य' बल्कि प्रभा, विमलदत्त आदि सभी चलने लगे। उसकी क्रांतिकारी सोच के आगे अविजित की रूढ़िवादी और संकुचित मानसिकता टिक नहीं पाती है।

'मिलजुल मन' में जब बैजनाथ नौकरशाही में रिश्वत की बात करता है तो कनकलता गुस्से से कहती है–'' 'पंडित नेहरू पर रिश्वत का इल्ज़ाम! तुम फौरन यह नौकरी छोड़ दो।' बड़ी मुश्किल से उन्हें समझाया कि पुण्यात्मा नेहरू जी नहीं, रिश्वत लेने वाले नौकरशाह थे। 'तब तुम फौरन पंडितजी को इत्तिला करो और नौकरी हर हाल छोड़ दो। बाहरी लोगों के मुँह से अपने मुल्क की निंदा मत सुनो।''[14] कनकलता के कथन में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व्यक्त हुआ है।

(ख) राजनीति का ह्रासोन्मुख रूप :

मृदुला जी के उपन्यासों में राजनीतिक संघर्ष व व्यवस्था से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण हुआ है। भारतीय राजनीति की सुविधाभोगी और जनतंत्र विरोधी मानसिकता को व्यक्त करने में मृदुला जी ने सफलता पाई है। गांधी टोपी पहनकर दिखावा करने वाले झूठों और मक्कारों का चित्रण इनकी रचनाओं में बखूबी किया गया है। राजनीति में फैले भ्रष्टाचार, नेताओं की बेईमानी, नारेबाजी तथा खोखलेपन को चित्रित किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति राष्ट्र की राजनीति न होकर व्यक्ति की राजनीति हो गई, जिसका कारण है, कि जनतांत्रिक शासन व्यवस्था में राजनीति व्यक्ति–जीवन से जुड़ गई है, क्योंकि जनतांत्रिक शासन–व्यवस्था में जनता का अप्रत्यक्ष हाथ होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनमानस में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन आया। दिशाहीन राजनीति ने चारों ओर अव्यवस्था व भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया, जिससे आजादी के पूर्व देखे गए सपने चकनाचूर हो गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश का विभाजन हो गया, जिससे रोजमर्रा के जीवन में बदलाव आया तथा सामाजिक मान्यताएँ व आपसी संबंध प्रभावित हुए। मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'अनित्य' में साधारण जनता के माध्यम से हिंसात्मक व अहिंसात्मक आंदोलन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए यह अभिव्यक्त किया है, कि समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मस्तिष्क पर दीर्घकालीन रूप से क्या प्रभाव पड़ा है तथा स्वतंत्रता–पश्चात् की अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने में उन नीतियों की क्या भूमिका रही है। इनके अनुसार साधारण लोगों की भी इतिहास में उतनी ही हिस्सेदारी होती है, जितनी विशिष्ट व्यक्तियों या राजनेताओं की। प्रत्येक जागरूक सामान्य व्यक्ति भी अपने समय की राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित होता है। राजनीतिक उथल–पुथल व देश की राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव प्रत्येक देशवासी पर पड़ता है। राजनीतिक घटनाओं पर छिड़ने वाली बहस के जबरदस्त मानसिक प्रभाव के परिणामस्वरूप ही मृदुला जी ने 'अनित्य' उपन्यास की रचना की, जिसमें ऐसे पात्रों की कथा को अभिव्यक्त किया गया है, जो अपनी कमजोरियों के कारण ऐतिहासिक घटनाक्रम में उस हद तक भाग नहीं ले पाये थे,

जिस हद तक वे लेना चाहते थे। 'वंशज' उपन्यास में भी राजनीतिक जीवन की विसंगतियों को चित्रित करते हुए उनके प्रति विरोध प्रकट किया गया है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'अनित्य' में गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन और भगतसिंह के क्रांतिकारी आंदोलन को आमने–सामने रखकर तात्कालिक समाज की राजनीतिक विसंगतियों को कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। हमारे देश की राजनीति को गांधीवाद व मार्क्सवाद ने अत्यधिक प्रभावित किया है। मृदुला जी ने गांधीवाद की अपेक्षा भगतसिंह के क्रांतिकारी स्वरूप को अधिक प्रभावशाली बताया है। 'अनित्य' उपन्यास में भगतसिंह एक ऐसा नाम है, जिसने स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए अपने आपको न्यौछावर कर दिया, और युवावर्ग के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। स्वभाव से गरम होते हुए भी वे जानते थे, कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है, जिसे समय–समय पर इस्तेमाल करना पड़ता है। 'अनित्य' में चित्रित भगतसिंह के ही शब्दों में– ''हमारे दल का लक्ष्य एक सोशलिस्ट सामाजिक संगठन की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि जब राजनीतिक क्रांति से शासन–शक्ति अंग्रेजों के हाथ से निकलकर हिंदुस्तानियों के हाथों में आ जायेगी.............तब हमारा लक्ष्य शासन–शक्ति को उन हाथों में सुपुर्द करना है जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिए मजदूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा, क्योंकि उन लोगों के लिए लार्ड रीडिंग या इर्विन की जगह तेजबहादुर या पुरुषोत्तम दास, ठाकुरदास के आ जाने से कोई भारी फर्क न पड़ सकेगा।''[15]

आज की राजनीति अवसरवादी राजनीति है, जिसमें गुंडागर्दी, मौकापरस्ती, अवसरवादिता, सांप्रदायिकता तथा भ्रष्टाचार को आश्रय दिया है। आदर्शवाद दिखावा बन गया है। नेता कुर्सी के स्वार्थ में अंधे हो रहे हैं। जनता की सेवा की बात करते हैं, परंतु जनता की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। समाजवाद व क्रांति की बात करने वाले नेताओं की संख्या आज नाम की रह गई है। किसी विशिष्ट विचारधारा से प्रभावित होकर परिवर्तन की अपेक्षा रखने वाले राजनेता बहुत कम हैं। सही आदर्शवादी, विवेकशील व क्रांतिकारी विचारधारा वाले नेता का नेतृत्व जब सामान्य जन को मिलता है, तो वह भी क्रांति की दिशा में अग्रसर होता है। अपने 'अनित्य' उपन्यास में मृदुला जी लिखती हैं – ''हाँ, सख्त नियंत्रण में रहकर काम करना मामूली आदमी के लिए तभी संभव होता है जब कोई नेता उसका पथ–प्रदर्शन करे। कोई लेनिन..............गारिबाल्डी.........मैजिनी............भगतसिंह............नेतृत्व मिले तो मामूली से मामूली आदमी भी।'' ....दस साल बाद चड्ढा ने साबित कर दिया था, कोई आदमी इतना मामूली नहीं होता कि बलिदान कर ही नहीं पाये............सचमुच करना चाहे तो ....।''[16]

उच्च विचार व उच्च आदर्श वाले नेता की बात धीरे–धीरे पीछे छूटती चली गई, और स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिज्ञ आत्मकेंदित व स्वार्थी बनता चला गया। स्वतंत्रता–पश्चात् धीरे–धीरे प्रजातांत्रिक मूल्यों का पतन होने लगा तथा भारत की निरीह जनता शोषण का शिकार हो गई। अवसरवादी राजनीतिज्ञ जनता का शोषण करते रहे हैं। स्वातंत्र्य–प्राप्ति के उद्देश्य से महात्मा गांधी के संचालन में कांग्रेस का जन्म हुआ, परंतु कांग्रेसियों के वैचारिक मतभेद के कारण वह दो दलों में विभाजित हो गई–नरम दल व गरम दल में। गरम दल वालों का गांधी जी की नीति पर विश्वास नहीं था। उनके विचार से गांधीजी केवल समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाए हुए हैं। इससे हमें कुछ नहीं मिलेगा, हमे संघर्ष जारी रखना होगा, समझौता नहीं। इस संदर्भ में 'अनित्य' उपन्यास के अविजित का यह कथन – ''कोई भी कौम जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, आरम्भ में असफल हो रही अपनी लंबी जद्दोजहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौतों के जरिये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाये, परंतु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुँचते–पहुँचते अपनी ताकतों को इतना संगठित और दृढ़ कर लेती है कि उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा जोरदार होता है कि शासक लोगों की ताकतें उनके उस वार के सामने चकनाचूर होकर गिर पडती है।.................समझौता भी एक ऐसा हथियार है जिसे राजनैतिक जद्दोजहद के बीच में पद–पद पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है, ...

.........समझौतों के बावजूद जिस चीज को हमें भूलना न चाहिए वह हमारा आदर्श है, जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए।''[17]

मृदुला जी का 'अनित्य' उपन्यास समकालीन राजनीतिक इतिहास से संपृक्त उपन्यास है। इसमें स्वाधीनता आंदोलन तथा उससे जुड़े अनेक पहलुओं की पुनर्व्याख्या की गई है। आजादी की लड़ाई में गांधी और नेहरू की जो भूमिका रही है, उस पर सवाल उठाए गए हैं। तत्कालीन परिस्थितियों को भी 'अनित्य' के पात्रों के माध्यम से चित्रित किया गया है। अविजित ने कांग्रेस में रहकर और तथाकथित अहिंसात्मक नीतियों का पालन करके सुविधाभोगी मार्ग को चुन लिया । सच्ची शहादत करने वाले उपेक्षित रह गए तथा जिन्होंने अपने योगदान का ढिंढोरा पीट दिया, उन्होंने कुर्सी हथिया ली। सत्ता कांग्रेस के हिस्से में आई तथा क्रांतिकारी मार्ग अपनाने वालों को पूछा तक नहीं गया। काजल का अपने पति मुकर्जी बाबू के बारे में यह कथन इस बात की पुष्टि करता है – ''कांग्रेसी हैं। 1942 में माफ़ी मांगकर जेल से छूट गए थे। आदमी तिकड़मबाज हैं..........आजादी मिलने पर कसकर लीडरों की चापलूसी की। मंत्री बन गए।''[18]

उपन्यास का ही एक अन्य पात्र मि. सिंघानिया है, जो कि पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसने स्वतंत्रता आन्दोलन में अपने हितों की पूर्ति हेतु कांग्रेस का पूर्ण समर्थन किया था। अविजित प्रसिद्ध उद्योगपति का मैनेजर और जज सिंघल का दामाद बनता है। अविजित स्वयं कहता है– ''एक वफादार हिंदुस्तानी। साम्राज्य का ईमानदार मददगार। यह मेरी ही नहीं, तमाम भारतीय उद्योग की बेइज्जती है, खुद सरकार की बेइज्जती है............''[19] उपन्यास के ही एक अन्य पात्र सिंघानिया जी का यह कथन भी राजनीति के पक्षपात की ओर संकेत करता है – ''मेरा ख़याल है लाइसेंस किसी कांग्रेसी को मिलेगा। क्या विडंबना है। इलेक्शन के वक्त पार्टी को पैसा दें हम लोग और मलाई लूट कर ले जाये कोई फटेहाल खद्दरधारी।''[20] तथा उपन्यास का पात्र शरण भी अवसरवादी राजनीति का ही पोषक है। अपना स्वयं का स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही वह गांधी टोपी पहनता है। स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिकारियों की भूमिका प्रमुख रही, परंतु उन्हें आजादी के बाद आतंकवादी और हिंसावादी कहा गया। 'अनित्य' उपन्यास में अनेक स्थलों पर गांधी जी की अहिंसा नीति और भगतसिंह की आतंकवादी क्रांतिकारिता की स्पष्ट चर्चा करते हुए विगत 50 वर्षों की राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश किया गया है।

मृदुला जी के 'मिलजुल मन' उपन्यास में भी स्वतंत्रता के उपरान्त की अवसरवादी राजनीति और अर्थगत विषमता पर लेखिका का ध्यान केन्द्रित रहा है। 'अनित्य' की ही भाँति इसमें भी स्वतंत्रता के पश्चात् की राजनीतिक सामयिक अर्थगत नीति का तथा व्यक्ति की बदलती हुई सोच व समय के साथ परिवर्तित होते हुए जीवन–मूल्यों का परत–दर–परत उद्घाटन किया है। 'उसके हिस्से की धूप' में भी मधुकर व जितेन के माध्यम से अवसरवादी राजनीति को चित्रित किया है। जब मधुकर द्वारा बुद्धिजीवियों को सिर्फ भाषण देने वाला ही बताया जाता है तथा फ्रॉस की क्रांति का उदाहरण देता है, तब जितेन कहता है कि – ''विदेशों के उदाहरण मुझे मत दीजिए, बहुत बेमानी लगते हैं। अपने देश की बात कीजिए, है यहाँ कोई बुद्धिजीवी, जो किसी ठोस चीज का संचालन कर है।''[21] बुद्धिजीवी वर्ग, जो समाज या देश के कर्णधार होते हैं, उनकी आवश्यकता देश के भविष्य का निर्माण करने के लिए होती है। मधुकर इस देश के बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य करता है एवं देश की दुर्दशा का जिम्मेदार भी बुद्धिजीवी वर्ग को ही ठहराता है। मधुकर का कहना है, कि हमारे देश के बड़े–बड़े बुद्धिजीवी समझे जाने वाले लोग बड़ी–बड़ी बातें करते हैं, कहते हैं, लेकिन उन्हें पूरा नहीं करके दिखाते हैं तथा व्यर्थ में समय नष्ट करते हैं। अमेरिका के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर ह्यूम देश के पिछड़ेपन की स्थिति समझने में सफल हो गये हैं। एक विदेशी के लिए यह बहुत बड़पन्न की बात है, जबकि भारतीयों के लिए यह उतनी ही शर्मनाक बात है। भारतीय बुद्धिजीवी इसका हल निकाल सकते थे, लेकिन वे ऐसा करते नहीं हैं। जितेन के अनुसार इस देश के बुद्धिजीवी एक महंगे 'शो–पीस' के अलावा कुछ नहीं है। जितेन कहता है–''यही हमारी त्रासदी रही है, विचारकों को

हमने हमेशा करनेवालों से ऊँची जगह दी है। इसीलिए हमारे यहाँ विचारक नपुंसक हो गया है। ....संचालन करनेवाला है अवसरवादी राजनीतिज्ञ, जिसे हर कर्मठ इन्सान में प्रतिद्वंद्वी की बू आती है।''[22]

मृदुला जी के 'अनित्य' उपन्यास में पचास वर्षों से निरंतर ह्रासोन्मुख समाज की स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में सामाजिक व राजनीतिक सरोकारों व सापेक्षताओं की पड़ताल की जा सकती है। गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन और भगतसिंह के क्रांतिकारी आंदोलन के माध्यम से बीते पचास वर्षों की राजनीतिक विसंगतियों का कलात्मक चित्रण किया गया है।

(ग) देश विभाजन की त्रासदी :

14 अगस्त 1947 को भारत का बँटवारा, देश विभाजन की सबसे बड़ी मानवीय, भौगोलिक और राजीनतिक त्रासदी थी, जो कांग्रेस की सत्ता प्राप्त करने की मानसिकता का परिणाम था। भारत के इस बँटवारे के साथ ही ऐसे विषवृक्ष का बीज बोया गया, जिसका परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं। भारत–विभाजन इतिहास की एक काली घटना थी, जिसमें असंख्य बलिदानों के उपरांत भी हमें खंडित भारत ही प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के लिए प्राणों को न्यौछावर करने वाले शहीदों की कुर्बानियों का सही परिणाम नहीं मिला। यह विभाजन ऐसी त्रासदी थी, जिसके घाव आज तक भी नहीं भर पाए हैं। विभाजन के कारण लोग अपना घर–बार छोड़ने को मजबूर हुए तथा इस दौरान हुई लूटपाट, बलात्कार और हिंसा की घटनाओं में लोगों की जान भी गई तथा घायल भी हुए। देश के बँटवारे के साथ ही लोगों के दिलों का भी बँटवारा हो गया। हिंदी साहित्य के इतिहास में देश विभाजन के ऊपर उपन्यास व कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। यशपाल का 'झूठा सच', भीष्म साहनी का 'तमस', मंजूर एहतेशाम का 'सूखा बरगद', असगर वजाहत का 'जिस लाहौर नइ वेख्या', कृष्णा सोबती का 'सिक्का बदल गया' तथा मृदुला गर्ग के 'अनित्य' व 'मिलजुल मन' उपन्यास में भारत–विभाजन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया गया है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास 'अनित्य', 'मैं और मैं', 'वंशज' तथा 'मिलजुल मन' में विभाजन के समय की तथा पश्चात् की स्वाधीन भारत में शुरू होने वाली राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों में होने वाले क्षरण को यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया है। आजादी की सबसे बड़ी कीमत विभाजन के तौर पर चुकानी पड़ी। इस त्रासदी के लाखों लोग शिकार हुए और उन्हें बेघर होना पड़ा। कत्लेआम हुआ और कई जिंदगियाँ इसकी भेंट चढ़ गईं। आज भी जब आजादी का जश्न मनाया जाता है, तो उस समय की घटनाओं की त्रासदी जेहन में ताजा हो जाती है। 'पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' की घोषणा करने वाले महात्मा गांधी असहाय से देखते रहे और कांग्रेस के नेताओं ने देश का विभाजन कर दिया। हिन्दू–मुस्लिम दंगों के कारण परिवारों के परिवार मौत के घाट उतार दिए गए। असंख्य महिलाओं का अपहरण कर लिया गया था। अनेक महिलाओं ने कुओं में छलांगे लगाकर या घर, गुरुद्वारे व मंदिरों में आग लगाकर उससे भस्म होकर अपने मान–सम्मान की रक्षा की थी।

स्वतंत्रता–पश्चात् जब भारत–पाकिस्तान का विभाजन हुआ तो वह विभाजन केवल भूमि का ही नहीं अपितु लोगों की भावनाओं का भी विभाजन हो गया था। उस समय अपना घर–बार छोड़ना तथा अपनों को खोना, उन लोगों के लिए बहुत ही त्रासदीपूर्ण था, जिन्होंने अपनों को खोया था। अपने घर, गाँव से बेदखल होकर अजनबी जगह पर जाकर जिंदगी फिर से शुरू करनी पड़ी। लाखों हिन्दू और सिख परिवारों को पाकिस्तानी हिस्से से भारत आना पड़ा तथा मुसलमान परिवारों को पाकिस्तानी हिस्से में जाना पड़ा। ये बेदखली खून से सराबोर थी। मुसलमान और हिन्दू–सिख एक–दूसरे के खून के प्यासे हो गए थे। विभाजन से पूर्व जो लोग एक परिवार की तरह थे, वे विभाजन के पश्चात् बदल गए। जिसके कारण जगह–जगह पर लूटपाट, अपहरण व हत्याएँ हो रही थीं। देश में चारों ओर दंगा फैल रहा था तथा हिन्दू व मुस्लिम दंगों में निर्दोष लोगों को मार रहे थे। 'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार का

कथन– ''तब मैं पन्द्रह बरस का रहा हूँगा। एक मुसलमान लड़के के पेट में चाकू भोंककर मैंने उसे मार डाला,''............नहीं वह कुरूप नहीं था। बस हमें सिखलाया गया था कि हर मुसलमान आदमी कुरूप है और इसीलिए उसे नष्ट कर देना चाहिए। हिन्दू–मुस्लिम दंगों के दौरान मैंने उसका कत्ल कर दिया।''[23] देश विभाजन के दौरान स्त्रियों को क्या कष्ट सहने पड़े थे, इसका चित्रण भी उपन्यास में हुआ है। इस संबंध में कौशल कहता है– ''एक मुसलमान लड़की थी, सलमा। उन्नीस सौ सैंतालिस के दंगों में मैंने उसकी जान बचाई थी। ....मैंने उसका प्यार ठुकरा दिया और आखिर..........''........'' आखिर उसने खुदकुशी कर ली!''[24] 'मिलजुल मन' उपन्यास में भी देश के विभाजन के पष्चात् की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

(घ) पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज से उसका बहुत गहरा संबंध होता है। कोई भी व्यक्ति न तो एकदम समाज–निरपेक्ष हो सकता है और न ही सामाजिक परिवेश से अप्रभावित रह सकता है। मानव समाज आदिकाल से ही विविधताओं से युक्त रहा है तथा इस विविधता का आधार देशकाल एवं परिस्थित्यानुसार अलग–अलग रहा है। आज भी मानव समाज में विविधताएँ व्याप्त हैं, फिर चाहे वे आयु, लिंग, आय. व्यवसाय, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं साँस कृतिक स्थिति, जीविकोपार्जन के साधन आदि किसी भी क्षेत्र में पाई जाती हैं। इन्हीं विविधताओं के आधार पर ही मनुष्य अपने सामाजिक स्तर को प्राप्त करता है और तदनरूप ही वह अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। आज का युग अर्थवादी युग है, जिसके कारण संपूर्ण जीवन का मापदंड ही अर्थाधारित हो गया है। मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत यह कहना अनुचित न होगा कि मानव का संपूर्ण सामाजिक वैभव अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी अर्थाधारित हो गई है। अर्थानुरूप ही किसी समाज–व्यवस्था का जन्म होता है तथा समाज उच्च्, मध्यम और निम्न आदि तीन स्तरों पर विभाजित हो जाता है। मार्क्सानुसार आर्थिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर समाज में दो प्रमुख वर्ग रहे हैं। ये दो वर्ग युगानुरूप परिवर्तित होते गए हैं। दासत्व युग में दो प्रमुख वर्ग– दास और उनके स्वामी थे, सामंती युग में दो प्रमुख वर्ग– सामंत तथा अर्द्धदास किसान थे और आधुनिक युग में भी समाज उसी प्रकार दो महान वर्ग– पूँजीपति तथा श्रमिक वर्ग में बँटा हुआ है। समाज के इन दो प्रमुख वर्गों की सर्वप्रमुख विशेषता यह होती है, कि इनमें से एक वर्ग के हाथों में उत्पादन के साधन केंदीकृत होते हैं तथा दूसरे के पास ये नहीं होते हैं। इन्हीं साधनों के बल पर यह प्रथम वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता है। पूँजीपति वर्ग अधिकाधिक लाभ कमाने हेतु, सर्वहारा वर्ग अर्थात श्रमिक वर्ग का शोषण करता है, तथा सर्वहारा वर्ग अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, शोषण से स्वयं को मुक्त करने के लिए पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले शोषण का विरोध करता है। इस प्रकार दो विरोधी वर्गों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

पूँजीवादी व्यवस्था से तात्पर्य है कि व्यक्तिगत अधिकारों के सिद्धांत पर आधारित वह व्यवस्था, जहाँ पूँजीपति अपना धन व्यय करता है, जिससे वह अधिकाधिक धन बना सके। इसमें संपत्ति को विभिन्न प्रकार की संस्थाओं और यंत्रों के उपयोग से पूँजी या फायदे में परिवर्तित किया जाता है, जिसमें मजदूर वर्ग की अहं भूमिका होती है तथा उनके सहारे कई बड़े उद्योग कार्य करते हैं। आधुनिक बाजार पूँजीवादी व्यवस्था के आधार पर ही कार्य करता है तथा इसमें निजी संपत्ति विरासत के रूप में एक से दूसरे तक पहुँचती है। इसमें अनुबंध, आर्थिक–स्वतंत्रता के आधार पर किसी भी निर्णय को लेने व संपत्ति के मन मुताबिक प्रयोग की स्वतंत्रता पाई जाती है। इसमें एक प्रतिस्पर्धा की भावना होती है तथा समस्त क्रेता–विक्रेता अपने हितार्थ कार्य करते हैं। ऐसी व्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप बेहद ही कम अर्थात न के बराबर होता है। इसमें पूँजीपति वर्ग को बड़े पैमाने पर धन व मुनाफा कमाने का अवसर मिलता है तथा मजदूर वर्ग का शारीरिक, मानसिक व आर्थिक शोषण अधिक होता है।

साम्यवादी व्यवस्था का आधार मार्क्सवाद है। साम्यवादी व्यवस्थानुसार समाज में व्याप्त असमानता का कारण पूँजीपति वर्ग अर्थात पूँजीवादी व्यवस्था है। जब तक समाज में पूँजीवादी व्यवस्था का बोलबाला रहेगा, तब तक यह असमानता कभी कम नहीं हो सकती है। मार्क्स के अनुसार समाज के दो प्रमुख वर्ग हैं— पूँजीपति अर्थात बुर्जुआ और सर्वहारा अर्थात मजदूर वर्ग। पूँजीपति वर्ग सदैव शोषक होता है तथा सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है। अपने ऊपर होने वाले शोषण के प्रति सर्वहारा वर्ग में आक्रोश व विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है, फलस्वरूप वह शोषण का विरोध करके शोषक वर्ग को दबाकर अपने को स्वतंत्र करना चाहता है। साम्यवादी व्यवस्था ऐसी व्यवस्था है, जिसमें कोई भी व्यक्ति किसी और की इच्छापूर्ति करने के लिए बाध्य नहीं होगा तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार काम कर सकेगा। पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर दूसरे के सपने को साकार करने के लिए मजबूर होता है, तो वहीं साम्यवादी व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपने सपनों को साकार करने के लिए स्वतंत्र होता है।

समाज की सामाजिक व्यवस्था, उसकी आर्थिक स्थिति आदि से प्रभावित होकर ही एक साहित्यकार का विचार जगत प्रभावित होता है। अर्थानुरूप ही समाज व्यवस्था का जन्म होता है, जो साहित्यकार की रचना—प्रेरणा से संबंधित व प्रभावित होता है। प्रत्येक युग की विचारधारा अपने युग कि सामाजिक स्थिति से प्रभावित होती है, क्योंकि साहित्य समाज का ही प्रतिबिंब हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। मृदुला गर्ग एक सशक्त आधुनिक साहित्यकार अर्थात उपन्यासकार हैं, इनका मानना है कि हमारा समाज विषमता पर आधारित है तथा भारतीय संस्कृति व्यक्तिवादी है। यह विषमता और व्यक्तिवादिता ही पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म देती है। जाति व वर्ग विभाजित हमारे समाज में केवल समूहों के बीच भाषण और पूँजीभूत विषमता ही नहीं है अपितु स्त्री—पुरुष के बीच भी गहरी असमानता है तथा अन्याय की एक समुचित, सुनियोजित व्यवस्था है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है कि पूँजीपति समाज एक ऐसा वर्ग है, जो हमेशा आलोचना का पात्र बनता है। अपनी पूँजी के बल पर पूँजीपति अर्थात व्यापारी या उद्योगपति वर्ग मजदूर वर्ग को कम मजदूरी पर रखकर उनसे अधिक काम लेना चाहता है, जिससे मजदूर वर्ग का शोषण होता है। अपनी पूँजी के बल पर शोषण करने वाले पूँजीपतियों का मुकाबला व विरोध करना अत्यंत आवश्यक है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मधुकर व जितेन के माध्यम से लेखिका ने इस व्यवस्था पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है। मधुकर को इस देश के पूँजीपतियों के कार्य करने का तरीका पसंद नहीं है। वह कहता है कि यहाँ देश में भी मशीनों के कलपुर्जे बनाए जा सकते हैं, लेकिन पूँजीपति अपनी फैक्टरी में आयातित विदेशी पुर्जे लगाते हैं। जितेन उसका प्रतिवाद करते हुए कहता है कि यह बात सिर्फ कहने में ही भली लगती है, परंतु जब कार्यकुशलता की बात आती है, तो ऐसी चीजों से समझौता करना पड़ता है। वह कहता है कि ऐसी बात आप बुद्धिजीवियों के बलबूते की नहीं है। जितेन आगे कहता है कि एक मशीन का पार्ट ठीक करने के लिए मद्रास पान्निकर कंपनी को भेजा हुआ है। फोन पर भी संतोषजनक सूचना नहीं मिल रही है इसलिए सोचता हूँ कि देर न करके खुद ही जाकर ले आऊँ, तब मधुकर कहता है — ''मशीन इम्पोर्टेड होगी? मधुकर ने पूछा। 'हाँ' उसने लापरवाही से कहा। ''शायद इसीलिए ठीक करवाने में तकलीफ हो रही है।'' . .....मेरी समझ में नहीं आता आप लोग ऐसी मशीने क्यों लगाते हैं जिन्हें हमारे श्रमिक न चलाना जानते हैं, न सुधारना।........''और मशीने हो सकती हैं जो लेबर इंटेनसिव हों।'' ....''बन सकती हैं, यहीं अपने देश मे।''...........''आप पूँजीपतियों का खयाल है, इस देश में कर्त्ता केवल आप है,.................सिर्फ मोटी तन्ख्वाह पाने वाले आप जैसे लोग या श्रमिक भी?'' [25]

साम्यवाद शोषित वर्ग, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति रखता है और शोषण करने वाले पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश की भावना। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मधुकर देश की दुर्दशा सुधारने के लिए मौजूदा व्यवस्था के विरूदध क्रांति करने की बात करता है। वह अपने कॉलेज के छात्रों को साथ लेकर हड़ताल द्वारा क्रांति करना चाहता है तथा भ्रष्टाचार को समाप्त करना चाहता है। वह मनीषा से कहता है ''कॉलेज में स्ट्राइक हो गयी।'' ....वर्षों

से जो भ्रष्टाचार और शोषण चल रहा है, वही बस कीमतें और तेजी से बढ़ चली है।'' ....
..''इसीलिए। इन सबसे लड़ने के लिए। पूरे दो महीनों से हम इसकी तैयारी में लगे थे। सोचा था अभी कुछ दिन और लगेंगे पर कल तय हुआ, और रुके रहना संभव नहीं है।''[26]

जब मनीषा मधुकर से कहती है कि – ''तुम लोग क्या सचमुच समझते हो कि तुम्हारे हड़ताल करने से यह समस्याएँ हल हो जायेंगी?''[27] मनीषा की बात का जवाब देते हुए मधुकर कहता है, कि– ''खाली हड़ताल करने से नहीं, उसके विरुद्ध मोर्चा लेने से।''................देश के युवा–वर्ग की ताकत कोई छोटी–मोटी ताकत नहीं है। संगठन के साथ मोर्चा लेंगे तो व्यवस्था को उनकी बात सुननी ही होगी।''...............एक व्यवस्था को तोड़कर दूसरी व्यवस्था को लाने में, कुछ समय के लिए अराजकता फैलेगी ही। पर उसके डर से क्या प्रतिवाद करना छोड़ देना होगा?'' ....''होना ही चाहिए। आखिर कब तक मजदूर अपना शोषण करवाते रहेंगे?''................
.''नहीं, पर वह इसलिए है कि स्ट्राइक मुकम्मल तरीके से नहीं होती। संकीर्ण दृष्टिकोण को लेकर छिटपुट तरीके से छोटे–छोटे क्षेत्रों में होती है। पर हमारी लड़ाई सम्पूर्ण व्यवस्था से है। इसका असर होकर रहेगा।'' [28]

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में देश के मौजूदा हालात में सुधार व परिवर्तन लाने के लिए मधुकर नागपाल के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है कि प्रतिवाद के लिए हड़ताल व विरोध किया जाना आवश्यक है। युनिवर्सिटी में परिवर्तन की बात के माध्यम से व्यक्त किया गया है, कि संपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन व शोषण से मुक्ति विद्रोह के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध करने के लिए सर्वहारा वर्ग द्वारा जो विद्रोहस्वरूप हड़ताल की जाती है, वह देश की व्यवस्था को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला तत्व है। फैक्टरियों में की जानेवाली हड़ताल के कारण देश की योजनाएँ खटाई में पड़ने लगती हैं तथा कार्यकर्ताओं को असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। जितेन के इस कथन से यह बात स्पष्ट होती है – ''बंगलूर से ट्रंक कॉल थी। फैक्टरी में हड़ताल हो गयी है। मुझे फौरन जाना है।'' ....''मुझे अफसोस है,' उसने कहा ''एकदम से यह हो गया। तुम तो जानती ही हो, ऐसे मौकों पर तनिक–सी देरी या छोटा–सा गलत कदम भी कितना नुकसानदेह साबित हो सकता है।'' [29]

मृदुला जी के उपन्यास 'मैं और मैं' में भी राजनीतिक तथ्यों के माध्यम से वर्ग–संघर्ष की स्थिति को भी उभारा गया है। आज का निम्न व शोषित वर्ग केवल पीड़ित रहना ही नहीं अपितु वह बदला लेना भी चाहता है तथा उच्चवर्गीय अर्थात पूँजीपति वर्ग द्वारा किए गए अन्याय का विरोध भी करते हुए दिखाई देता है। बुर्जुआ व सर्वहारा वर्ग के बीच के वर्गभेद का चित्रण दो लेखक–माधवी व कौशल कुमार के माध्यम से किया गया है। इनके बनते–टूटते सामाजिक और नैतिक आग्रहों का चित्रण किया गया है। 'मैं और मैं' उपन्यास का कौशल कुमार सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तथा माधवी जैसी उच्चवर्गीय नारी को जितना छल सकता है, छलता है और पैसे ऐंठता रहता है। प्रारंभ में ही जब माधवी प्रकाशक के दफ्तर से निकलकर स्कूटर की तरफ बढ़ती है, तभी कौशल कुमार उससे कहता है, कि– ''मैं आपके साथ चलूं'' और माधवी चौंककर कहती है कि ''मेरे घर? इस वक्त.....''[30] उसी समय से कौशल कुमार जोंक की तरह माधवी की जिंदगी में चिपक जाता है। वह कहता है, कि– ''तीन बजे तो मुझे रेडियो स्टेशन पहुँचना था............बस में पहुँचना तो मुश्किल होगा, स्कूटर लेना पड़ेगा। दस रुपए देंगी? कल लौटा दूंगा।'' [31] यहीं से कौशल कुमार माधवी का मानसिक व आर्थिक शोषण करना शुरू कर देता है। राजेश्वर मिश्र जब उसको पेशगी दिए रुपयों के बदले उसके रुपए काट लेता है, तो उसके मन में एक आक्रोश का भाव व्याप्त हो जाता है और वह कहता है कि –''उस बदमाश ने पेशगी दिए रुपयों का खाता खोल लिया और सारे के सारे काट लिए। इस तरह हर आदमी पेशगी दिया रुपया काटता रहा तो उनकी जिन्दगी कैसे चलेगी, कभी सोचा है किसी ने?............जरूरत नहीं हैं, जानता हूँ। रुपया हाथ का मैल है। जी हाँ, यह मैल सिर्फ बड़े आदमियों की हथेलियों पर जमता है। हमें मिल जाए तो हम साबुन की तरह उसका इस्तेमाल करें।''[32] वह माधवी की पुस्तक की प्रति की कल्पना करते हुए भी पूँजीपति व्यवस्था के प्रति

आक्रोश उगलते हुए कहता है कि – ''साला! ठीक है, ले जाकर दे देगा एक प्रति माधवी जी को और कहेगा, किसी ने आपको बेवकूफ नहीं बनाया, आप हैं ही बेवकूफ। पूँजीपति व्यवस्था में रहती हैं और इतना नहीं जानतीं कि यहाँ बिना बिचौलियों के कोई काम सिद्ध नहीं होता।........ .....जिन्दगी की जद्दोजहद में सिर्फ वही आदमी नावाकिफ रह सकता है जो अपने सोने के किले में महफूज बैठा रहे।...............सच का सामना किए बगैर कोई बड़ा लेखक नहीं बन सकता। सच्चा लेखक आपको मैं बना रहा हूँ समझी!''[33] वह रुपये ऐंठने के लिए माधवी के साथ–साथ माधवी के पति राकेश को भी भावानात्मक रूप से छलता है। वह कहता है– ''रुपया आप बेशक मत दीजिए,'' उसने कहा, ''मेरी निगाह में रुपए की कोई कीमत नहीं है। असली चीज है दोस्ती। आपकी दोस्ती खोकर रुपया पाऊँगा तो मेरे लिए डूब मरने की बात होगी। मुसीबत झेलने की मुझे आदत है। बचपन से लेकर अब तक और क्या किया है जीवन में! मकान खाली करना पड़ेगा, कर दूँगा। मेरे बच्चे सर्दी–पाले में ठिठुरकर मर गए तो उफ तक नहीं करुँगा। यह मत समझिए...''[34] और उसके इस झूठ को सच समझकर राकेश उसे एक हजार रुपये दे देता है। जब माधवी कहती है, कि वह रुपये नहीं लौटाएगा, तब राकेश कहता है, कि– ''अच्छा ... विद्रोह का यह भी तो रूप हो सकता है कि बैल की तरह जुआ ढोने के बजाय आदमी जोंक की तरह खून पीने लगे।'' [35] कौशल कुमार का यह कथन आक्रोश को ही व्यक्त करता है – ''अच्छा है। इतनी आसानी से रुपये मिलते रहते तो उसमें और उन परजीवी सेठों में अन्तर क्या रहता जिनके विरुद्ध उसका वर्ग–संघर्ष है। वर्ग–संघर्ष! वह ठठाकर हँस पड़ा। कैसा वर्ग–संघर्ष? सब अपने–अपने में गर्क हैं, अपने लिए लड़ रहे हैं, लड़ भी कहाँ रहे हैं, बस मौका देखकर एक–दूसरे को मार रहे हैं। वह भी...।''[36]

कौशल का यह कथन बुर्जुआ संस्कृति व सर्वहारा की ओर संकेत करता है – ''दिमाग के कोनों से आती बेमतलब आवाजों को न सुनना उसके जीनियस का हिस्सा है। हर आदमी के अन्दर ऐसी आवाजें बुदबुद करती रहती हैं जिन्हें हमने बुर्जुआ संस्कृति से विरासत में पाया है। उनका काम ही है, घिसे–पिटे तर्क पेश करके पेंग भरते आदमी को अड़ंगी मारकर नीचे पटक देना। कौशल कुमार उनसे टक्कर लेना खूब जानता है। एक बार ये रुपये लौटा देने पर.. ....सम्भावनाएँ–ही सम्भावनाएँ हैं।''[37] कौशल का यह कथन पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति सर्वहारा के विद्रोह को व्यक्त करता है – ''सिर्फ बड़ी मछलियाँ ही छोटी मछलियों को नहीं खातीं। कभी–कभी कमजोर और मासूम दीखनेवाली छोटी मछलियाँ भी मिलकर बड़ी मछली को खा जाती हैं। घात लगाकर नहीं। बस अपने होने के वजूद से।''[38] कौशल के इन शब्दों में शोषण के प्रति आक्रोश की भावना व पूँजीवादी व्यवस्था के विनाश का आह्वान स्पष्ट दिखाई देता है, जब वह विद्रोह रूपी आँधी का संकेत देता है –''वाह, बढ़िया है! आए आँधी। सब–कुछ उड़ जाए, मिट जाए, ध्वंस हो जाए। काश, आँधी नहीं, जलजला आ जाए। आसमान से उतनी आशा बेकार है, पृथ्वी विद्रोह करेगी, खुद अपना पेट फाड़ लेगी तभी ध्वंस का लावा उठेगा, तभी ये भव्य अट्टालिकाएँ और सदियों से उन्हें छाँव देते पुराने पेड़ जड़ से उखड़कर गिरेंगे; आग और पानी मिलकर तांडव–नृत्य करेंगे और कौशल हँसेगा। अपने बदन को चिन्दी–चिन्दी होते देखेगा और हँसेगा; मरो, सब मरो। मैं अकेला नहीं हूँ, सब मेरे साथ हैं, मरो, मेरे साथ सब मरो!''[39]

पूँजीपति वर्ग सदैव शोषण करता है तथा सर्वहारा वर्ग अपने ऊपर होने वाले शोषण का विरोध करके तथा शोषित वर्ग कुलीन वर्ग को दबाकर अपने को स्वतंत्र करता है। कौशल कुमार के इन शब्दों में यह भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, जब वह कहता है कि –''उसका रोम–रोम घृणा से सिकुड़ गया। जो मैं कहता हूँ, उसका सही–सही अर्थ उस रंडी की औलाद तक कैसे पहुँच जाता है। क्यों दूँ मैं किसी का रुपया वापस? चोरों के समाज में अकेला मैं साहूकार क्यों बना रहूँ? कौन है हमारे भ्रष्ट समाज में जो चोरी नहीं करता, बेईमान नहीं है, दूसरों को झाँसा देकर पैसा नहीं बनाता। यह माधवीजी के आदरणीय पतिदेव! कहाँ से आता है इतना रुपया इनके पास? व्यापार चलाते हैं तो क्या बिना धोखाधड़ी किए! और फिर यह जानकर कि उनके पास है और मेरे पास नहीं है, साले खुद तो मुझे देने आएँगे नहीं। जोर–जबर्दस्ती करके जो छीन लूँगा, वही मेरा होगा न। मुझे अधिकार है छीनने का। जिन्दगी में कभी न रुपया मिला, न प्यार। सच तो यह है; यह साला सच भी उसके अन्दर से बाहर

आए बिना नहीं मानता; आदमी का मूल्यांकन इससे नहीं होता कि उसे जीवन में धन–दौलत कितनी मिली बल्कि इससे कि प्यार कितना मिला। मुझे कभी नहीं मिला। जब मिली नफरत, हिकारत, उदासीनता। मुझे अधिकार है कि अपने हिस्से आई नफरत दुनिया में बाँट दूँ। मूल–दर–सूद। पास में जो होगा वही तो औरों को दे सकता है आदमी।''[40] कौशल का यह वाक्य भी सर्वहारा वर्ग का पूँजीपति व्यवस्था के प्रति आक्रोश को व्यक्त करता है –. ''क्या कहा था माधवी ने। 'मेरे पैसों से नाइनसाफी के खिलाफ लड़ें तो मेरे लिए फख्र की बात होगी।' याद रखूँगा, माधवी, भूलूँगा नहीं। मेरी पूरी जिन्दगी ही नाइनसाफी के खिलाफ लड़ाई है। आज नहीं तो कल.............''[41]

उपन्यास 'मैं और मैं' में आया माधवी व राकेश का यह संवाद, कि– ''आपने क्या सोचा था, यहाँ ऑटोमैटिक मशीने लगी होंगी?'' ....''भारत जैसे अल्पविकसित देश में श्रमिकों का इस्तेमाल होना चाहिए। कीमती मशीनें वहाँ भला कोई क्यों खरीदेगा, जहाँ खुद इनसान को मशीन बनाया जा सके। जब श्रमिक के हाथ इनसानी बदन के हिस्से नहीं कल–पुर्जे बन जाते हैं, तभी तो उद्योगपति सफलता की सीढ़ी पर पैर रखता है।''[42] पूँजीवादी व्यवस्था की ओर संकेत करता है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी मृदुला गर्ग ने पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। पूँजीवाद के शिकंजे में आज अधिनिवेशी शक्तियों जैसी मल्टीनेशनल कंपनियाँ भारत जैसे देशों को अपनी नई व्यापारिक नीतियों से गुलामी की ओर वापस धकेल रही हैं। आज पूँजीवाद पर गांधीजी और कार्लमार्क्स के विचारों की अहमियत बढ़ती जा रही है। इस उपन्यास में मृदुला जी ने मनु व रिचर्ड के संवादों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, कि मार्क्स का कहना था, पूँजीवाद और यंत्रीकरण इतिहास की अपरिहार्य और निष्ठुर तर्क–युक्ति के अंश हैं। उनसे छुटकारा मिले तो हो सकता है, पर तभी जब वे अपने लॉजिक को पूरा करके उस चरम बिंदु पर पहुँच जाएँ, जहाँ विद्रोह खुद–ब–खुद पनप उठता है। रिचर्ड कहता है कि मैं गांधी, क्राइस्ट व मार्क्स को अपना आदर्श मानता हूँ तथा क्राइस्ट पहला कम्युनिष्ट था, क्योंकि उसने आदमी–आदमी के बीच साम्य देखा था और अमीरों को अपनी जमीन–जायदाद बेचकर गरीबों में बाँटने का संदेश दिया था। अपने लिए आवश्यक होने पर क्राइस्ट ने विद्रोह करने के लिए भी कहा है –''दरअसल धीरे–धीरे अमीरों ने क्राइस्ट का चेहरा खराब कर दिया। असली चेहरे पर नकली मुखौटा लगा दिया – अपने सहयोगी मित्र का। गरीबों को चाहिए नकाब फाड़ डालें और असली चेहरे को उजागर कर दें। गांधी भी यही कहता था। उसका असली चेहरा उन्हीं का सहायक होगा जिन्हें उसने हमदर्दी के साथ 'द डिसइनहैरिटेड ऑफ द अर्थ' पुकारा था। और मार्क्स ने हैव–नॉट्स। उनकी लड़ाई में जरूर वह उनका साथ देगा।''[43] इसी क्रम में रिचर्ड आगे कहता है कि – ''मार्क्स का कहना था – पूँजीवाद और यंत्रीकरण, इतिहास की अपरिहार्य और निष्ठुर तर्क–युक्ति के अंश हैं। उनसे छुटकारा मिल तो सकता है पर तभी जब वे अपने 'लॉजिक' को पूरा करके उस चरम बिन्दु पर पहुँच जाएँ, जहाँ विद्रोह खुद–ब–खुद पनप उठता है। यंत्रीकरण के दबाव में घुटे–पिसे कामगारों का विद्रोह भी ऐतिहासिक नियति का अनिवार्य अंग है। मार्क्स के लिए इतिहास की क्रूर नियति से बच निकलना असम्भव था। विद्रोह अनिवार्य था, विद्रोह का रूप भी निश्चित था – कम्युनिज्म या साम्यवाद। पर उससे पहले उतना ही निश्चित था, पूँजीवाद। उससे उत्पन्न यंत्रीकरण और कामगारों का शोषण।''[44]

गांधीजी का कहना था कि यंत्रीकरण को अनवार्य मत बनने दो। इससे पहले कि पूँजीवाद का राक्षस तुम्हें खत्म कर दे, तुम उसकी गिरफ्त से दूर हो जाओ तथा छोटे उद्योगों को अपनाओ जिन पर तुम्हारा स्वयं का स्वामित्व हो। पूँजीवाद को एक भयावह राक्षस के समान बताया गया है। इस कथन से यह स्पष्ट है, कि – ''पूँजीवाद और यंत्रीकरण की भयावहता काल्पनातीत है। जितनी बार वह जमीन पर गिरता है, उसकी शक्ति बढ़ती जाती है। उसके पंजों की जकड़ विचित्र है। उसका कैदी छटपटाता जरूर है, पर उसकी पकड़ से बाहर निकलने के बजाय, खुद को और शिद्दत के साथ उसके पंजों के हवाले करता जाता है। जब वह खुद यंत्र और यंत्रीकृत पूँजीवाद के राक्षसी बदन का हिस्सा बनता जाएगा तो विद्रोह भला

कैसे करेगा? युग बीत जाएँगे, छोटे–मोटे विरोध होंगे। राक्षस पटकनी खाएगा तो दूनी शक्ति के साथ उठ खड़ा होगा। विद्रोह टलता रहेगा, शोषण बढ़ता जाएगा, समता आ नहीं पाएगी।''[45] गांधी जी के मन में एक आशा की किरण तथा शोषितों के प्रति विश्वास था, इसीलिए वे इनसानोंको ऐतिहासिक नियति से विद्रोह करना सिखला रहे थे। गांधी दर्शन व उस जमाने के कार्टूनों के वक्तव्य के माध्यम से रिचर्ड कहता है, कि किसी समाज में शोषक व शोषित वर्ग की स्थिति को समझने के लिए शोषितों द्वारा बनाए कार्टून बढ़िया होते हैं। वह कहता है कि – ''किसी कौम का सच्चा स्वरूप जानना चाहते हो तो शोषितों के बनाए कार्टून देखो। पता चल जाएगा, कौम जिंदा है या मर गई। और जिंदा है तो कब तक बगावत करेगी।'' ''हिन्दुस्तानी कौम जिंदा थी। हमेशा।'' [46] यहाँ मृदुला जी ने साम्राज्यवादी मानसिकता की ओर संकेत किया है तथा गांधी दर्शन के माध्यम में शोषितों के प्रति सहानुभूति भी व्यक्त की गई है। जिस तरह से कार्ल मार्क्स ने पूँजीवाद एवं यंत्रीकरण का विरोध किया था, उसी तरह का विरोध गांधीजी ने भी किया था। उन्होंने लघु उद्योगों को चलाने पर बल दिया था तथा शोषण के विरुद्ध थे।

'चित्तकोबरा' की मनु के इस कथन से अभिव्यक्त किया गया है कि इन लघु उद्योगों की आड़ में पूर्णरूप से पूँजीवादी लोग ही लाभ उठाते हैं। मनु का यह कथन –''आज महेश के एक जानकार के यहाँ पार्टी है। महेश की तरह वह भी लघु उद्योगपति है। युवा लघु उद्यमकर्ता संघ का सदस्य। उसे सरकार की ओर से पुरस्कार मिला है। सर्वाधिक उत्पादन यानी सर्वाधिक लाभ के लिए। अच्छा काम है लघु उद्योग चलाना। सामाजिक अपराध बोध से आदमी बचा रहता है। लघु शब्द बड़ा करामाती है। बड़े उद्योग चलाओगे तो शोषक कहलाओगे, लघु उद्योग चलाओगे तो देशसेवक। लाभ पूरा होगा, ऊपर से सरकार इनाम देगी। मजदूरों की संख्या कम रहेगी, यूनियन वगैरह के चक्कर से बचाव रहेगा। कम वेतन देने पर कोई एतराज नहीं कर सकता, वजह जो वजनी है। सभी उद्योगपति कम वेतन देते हैं।....... ....अतिरिक्त लाभ को शेयर होल्डर्स के पंजों से बचाने का यही एक तरीका है। दो–चार दावतें देकर अतिशय राशि को निबटा डालो।'' [47] इनका यह कथन अभिव्यक्त करता है कि, लघु उद्योग चलाने वाले उद्योगपति मजदूरों से दुगुना काम करवाते हैं तथा युनियन द्वारा हड़ताल का डर न होने के कारण मजदूरों का शोषण करते हैं।

'वंशज' उपन्यास में भी पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले शोषण व उसके प्रति आक्रोश को सुधीर के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। सुधीर धनबाद और रानीगंज के झंझारा कोयला खान में नौकरी करते हुए वहाँ के मजदूरों की आर्थिक विवशता व दर्दुशा को देखकर तिलमिला उठता है तथा उसका संवेदनशील मन मजदूरों की स्थिति देखकर विचलित हो उठता है। सुधीर जब देखता है कि ठेकेदार भादुड़ी मजदूरों से अंगूठा तो ढाई रूपये पर लगवाता है परंतु भुगतान केवल एक रुपया रोज देता है, जो उसके द्वारा किये जाने वाले आर्थिक शोषण की ओर इंगित करता है। मजदूरों से खानों में काम करवाया जाता है लेकिन आवश्यक सुविधाएँ नहीं दी जाती है। मजदूरों के शोषण को देखकर सुधीर भादूड़ी से लड़ लेता है, जिससे उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। कोयला खान के मजदूरों का मार्मिक व सजीव रेखाचित्र शब्दों के माध्यम से लेखिका इस प्रकार खींचती हैं – ''कोयले की धूल और पसीने से काले भुजंग बने ये अधनंगे मजदूर, इनका साथ तभी तो उसे इतना सुखदायी लगता है। कुदाल उठाए दुबले–पतले पर तने हाथ, केंचुओं सी सिहरती नीली नसें, इस दहशत भरी मेहनत के लिए नाकाफी बाहों की कमजोर माँसपेशियाँ अधगीले भात से आधे भरे पेटों की सूखी फड़कती आँतड़ियाँ, कोयले की विषैली गैसों से आक्रांत घर्र–घर्र करते गलों से खो–खो निकलती खाँसी, बहुत कुछ गलत होने पर भी कुछ ठीक होने का एहसास क्योंकि कुदालें चल रही हैं, अनवरत चल रही हैं।'' [48] मृदुला जी ने पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले शोषण का चित्रण व मजदूरों के प्रति सहानुभूतिशील दृष्टि अपने उपन्यास के पात्र सुधीर के माध्यम से अभिव्यक्त की है।

'मिलजुल मन' उपन्यास में भी मृदुला जी ने पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था की ओर संकेत किया है तथा उद्योग धंधों व मजदूरों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। मृदुला जी

कहती है, कि – "उन दिनों पूरी दुनिया दो खेमों में बंटी हुई थी। साम्यवादी खेमा और धुर पूँजीवादी खेमा। सर्द जंग के हालात में इस या उस खेमे में दाखिला जरूरी था। तभी फेबियन सोशलिज्म का पाठ बखूबी घोटे, नए आजाद हुए मुल्क के हमारे पहले वजीरे आजम ने मौलिक भारतीय फलसफे की राह अपनाई। न इधर के, न उधर के। सियासी जुबान में उसे एक तरफ, गैरमुतास्सिर हिकमत कहा गया तो दूसरी तरफ, मिला–जुला आर्थिक कायदा। असल मतलब दो हुए। एक तरफ, सरकार ने इस्पात कारखाने से लेकर डबल रोटी बनाने तक का, हर मुमकिन कारोबार अपने कब्जे में कर लिया। दूसरी तरफ, अमेरिका से होड़ लेती, बड़ी–बड़ी बहुआयामी पन–बिजली योजनाओं पर काम शुरू कर दिया। अमेरिका और सोवियत संघ दोनों खेमों के सरदारों और उनके चेले–चपाटे देशों की मदद से, बड़े–बड़े बांध बनाए जाने लगे। पूँजीवाद और समाजवाद से अलग–थलग दुविधा से उपजी जबान में, उन्हें नए युग के मंदिर, तीर्थ और धाम घोषित कर दिया गया।"[49] डालमियानगर कस्बे के कारखानों का वर्णन करते हुए मोगरा कहती है – "यूँ कारखानों की गिनती के हिसाब से, कस्बा रुतबेदार था। किस्म–किस्म के कारखाने थे; सीमेंट, कागज, वनस्पति, शक्कर वगैरह के। उनमें कामगार हजारों मजदूर थे, सैकड़ों अफसर, उनके भरे–पूरे परिवार। पर ढंग का स्कूल या अस्पताल नहीं था तो कॉलेज कैसे होता? आम बीमारियों के लिए डॉक्टर और दवाखाना था। बड़े अफसर को पेचीदा या नाजुक बीमारी होती तो कंपनी, पटना भेजने का इंतजाम कर देती। बाकी रामभरोसे रहते। मजदूर ही नहीं, अफसरों की बीवियाँ भी।"[50] आगे वह औद्योगीकरण पर प्रकाश डालते हुए कहती है, कि मिल मालिक मजदूरों को रोजगार देते थे, लेकिन उनके स्वास्थ्य व पर्यावरण की ओर ध्यान नहीं देते – "कुदरती तौर पर डालमियानगर बुरी जगह नहीं थी। बेचारी कुदरत को क्या पता था, एक दिन उस अंचल का ऐसा अटपटा औद्योगीकरण होगा कि प्रदूषण फैलाने वाले दुनिया जहान के कारखाने लगाए जाएंगे।...................................पर रोज़गार तो मिल रहा था। सिर पर छत तो थी। देश तरक्की करेगा तो कीमत चुकानी होगी न। यह उम्मीद रखना कि मिल मालिक रोजगार दे और आपके सौंदर्यबोध, तालीम और सेहत का ठेका भी ले, ज्यादती है कि नहीं? नेहरू जी ने बड़े बांधों को नए ज़माने के तीर्थ कहा था, औद्योगिक कस्बों की रिहाइशी बस्तियों को नहीं कि वहाँ सार–सफ़ाई होती। वैसे अपने तीर्थों में कौन सार–सफ़ाई होती हैं सब राम–भरोसे चलता है। उस नज़र से डालमियानगर तीर्थ था। उद्योग की जरूरियात के अलावा, कुदरत से छेड़छाड़ सिफर और रामजी पर भरोसा, सौ फीसदी।"[51] लेखिका ने मिल मालिकों व मजदूरों की स्थिति तथा देश की मौजूदा औद्योगिक व्यवस्था को चित्रित किया है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'अनित्य' में भी गांधीजी व भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी के माध्यम से साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना की ओर इंगित किया है। इनका कहना है, कि भगतसिंह की शहादत का मूल उद्देश्य समाज के मौजूदा ढाँचे को बदलकर समाजवाद लाना था और इस बात को लेकर उनका गांधीजी से विरोध था। भगतसिंह का कहना था, कि – "हमारे दल का एक लक्ष्य एक सोशलिस्ट सामाजिक संगठन की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि जब राजनीतिक क्रांति से शासन–शक्ति अंग्रेजों के हाथ से निकलकर हिंदुस्तानियों के हाथों में आ जायेगी, तब हमारा लक्ष्य शासन–शक्ति को उन हाथों के सुपुर्द करना है, जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिए मजदूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा।"[52] गांधीजी के हृदय में गरीब और सर्वहारा वर्ग के लिए गहरी व्यथा और संवेदना थी। गांधी जी ने जब भी बात की आर्थिक अनुकंपा की, आर्थिक समानता की कभी नहीं की। वे अपने अनुयायियों को अनुकंपा रखने की सीख देते थे। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग अपनी सत्ता आसानी से नहीं छोड़ता है। पं. जवाहर लाल का यह कथन – "शासक और विशेषाधिकार–प्राप्त वर्ग को अपनी सत्ता और अनुचित विशेषाधिकारों को छोड़ देने के लिए रजामंद करने की जितनी कोशिशें अब तक की गयीं, वे हमेशा नाकामयाब ही हुईं।"[53] गांधीजी भी इस बात को जानते थे कि – "ब्रिटिश सरकार चूंकि पूँजीवादी सरकार है, इसलिए समझौते से जब भी वह सत्ता छोड़ेगी, तो उसे किसी पूँजीवादी राजनीतिक दल को ही देगी। क्योंकि वे बलपूर्वक सत्ता लेने को असंभव मानते थे, इसलिए समझौते से सत्ता लेने का विकल्प ही उनके

सामने था। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों से सत्ता छीन लेने पर वे पूँजीवाद से भी निबट लेंगे, और यहीं वे मात खा गये। स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे देश से पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं, और भी गहरी हो गयीं।''[54]

मृदुला जी कहती हैं, कि हमारा समाज एक विशिष्ट वर्गीय समाज है और यहाँ आम जनता और विशिष्ट वर्ग में भेदभाव व असमानता स्वतंत्रता–पूर्व भी थी और आज भी है – ''यह एक कड़वा सच है कि हमारा समाज एक इलीटिस्ट (विशिष्टवर्गीय) समाज है। विशेष दुख की बात इसमें यह रही है कि जब स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी जा रही थी, तब भी इलीट (विशिष्टवर्ग) और आम जनता के बीच का फर्क इसी तरह मौजूद था। विशिष्ट वर्ग के अनेक सदस्यों ने इस लड़ाई में हिस्सा लिया, पर जेल के अंदर चाहे बाहर, उनके और आम जनता के सत्याग्रहियों या क्रांतिकारियों के बीच का फर्क बराबर बना रहा। यह इसी इलीट की कोशिशों का नतीजा था कि आजादी जब मिली, तो सत्ता इलीट के हाथों में आयी, जनता केवल बक्से में वोट डालने का काम करती रही।

सिर्फ इतना ही नहीं कि इलीट को यहाँ सब सुविधाएँ प्राप्त हैं और आम जनता को एक भी सुविधा उपलब्ध नहीं है, इससे कहीं भयानक बात यह है कि हमारी हर नीति, चाहे वह शिक्षा के क्षेत्र में हो चाहे उद्योग के, इस विभाजन को कायम रखने के लिए काम करती है।''[55] हम हमेशा इसी कोशिश में रहते हैं, कि पूँजीवादी देशों की तरह हमारा रहन–सहन भी ऊँचा हो और हम इसी नकल–भावना के कारण हमारी आर्थिक असमानता को और अधिक बढ़ाते जा रहे हैं। उपभोक्ता संस्कृति भी एक तरह की महाजनी सभ्यता को ही जन्म देती है, जिससे पूँजीवादी व्यवस्था को बढ़ावा मिलता है। उपन्यास के पात्र सरण, मुकर्जी बाबू या शुक्ला जी जैसे पात्र महाजनी सभ्यता को समर्पित हैं। 'अनित्य' उपन्यास में आए ये कथन पूँजीवादी व्यवस्था में कमजोर के ऊपर किए जाने वाले जुल्म व शोषण की ओर इंगित करते हैं –''क्या है वह जिसके लिए ब्रिटिश साम्राज्य बना है? गुलाम देशों के श्रम और माल से ब्रिटेन को दौलतमंद बनाने के लिए ही न। चर्चिल कहते हैं, किसी भी कीमत पर फतह। साफ क्यों नहीं कहते, गुलाम देशों की कीमत पर फतह; एशिया के जान–माल की कुर्बानी पर फतह; हिंदुस्तानी आवाम को भूखा मार कर फतह।''[56] तथा ''कमजोर का जुल्म.......कमजोर पर जुल्म........सहो या करो! क्या समर्थ की सामर्थ्य इसी में है कि कमजोर पर जुल्म करे। जो सह ले वही कमजोर, जो कर ले वही समर्थ? हजारों सालों से चला आ रहा मानव इतिहास बस यही सिखलाता है? जिसे जुल्म करने का मौका न मिला, वह कमजोर हो गया। हम...........हमारा देश क्या इसीलिए कमजोर बना.............क्योंकि जुल्म नहीं किया।'' [57] तथा काजल का यह कथन – ''पर उसका अंत समझौते में होता है। शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है स्वाभिमान का ह्रास और नपुंसकता का उदय। ऐसे लोग हमेशा परिवर्तन से डरते हैं। हमीं को देखो न। हमने न अपने शासकों की शासन–प्रणाली बदली न शिक्षा–प्रणाली।''[58]

अविजित के मन में चलने वाला बंगाल व बिहार में भयानक बाढ़ का दृश्य भी अन्याय के खिलाफ विद्रोह के भाव का ही प्रतीक है। विद्रोह का संकेत देते हुए वह कहता है –''अगर किसी दिन, सब बंधन तोड़ जमना नदी हेली रोड पर बह निकले? गीली सुहावनी सड़क पर पानी का स्तर धीरे–धीरे बढ़े, फिर एकदम सीमा लाँघ जाये, इन खूबसूरत बंगलों के अहातों में घुस आये, अजगर की तरह मुँह–बाये इन सुदृढ़ दीवारों को निगलने लगे; कयामत बरपा हो जाये! अपने डूबने से भी ज्यादा इमारतों की नींव कमजोर होने का डर लोगों का दिल दहला दे। चीखो–पुकार मच जाये। सरकार का तख्ता हिल जाये। इस एक हेली रोड को बचाये रखने के लिए न जाने कितने बाँध तोड़ दिये जायें........पानी का निकास गाँवों की तरफ कर दिया जाये और उन्हें डुबती, जमना नदी की बाढ़, फिर मामूली खबर बन जाये............''[59] उक्त कथन में सरकार का तख्त पलटने का संकेत निहित है। इसी क्रम में आगे अविजित देख रहा है –''शहर और गाँवों का फर्क मिट रहा है..........कच्ची–पक्की सड़कों पर नदी का पानी वेग से बढ़ता चला जा रहा है.............ऊपर से मूसलाधार बारिश बरस रही है। लोग डूब रहे हैं, कुछ आसमान से बरसते पानी धार में, कुछ धरती पर उमड़ते जल प्रवाह में। ऊँची इमारतें आसमान

की मार सह नहीं पा रहीं। पानी की धार से पिघल–पिघल कर नीचे सरक रही हैं। पानी के शोर के बीच बेआवाज, आहिस्ता–आहिस्ता छतें फिसल कर फर्श से मिल रही हैं। मंजिलों के बीच फंसे लोग पिस–कुचल कर नीचे लटक रहे हैं और धीमे–धीमे पानी में टपक रहे हैं। पानी के ओर–छोर–हीन सीने पर जो लाश आकर गिरती है, उसका चेहरा गायब हो जाता है.......धड़ तैरते रहते हैं...........सड़ते रहते हैं..........एक दूसरे से लिपट–चिपट कर खाद बनते रहते हैं............... फिर भी कुछ इमारतें नहीं गिरतीं। छज्जों पर खड़े बड़े आदमी सब्र के साथ इंतजार करते हैं..........कब पानी उतरे और बढ़िया खाद से उर्वरा हुई धरती उनके हाथ लग सके।''[60] यहाँ ऊँची इमारतें पूँजीपति वर्ग का तथा वेग से बढ़ता हुआ नदी का पानी सर्वहारा वर्ग का पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश का प्रतीक है, सब कुछ समान स्तर पर लाने के लिए प्रयासरत है, लेकिन फिर भी कुछ शोषक बच जाते हैं और अवसर की तलाश में रहते हैं। अविजित नहीं चाहता है, कि – ''नहीं, अविजित उस इमारत में नहीं रहना चाहता जो पानी के उजड्ड वेग से अछूती रह कर मंजिल पर मंजिल चिनती चली जाये पर जिसके ईंट–गारे के भीतर पलती फफूंद उसमें रहने वाले हर प्राणी को रफ्ता–रफ्ता उसके अपने थूक में डुबा कर मार डाले।''[61] अर्थात मजदूरों के शोषण द्वारा अपने पूँजीपतित्व को मजबूती प्रदान करने वाली शासन व्यवस्था पूरी तरह से समाप्त हो जानी चाहिए। प्रभा का यह कथन – ''नहीं मदद करने की सामर्थ्य होना गलत है। एक समाज में रहने वाले लोग इस तरह क्यों बँटें कि एक वर्ग के पास इतना हो कि वह मदद करने की सामर्थ्य रखे और दूसरे वर्ग के पास कुछ न हो, कि उसे मदद की जरूरत पड़े।''

''तब तो.......एक ही रास्ता है.........कौम्यूनिज्म?''

'हाँ।''

''उसके लिए क्रांति..........''

''होनी ही पड़ेगी।''

''मार–पीट, हिंसा, अराजकता...........''

''उसके बिना कुछ बदलता नहीं, कभी कुछ नहीं बदलता!''[62]

इससे वह कहना चाह रही है, कि समाज में अर्थ के आधार पर व्याप्त विषमता को क्रांति के द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है तथा पूँजीपति वर्ग के स्वामित्व को समाप्त करने का एक ही रास्ता है और वह है कौम्यूनिज्म अर्थात साम्यवादी व्यवस्था कायम करना। काजल का यह कथन – ''साधन और सत्ता पर कब्जा करके। आम लोगों की हुकूमत कायम करके।'' कैसे होगा?'' ''होगा। साधन रहेंगे तो होगा। किसी एक गाँव के भूमिहीन किसान अपने गाँव की जमीन पर कब्जा कर लेंगे, अपनी सरकार बना लेंगे।'' [63] सर्वहारा की क्रांति की ओर इंगित करता है तथा देश की युवा शक्ति में क्रांति का भाव पैदा करके अन्याय को समाप्त करना चाहती है। इन सभी कथनों के माध्यम से लेखिका ने पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था पर प्रकाष डाला है।

(ड.) भ्रष्ट राजनीति :

मुददतों की गुलामी के बाद हिन्दुस्तान स्वतंत्र हुआ। बहुत संघर्ष के पश्चात् प्राप्त हुई इस आजादी के लिए देशप्रेमी स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने आपको बलीवेदी पर चढ़ा दिया था, तब कहीं जाकर आजादी प्राप्त हो सकी, परंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत में देश की राजनीति में नेता जनता की सेवा के लिए नहीं, अपितु अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए आते हैं। राजनीति से और अधिक अधिकार प्राप्त करके अपने लाखों को करोड़ों में बदलना चाहते हैं। आज की वर्तमान राजनीति भ्रष्टता के दलदल में फँसती चली जा रही है तथा दाँव–पेच और पैंतरेबाजी की राजनीति हो गई है। भ्रष्ट नेता भोलीभाली जनता को सब्जबाग दिखाकर विजय

हासिल कर लेते हैं। हम अपने समाज में देख सकते हैं कि राजनीति में धूर्त, चालाक व कपटी नेता किस तरह कुर्सी पाने के लिए जनता से चिकनी–चुपड़ी बातें करके लोगों को बेवकूफ बनाते हैं। आज राजनीति के दूषित रूप के कारण मानव–मूल्यों का ह्रास हो रहा है। झूठ, दगाबाजी, धोखाधड़ी, हिंसा आदि के कारण न व्यक्ति का वर्तमान सुरक्षित है और न ही भविष्य। आज की राजनीति अपना सही अर्थ खो चुकी है तथा देश के नेता अपने स्वार्थ–सिद्धि के लिए जनता के दुःख–दर्द से बेखबर ऐशोआराम करने तथा धन बटोरने में लगे हुए हैं। आज की भ्रष्ट व अर्थहीन होती जा रही राजनीति का खोखलापन जनता से छिपा नहीं है। भ्रष्टाचार की बैसाखी पकड़कर चलने वाली राजनीति राष्ट्र के विकास में बाधक होती है। किसी भी समाज व देश को वहाँ की शासन व्यवस्था प्रभावित करती है। वहाँ राजनीति के द्वारा ही समाज को एक नई दिशा मिलती है तथा नेता की नीत्यानुसार समाज में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। सत्तापिपासु नेता लोगों की बढ़ती स्वार्थवृत्ति के कारण आधुनिक समय में राजनीति का स्वरूप भ्रष्ट होता जा रहा है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीति राष्ट्र की राजनीति न होकर व्यक्ति की राजनीति हो गई है तथा नेता अवसरवादी बन गए हैं। आज के सत्ताधारी नेता देशहित की अपेक्षा स्वहित को ध्यान में रखकर कार्य करते हैं।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में राजनीति के भ्रष्ट स्वरूप का चित्रण बखूबी किया है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मधुकर का विचार है हमारे देश के राजनीतिज्ञ भी देश की गिरती स्थिति की ओर ध्यान नहीं देते हैं। जब एक विदेशी हमारे देश की स्थितियों के लिए चिंतित हो सकता है तथा कुछ कर सकता है तो हमारे देश के राजनीतिज्ञ ऐसा क्यों नहीं कर सकते हैं। मधुकर का मनीषा से यह कथन – ''अरे, वह अकेला आदमी है जिसने भारत–जैसे पिछड़े देशों की अर्थव्यवस्था को सचमुच समझा है, धनाढ्य अमरीका के नहीं, एक पिछड़े देश के नजरिये से। और फिर वह अर्थशास्त्र की दलीलों को हमारे खूसट बुद्धिजीवियों की तरह, हवाई पतंगों में बाँधकर नहीं उड़ाता, ठोस बात करता है।...............विलक्षण बात है कि एक अमरीकी भारत के मनोभावों को किसी भारतीय से अधिक नजदीकी नजर से देख–समझ रहा है। है न?''[64] मधुकर कहता है, कि अगर हमारे राजनीतिज्ञ भी उनकी तरह सोचने लगे, तो हम कितनी जल्दी प्रगति कर सकते हैं। इसी उपन्यास के पात्र जितेन का विचार है, कि देश के कार्य संचालक व मंत्री ऐसे लोग बनते हैं, जो अवसरवादी होते हैं। जितेन कहता है – ''जिन श्रमिकों के नाम की शाब्दिक माला वह हमेशा जपता रहता है, उनका संचालन ही कब किया है उसने? संचालन करनेवाला है अवसरवादी राजनीतिज्ञ, ...और असवरवादी राजनीतिज्ञ, वे भी आपके ही चट्टे बट्टे हैं।''[65]

मधुकर द्वारा जब बुद्धिजिवियों का इतिहास उठाकर देखने की बात कही जाती है तथा फ्राँस की क्रांति का उदाहरण दिया जाता है, तब जितेन कहता है, कि – ''विदेशों के उदाहरण मुझे मत दीजिए, बहुत बेमानी लगते हैं, अपने देश की बात कीजिए, है यहाँ कोई बुद्धिजीवी, जो किसी ठोस चीज का संचालन कर रहा है? अलबत्ता, सुझाव पर मिनट एक की रफ्तार से जरूर दे रहा होगा। यही हमारी त्रासदी रही है, विचारकों को हमने हमेशा करनेवालों से ऊँची जगह दी है। इसलिए हमारे यहाँ विचारक नपुंसक हो गया है। बोलता है और बोल–बोलकर आखिर थककर चुप हो जाता है, न खुद कुछ करता है, न दूसरों को करने के लिए प्रोत्साहित करता है।''[66] मधुकर का यही कहना है कि देश के नेता अपने स्वार्थ को ही सिद्ध करते है। जब मनीषा मधुकर को व्यस्त देखकर कहती है, कि क्या आजकल दुनिया की स्थापना कर रहे हो, तब मधुकर कहता है –''दुनिया की मुझे चिंता नहीं है। वह अपना खयाल बखूबी रख रही है। मैं अपने इस अभागे देश के लिए कुछ कर सकूं तो बहुत होगा।''

''प्रधानमंत्री बनने जा रहे हो?''

''नहीं, मंत्री बनने का शौक फरमाने के लिए अवसरवादियों की कतार पहले ही कुछ कम लम्बी नहीं है।''[67]

मृदुला जी ने 'अनित्य' उपन्यास में भी राजनीतिक विचारधाराओं पर कटु व्यंग्य किया है। सरण, मुकर्जी बाबू, शुक्ला जी, अविजित आदि सुविधापरस्त गांधीवादियों की कहानी उपन्यास में अभिव्यक्त की गई है। सरण, मुकर्जी बाबू, शुक्ला जी आदि महाजनी संस्कृति को पूरी तरह समर्पित हैं तथा उनमें कोई द्वंद्व, दुविधा या अपराध बोध नहीं है। इन पात्रों का उद्देश्य अधिकाधिक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करना है। हर संबंध को उपयोगिता के आधार पर ही आँकना है। स्वतंत्रता–पश्चात् ये सभी गांधीवाद की आड़ में अपना उल्लू सीधा करने में लग जाते हैं। सन् 1942 में माफी मांगकर जेल से निकल आने वाला मौकापरस्त मुकर्जी बाबू, जो कि काजल का पति है, आज उद्योगमंत्री बनकर भ्रष्टाचार फैलाता है। काजल व अविजित के वार्तालाप से यह सिद्ध होता है, कि वह एक भ्रष्ट राजीतिज्ञ है– ''तो? मेरे पति न सही, मान्य पुरुष तो अब भी हैं। उद्योगमंत्री मुकर्जी कोई छोटी चीज तो हैं नहीं।''

...................''बस रकम तगड़ी लगेगी। दिक्कत क्या है? तुम लोग 'ए' क्लास के आदमी हो। कंपनी के पास रुपयों की कमी तो होगी नहीं।''[68] इस कथन से स्पष्ट होता है, कि मुकर्जीबाबू एक मौकापरस्त राजनेता है। अविजित को पंडित नेहरू का यह कथन याद आता है, कि – ''कामयाबी तभी हासिल होनी चाहिए जब आदमी उसके काबिल हो वरना कुर्बानी कोई देगा और ऐन मोके पर हुकूमत मौकापरस्त लोगों के हाथों में चली जायेगी।............हुकूमत चाहे अंग्रेज के नाम पर चले चाहे कांग्रेस के या किसी और पार्टी के, हुक्मरान वही रहेंगे........हुकूमत अफ़सर करते हैं, नारे नहीं और अफ़सर का दूसरा नाम है हुकूमत का तजुर्बा.....। समय की मांग थी। लड़े, क्योंकि लड़ना पड़ा...........समझौता किया क्योंकि करना पड़ा...........सजा दी क्योंकि देनी पड़ी। रिश्वत ....देते हैं क्योंकि देनी पड़ती है..........समय की मांग है! अकेली काजल किस–किससे लड़ेगी?''[69] मिस्टर सिंघानिया से बातचित के दौरान अविजित कहता है कि – ''पता नहीं उद्योग मंत्री मुकर्जी बाबू से मुलाकात हुई या नहीं।'' यह काम बहुत तंग कर रहा है। अविजित को फर्टिलाइजर फैक्टरी लगाने के लिए लाइसेंस लेना है। कब से जोड़–तोड़ कर रहे हैं। निचली सीढ़ियाँ तय हो चुकी हैं तथा अब सिंघानिया जी ने खुद मुकर्जी बाबू से अपांइटमेंट लिया है। काम तो हो जाना चाहिए। मंत्रीजी खानदानी सज्जन हैं, उनके यहाँ रकम चलती जरूर है, पर जरा तगड़ी। इसी क्रम में सिंघानिया जी का यह कथन राजनीति में भ्रष्टाचार को इंगित करता है – ''अजीब आदमी है। हाथ ही नहीं रखने देता। मैंने कितनी तरह से भेद लेना चाहा पर वहाँ कोई असर नहीं, ''............''पर मेरी सूचना तो है कि उनके यहाँ रकम चलती है, ''.............मौके का फायदा उठाकर जेल से जल्दी छूट गये और उसी सूझबूझ के सहारे मंत्री बन गये।...............''या तो वाकई उस आदमी के ख़यालात ऊँचे किस्म के हैं या खेल वह गहरा खेलता है।''[70]

गांधी टोपी की आड़ में सरण जैसे उद्योगपति अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। सरण कहता है कि –''अपना काम तो सेवा करना है, भइया, '' सरण कहता गया, ''आजादी मिलने पर जो सीमेंट एजेंसी सरकार ने हमें दी थी, वह भी हमने छोटे भाई को दे डाली। पेट्रोल पंप का लाइसेंस मिला तो लड़का करने लगा, मैं चला लूँगा। मैंने कहा, ठीक है भइया, चला लो, अपने बस का रोग यह है नहीं। हाँ, सरकार ने गांधी संस्थान चलाने के लिए नियुक्त कर दिया तो रास आ गया अपने को। छह बरस हो गये, आनंद ही आनंद है। ...''स्टील का कोटा मिला था। पत्नी ने कहा, बच्चे बड़े हो गये, वक्त काटे नहीं कटता, कहो तो स्टील के बर्तनों की छोटी–सी फैक्टरी लगा लूँ। मैंने कहा, लगा लो देवी, हम तो स्त्री–पुरुष को समकक्ष मानते हैं।''[71] उपर्युक्त कथन से सरण की स्वार्थी मनोवृत्ति परिलक्षित होती है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास में रिचर्ड विदेशी पादरी है। वह भारत की स्थिति का विश्लेषण करता है कि भारत एक पिछड़ा देश है तथा उसके पिछड़ेपन का कारण यही है कि यहाँ की जनता ऐसे मार्ग पर चलती है, जहाँ कोई लक्ष्य नहीं होता है। वह कहता है, –''देखो, मैं छह साल से हिन्दुस्तान आ रहा हूँ। एक बात जो यहाँ सीखी है, वह है, कभी उधर मत जाओ जिधर 'एरो' इंगित करता हो। जाओगे तो वहाँ पहुँच जाओगे जिसके आगे कुछ नहीं होगा।''[72]

मृदुला जी ने 'मिलजुल मन' में भी भ्रष्ट राजनीति की ओर संकेत किया है। मोगरा का यह कथन –''गुल और मैंने काफी बहस के बाद कयास लगाया था कि उनका असल तनाव दो ऐसे खेमों को, एक–दूसरे के सामने ईमानदार और कारसाज़ साबित करना था, जिन्हें वे यकसां बेईमान और कुंदज़ेहन मानते थे।'' ....लटपटाई ज़बान में बोला, 'आप क्या समझते हैं, हम यहाँ बिजनेस करने आए हैं! चुगद हैं आप। हम आए हैं, कम्यूनिज्म से लड़ने। उसे आपके यहाँ पाँव पसारने से रोकने। रफ्ता–रफ्ता पूरी दुनिया से नेस्तनाबूद करने।.............माल खरीदो उससे, जो तकनीक में सिफर हो पर रिश्वत देने में अव्वल। हमसे लीजिए हर माल। हम रिश्वत भी देंगे, मदद भी। कम ब्याज दर पर जितना चाहो कर्ज। अदायगी में आपका रद्दी माल निकल जाएगा। हमसे हथियार लेंगे तो लड़ने के बजाय, यू.एन.ओ. के पल्लू में मुँह नहीं छिपाना पड़ेगा। लड़ाई के मैदान की बजाय, गणतंत्र दिवस पर हथियारबंद सिपाहियों से परेड नहीं करवानी पड़ेगी।''[73] उक्त कथन उस वक्त की नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर इंगित करता है।

मृदुला जी ने 'अनित्य' उपन्यास में भी जेल में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है। जेल में भी अपराधियों के प्रति भेदभाव बरता जा रहा था। जेल–जीवन भी राजनीति से मुक्त नहीं है। अनित्य के शब्दों में– ''जेल मे रहकर एक ही बात मेरी समझ में आयी, जो बाहर है वही अंदर। वही ऊँच–नीच, वही तिकड़मबाजी, वही रसूख, वही रिश्वतखोरी, वही पार्टीबंदी! आप ऊँचे वर्ग के हैं, घर पर खानसामा रखकर खाना बनवाते हैं तो जेल में भी खाना पकाने के लिए आपको निचले वर्ग का कैदी मिल जायेगा। आपके पास पैसा है, वार्डनों को सिगरेट–बीड़ी पिला सकते हैं तो वह भी आपसे दोस्ताना ताल्लुकात रखेंगे। वरना चक्की पीसिये, उबले चने चबाइये, मिट्टी मिली रोटी और कंकड़ मिली दाल पर गुजारा कीजिये, बात–बात पर बेंत खाइये....... ।''[74] भ्रष्ट शासन व्यवस्था की ओर ध्यानाकृष्ट करता है।

उपर्युक्त समस्त कथनों के माध्यम से लेखिका ने राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है। अपनी अनुभव–संपन्नता तथा रचना–सामर्थ्य के आधार पर इन्होंने उपन्यास साहित्य में राजीतिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

(च) गांधी नीतियों की आलोचना :

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों की रचना किसी विशिष्ट नेता के जीवन को लेकर नहीं की है, अपितु साधारण लोगों के जीवन को दृष्टिगत रखते हुए की है। अपने परिवेश की घटनाओं को इन्होंने अधिक गहराई से आत्मसात् किया है। इनके 'अनित्य' उपन्यास में स्वतंत्रता–आंदोलन के समय अहिंसात्मक राजीतिक विचारधारा के समक्ष चलने वाले हिंसावादी शक्तियों के संघर्ष को चित्रित किया है, जिनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति ही था। इन क्रांतिकारी शक्तियों को आजादी–पश्चात् आतंककारी कहकर उपेक्षित किया गया तथा अहिंसात्मक राजनीतिज्ञों का अभिषेक हुआ। स्वतंत्रता मिलने पर गांधीजी की दृष्टि सही प्रमाणित नहीं हुई तथा न ही सरदार भगतसिंह को सफलता का श्रेय दिया गया। 'अनित्य' उपन्यास में लेखिका का उद्देश्य गांधीवाद पर प्रहार करने का नहीं, बल्कि गांधीवादी और क्रांतिकारी, दोनों आंदोलनों को पूरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखकर समझने का है। गांधी जी की समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मानस पर दीर्घकालीन रूप से क्या प्रभाव पड़ता है तथा स्वतंत्रता–पश्चात् की अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने में कितनी व क्या भूमिका रही? लेखिका द्वारा इसमें आजादी के संग्राम में लगे हुए क्रांतिकारियों का समर्थन करते हुए गांधीजी की अहिंसा नीति व समझौता नीति की कड़ी आलोचना की गई है। गांधीवाद के साथ ही लेखिका ने नेहरूवाद पर भी प्रकाश डाला है। उपन्यास के आरंभ में जवाहरलाल नेहरू जी के उद्धरण द्वारा हिंसा के पक्ष का समर्थन किया गया है तथा स्वाधीनता आंदोलन में गांधीजी की समझौतावादी नीतियों की भर्त्सना की गई है। उपन्यास के आरंभ में नेहरू जी की 'मेरी कहानी' के दो उद्धरण लेखिका ने दिए हैं, जो इस प्रकार हैं – ''हमारा सारा जीवन ही संघर्षमय है और हिंसायुक्त है.........हिंसा का कभी प्रयोग न करने की कसम खा लेने का अर्थ

होता है सर्वथा नकारात्मक रुख इख्तियार कर लेना जिसका स्वयं जीवन से कतई संपर्क नहीं होता ....''[75]

मृदुला जी ने अपने 'अनित्य' उपन्यास में ही गांधीजी की रीतियों–नीतियों और राजनीतिक विचारधाराओं पर कटु व्यंग्य करते हुए, आजादी के पश्चात् गांधीवादी नीतियों पर चलने वाले कामचोर, लक्ष्यहीन व्यक्तियों के असफल पराजित जीवन पर भी व्यंग्यात्मक प्रकाश डाला है। सरण, मुकर्जी बाबू, शुक्ला जी, अविजित आदि मौकापरस्त, सुविधाभोगी गांधीवादियों के चरित्र को उपन्यास में बखूबी चित्रित किया है। गांधीवादी राह पर चल पड़े. अविजित की जीवनव्यापी असफलता संपूर्ण उपन्यास में अभिव्यंजित हुई है। उसे गांधीवादी महाजनी संस्कृति से प्रभावित एक मौकापरस्त व्यक्ति माना गया है। इस संबंध में लेखिका कहती हैं कि – ''अविजित न तो उस संस्कृति को पूरी तरह समर्पित है और न उससे पूरी तरह भ्रांतिमुक्त। उपयोगिता के आधार पर वह संबंध बनाता है। श्यामा से विवाह करता है, शुक्ला जी को घर में बसा लेता है। पर संबंधहीनता को स्वीकार नहीं कर पाता।''[76] गांधीवादी कांग्रेस का प्रतीक अविजित समझौतावादी भी है। स्वतंत्रता के लिए पूर्णतः समर्पित अविजित आजादी के बाद सुविधापरस्त बन जाता है। गांधी के प्रति निष्ठा और उनके साथ साझेदारी का उसका सपना अधूरा रह जाता है। उसके मन में एक कचोट और दुःख है, कि अगर वह आजादी की लड़ाई में न कूदा होता तो आई.सी.एस. होकर प्रशासक बन गया होता।

'अनित्य' उपन्यास में गांधीजी की अहिंसा नीति तथा समझौता नीति की कड़ी आलोचना की गई है। गांधी जी की नीतियों पर विचार व्यक्त करते हुए मृदुला जी कहती हैं कि – ''गांधी जी अच्छी तरह जानते थे कि ब्रिटिश सरकार चूंकि पूँजीवादी सरकार है, इसलिए समझौते से जब भी वह सत्ता छोड़ेगी, तो उसे किसी पूँजीवादी राजनीतिक दल को ही देगी। क्योंकि वे बलपूर्वक सत्ता लेने को असंभव मानते थे, इसलिए समझौते से सत्ता लेने का विकल्प ही उनके सामने था। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों से सत्ता छीन लेने पर वे पूँजीवाद से भी निपट लेंगे, और यहीं वे मात खा गये। स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे देश से पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं, और भी गहरी हो गयीं।''[77] गांधीवादी सिद्धांतों पर व्यंग्य करते हुए अनित्य कहता है, कि – ''गरीबी झेलना और गरीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीजें हैं। जान–बूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए भी ऐसा करने पर मजबूर होना दूसरी बात है।''[78] काजल बनर्जी भी गांधीजी की समझौतावादी नीति के विरुद्ध कहती है – ''जो स्वतंत्रता लड़कर ली जाए उसका मूल्य और होता है।'' तथा– ''पर उसका अंत समझौते में होता है। शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है, स्वाभिमान का ह्रास और नपुंसकता का उदय। ऐसे लोग हमेशा परिवर्तन से डरते हैं।''[79]

गांधी इर्विन समझौते की भी उपन्यास में कड़ी निंदा की गई है। यह समझौता क्रांतिकारियों के प्रति अन्याय था। इस समझौते में गांधी जी द्वारा न तो भारतीय किसानों की चर्चा की गई थी और न ही भगतसिंह की फाँसी रद्द करने की बात की गई। निखिल बेहद उत्तेजित होकर समझौते के बारे में कहता है – ''क्या इसीलिए हमने साइमन कमीशन का विरोध किया था? इसीलिए पुलिस के डंडे खाये थे? इसीलिए एक साल से हमारे लोग बहादुरी दिखला रहे थे?''[80] तथा इसी क्रम में हरीश का यह कथन कि – ''भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का जिक्र तक करना गांधी जी ने जरूरी नहीं समझा। इतनी बड़ी–बड़ी सिद्धांत की बातें और वक्त आने पर अपना संगठन सब कुछ हो गया। कांग्रेस के सत्याग्रही जेलों से छोड़ दिये जायें, बस सविनय–अवज्ञा–भंग–आंदोलन वापिस ले लिया जायेगा। उन लोगों से कोई सरोकार नहीं है, जो स्वतंत्रता के लिए अपनी जान की बाजी लगा चुके हैं।''[81]

क्रांतिकारियों पर होने वाले अत्याचार और दमन के लिए काजल ब्रिटिश राज के बराबर ही गांधी जी को भी जिम्मेदार सिद्ध करती है। गांधी जी द्वारा अहिंसात्मक व हिंसात्मक कैदी के बीच किए गए भेद की निंदा करते हुए वह कड़े शब्दों में कहती है कि – ''इतिहास महात्मा गांधी को इन दुहरे मूल्यों के लिए कभी माफ नहीं करेगा।'' [82] गांधी जी पर आरोप लगाते हुए

कहा गया है – ''कम–अज–कम सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी रद्द करने को समझौते की आवश्यक शर्त बना सकते थे, ''उपन्यास के पात्र हरीश, चड्ढा, चटर्जी, काजल कहते हैं, कि – ''उन्हें वक्त से पहले फाँसी दी गई ताकि रिश्तेदारों और जनता को खबर न हो।'' [83]

गांधीवादी नायक अविजित में भीतर से गांधीवाद के प्रति अनास्था का चित्रांकन किया गया है। गांधीजी द्वारा चलाए गए स्वाधीनता संग्राम की कटु आलोचना होती है तथा साथ ही उनकी उपलब्धियों को पूर्ण रूप से असफल बताया गया है। गांधी जी द्वारा चलाए गए 1942 के आंदोलन को प्रयोजनहीन बतलाया गया है। काजल बनर्जी का यह कथन गांधी जी के प्रति क्षोभ व असंतोष का भाव प्रकट करता है – ''क्या हुआ था समझौतों के अंतर्गत? बस यह कि अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन के बंदी जेलों से छोड़ दिये गये थे। साथ ही क्रांतिकारी बंदियों पर सरकार का अत्याचार बढ़ता गया था।''

''इस अत्याचार और दमन के लिए जितना जिम्मेवार ब्रिटिश राज है उतने ही गांधीजी।''[84]

मृदुला जी ने अपने 'वंशज' उपन्यास में भी गांधी–नीतियों की उपेक्षा ही अभिव्यक्त की गई है। देश के आजाद होने के पश्चात् ही गांधी जी की हत्या कर दी गई। इसकी प्रतिक्रिया शुक्ला साहब पर इस प्रकार हुई – ''शुक्ला साहब गांधी जी के भक्तों में से नहीं थे। सच कहा जाए तो गांधी जी की नीतियों ने उन्हें कभी प्रभावित नहीं किया था। लंगोटी लगाना, तीसरे दर्जे में सफर करना, सत्याग्रह की दुहाई देकर डंडों की मार सहना, इन सभी में कायरता की बू आती थी। वास्तव में अंग्रेजों से टक्कर लेने का यह भिखमंगा अंदाज उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता था। गांधी जी की आर्थिक योजनाओं से भी यह सहमत नहीं थे। इस प्रगतिशील युग में स्वाधीनता के नाम पर मिलों का बनाया कपड़ा जलाना, उन्हें महज बचकाना मालूम पड़ता था। फिर भी एक बात के वे कायल थे, और जो हो गांधी जी ढोंगी नहीं थे। जो उनकी मान्यताएँ थीं, उन्हें जीवनभर निर्भीक पाबन्दी के साथ निभाते रहे हैं। उनके विचारधुन का इस कदर पक्का होना ही इंसान को महात्मा बना देने के लिए काफी था।'' [85]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में राजीतिक विचार पूरे उपन्यास में दो–तीन स्थानों पर दिखाई देते हैं, जिसमें गांधीवाद व मार्क्सवाद पर प्रकाश डालते हुए देश की उद्योग नीति को भी व्यक्त किया है। इसमें मृदुला जी ने मार्क्स, गांधी व जीसस क्राइस्ट के विचारों की तुलना की है। मनु व रिचर्ड की बातों से यह स्पष्ट होता है, कि वे गांधी जी के बारे में क्या सोचते हैं –

''तुम गांधी जी के भक्त हो?''

''हाँ, गांधी, क्राइस्ट और मार्क्स, तीनों मेरे आदर्श हैं।''.............

''दरअसल धीरे–धीरे अमीरों ने क्राइस्ट का चेहरा खराब कर दिया। असली चेहरे पर नकली मुखौटा लगा दिया – अपने सहयोगी मित्र का। गरीबों को चाहिए नकाब फाड़ डालें और असली चेहरे को उजागर कर दें। गांधी भी यही कहता था। उसका असली चेहरा उन्हीं का सहायक होगा जिन्हें उसने हमदर्दी के साथ 'द डिसइनहैरिटेड ऑफ द अर्थ' पुकारा था। और मार्क्स ने हैव–नॉटस।''...............

''आज पश्चिमी यूरोप उस नियति की मुट्ठी में है। हमें मार्क्स की जरूरत है या क्राइस्ट के रौद्र रूप की। पर हिन्दुस्तान? यहाँ तो अभी आशा बाकी है। क्या तुम गांधी से काम नहीं चला सकते?''[86]

अतः कहा जा सकता है, कि राजनीति के क्षेत्र में भी मृदुला जी गांधीवाद को पसंद नहीं करती हैं। भारतीय कृषकों के लिए वे उसे हितकर नहीं मानती हैं। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष के विवरण में गांधीजी की नीतियों की कड़ी आलोचना की गई है।

(छ) स्वतंत्रता–पश्चात् का मोहभंग :

मृदुला जी ने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है, कि जिस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया था, उसकी प्राप्ति–पश्चात् भारत को कहने के लिए आजादी मिल गई थी, परंतु आजादी के पश्चात् भी वही व्यवस्थाएँ कायम रहीं, जो आजादी के पहले थीं। जनता की स्थिति उनके वितृष्ण, कुंठित और आहत स्वरूप में दिखाई देने लगी। भारतीय जनता अकेलेपन और व्यर्थता बोध की असहय यंत्रणा में फँस गई। अंग्रेजों की गुलामी के कारण भारत की संस्कृति का स्वाभाविक–व्यावहारिक तर्क कुंठित हो गया। अन्याय की प्रक्रिया में उठे क्रोध को अपने में ही दबाने के लिए मजबूर हो गए तथा जहाँ तलवार चलनी चाहिए थी, वहाँ सिर्फ जबान ही चली। देश की निर्णय लेने की शक्ति व विवेक खो गया। देश के नेता ऐसे लोग बने जो क्रांति व विद्रोह से दूर भागते थे। स्वतंत्रता–पश्चात् यहाँ के अवसरवादी राजनीतिज्ञों ने अपने स्वार्थ की ही पूर्ति की है। स्वतंत्रता के नाम पर नेता अपनी मनमानी कर रहे हैं तथा इनके बीच में आज भी भारतीय निरीह जनता पिस रही है।

मृदुला जी के 'अनित्य' उपन्यास में चित्रित किया गया है कि आज आजादी के पचास वर्ष बाद भी स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। आज भी पूँजीवादी और महाजनी सभ्यता व्याप्त है। अंग्रेज तो जा चुके हैं, परंतु उनके पश्चात् सत्ता संभालने वाले नेता भी उन्हीं के नक्शेकदमों पर चल रहे हैं। आज भी समाज में अव्यवस्था नजर आ रही है। चहुँओर व्याप्त रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, मौकापरस्ती, अनैतिकता, मूल्यहीनता, शोषण, आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, भुखमरी दृष्टिगोचर हो रही है व शिक्षा–पद्धिति में भी आशानुरूप परिवर्तन नहीं हुए। जो कांग्रेस स्वतंत्रतापूर्व ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लड़ रही थी, आजादी के बाद उसने बिना किसी बड़े परिवर्तन के सबकुछ ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया तथा फर्क सिर्फ इतना था कि गोरों का स्थान अब कालों ने लिया था। 'अनित्य' उपन्यास की कथा आजादी से मोहभंग की कथा है और यह मोहभंग सर्वप्रथम गांधीजी का हुआ था – ''गांधी जी यह अच्छी तरह जानते थे कि ब्रिटिश सरकार चुंकि पूँजीवादी सरकार है, इसलिए समझौते से जब भी वह सत्ता छोड़ेगी, तो उसे किसी पूँजीवादी राजनीतिक दल को ही देगी। क्योंकि वे बलपूर्वक सत्ता लेने को असंभव मानते थे, इसलिए समझौते से सत्ता लेने का विकल्प ही उनके सामने था। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों से सत्ता छीन लेने पर वे पूँजीवाद से भी निबट लेंगे, और यहीं वे मात खा गये। स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे देश में पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं, और भी गहरी हो गयीं।'' ''आज पश्चिमी यूरोप उस नियति की मुट्ठी में है। हमें मार्क्स की जरूरत है या क्राइस्ट के रौद्र रूप की। पर हिन्दुस्तान? यहाँ तो अभी आशा बाकी है। क्या तुम गांधी से काम नहीं चला सकते?''[87] 'अनित्य' उपन्यास में मृदुला जी यह अध्ययन करना चाहती थी कि – ''समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मानस पर दीर्घकालीन रूप से क्या प्रभाव पड़ता है और स्वतंत्रता आने के बाद की हमारे यहाँ की अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने मे उनकी कितनी और क्या भूमिका रही है।'' [88]

'अनित्य' उपन्यास के माध्यम से मृदुला जी अभिव्यक्त करना चाहती हैं, कि शासक और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को अपनी सत्ता और अनुचित विशेषाधिकारों को छोड़ देने के लिए रजामंद करने की अब तक की गई सारी कोशिशें नाकामयाब ही हुई हैं और यह भी नहीं कहा जा सकता है, कि वे भविष्य में कामयाब हो जायेंगी, क्योंकि महाजनी संस्कृति से प्रभावित पूँजीवादी, उद्योगपति व राजनेता का उद्देश्य होता है – अधिकाधिक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करना तथा प्रत्येक संबंध को उपयोगिता के आधार पर आँकना। ऐसे पात्र सरण, मुकर्जी बाबू, शुक्ला जी के रूप में उपन्यास में चित्रित किए गए हैं। ऐसे पात्र स्वतंत्रता के बाद गांधीवाद की आड़ में अपना उल्लू सीधा करने में जुट जाते हैं। उपन्यास के पात्र अविजित को गांधीवादी, महाजनी संस्कृति से प्रभावित मौकापरस्त माना है, परंतु लेखिका का मानना है कि वह न तो उस संस्कृति को पूरी तरह समर्पित है और न ही पूरी तरह उससे मुक्त ही हो पाता है। उपन्यास का पात्र 'अनित्य' एक ऐसा पात्र है जिसका महानजी संस्कृति से पूर्णतः मोहभंग

हो चुका है। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से परे है तथा अविजित के समझौतेवादी, मध्यमार्गीपन को बेनकाब करता रहता है।

'अनित्य' उपन्यास में लेखिका ने स्वतंत्रता–प्राप्ति से पूर्व व स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को एक कथा के रूप में पिरोकर मार्मिक, कलात्मक और प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त किया है। इसमें आजादी की लड़ाई की न्यूनताओं तथा गांधी और भगतसिंह के मौलिक दृष्टि–भेद का भी विश्लेषण किया गया है। इसके माध्यम से मूल्य–ह्रास की स्थिति व पचास सालों के पतनोन्मुख समाज की जाँच–पड़ताल की गई है तथा स्वाधीनता संग्राम के अनुतरित सवालों को जाँचने–परखने का कार्य किया गया है। आजादी की लड़ाई में नेहरू व गांधी की जो भूमिका रही है, उस पर भी प्रकाश डाला गया है। 'हिप्पोक्रेसी' जो इन नेताओं का मूल गुण था, इस देश को निरंतर पतन की ओर ले जाता रहा है। आजादी के बाद भी बदला–सुधरा कुछ नहीं है, बल्कि जो हालात तब थे, वही और भी अधिक पुख्ता हुए हैं।

मृदुला जी कहती हैं, कि – ''यह एक कड़वा सच है कि हमारा समाज एक इलीटिस्ट (विशिष्टवर्गीय) समाज है। विशेष दुख की बात इसमें यह रही है कि जब स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी जा रही थी, तब भी इलीट (विशिष्ट वर्ग) और आम जनता के बीच का फर्क इसी तरह मौजूद था। विशिष्ट वर्ग के अनेक सदस्यों ने इस लड़ाई में हिस्सा लिया, पर जेल के अंदर चाहे बाहर, उनके और आम जनता के सत्याग्रहियों या क्रांतिकारियों के बीच का फर्क बराबर बना रहा। यह इसी इलीट की कोशिशों का नतीजा था कि आजादी जब मिली, तो सत्ता इलीट के हाथों में आयी, जनता केवल बक्से में वोट डालने का काम करती रही।

सिर्फ इतना ही नहीं कि इलीट को यहाँ सब सुविधाएँ प्राप्त हैं और आम जनता को एक भी सुविधा उपलब्ध नहीं है, इससे कहीं भयानक बात यह है कि हमारी हर नीति, चाहे वह शिक्षा के क्षेत्र में हो चाहे उद्योग के, इस विभाजन को कायम रखने के लिए काम करती है। यानी यह विभाजन स्थायी है और उसके भीतर वे तत्त्व मौजूद हैं, जो उसे चिरस्थायी बनाये रखते हैं।''[89] आज भी ऐसी संस्कृति पनप रही है, जो आजादी से पूर्व देखे गए स्वतंत्र भारत के सपने को चकनाचूर करती है। वह कहती हैं, कि – ''यह उपभोक्ता संस्कृति एक खास किस्म की महाजनी सभ्यता को जन्म देती है, जहाँ हर व्यक्ति का ध्येय होता है – अधिक–से–अधिक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करना। इस महाजनी सभ्यता का बाहरी रूप बहुत आकर्षक होता है – सभ्य, शिष्ट और संभ्रांत। पर वास्तव में यहाँ व्यक्ति अपना व्यक्तित्व पूरी तरह खो देता है। हर संबंध को वह उसकी उपयोगिता के आधार पर आंकता है और एक प्रकार की संबंधहीनता में जीने पर मजबूर रहता है।''[90]

अपने उपन्यास 'मिलजुल मन' की भूमिका में भी लेखिका आजादी के पश्चात् के मोहभंग का उल्लेख करते हुए कहती हैं, कि –''सदी भर पहले देखा, आजादी का सपना पूरा हुआ था। पर आजादी का जो सुंदर, सजीला, अहिंसक चेहरा हमने खयालों में तैयार किया था, मुल्क के तक्सीम होने के साथ, सपने की तरह तिड़क कर बिखर गया। सपने के टूटने पर, हमने असलियत में जीना कबूल नहीं किया, नया सपना पाल लिया। दुविधा में आ मिला, मासूमियत भरा यक़ीन कि हम गुटनिरपेक्ष और मिली–जुली अर्थ व्यवस्था का ऐसा संसार बसाएंगे कि दुनिया हमारा लोहा मानेगी। हम विश्व गुरु कहलाएंगे।

पहला सपना सौ बरस तक देखा गया था और टूटने में एक पल नहीं लगा था। आजादी के बाद मासूमियत और दुविधा के घालमेल से बना सपना, कुल दस–बीस बरस देखा गया और देखने के दौरान टूटकर बिखर लिया।''[91]

मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'वंशज' में भी स्वतंत्रता–पश्चात् के मोहभंग को अभिव्यक्ति दी है। सुधीर जब छोटा था तब देश परतंत्र था। वह देश में अंग्रेज सरकार के अत्याचार और उनकी सेवा में लगे भारतीयों को देखता था। उनकी सेवा में लगे भारतीय आजादी के खिलाफ खड़े थे, लेकिन सुधीर को इस बात का दुःख था, कि आजादी तो प्राप्त हो गई, लेकिन वह

केवल कहने मात्र के लिए प्राप्त हुई थी, क्योंकि आजादी–पश्चात् भी भारत में वही सब कुछ होता रहा, जो अंग्रेजी शासनकाल में होता रहा था। कहने को हिन्दुस्तान आजाद हो गया था, पर बेइंसाफी के काले चोगों में लिपटे आजादी के पुराने दुश्मन अब भी इंसाफ के सरपरस्त बने अदालती कुर्सियों पर विराजमान हैं। बेइंसाफी के कानून को लाठियों और बंदूकों से लागू करने वाले वहशी हुक्मरान अब नई हुकुमत के पहरेदार बने ऊँचे औहदों पर सजे हुए हैं। कानपुर क्लब के दरवाजों से 'इण्डियंस एंड डॉग्स नॉट एलाउड' का बोर्ड अब उखड़ अवश्य गया है, परंतु उनके भीतर वही हिन्दुस्तानी जा रहे हैं, जिन्होंने बोर्ड लगाने में अंग्रेजों की मदद की थी। पहले की तरह ये काले साहब बग्घियों में बैठकर शान से जज साहब की कोठी पर जाते हैं और खानसामा के हाथ की बनी माँस–मछली का मजा लूटते हैं। मृदुला जी ने उपन्यास में चित्रत किया है कि आजादी की लड़ाई के समय सुधीर की उम्र कुल नौ–दस वर्ष की थी। उस समय सड़क पर निकलने वाले जुलूस और उस पर बरसने वाली हर लाठी, आजादी की पुकार मचाता स्वतंत्रता सेनानी, पुलिस की गोली से आहत हर हिन्दुस्तानी, जेल में ठूंसे जा रहे क्रांतिकारी तथा उन्हें दंड सुनाता न्यायाधीश आदि सभी घटनाओं का प्रभाव उसके मन पर पड़ा। उसके मन में अपने पिता जज शुक्ला साहब की प्रतिद्‌वंद्‌वी व विरोधी छवि अंकित हो गई। जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ तो सुधीर सोचता रहा कि इसमें जज साहब की बहुत बड़ी हार हुई है, परंतु यह भ्रम अधिक देर नहीं टिक पाया और उसने देखा कि जीवन–धारा में बिल्कुल भी परिवर्तन नहीं आया है। वह वैसे ही बेरोकटोक उसी लीक पर चली जा रही है। पूँजीवाद के बढ़ते वर्चस्व के कारण राजनीतिक दल भी अपना स्वार्थ सिद्‌ध करने में लगे हुए हैं तथा जनता की अपेक्षाएँ पूर्ण नहीं होती हैं। मोगरा का यह कथन – ''हर मुल्क से कंपनियाँ चली आ रही हैं सरकारी कारोबार में हिस्सेदारी करने; सरकार से करार करने। सरकार सोचती है सब कुछ वह चला रही है; जानती नहीं है कि सब मिलकर उसे चला रहें हैं।''[92] वर्तमान समाज में बड़ी–बड़ी कंपनियाँ भारत में आ रही हैं तथा सरकार पूँजीपतियों के हाथों की कठपुतली बनती जा रही हैं। अफसरशाही व नौकरशाही की पोल खोलते हुए लेखिका कहती हैं – ''हमें ऐसी नायाब आजादी मिलेगी कि सरकारी अफसर का कोई नुकसान नहीं होगा। भले ही वह जलियांवाला बाग में गोली दागने का माद्‌दा क्यों न रखता हो।''[93] उच्च पदों पर आसीन सरकारी अफसरों को सरकार आजादी–पूर्व भी संरक्षण प्रदान करती थी और आजादी–पश्चात् भी कर रही है। मृदुला जी ने स्वतंत्रता–पश्चात् भी भारत मे व्याप्त अंग्रेजी मानसिकता व जनता के शोषण को अभिव्यक्त किया है। लेखिका का यह कथन – ''कहने को हिंदुस्तान आजाद हो गया है पर बेइंसाफी के काले चोगों में लिपटे, आजादी के पुराने दुश्मन, अब भी इंसाफ के सरपरस्त बने अदालती कुर्सियों पर विराजमान हैं। बेइंसाफी के कानून को लाठियों और बंदूकों से लागू करनेवाले वहशी हुकमरान अब नयी हुकूमत के पहरेदार बने, ऊँचे ओहदों पर सजे हैं।''[94] ऐसी शासन व्यवस्था के कारण ही आज समाज में आर्थिक असमानता व भ्रष्टाचार की समस्या बढ़ रही है, जिसके कारण अमीरी–गरीबी के बीच की खाई और अधिक गहरी होती जा रही है।

(ज) योजनाओं की असफलता :

सरकार द्‌वारा जब यह देखे बिना योजनाएँ लागू कर दी जाती हैं, कि वे समाज के लिए कितनी उपयोगी हैं, तब वे सफल नहीं हो पाती हैं। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में सरकारी योजनाओं की हास्यास्पदता व असफलता की ओर संकेत किया है। सही तरह से लागू न होने के कारण उनके विरोध में हड़ताल आदि की जाती हैं, जो देश को सबसे अधिक प्रभावित करती हैं। प्रत्येक छोटी–छोटी बात पर हड़ताल कर दी जाती है, जिसके कारण कामकाज ठप्प हो जाता है तथा आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती है, जिसका प्रभाव जनता पर पड़ता है। हड़ताल के दौरान उपद्रवी लोग दंगे–फसाद करते हैं, जो समाज के लिए हानिकारक होते हैं। देश में फैक्टरियों में की जाने वाली हड़तालों के कारण देश की योजनाएँ प्रभावित होती हैं तथा कार्यकर्त्ताओं को असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास का जितेन कहता है, कि – ''बगलूर से ट्रंक कॉल थी। फैक्टरी में हड़ताल हो गयी है। मुझे फौरन जाना है।'' ....''मुझे अफसोस है, '' उसने कहा, ''एकदम से यह हो गया। तुम

तो जानती ही हो, ऐसे मौकों पर तनिक–सी देरी या छोटा–सा गलत कदम भी कितना नुकसानदेह साबित हो सकता है।''[92] एक जगह किसी भी कार्य के लिए प्रतिवाद को लेकर जो हड़ताल की जाती है उनको लेकर मनीषा और मधुकर के बीच बहस होती है। मनीषा, मधुकर से कहती है, कि –

''प्रतिवाद क्या हड़ताल द्वारा ही हो सकता है?''

''नहीं, पर मौजूदा हालात में, युवा छात्र युनिवर्सिटी के 'आइवरी टावर' में बन्द रहकर प्रतिवाद नहीं कर सकते। किताबें रटने और लैक्चर घोटने से वह जीवन का मुकाबला नहीं कर सकते।.. ....''होना ही चाहिए। आखिर कब तक मजदूर अपना शोषण करवाते रहेंगे?''..............पर हमारी लड़ाई सम्पूर्ण व्यवस्था से है। इसका असर होकर रहेगा।''[93]

मधुकर को वर्तमान शिक्षा नीति से भी चिढ़ है। उसका कहना है, कि नई शिक्षा नीति व्यावहारिक जीवन के लिए पूर्णरूप से असफल सिद्ध हुई है। छात्रों को बीस वर्ष पहले जो पढ़ाते आये हैं, वही चीज आज भी बिना किसी परिवर्तन के पढ़ाई जा रही है। वह चाहता है, कि बहुत ही पुराना और प्रयोजनहीन कोर्स का बदला जाना आवश्यक है। आज की शिक्षा नीति को गलत बताते हुए वह कहता है – ''सब गैरपागल इन्सान जानते हैं कि कोर्स बदला जाना चाहिए। प्रथम वर्ष के छात्र तक को इसमें शक–शिकायत नहीं है। इसलिए जरूरी है कि हमारे प्रौढ़ बुद्धिजीवी प्रोफेसर इसका प्रतिवाद करें, सो कर रहे हैं। रोज मीटिंगे होती हैं, रोज बहस होती है और रोज इन साले खटरागियों के सारे निर्णय कल पर टाल दिया जाता है। मन होता है, एक–एक को मुर्गा बनाकर कोने में खड़ा कर दूँ......।''[94]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में मार्क्सवाद व गांधीवाद पर प्रकाश डालते हुए देश की उद्योग नीति को भी व्यक्त किया है। सरकार की उद्योग नीति को हास्यास्पद बताते हुए इसका चित्रण अपने इस उपन्यास में किया है। सरकार ने लघु उद्योगों को लगाकर कहा कि गांधीजी के सपनों को साकार कर रहे हैं तथा देश की जनता की सेवा कर रहे हैं। यह कहकर सरकार लघु उद्योग चलाने की सुविधाएँ प्राप्त कराती है, लेकिन इन उद्योगों की आड़ में सामान्य जनता की बजाय पूर्णरूप से पूँजीवादी लोग ही लाभ उठाते हैं। उपन्यास में मनु कहती है कि– ''अच्छा काम है लघु उद्योग चलाना। सामाजिक अपराध बोध से आदमी बचा रहता है। लघु शब्द बड़ा करामाती है। बड़े–उद्योग चलाओगे तो शोषक कहलाओगे, लघु उद्योग चलाओगे तो देशसेवक। लाभ पूरा होगा, ऊपर से सरकार इनाम देगी। मजदूरों की संख्या कम रहेगी, यूनियन वगैरह के चक्कर से बचाव रहेगा। ....अतिरिक्त लाभ को शेयर होल्डर्स के पंजों से बचाने का यही एक तरीका है। दो–चार दावतें देकर अतिशय राशि को निबटा डालो।''[95] इनके अनुसार लघु उद्योग चलाने वाले उद्योगपति मजदूरों से दुगुना काम करवाते हैं तथा युनियन की हड़ताल का डर न होने के कारण मजदूरों का शोषण ही करते हैं।

'मैं और मैं' उपन्यास में सरकारी योजनाओं की असफलता की ओर संकेत किया गया है। सरकार यह देखे बिना अपनी योजनाएँ लागू करती है, कि वे समाज के लिए कितनी कारगार हैं। सरकार की इसी नीति पर व्यंग्य करता हुआ कौशल कहता है– ''हमारी सरकार बेचारी है बहुत रहमदिल। अस्पताल न खोल पाती तो न सही, पार्क तो बना देती है। असली समाजवाद वहीं देखने को मिलता है। बड़े आदमियों के कुत्ते और छोटे आदमियों के बच्चे मिलकर पेशाब करते हैं, कोई मनाही नहीं है।''[96]

मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'अनित्य' तथा 'वंशज' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, कि अंग्रेजी शासनकाल में बनाई गई योजनाएँ ही भारत में स्वतंत्रता–पश्चात् भी लागू रही। ये योजनाएँ ऐसी थी कि सरकार को इनसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो सके तथा अंग्रेजों को भारत छोड़ने के बाद भी उनका लाभ मिल सके। इसीलिए उन्होंने फूट डालों की नीति के अतिरिक्त शिक्षा, सैन्य और आर्थिक नीति को भी कपटपूर्ण तरीके से लागू करवाया।

(झ) स्वातंत्र्य–संघर्ष के विविध पक्ष :

मृदुला गर्ग ने स्त्री–लेखन के परंपरागत विषयों के अतिरिक्त राजनीति, इतिहास आदि को भी अपने कथ्य के विषय–रूप में चयन किया है। साहित्यकार साहित्य लेखन का कार्य सत्ता, सामाजिक व्यवस्था, स्वीकृत मूल्यों और संस्कृति के असंतोष और उससे उत्पन्न प्रश्नों के जवाब के लिए ही करता है। साहित्य तथा उसके विविध रूप कहानी, उपन्यास आदि समाज व राजनीति की उथल–पुथल से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं। देशप्रेमी क्रांतिकारीयों के मुद्दतों के संघर्ष व बलिदान से ही देश स्वतंत्र हुआ। बहुत से संघर्षों के पश्चात् भारत ने आजादी तो प्राप्त की, किंतु वह आजादी बहुत महंगी सिद्ध हुई। देश दो टुकड़ों में बँट गया, जिसका देश, समाज व व्यक्ति पर गहरा असर पड़ा। मृदुला जी ने स्वतंत्रता की लड़ाई को बहुत ही नजदीक से देखा और सुना था। स्वतंत्रता मिलने के समय उनकी उम्र नौ वर्ष की थी तथा घर में इस सबके बारे में रात–दिन चर्चा चलती रहती थी। निजी अनुभव न होते हुए भी स्वातंत्र्य–संघर्ष के विविध पक्ष इनकी मानसिकता के अंग बन गए। 1947 की स्वतंत्रता की लडाई के संबंध में वे स्वयं कहती हैं – ''भगतसिंह की शहादत का अर्थ सिर्फ बहादुरी से देश के लिए कुर्बान हो जाना नहीं था। उनके पास बाकायदा एक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रोग्राम था, जिसका उद्देश्य समाज के मौजूदा ढाँचे को बदलकर समाजवाद लाना था। गांधी जी से उनका विरोध भी इसी तथ्य को लेकर था।''[97] मृदुला जी कहती हैं कि स्वराज्य के साथ स्वतंत्र अधिकार और स्वायत संप्रभुता की चेतना भी जुड़ी हुई है। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का अपना अन्तर्विरोध यह था, कि हिंसक क्रांतिकारी और अहिंसक आंदोलनकारी एक साथ शामिल थे। इससे हिंसा और अहिंसा तथा क्रांति और शांति जैसी विरोधी धारणाओं पर व्यापक चिंतन की भूमिका बनी। इन्होंने अपने 'अनित्य' उपन्यास में स्वतंत्र अधिकार चेतना के संदर्भ में शांति अथवा क्रांति के औचित्य की चर्चा करते हुए रक्त संघर्ष के पक्ष में जो दलील दी है, उसका आधार यूरोप के स्वतंत्र देशों के इतिहास और राजनीतिक चिंतन में निहित है। उनके अनुसार –''स्वतंत्र नीति–निर्धारण का अधिकार क्या यूरोप के देशों का पुश्तैनी हक है? आजादी उनकी बपौती है? जब तक उनकी अपनी आजादी पर आँच नहीं आती वे शांति की देवी का आह्वान करते रहते हैं............जंग के मैदान में मर–मिटना धर्म हो जाता है; शांति की पुकार गांधी जैसे पागलों का प्रलाप।''[98] इसमें लेखिका कहना चाहती हैं कि स्वयं की जान बचाने के लिए कमजोर को आगे धकेल दिया जाता है तथा औरों की कीमत पर शांति स्थापित करना ही गांधी जी जैसे लोग चाहते हैं।

मृदुला जी का 'अनित्य' दो भिन्न विचाराधाराओं की तह में जाकर आजादी के स्वरूप तथा उसके प्रभावों को अभिव्यक्त करता है। स्वतंत्रता आंदोलन के दो महत्त्वपूर्ण रूप–अहिंसात्मक आंदोलन व क्रांतिकारी संघर्ष का विश्लेषण करता है। इसमें गांधीजी की अहिंसा नीति व भगतसिंह के क्रांतिकारी मार्ग पर प्रकाश डाला है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय 'साइमन कमिशन' का विरोध, भगतसिंह द्वारा असेंबली में बम फेंका जाना, गांधी–इरविन समझौता, सविनय अवज्ञा आंदोलन का स्थगन, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु को फाँसी की सजा सुनाना, चन्द्रशेखर आजाद की शहादत, यतींद्रनाथ की जेल में मृत्यु, अंग्रेजी हुकुमत के जुल्म, क्रांतिकारियों की जेल–यातना, सांप्रदायिक दंगे, भारत छोड़ो आंदोलन आदि घटनाओं पर प्रकाश डाला है। काजल बनर्जी व चड्ढ़ा जैसे पात्रों के माध्यम से स्वातंत्र्य–संघर्ष का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। क्रांतिकारी चड्ढा स्वतंत्रता प्राप्ति के जिस मार्ग को चुनता है, मृत्युपर्यन्त उसी पर चलते हुए अपनी सत्यनिष्ठा बनाये रखता है।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान किए गए संघर्ष को जहाँ मृदुला जी के उपन्यासों में चित्रित किया गया है, वहीं आजादी के मोहभंग, नेताओं की स्वार्थपरता एवं गांधी जी की समझौतावादी नीति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। मृदुला जी ने अपने 'वंशज' उपन्यास में स्वातंत्र्य–संघर्ष की कुछ घटनाओं को चित्रित किया है। सुधीर का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बन जाना, गांधी जी की हत्या, अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले अमानवीय अत्याचार आदि पर प्रकाश डाला है। जज साहब के बहाने सामंती रंग–ढंग व अंग्रेजी बाह्य आडंबरों पर भी

व्यंग्य किया है। सड़कों पर निकलते जूलुस, आजादी की पुकार मचाते सेनानी, पुलिस की गोलियाँ, क्रांतिकारियों को जेल में ठूंसा जाना आदि पक्षों को उजागर किया गया है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला जी ने बदलते राजनीतिक संदर्भों को यथावसर अपने उपन्यासों में निडरता के साथ उद्घाटित किया है। राजनीतिक विसंगतियों, असफलताओं एवं विचाराहीनताओं पर प्रकाश डालते हुए अपनी प्रतिबद्धता एवं जागरूकता को दर्शाया है। देश की राजनीतिक भ्रष्टता का चित्रण करने के साथ ही विदेशी शासन के प्रति आक्रोश, उनके अत्याचारों और आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह की भावना को अभिव्यक्त किया गया है। भगतसिंह द्वारा प्रवाहित क्रांति की धारा को सतत प्रवाहमान रखने की प्रेरणा दी है। देशभक्त क्रांतिकारियों की क्रांतिकारिता व शोषण के प्रति विद्रोह भाव द्वारा राष्ट्रीय चेतना के स्वर को अभिव्यक्त किया है। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष को सड़कों पर निकलते जुलूस, आजादी की पुकार मचाते सेनानी, अंग्रेजों की गोलियाँ व क्रांतिकारियों की जेल–यातनाओं का सजीव चित्रण किया है।

राजनीति में फैंले भ्रष्टाचार, नेताओं की बेईमानी व खोखलेपन को उजागर किया है। समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मस्तिष्क पर दीर्घकालीन रूप से पड़ने वाले प्रभाव व स्वतंत्रता–पश्चात् की अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने में नीतियों की भूमिका का चित्रण करते हुए देश विभाजन की त्रासदी के शिकार लोगों की स्थिति पर प्रकाश डाला है। सरकारी योजनाओं की हास्यास्पदता और असफलता की ओर संकेत किया है। सही तरह से लागू न होने के कारण इनके विरोध में होने वाली हड़तालो व दंगों के दुष्प्रभावों पर प्रकाश डाला है।

पूँजीवादी–साम्यवादी व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए, उनकी आलोचना की है। शोषितों के प्रति सहानुभूति व शोषकों के प्रति विद्रोह व आक्रोश का भाव अपने औपन्यासिक पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। आजादी के संग्राम में लगे हुए क्रांतिकारियों का समर्थन करते हुए गांधीजी की अहिंसा नीति व समझौता नीति की कड़ी आलोचना की गई है। आजादी के पश्चात् गांधी नीतियों पर चलने वाले कामचोर, लक्ष्यहीन व्यक्तियों के असफल पराजित जीवन पर व्यंग्यात्मक प्रकाश डाला है। स्वतंत्रता–पश्चात् के मोहभंग को उजागर करते हुए लेखिका अवसरवादी राजनीतिज्ञों की स्वार्थपूर्ति व मनमानी को चित्रित किया है। आजादी के पचास वर्षों बाद भी देश में पूँजीवादी व महाजनी सभ्यता व्याप्त है तथा अंग्रेजों के जाने के पश्चात् भी सत्ता संभालने वाले नेता उन्हीं के नक्शेकदमों पर चल रहे हैं। चहुँओर व्याप्त रिश्वतखोरी कालाबाजारी, मौकापरस्ती, अनैतिकता, मूल्यहीनता शोषण, आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, भुखमरी दुष्टिगोचर हो रही है। आजादी के बाद भी बदला कुछ नहीं है, अपितु जो हालात पहले थे, वही और भी पुख्ता हो गए हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 82.
2. वही, पृ. सं. –VII.
3. वही, पृ. सं. –X.
4. वही, पृ. सं. – 78–79.
5. वही, पृ. सं. – 66.
6. वही, पृ. सं. – 69.
7. वही, पृ. सं. – 74.
8. वही, पृ. सं. – 179.
9. वही, पृ. सं. – 201.
10. वही, पृ. सं. – 201–202.
11. वही, पृ. सं. – 202–203.
12. वही, पृ. सं. – 205.
13. वही, पृ. सं. – 51–52.
14. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 160.
15. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 81–82.
16. वही, पृ. सं. – 86.
17. वही, पृ. सं. – 84.
18. वही, पृ. सं. – 94.
19. वही, पृ. सं. – 102.
20. वही, पृ. सं. – 110.
21. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 100.
22. वही, पृ. सं. – 100.
23. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 61.
24. वही, पृ. सं. – 96.
25. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 98–99.
26. वही, पृ. सं. – 144–145.
27. वही, पृ. सं. – 145.
28. वही, पृ. सं. – 146.
29. वही, पृ. सं. – 55–56.
30. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 07.
31. वही, पृ. सं. – 13.
32. वही, पृ. सं. – 21.
33. वही, पृ. सं. – 34–35.
34. वही, पृ. सं. – 41.
35. वही, पृ. सं. – 43.
36. वही, पृ. सं. – 45.
37. वही, पृ. सं. – 45–46.
38. वही, पृ. सं. – 48.
39. वही, पृ. सं. – 78.
40. वही, पृ. सं. – 89.
41. वही, पृ. सं. – 136.
42. वही, पृ. सं. – 154–155.
43. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 71.
44. वही, पृ. सं. – 72.

45. वही, पृ. सं. – 72.
46. वही, पृ. सं. – 73.
47. वही, पृ. सं. – 105.
48. गर्ग, मृदुला. (2009). वंषज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 176.
49. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 37–38.
50. वही, पृ. सं. – 307.
51. वही, पृ. सं. – 311.
52. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. –VIII.
53. वही, पृ. सं. –VIII.
54. वही, पृ. सं. –IX.
55. वही, पृ. सं. –XI.
56. वही, पृ. सं. – 50.
57. वही, पृ. सं. – 50–51.
58. वही, पृ. सं. – 93.
59. वही, पृ. सं. – 168.
60. वही, पृ. सं. – 170–171.
61. वही, पृ. सं. – 171.
62. वही, पृ. सं. – 177.
63. वही, पृ. सं. – .
64. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 20.
65. वही, पृ. सं. – 100.
66. वही, पृ. सं. – 100.
67. वही, पृ. सं. – 49.
68. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. –98.
69. वही, पृ. सं. – 98–99.
70. वही, पृ. सं. – 109.
71. वही, पृ. सं. – 111–112.
72. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 73.
73. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 160.
74. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 91.
75. वही, पृ. सं. – प्रारम्भ से.
76. वही, पृ. सं. –XII.
77. वही, पृ. सं. –IX.
78. वही, पृ. सं. – 91.
79. वही, पृ. सं. – 93.
80. वही, पृ. सं. – 71.
81. वही, पृ. सं. – 71.
82. वही, पृ. सं. – 87.
83. वही, पृ. सं. – 83.
84. वही, पृ. सं. – 87.
85. गर्ग, मृदुला. (2009). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 69.
86. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 70–72.
87. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – IX.
88. वही, पृ. सं. –IX.
89. वही, पृ. सं. –XI.
90. वही, पृ. सं. –XII.
91. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 09–10.

92. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 55–56.
93. वही, पृ. सं. – 146.
94. वही, पृ. सं. – 50.
95. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 105.
96. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 47.
97. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. –VIII.
98. वही, पृ. सं. – 51–52.

–: षष्ठ अध्याय :–

–: मृदुला गर्ग के उपन्यासों का आर्थिक परिप्रेक्ष्य :–

अर्थ समाज का वह अंग होता है, जिसके माध्यम से समाज के व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति का निर्धारण करते हैं। आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर व्यक्ति समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति बन जाता है तथा आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर समाज का निरीह प्राणी माना जाता है। आज का समाज अर्थ पर आधारित समाज है। समाज में व्यवहार, संबंध, रिश्ते आदि आर्थिक ढाँचे पर आधारित होते हैं, अर्थात अर्थ के आधार पर ही निर्धारित होते हैं। आधुनिक सामाजिक जीवन मे अर्थाभाव की स्थिति में जीवन जटिल हो जाता है। मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं– घुटन, छटपटाहट व संघर्ष को विभिन्न वर्गों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। आर्थिक संरक्षण व निर्धन लोगों की विवशता, मालिक का अन्यायपूर्ण व्यवहार, आर्थिक विवशता के कारण स्त्री का शारीरिक व मानसिक शोषण और जीवन–संघर्ष को मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में चित्रित किया है।

वर्तमान अर्थप्रधान युग में जिसके पास धन है, संपत्ति है, वह आर्थिक दृष्टि से सुखी है, परंतु पूँजी या धन के असमान वितरण के कारण आर्थिक विषमता की समस्या उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से मृदुला जी ने आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। आर्थिक विभिन्नता के कारण समाज में अर्थ के आधार पर उत्पन्न वर्ग–विभाजन के कारण समाज तीन वर्गों में विभाजित हो गया है – उच्च वर्ग, मध्य वर्ग व निम्न वर्ग। 'मैं और मैं' उपन्यास में मृदुला जी ने वर्गगत विषमता को चित्रित किया है, जिसमें माधवी, जो कि एक लेखिका है, उच्चमध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व अर्थात पूँजीपति वर्ग या शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, तथा कौशल कुमार जो कि आर्थिक अभावग्रस्त है – निम्नवर्ग अर्थात सर्वहारा या शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास में एक स्त्री लेखक व दूसरा पुरुष लेखक की 'मैं और मैं' में दोनों के अहं की टकराहट को चित्रित किया है। कौशलकुमार उस वर्ग का प्रतीक है, जो मानव भावनाओं का गलत इस्तेमाल करता है। इन दोनों की टकराहट में वर्ग चेतना परिलक्षित होती है।

(क) वर्गभेद का चित्रण :

मानव समाज आदिकाल से ही विविधतायुक्त रहा है। इस विविधता का आधार व स्वरूप देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार अलग–अलग समाज कि लिए अलग–अलग रहता है, लेकिन मानव समाज में विविधताएँ हेमशा ही उपस्थित रहती हैं। आयु, लिंग, व्यवसाय, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, जीविकोपार्जन के साधन आदि क्षेत्रों में विविधताएँ पाई जाती हैं। इन्हीं विविधताओं के आधार पर मनुष्य अपने सामाजिक स्तर को प्राप्त करता है तथा उसके अनुरूप वह अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। सामाजिक स्तर पर व्यक्ति के स्तर का निर्धारण उसकी संपत्ति, रहन–सहन, शिक्षा, आय–स्रोत, वंश–परंपरा, प्रतिभा, व्यक्ति–विशिष्टता के आधार पर होता है। एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक व आर्थिक स्तर वाले व्यक्ति सामूहिक रूप से एक वर्ग विशेष का निर्माण करते हैं। व्यक्तियों का समूह ही वर्ग की बुनियाद होता है। प्राचीन समय में व्यक्ति के वर्ग का निर्धारण उसके जन्म से नहीं अपितु उसके काम के आधार पर होता था, लेकिन बाद में समाज के चालाक लोगों द्वारा वर्ग का निर्धारण जन्म से करते हुए समाज में जाति–पाँति की विद्रूपता को जन्म दे दिया गया। दूसरी तरफ वर्ग–निर्माण में व्यक्ति की तथा वर्ग के भीतर व्यक्तियों की बड़ी भूमिका होती है, क्योंकि व्यक्ति अपनी विशेष प्रवृत्तियों से समूह को आकर्षित करता रहता है।

व्यक्ति समाज की एक इकाई है तथा समाज में उसके स्थान का निर्धारण वर्ग–संकल्पना के नियामक द्वारा निर्धारित होता है। वर्ग की आधारशीला व्यक्तियों का समूह होता है। व्यक्ति समूहों के सामाजिक भेद के आधार पर वर्ग–निर्धारण होता है। यह वर्ग–विभाजन समाज में व्यक्ति की संपत्ति, शिक्षा, रहन–सहन, आय–स्रोत, वंश–परंपरा, प्रतिभा,

व्यक्ति–विशिष्टता आदि के आधार पर होता है। एक वर्ग के अन्तर्गत एक जैसे स्तर के लोग होते हैं, जो एक जैसे व्यवसाय में हों, जिनका शिक्षा का स्तर समान हो, जो आर्थिक दृष्टि से समकक्ष हों तथा जिनका जीवन–निर्वाह का तरीका अर्थात रहन–सहन भी एक जैसा होता है। इनके विचार, भावनाएँ, प्रवृत्तियाँ व व्यवहार समान होते हैं। सामान्यतः व्यक्ति के वर्ग का निर्धारण उसके आर्थिक–सामाजिक आधार पर होता है। समाज में अर्थ का महत्त्व ज्यों–ज्यों बढ़ता गया, त्यों–त्यों व्यक्तिगत संपत्ति की भावना भी बढ़ती गई, जिसके कारण वर्ग–भावना भी बढ़ती गई और आज यह वर्ग–भेद हमारे समक्ष स्पष्ट रूप से व्याप्त है। समाज में वर्गीकरण, विभेदीकरण, मूल्यांकन आदि के आधार पर सामाजिक असमानता ने ही वर्गभेद की अवधारणा को जन्म दिया है।

आर्थिक दृष्टि से समाज में प्रायः तीन वर्ग होते हैं – अत्यधिक धनवान, अत्यधिक गरीब और तीसरा इन दोनों के मध्य की स्थिति वाला मध्यम वर्ग होता है। उत्पादन के बढ़ने से व्यक्तिगत संपत्ति की भावना भी बढ़ी, जिससे समाज में आर्थिक आधार पर श्रेणी भेद भी होने लगा। कार्ल मार्क्स ने भी समाज में मुख्यतः दो वर्ग माने हैं – शोषक व शोषित वर्ग। इन्होंने अपने वर्गीकरण में तीन श्रेणियाँ मानी हैं – प्रथम बुर्जुआ अर्थात शोषक वर्ग, द्वितीय – सर्वहारा वर्ग अर्थात शोषित वर्ग, तृतीय – पेटी बुर्जआ अर्थात दोनों के मध्य का मध्य वर्ग। सामान्यतः संपत्ति व्यवस्था पर नियंत्रण ही यह निर्धारित करता है कि उत्पादन में किस वर्ग की क्या भूमिका होगी। अतः व्यक्ति के वर्ग का निर्धारण उसकी समाज में आर्थिक स्थिति के आधार पर होता है। इस आधार पर समाज में तीन वर्ग पाये जाते हैं – उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग व निम्नवर्ग।

आधुनिक युग में अर्थ का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि व्यक्ति की सोच व्यावसायिक होती जा रही है। आज के समाज में व्यक्ति अपनी आर्थिक हैसियत से तथा बाजारवादी नीतियों के कारण समाज के बहुत बड़े हिस्से को अपनी तरफ आकर्षित करता है। समाज के लोगों का झुकाव जब इस तरह के लोगों की तरफ होता है, उस स्थिति में अर्थ की बड़ी भूमिका होती है। वर्ग का निर्माण कार्य योजना, आर्थिक स्थिति, साँस कृतिक स्थिति आदि के आधार पर होता है। वर्ग के निर्धारण में आज बाजार की बड़ी भूमिका है। भारतीय समाज में दोनों प्रकार के वर्गों को देख सकते हैं। प्रथम वर्ग वह है, जो श्रम के आधार पर होता है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। द्वितीय वर्ग – अर्थ के आधार पर पाये जाते हैं – उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग

उच्च वर्ग के पास आर्थिक समृद्धि सभी वर्गों से अधिक होती है, जिसके कारण सम्पन्नता के साथ वैभवमय जीवन जीता है। इस वर्ग में पूँजीपति, बड़े व्यवसायी, नवधनाढ्य तथा भूमिपति आते हैं। समाज में इस वर्ग का वर्चस्व अन्य वर्गों की तुलना में अधिक होता है। धनाधिक्य के कारण यह वर्ग विलासमय जीवन जीता है तथा इसके अधिकांश सदस्य महत्त्वाकांक्षी, अभिमानी तथा स्वयं केन्द्रित होते हैं। इनमें कृत्रिमता की अधिकता के कारण मानव मूल्य न के बराबर होते हैं।

मध्यम वर्ग की स्थिति उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के बीच की होती है। इस वर्ग की अभिलाषाएँ उच्च वर्ग के समान होने के कारण यह वर्ग हर समय अर्थाभाव झेलता रहता है। इस वर्ग के अंतर्गत विभिन्न आर्थिक स्तरों के लोग सम्मिलित होते हैं। यह वर्ग उच्च व निम्न वर्ग कि तुलना में अधिक व्यापक, संवेदनशील, प्रेरक तथा अपनी विशिष्ट दुर्बलताओं से ग्रस्त होता है। इस वर्ग में आत्मनिर्भरता तथा जीवन–परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद्भुत क्षमता होती है। यह विषम आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से आक्रान्त रहता है। यह वर्ग परिवर्तन के लिए व्याकुल रहता है तथा असंतोष, आक्रोश, विवशता और घुटन में जीता है। मध्यवर्गीय व्यक्ति प्रदर्शनप्रिय, महत्त्वाकांक्षी, आत्मकेंद्रित तथा कल्पनाप्रिय होता है। यह समाज का प्रेरक वर्ग होता है तथा सतत् संघर्ष की ओर प्रवृत्त व समाज में सुधार की कामना इसका परम् उद्देश्य होता है। यह समय के परिवर्तन के साथ–साथ बदलने वाला वर्ग होता है। इस वर्ग के सदस्यों मे छोटे–छोटे

उद्योगपति, धनी व्यापारी, शिक्षित वर्ग, व्यापारिक संस्थानों में उच्च वेतन पाने वाले अधिकारी, किसान, मालिक, अच्छे दुकानदार व होटल वाले आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

निम्न वर्ग की स्थिति समाज में सबसे नीचे होती है। इस वर्ग के लोग अपना संपूर्ण जीवन समाज के उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग की सेवा करते हुए ही बिता देते हैं। यह समाज का उत्पादक वर्ग होता है, जिसमें किसान तथा सर्वहारा लोग आते हैं। शहरी निम्न वर्ग में वे लोग आते हैं, जिनका काम मिलों–कारखानों में होता है। इसके साथ ही दफ्तरों, होटलों व अन्य संस्थानों में सेवारत नौकर–चाकर, कम आय वाले सरकारी कर्मचारी आदि आते हैं। इनमें अधिकांश में अशिक्षा व्याप्त होती है, जिसके कारण शोषण का शिकार होते हैं। ये लोग अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा पुरानी मान्यताओं में जकड़े रहते हैं। इनकी आय जरूरत से कम होती है, जिसके कारण कुपोषण के शिकार होते हैं। यह वर्ग अभावभरी जिंदगी जीता है तथा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही जिंदगीभर जद्दोजहद करता रहता है।

आधुनिक समय में समाज में अर्थ को अधिक महत्त्व दिया गया है, जिसके कारण समाज में अर्थ आधारित वर्गीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। औद्योगीकरण, तकनीकी विकास व शहरीकरण के प्रभावस्वरूप जातिगत बंधन शिथिल हो गए हैं, जिसके कारण व्यक्ति अर्थ के आधार पर अभिजात्य वर्ग का सदस्य बन सकता है। मृदुला जी के उपन्यासों में वर्गभेद व आर्थिक विषमता स्पष्ट दिखाई देती है। आर्थिक असंतुलन से उत्पन्न व्याकुलता इनके उपन्यासों में चित्रित की गई है। इनके उपन्यास 'अनित्य', 'वंशज', 'कठगुलाब', 'चित्तकोबरा', 'मैं और मैं', 'उसके हिस्से की धूप', 'मिलजुल मन' इस बात को रेखांकित करते हैं कि जब तक अवसर की समानता न हो, तब तक किसी प्रकार की आर्थिक समानता तथा वर्गभेद को मिटाने की बात करना व्यर्थ है। हमारे देश में विशिष्ट वर्गीय समाज को प्रारंभ से ही विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे और आज भी प्राप्त हैं।

(ख) वर्गीय चेतना :

मनुष्य की अंतरंग शक्ति का नाम ही चेतना है। चेतना के प्रस्फुटन के साथ ही मनुष्य के जीवन में एक नया दौर शुरू होता है। समाज के साथ गहन संबंध होने के कारण समाज में घटित घटनाएँ मनुष्य की चेतना को प्रभावित करती हैं। चेतना मनुष्य मात्र का एक ऐसा गुण है, जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से अलग करती है तथा उसे क्रियाशील बनाती है। मनुष्य के क्रियाकलाप तथा सामाजिक आचरण के ज्ञानपूर्ण, भावपूर्ण और विवेकशील निर्णय आदि चेतना के परिणामस्वरूप ही लिए जाते हैं। मनुष्य जीवन की तरह ही समाज भी विभिन्न प्रकार के संघर्षों व समस्याओं से गुजरता है। ये संघर्ष और समस्याएँ ही समाज में परिवर्तन की दिशा को निश्चित करते हैं, जो सकारात्मक भी हो सकते हैं और नकारात्मक भी। विश्व में होने वाली विभिन्न प्रकार की क्रांतियों, विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों, असमानताओं के खिलाफ चलने वाले अभियान आदि का आधार एक सशक्त वैचारिक शक्ति है, जो सामाजिक चेतना या वर्ग चेतना को परिलक्षित करती है। नयी–नयी समस्याएँ खड़ी होना भी मानव चेतना का ही एक लक्षण है, क्योंकि चेतना ही समाज में मानवीय भावनाओं को जाग्रत करती है तथा चेतना का विकास मनुष्य, समाज और परिस्थितियों की सापेक्षता में ही संभव है। मनुष्य की चेतन अवस्था ही उसे क्रियाशील बनाती है और उसे विभिन्न परिस्थितियों और घटनाओं के प्रति प्रतिक्रियात्मक बनाती है। अपने अभ्युदय के साथ ही चेतना समाज में परिवर्तन लाने के लिए सक्रिय हो जाती है तथा समाज में नई सोच व नये विचार उत्पन्न होते हैं।

चेतना मानव मन की सहज प्रक्रिया है, जो निरंतर विकसित होती रहती है। इसे विभिन्न पहलुओं में विभाजित किया जा सकता है, जैसे – सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, राजनीतिक चेतना, व्यक्तिवादी चेतना, वर्गीय चेतना आदि। जनसामान्य में अपने निर्दिष्ट उद्देश्य के प्रति जागरूकता अवश्य रहती है, जिसे सामाजिक चेतना के नाम से जाना जाता है। सामजिक चेतना का ही अंश वर्गीय चेतना है, जिसकी उत्पत्ति के मूल में शोषण, संघर्ष, आर्थिक विषमताएँ, ऊँच–नीच की भावनाएँ, छुआछूत आदि विषमताएँ व्याप्त रहती हैं। वर्गीय

चेतना की मूल प्रकृति समष्टिवादी न होकर एक वर्ग विशेष के रूप में दृष्टिगोचर होती है। वर्गीय चेतना वह स्थायी भाव है, जो व्यक्तियों के परस्पर हितों में अधिक असंतुलन और असंगति आने पर समाज में संघर्ष, शोषण, पीड़ा, पक्षधरता और संकीर्ण वर्गीयता का भाव व्याप्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पूरे समाज में अव्यवस्था फैल जाती है तथा विद्रोहस्वरूप वर्ग–संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। वर्गवादी समाज में कामगार से लेकर पूँजीपति तक की सामाजिक चेतना हर स्थिति में अपने वर्ग की चेतना होती है।

समाज के बदलते रूप, उसमें होने वाले वर्ग–संघर्ष, लोगों के जीवन की विषम परिस्थितियाँ आदि साहित्यकार को प्रभावित करते हैं। उसका संवेदनशील मन इन पर चिंतन–मनन करता है। उपन्यास में उसका समय तथा उपन्यासकार का चिंतन प्रतिबिंबित होता है। इसके माध्यम से नष्ट होते हुए पुराने तथा उदित होते हुए नये सामाजिक यथार्थ के पीछे छिपी चेतना से परिचित कराया जाता है। रचनाकार की जीवन दृष्टि जितने स्वस्थ एवं प्रगतिशील सामाजिक मूल्यों पर आधारित होती है, उतनी ही उदात्त और मूल्यवान उसकी रचना होती है। उसकी रचनाओं में वैयक्तिक भावनाओं से अधिक जनता के सामाजिक संबंध प्रतिबिंबित होते हैं। रचनाकार की व्यक्तिगत चेतना भी सामाजिक चेतना से ही प्रभावित होती है, इसलिए उसकी सामाजिक चेतना का कुछ–न–कुछ अंश उसकी कृतियों में भी जाने–अनजाने आ ही जाता है। उसकी व्यक्तिगत चेतना, उसका जीवन–दर्शन, यथार्थ चित्रण की कलात्मकता में उसकी सामाजिक चेतना प्रतिबिंबित होती है। मृदुला गर्ग भी एक सशक्त व सफल उपन्यासकार हैं तथा इन्होंने अपने उपन्यासों में भोगे हुए यथार्थ व आसपास के भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति को अभिव्यक्त किया है। मानव जीवन की सभी स्थितियाँ इनके उपन्यासों में प्रतिबिंबित हुई हैं।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में समकालीन परिवेश और सामाजिक चेतना को उभारने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इनके उपन्यासों की मुख्य धारा सामाजिक–आर्थिक संबंधों और जीवन की बुनियादी सच्चाइयों से संबद्ध है। समाज के संघर्षों, जटिलताओं, आकांक्षाओं, समस्याओं एवं अन्तर्विरोधों का कलात्मक प्रस्तुतीकरण है, जो जीवन में घटित हो रहे हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के स्वरूप को निरूपित करने का प्रयास किया है। मध्यवर्ग तथा उसके यथार्थ का चित्रण भिन्न–भिन्न पड़ावों के अनुपात में चित्रित हुआ है। अपने उपन्यासों में भारत छोड़ों आंदोलन, द्वितीय विश्वयुद्ध, मुल्क की आजादी, देश–विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिक दंगे, गणतंत्र की स्थापना, पूँजीपति वर्ग द्वारा किए जाने वाले शोषण के प्रति आक्रोश, नारी–शोषण व विद्रोह आदि तमाम पहलुओं को महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में चुना है।

मृदुला गर्ग ने प्रबुद्ध स्त्रियों की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और स्वप्नों के साथ–साथ बुर्जुआ व सर्वहारा के बीच के वर्गभेद व चेतना को भी चुना है। संपन्नता व विपन्नता के बीच वर्ग–चेतना को अभिव्यक्त किया है। निम्न वर्ग पर होने वाले क्रूर शोषण व बालश्रम के द्वारा बच्चों पर होने वाले अत्याचार की ओर हमारा ध्यानाकृष्ट करती हैं। भारतीय समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग जैसी वर्गभेद की स्थिति पहले से ही चली आ रही है। सर्वहारा वर्ग हमेशा पूँजीपतियों का शिकार होता आया है, परंतु कभी–कभी सर्वहारा वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर, अपने शोषण की प्रतिक्रियास्वरूप सम्पन्न और बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ विद्रोह कर उठता है। मृदुला जी ने 'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार को सर्वहारा वर्ग के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हुए वर्गगत विषमता के विद्रोहस्वरूप उत्पन्न वर्गगत चेतना को अभिव्यक्त किया है। सर्वहारा के प्रतिनिधि के रूप में कौशल द्वारा उच्चवर्गीय लेखिका माधवी का आर्थिक शोषण चित्रित करके उसकी वर्गचेतना व विद्रोह के भाव को अभिव्यक्त किया है। सर्वहारा वर्ग का उच्च वर्ग पर अधिकार बोध कौशल कुमार द्वारा माधवी के आर्थिक व मानसिक शोषण के माध्यम से चित्रित किया है। समय–समय पर कौशल कुमार की उच्च वर्ग के प्रति घृणा व द्वेष की मानसिकता को उपन्यास में आद्योपान्त अभिव्यक्ति दी गई है।

उच्च वर्ग को अपना दुश्मन मानने वाला कौशल कुमार जानता है कि उसके जैसे लोग चाहे कितने भी विद्रोही भाषण क्यों न दे लें, कुछ भी नहीं बदलेगा, लेकिन प्रयास जारी रखना आवश्यक है। उसका यह कथन – ''वर्ग–चेतना को परिपक्व होने में न जाने कितने दशक लगेंगे। पर तब तक हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठा जा सकता। बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए अपने को तैयार करना पड़ता है। और उसके लिए जरूरी है कि छोटी–छोटी मुठभेड़ों में जीत हासिल करके अपना हौसला बढ़ाते रहें। एक–एक सर्वहारा एक–एक बुर्जुआ को हरा सके, यह भी कोई कम नहीं। और इससे बड़ी हार एक बुर्जुआ के लिए क्या हो सकती है कि उसकी धर्मपत्नी उसी के एहसानों के बोझ तले दबे, उसके कर्जदार से प्रेम करे। और दया करो मुझ पर, श्रीयुत् राकेश चौधरी, तुम्हारी बीवी मेरी मुट्ठी में है।''[1] कौशल के रूप में अब महानगरों में भी सर्वहारा वर्ग की क्रांति चेतना लक्षित हो रही है। इससे स्पष्ट हो रहा है, कि न्याय से वंचित, आर्थिक लाभ से वंचित बहुसंख्यक सर्वहारा वर्ग अब अपने आसपास घटित घटनाओं की वास्तविकताओं को सजग होकर देख रहा है तथा जिस पूँजीपति वर्ग ने उसके श्रम का शोषण किया है, उसी पूँजीपति वर्ग से बदला लेने हेतु अब चतुराई से उसे अपने वाग्जाल में फँसाकर उसका आर्थिक व मानसिक शोषण कर रहा है। अभावग्रस्त कौशल की यह सोच कि – ''सिर्फ बड़ी मछलियाँ ही छोटी मछलियों को नहीं खातीं। कभी–कभी कमजोर और मासूम दीखनेवाली छोटी मछलियाँ भी मिलकर बड़ी मछली को खा जाती हैं। घात लगाकर नहीं। बस अपने होने के वजूद से।''[2] उसकी चेतना व धूर्तता को दर्शाती है। मृदुला जी ने दो लेखकों की 'मैं' अर्थात अहं की टकराहट के माध्यम से संपन्नता व विपन्नता के बीच की टकराहट को, वर्ग चेतना को अभिव्यक्ति दी है। कौशल कुमार जैसा धूर्त, चालाक इंसान समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो किसी सहृदय मनुष्य की मानवीय भावनाओं का अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए गलत इस्तेमाल करते हैं।

(ग) आर्थिक परवशता :

आधुनिक युग अर्थप्रधान युग है। इस वैज्ञानिक युग में अर्थ ही सर्वमान्य तत्त्व बनता जा रहा है, जिससे संपूर्ण विश्व में आज अर्थ–संघर्ष व्याप्त है। अर्थ की विषमता ही समाज में विभिन्न विषमताओं को जन्म देती है। मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में भी आर्थिक आधार पर बंटे हुए निम्न व मध्यम वर्ग की आर्थिक समस्याओं का विशद् निरूपण मिलता है। इनके उपन्यासों में प्रेम, विवाह, पारिवारिक संबंध, सामाजिक संबंध सभी का आधार अर्थ ही दिखाई पड़ता है। इनके उपन्यासों में मानव जीवन का आर्थिक पक्ष भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि सामाजिक, पारिवारिक व वैयक्तिक रूप होता है। पारिवारिक संबंध केवल सामाजिक आधारों को लेकर ही नहीं चलता बल्कि उसके लिए मधुरिमा का आधार मानसिक परिपक्वता के साथ आर्थिक सम्पन्नता भी है। दांपत्य–जीवन में आर्थिक विषमता के कारण मतभेद तथा वाद–विवाद होते हैं, जो मानसिक तनाव, कुंठा, आक्रोश और घुटन को जन्म देते हैं तथा अंत में संबंध–विच्छेद तक हो जाता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों की कथावस्तु का केंद बिन्दु मध्यमवर्गीय समाज की नारी ही है। इन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर नारी– जीवन को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। अपने उपन्यासों में नारी की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियों में आए परिवर्तनों को एक नया आयाम दिया है। इनकी नारी अपने स्वाभिमान और आत्मरक्षा के लिए पुरुष और समाज से निरंतर संघर्षरत है। इनके उपन्यासों की नारी अर्थोपार्जन करते हुए दृष्टिगोचर होती है। यह अर्थोपार्जन कहीं खाली समय को भरने के लिए तो कहीं विवशतावश अर्थावलंबन ढूंढा गया है। मृदुला जी स्वयं कहती हैं, कि – ''शादी के पहले मैंने तीन साल कॉलेज में पढ़ाया था, तो उस कमाई में से जमा किए पैसों से मैंने एक टाइपराइटर खरीद लिया। मुझे याद है मेरे पति को यह खासी फिजूलखर्ची लगी थी। बात वाजिब थी। 32 साल की उम्र में लिखना शुरू करने पर, कोई कैसे जान सकता है कि वह लिखता रहेगा, और टाइपराइटर आया था, पूरे दो हजार रूपये मे।'' मृदुला जी का उक्त कथन एक घरेलू औरत की आत्मनिर्भर होने की संघर्षपूर्ण प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है।

आधुनिक उपन्यास साहित्य में समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता व आर्थिक अभाव से उत्पन्न विषमताओं को चित्रित किया है। मृदुला गर्ग ने भी पूँजीपतियों की भर्त्सना, राजनीतिक मुनाफा, उद्योगपतियों–मंत्रियों की धनसंचय हेतु साँठ–गाँठ, निम्न वर्ग का विद्रोह, मजदूरों की दयनीय स्थिति, वर्ग–संघर्ष का चित्रण करने के साथ–साथ आर्थिक परवशता के कारण पुरुष समाज में आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण की शिकार नारियों की स्थिति को अपने उपन्यास साहित्य मे बखूबी चित्रित किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है, कि धन के अभाव में व्यक्ति कितना विवश होता है और शोषित व प्रताड़ित होता है। अर्थ की महत्ता को दर्शाने के लिए मृदुला जी ने आधुनिक युग में पनप रही अर्थाभावजन्य स्थिति व आर्थिक परवशता को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'अनित्य', 'चित्तकोबरा', 'मैं और मैं', 'कठगुलाब' व 'मिलजुल मन' उपन्यासों में नारी के जीवन में अर्थ की महत्ता को भी दर्शाया गया है। आर्थिक विवशता को मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य के हर कोने में चित्रित किया है। 'कठगुलाब' में स्मिता, नमिता, नर्मदा, गंगा, दर्जन बीबी, गोधड़ गाँव के लोग आदि सभी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण विविध समस्याओं से गुजरते हैं। 'अनित्य' में संगीता, चड्ढा, अनित्य, स्वर्णा की स्थिति, 'मैं और मैं' में कौशल कुमार, माधवी का नौकर व पड़ौस का नौकर, मेहतरानी, फैक्टरी में मरने वाले मजदूर का परिवार, 'वंशज' में धनबाद की कोयला खानों के मजदूर, 'मिलजुल मन' में बैजनाथ व गुल के घर में आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। इनके उपन्यासों में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हुई नारी का चित्रण हुआ है। इन्होंने नारी को अर्थोपार्जन करते हुए दिखाया है, जो कहीं तो वह अपने खालीपन को भरने के लिए कर रही है, तो कहीं विवशतावश अर्थावलंबन ढूंढ रही है। 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा एक लेखिका व कॉलेज में प्राध्यापिका है। उसके जीवन में अर्थ अलग–अलग महत्त्व लेकर आता है। जितेन की पत्नी थी, तब लेखन व कॉलेज में पढ़ाने हेतु जाना उसके लिए शौक थे और यह कार्य वह अपने खालीपन को भरने के लिए करती थी, किंतु जब वह जितेन को तलाक देकर मधुकर से शादी कर लेती है, तो मधुकर की आय कम होने के कारण वह नौकरी करना चाहती है। उसकी कहानियों में भी माँसलता और रुमानियत आने के कारण ज्यादा बिकने लगती हैं। मनीषा का यह कथन अभिव्यक्त करता है कि अब वह आर्थिक अभाव की पूर्ति करने के लिए लेखन कार्य करती है – ''उसकी कहानियों में भी मांसलता आ गयी और रुमानियत। वह बिकने लगीं। उसके रस–भरे क्षणों की कीमत लगने लगी। अब उसने पाया कि उनके बदले में मिला रुपया, उसके कॉलेज वाले वेतन से काफी कम होते हुए भी उसके लिए नगण्य नहीं रह गया है। मधुकर की आय कभी भी अधिक नहीं रही थी, पर पिछले महीनों में कीमतें इतनी तेजी से बढ़ी थीं कि उसे अपना कमाना आवश्यक लगने लगा था। कई दिनों से वह सोच रही थी कि उसे कोई–न–कोई नियमित नौकरी खोज लेनी चाहिए। उसने यह मानने से इनकार कर रखा था कि अवमूल्यन सिर्फ रुपये का नहीं, उसके समय का भी हुआ है। कहानी लिखने से पहले और बाद का समय फिर ऊब से भर चला है। यही नहीं, उसे अपनी कहानियाँ भी बचकानी और पुनरावृत्तिपूर्ण लगने लगी थीं। रूमानी और भावुक कहानियाँ, जो वह पिछले दिनों लिखती रही है, बाजार में भले ही बिक जाती हों, उसे सन्तुष्ट नहीं कर पातीं।''[4] मनीषा का उक्त कथन अभिव्यक्त करता है कि अब उसे जीविका चलाने के लिए अर्थोपार्जन करना पड़ता है।

'अनित्य' उपन्यास की संगीता भी आर्थिक परवशता के कारण इस उपभोक्तावादी संस्कृति की शिकार होती है। उसकी माँ गोहरा बाई एक वेश्या थी और देह बेचकर पेट पालती थी। उसने यह व्यापार स्वेच्छा से अपनाया था, किंतु संगीता अविजित के एहसानों तले दबी थी। अर्थ से उत्पन्न उसकी त्रासदी प्रस्तुत कथन से व्यक्त होती है – ''चंदे से पढ़ी हुई लडकियाँ अपने प्रेमी के नाम के आगे भी 'जी' लगाती हैं और शादी मालदार सेठों के बेटों से करती हैं।''.............''आगे फिर कभी किसी लड़की की पढ़ाई में चंदा दें तो सूक्ति काम आएगी, याद कर लीजिए।'' [5] जब संगीता सुरेश मांडलिया से शादी करती है तो अविजित के पूछने पर कहती है कि मालदार सेठ का बेटा है और वह उससे प्यार नहीं करती है। उसका यह कथन इस बात को अभिव्यक्त करता है –

''मैं कभी सोच भी नहीं सकता था, तुम बिना प्यार किये, सिर्फ पैसों के लिए शादी कर सकती हो।''

संगीता का संकोच उड़ गया।

''क्यों नहीं सोच सकते थे, ''उसने कहा, आप तो मेरी माँ को जानते थे। उन्होंने हमेशा यही सीख दी, किसी मर्द से प्यार की खातिर शादी मत करो। प्यार लो, दो कभी नहीं।''[6]

अविजित संगीता की आगे डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए उसका संरक्षक तो बन जाता है, किंतु बदले में उसका दैहिक शोषण करता है। संगीता इस दैहिक शोषण की स्मृतियों से उबर नहीं पाती है। आर्थिक तंगी के कारण ही संगीता जैसी लड़कियों को अविजित जैसे पुरुषों का शिकार बनना पड़ता है। पिता के होते हुए भी संगीता लावारिस का दुःख तथा बड़े नेता व धनवान की बेटी होकर भी अविजित द्वारा दी जाने वाली चंदे की सहायता से पढ़ने का आर्थिक दबाव झेलती है तथा उसकी कर्जदार बनती है, उसके शोषण का शिकार होती है। 'अनित्य' उपन्यास का ही क्रांतिकारी पात्र चड्ढा, जो स्वतंत्रता संग्राम में क्रांतिकारी के रूप में कार्य करता है। पार्टी के 20,000 रुपये अविजित के पास रखता है तथा उन पर अपना कोई हक नहीं समझता है। अंतिम समय में बीमारी की हालत में भी उसकी दयनीय स्थिति होती है और आर्थिक अभाव को झेलते हुए एक सच्चा और ईमानदार देशभक्त मर जाता है।

'मैं और मैं' उपन्यास के कौशल कुमार के घर की हालत को मृदुला जी ने चित्रित किया है। धन के अभाव के कारण ही कौशल कुमार का व्यवहार पशु–तुल्य हो जाता है। वह जन्म से ही अभावों की जिंदगी जीता है तथा पैसों के लिए तड़पता रहता है व थक–हारकर जानवरों–सा बर्ताव करता है। आर्थिक अभावों के कारण ही कौशल के मन में संपन्न वर्ग के प्रति ईर्ष्या, द्वेष व नफरत का भाव है। माधवी, जो कि उच्च वर्ग की सुविधाभोगी संपन्न लेखिका है, कौशल उसका आर्थिक व मानसिक शोषण करता है। कौशल का यह कथन –''उस बदमाश ने पेशगी दिए रुपयों का खाता खोल लिया और सारे के सारे काट लिये। इस तरह हर आदमी पेशगी दिया रुपया काटता रहा तो उनकी जिन्दगी कैसे चलेगी, कभी सोचा है किसी ने? नहीं, कोई क्यों सोचेगा? उसका है कौन? बीवी? बच्चे? सब साले उसे पैसा कमाने की मशीन समझते हैं। एक ही सवाल है उनके पास – नौकरी क्यों छोड़ी? अरे सालो, हरामजादो, छोड़ी नहीं, छूट गई। दूसरी क्यों नहीं ढूँढ़ी, नहीं ढूँढ़ी बस। नहीं कर सकते हम बँधी–बँधाई नौकरी। जानते नहीं सालो, हमारे पास जीनियस दिमाग है। उच्चतम कोटि का साहित्यकार हूँ, समाज का दायित्व है, मेरा पोषण करे। कौन हैं इस समाज के रक्षक–भक्षक–दाता? यही माधवीजी और उनके पति सरीखे बड़े लोग। लौटाने की जरूरत नहीं है, किस दंभ के साथ कह रही थी। किस बात पर इतना दंभ है, माधवीजी? जरूरत नहीं है, जानता हूँ। रुपया हाथ का मैल है। जी हाँ, यह मैल सिर्फ बड़े आदमियों की हथेलियों पर जमता है। हमें मिल जाए तो हम साबुन की तरह उसका इस्तेमाल करें।''[7] तथा ''बौराई–सी मेरी तरफ देखतीं और कहतीं, डेढ़ बज गया, बच्चे तवज्जह माँगते हैं! और हमारे बच्चे? सिर्फ खाना माँगते हैं। साले, हर वक्त खाना माँगते हैं। हरामजादे.... |'' [8] कौशल कुमार एक अच्छा लेखक है, लेकिन अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण उसको लिखने के लिए अवसर व एकांत भी नहीं मिल पाता है। कौशल का यह कथन उसकी आर्थिक परवशता को अभिव्यक्त करता है – ''और एक वह है, कौशल, जिसके दिलोदिमाग में कागज पर उलट आने के लिए शब्दों के कीड़े हरदम कुलबुलाते रहते हैं, पर उसे उस घड़ी तक सब्र से उबकाइयाँ भरते रहना पड़ता है, जब तक घर के बाकी पाँच प्राणी सो न जाएँ और वह भीड़ के बीच अकेला होकर मेज पर बैठ सके। तब कमर तो सीधी तान लेता है, पर पैर सालों को सिकोड़कर रखना पड़ता है। जरा फैलाए नहीं कि जमीन पर पड़ी मांस की गठरी से टकरा गए। मन करता है...............दूसरों की ठोकरों में पड़ा आदमी क्या लिखेगा और कहाँ छुपाकर रखेगा अपनी निजी संपत्ति? एक अलमारी तक तो है नहीं। जरूरत भी नहीं है। दिन में कपड़े देह पर टँगे रहते हैं, जिस रात धुले, रसोई में रस्सी पर लटक जाते हैं। किताबें हैं तो मेज पर लदी रहती हैं या कमरे के एक कोने में।''[9] वह कहता है कि किसी

धनाढ्य के द्वारा दिए गए रुपये वह छुपाकर भी नहीं रख सकता है, क्योंकि एक तो उसकी आवश्यकता, दूसरी उसकी पत्नी, जो उसकी कोई भी, अपनी या माँगकर लाई हुई किताब तक पैसों के लिए कबाड़ी को बेच देती है –''दर्शन की किसी सेहतमन्द किताब में छुपाकर रख देता तो रुपए उनकी नजरों से बच सकते थे, पर यह भी हो सकता था कि पत्नी वही किताब उठाकर कबाड़ी को बेच डालती। जरूरत पड़ने पर, और जरूरत उनके घर में पड़ती ही रहती है, पत्नी उसकी कोई भी, अपनी या माँगकर लाई हुई, किताब ऐसे ही कबाड़ी को बेच दिया करती है। तभी तो.........नहीं, यह बात गलत है। छिपाकर न रख पाने की मजबूरी की वजह से नहीं, खबर पचा न पाने के कारण, उसने उन लोगों को रुपए दिलवाए थे। मन कर रहा था, घर की छत पर खड़ा होकर जोर–जोर से चिल्लाए, अब समझ आया, हम कितने बड़े लेखक हैं। शहर के धनी–मानी हमारा आदर करते हैं। हजार–दो हजार रुपया तो यूँ ही इसरार करके हाथ में पकड़ा देते हैं कि आपकी किताब छपेगी तो कृतकृत्य हम होंगे। जानते हो, शहर की सबसे खूबसूरत और धनाढ्य महिला ने दो हजार रुपए हमारी नजर किए हैं। छत पर तो खैर चढ़ नहीं सकता था, दूसरी मंजिल पर भी किराएदार रहते हैं, पर बीवी–बच्चों पर खूब रोब झाड़ा था। उसी की कीमत तो.................उस कुत्ते के पिल्ले मकान मालिक को अभी बकाया किराया वसूल करना था। एक साल रुका रहा, और महीना–भर नहीं रुक सकता था !''[10] कौशल की आर्थिक परवशता को अभिव्यक्त करता है।

माधवी के पड़ौस में हुई चोरी का इल्जाम भी पड़ौसी नौकर पर लगा दिया जाता है। बिना सोचे, बिना वजह उस पर लगाए गए इल्जाम के कारण उस नौकर को पुलिस स्टेशन लेकर जाया जाता है तथा वह अपने ऊपर लगे झूठे आरोप के कारण वह खुद को फाँसी लगा लेता है। इसी प्रकार माधवी के घर काम करने वाली मेहतरानी एक दिन की छुट्टी के बाद जब काम पर वापस आती है, तो वह न आने का कारण अपने घर का टूटना बताती है। साथ ही उसका बच्चा भी बीमार है, परंतु आर्थिक अभाव उसे काम पर आने के लिए विवश कर देता है। उपन्यास में आया वक्तव्य यही अभिव्यक्त करता है – ''मेहतरानी ने बगल से मैले–कुचैले कपड़ों में लिपटे बच्चे को उतारा और जमीन पर लिटा दिया। बोली, ''घर तोड़े जा रहे हैं न, इसी से देरी हो गई।'' और झाड़ू उठाकर गुसलखाने की तरफ बढ़ गई।

माधवी को उसका उत्तर बिलकुल असंगत लगा, इसलिए चिढ़कर पूछा, ''कौन–से घर तोड़े जा रहे हैं?

''हमारे घर जी, ''उसने कहा और नल खोलकर जमीन पर पानी उलीचने लगी।

''तुम्हारे घर!'' माधवी ने अविश्वास के साथ दोहराया, ''तुम्हारे घर तोड़े जा रहे हैं?''

''हाँ जी।''

''क्यों?''

....

''क्या मालूम! सरकार तुड़वा रही है, ''कहकर वह नल खोलने लगी तो माधवी ने झट से उसका हाथ ही पकड़ लिया।''

....

''कब तोड़े गए थे तुम्हारे घर?''

''तोड़ रहे होंगे अब, ''उसने कहा, ''मैं चली तभी तो आए थे।''

''तेरा घर टूट रहा है और तू यहाँ आ गई।''

''तो क्या करूँ?''

''तेरा सामान..........?''

''पड़ा रहेगा। जाऊँगी तो उठा लूँगी।''

....

''फिर तू क्या करेगी?''

''मैं क्या करूँगी?''

''कहाँ रहेगी?''

''झुग्गी डालूँगी दोबारा।''

''पर इतनी सख्त गरमी में............कितने बच्चे हैं तेरे?''

''जिन्दा तो यही है एक। बीमार है, इसी से साथ लिवा लाई।''

''क्या बीमारी है?''

''पता नहीं। कहे हैं, फेफड़े खराब हैं।''

''तब तो..........अस्पताल ले जाना होगा।''

''ले गई थी।''

''तो ?''

''कहा, खून लाओ। उत्ते रुपये धरे हैं मेरे पास!''

....

''सुन, '' उसने कहा, ''मैं पैसे देती हूँ, तू अपने बच्चे का इलाज करा ले।''

''ठीक होगा भी?'' उसने सख्त स्वर में पूछा।

''क्यों नहीं होगा। इलाज होगा तो जरूर हो जाएगा।''

उसने सौ का नोट उसकी तरफ बढ़ा दिया। देखकर मेहतरानी ने एकदम सिर हिला दिया। ''इत्ते रुपए! ये तो साल ऊपर जाकर पूरे होंगे। मेरे से नहीं होगा।''

''तनखा से नहीं काटूँगी, ''माधवी ने जल्दी से कहा, ''ऐसे ही दे रही हूँ।''

....

मेहतरानी ने चावल लेकर मैले दुपट्टे के कोने में बाँध लिये और पहले वाले सहज स्वर में पूछा, ''रोटी दोगी?''[11]

आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण ही मेहतरानी विवश होकर काम पर आती है। उसके बच्चे को तपेदिक है और उसका घर तोड़ा जा रहा है, फिर भी वह माधवी के घर पर काम करने के लिए आई है। यह उसकी आर्थिक विवशता को ही चित्रित करता है। आर्थिक अभाव ही उसको काम पर आने के लिए मजबूर करता है।

एक बारह वर्ष के लड़के की मौत कारखाने में एसिड गिरने के कारण हो जाती है और बस्ती के लोग कारखाने के मालिक के खिलाफ आवाज नहीं उठाते हैं, क्योंकि बस्ती के तमाम गरीब आदमियों के बच्चे इन कारखानों में काम करते हैं। वे लोग इसलिए आवाज नहीं उठाते हैं, क्योंकि उन्हें डर है कि आवाज उठाने पर कारखाने बंद न कर दिए जाएँ। कारखाने बंद होने से उनकी रोजीरोटी कैसे चलेगी? उस लड़के की माँ का यह कथन –''लड़के के माँ–बाप तक मुकदमा नहीं चलाना चाहते। मैंने कहा, पैसे मैं दूँगा, हजार, दो हजार, तीन हजार, जितने भी लगेंगे। मैं दूँगा, तुम मुकदमा चलाओ। पर वे नहीं माने। जानती हैं क्यों? कारखाने के मालिक ने उन्हें दो हजार रुपयों का मुआवजा दिया है। उसकी रोती–बिलखती माँ ने मुझसे कहा, ''बाबू, जो पैसा आप देंगे, मुकदमा खा जाएगा। हमारे हाथ क्या आएगा ! अभी पाँच बच्चे और हैं।' मालिक बहुत दयालु है। दूसरे लड़के को कारखाने में लगाने को तैयार है। वाकई बहुत दयालु है? उसके मरने पर भी दो हजार का मुआवजा देगा!''[12] उसकी रोती–बिलखती माँ का यह कथन उसकी आर्थिक परवशता को ही अभिव्यक्त करता है।

'वंशज' उपन्यास में भी मृदुला जी ने चित्रित किया है, कि कोल्यरीज की कंपनी में काम करने वाले मजदूरों को पूरा मेहनताना नहीं दिया जाता है और न ही सेफ्टी लैंप दिए जाते हैं, लेकिन फिर भी वे मजदूर अपने आर्थिक अभावों के कारण वहाँ काम करने के लिए विवश हैं तथा अनवरत काम करते हैं। उनकी विवशता को ठेकेदार भादूड़ी के इस कथन में अभिव्यक्त किया गया है – ''ठेके के मजदूर अगर औजार डाल देंगे तो उन्हीं का नुकसान होगा। कंपनी को एक की जगह दो मजदूर मिल जाएँगे। आप जानते नहीं कोल्यरीज के आसपास नौकरी की तलाश में भूखे–नंगे जवानों का हुजूम मंडराता रहता है, जब चाहो जितने ठेके पर लगा लो। जिन्हें काम मिला हुआ है वे औजार कभी नहीं डालेंगे, आपके कहने पर भी नहीं, वे उतने पागल नहीं है।'' [13] भादूड़ी के उक्त कथन में वहाँ के मजदूर वर्ग की आर्थिक परवशता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

'कठगुलाब' उपन्यास में भी मृदुला जी ने आर्थिक परवशता को चित्रित किया है। एक ओर अर्थ की विपन्नता कौशल कुमार को माधवी जैसी संपन्न लेखिका का शोषण करने के लिए बाध्य करती है, तो दूसरी ओर अर्थ की विपन्नता के कारण स्मिता व नर्मदा जैसी लड़कियों को अपने जीजा के घर में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। 'कठगुलाब' की स्मिता व 'अनित्य' की संगीता दोनों ही नारी पात्र लगभग समान परिस्थितियों से जूझते हुए दिखाई देती हैं। दोनों ही पढ़–लिखकर आत्मनिर्भर बनना चाहती हैं, किंतु दोनों ही आर्थिक विपन्नता से पीड़ित हैं। संगीता की आर्थिक सहायता अविजित करता है, लेकिन संगीता की भावुकता का फायदा उठाकर अपनी बेटी की उम्र की होने पर भी उसका दैहिक शोषण करता है, जबकि स्मिता, अपने जीजा द्वारा बलात्कार का शिकार होती है। आर्थिक तंगी के कारण स्मिता को पल–पल जिल्लत का सामना करना पड़ता है। वह कहती है कि, जब उसका चश्मा टूट जाता है, तो इच्छा–अनिच्छा को ताक पर रख देना पड़ा था, क्योंकि उसका चश्मा इतने हाई पावर का था, कि बिना चश्मे के उसे कुछ स्पष्ट नहीं दिखाई देता था। वह कहती है, कि – ''गाली की तरह उछाले गए जीजा के रुपए उठाने पड़े। कितनी घिन्न आई थी, इन्हें छूने पर। चश्मे के बगैर एक दिन भी काटना अंधे कूएँ में गिरने की तरह था।''[14] पिता के गुजरने के बाद स्मिता को अपनी शादीशुदा बहन नमिता के घर शरण लेनी पड़ती है। नमिता उसकी शादी किसी अच्छे लड़के से कर देना चाहती है। वह कहती है – ''मैं कितने दिन तुझे घर में रखूंगी। मर्दों का कोई भरोसा नहीं होता। तू अपने घर चली जाएगी, तभी मुझे शांति मिलेगी। ''[15] स्मिता शादी न करके अभी आगे पढ़ना चाहती थी, लेकिन अपने जीजा की अश्लील हरकतों से, उसके अनैतिक, अभद्र व्यवहार से तंग आकर वह अपनी एम.एस.सी. की पढ़ाई बड़ौदा के होस्टल में रहकर करना चाहती है। वह बाहर जाकर आगे की पढ़ाई तो करना चाहती है, परंतु पढ़ाई के खर्च की समस्या सामने आती है तथा जीजा से जब पैसे मांगे जाते हैं, तो वह कहता है – ''तुम्हारा बाप कारूँ का खजाना छोड़ गया है न, जो निकालकर एकमुश्त हजार रुपया पकड़ा दूँ। एक तुम्हें पाल रहा हूँ, एक इसे और सिर पर लाद लूँ, डेढ़ बीवी रखवानी थी तो दहेज भी ड्योढा देता तुम्हारा बाप।''[16] स्मिता जब एक दिन अपनी बहन नमिता से जीजा की अश्लील

हरकतों कि शिकायत करती है, तो नमिता द्वारा कौंचा मारने पर स्मिता का चश्मा टूट जाता है, जिस पर नमिता को अफसोस होता है और ममत्व से भरकर अपनी बहन से कहती है – ''कैसी अभागिनें हैं हम दोनों'', ''मेरी जिन्दगी माँ ने चौपट की, तेरी पिताजी ने।''.............''माँ मेरी पढ़ाई चौपट न करतीं तो मैं इन पर इतनी आश्रित न होती। कम–से–कम बी.ए. तो किए होती। थोड़ा–बहुत कुछ कमा सकती थी। अब तो इतने पैसे भी हाथ में नहीं होते कि तेरी फीस जमा करवा दूँ। प्रदीप के शौक की एकाध चीज खदीद लूँ। हर चीज के लिए इनके आगे हाथ फैलाना पड़ता है।''[17] यह कथन नमिता व स्मिता की आर्थिक परवशता की ओर ध्यानाकृष्ट करता है। इसके बाद एक दिन कलकत्ता जाने की झूठी बात कहकर स्मिता का जीजा उसे अपनी हवश का शिकार बनाता है। बाद में स्मिता बड़ौदा की बजाय कानपुर में एम.ए. अर्थशास्त्र में दाखिला लेती है तथा अपने बारे में किसी को कोई खबर नहीं देती है। हर रात बिस्तर पर लेटते ही क्रोध का दावानल उसके भीतर धधक उठता था और इंतकाम का वक्त टलता जरूर गया, लेकिन दिन–पर–दिन और मजबूत होता गया। स्मिता के साथ यह सब होना उसके आर्थिक अभाव के कारण परवशता का ही परिणाम था। आर्थिक परवशता के कारण ही स्मिता की बहन नमिता भी बार–बार अपने पति से प्रताड़ित होती है। एक कायर महिला की तरह वह अपने पति से डरती है तथा अपने पति द्वारा स्मिता के साथ की जाने वाली अश्लील हरकतों का विरोध नहीं कर पाती है। अर्थाभाव के कारण ही अपने पति द्वारा मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार होती रहती है।

स्मिता की तरह ही 'कठगुलाब' की नर्मदा भी आर्थिक अभावों को सहती है। अपनी माँ के मरने के बाद वह अपनी बहन गंगा व जीजा गणपत के साथ ही उनके घर में रहती है। वह अपने भाई को कमर पर टाँगे हुए रहती थी तथा जैसे ही भाई कमर से उतरकर उँगली पकड़कर चलने लगा, तो उसको भी जीजा द्वारा काम पर लगा दिया जाता है। नर्मदा कहती है – ''मुझे याद है तो बस भाई का कमर पर टँगे रहना। कित्ता दुखे थी कमर। बहन कहे थी, भारी नहीं, भाई है। बहन थी मुझसे दसेक साल बड़ी, भाई ऊपर–तले का। उसे जनने के तुरंत बाद मरी होगी माँ पर ....ना, बहन को ब्याह के मरी थी ना, तो भाई को जन कर, दो–चार बरस जरूर जी होगी। पर मुझे याद है तो बस बहन या जीजा। कमर से उतर, भाई उँगली पकड़ने लगा तो उसका हाथ छूट गया। पिघले सीसे में लिपटी लबें आ फँसी उँगलियों में। भाई, बहन के साथ घर–घर घिसटने लगा और मैं चूड़ी बनाने के अड्डे पर बिठला दी गयी। उमर तो याद नहीं। समझो कि भाई पैरों–पैरों चलने लगा था। मैं ठहरी ऊपर–तले की, तो डेढ़–दो बरस बड़ी हूँगी, और क्या।'' [18] नर्मदा को काम करने के बाद भी जीजा की खरी–खोटी सुननी पड़ती थी तथा मार खानी पड़ती थी। जिस उम्र में बच्चे खेलते व पढ़ते हैं, उस उम्र में नर्मदा को काम पर लगा दिया जाता है। वह कहती है –''तभी कमर पर जोर का दुहत्थड़ पड़ा। ''हराम की औलाद। लग काम पे। सोने के पैसे नहीं मिलते, हरामी, कामचोर।'' बस हो गया मेरा बचपन खत्म। वो खेल नहीं, बीबी काम था। किये के पैसे मिले थे। उनसे मेरे और भाई के वास्ते दाल–रोटी बने थी। पूरे ना पड़ते होंगे, तभी जीजा जब–तब सुनाया करे था, ''तेरे हरामी बहन–भाई पर सारी कमाई लुट गयी मेरी।''[19] आर्थिक परवशता के कारण भोगी गई शारीरिक व मानसिक पीड़ा को नर्मदा याद नहीं करना चाहती है। वह कहती है – ''हाँ, नहीं जलता। जल–जल के मुर्दा पड़ चुकी उँगलियों की पोरें। उँगली क्या, हाथ–पाँव, सिर–आँख, सब जला करें थे भट्ठी की झुलस में। हाँ, जहाँ–तहाँ फफोले पड़ा करें थे बदन पे, पिघले सीसे के छींटों से। हाँ दरद से तड़पा करूँ थी मैं, बिलखा करूँ थी, बिलबिलाया करूँ थी। चाय की बची पड़ी गीली पत्ती लगा के छोड़ दें थे फफोले। लगा देवें थे फिर काम पर। सिर धुन के कलपा करूँ थी मैं। हाँ, रोऊँ थी, सिसकूँ थी, तुमसे मतलब। क्यों याद दिलाओ हो वो दिन? मैं याद ना करना चाहती।''[20] चूड़ी–कारखाने में काम की अधिकता व खाने को सही भोजन न मिलने के कारण नर्मदा को बुखार आने लगता है, जिसके कारण गंगा की भी पिटाई की जाती है और भला–बुरा कहा जाता है। नर्मदा कहती है कि – ''ताप का कोई भरोसा नहीं था, कब चढ़ जाए। चढ़ता तो इतना जबरदस्त कि जीजा की गाली और बहन का काढ़ा भी उसे चूड़ी कारखाने से नागा करने से रोक नहीं पाते। खींचतान करके खड़ी होती तो पटाक–देनी से

जमीन पर गिरकर बेहोश हो जाती। जीजा सिर पीटकर रह जाता। ज्यादा गुस्सा आता तो गंगा को पीट डालता। पर उसकी असली धुनाई, उसने भाई के स्कूल में फेल होने पर ही करनी शुरू की थी। ....

भोला को पिटते देख, पहले नर्मदा आगे बढ़ी थी, पर जीजा के दो हाथ खाते ही बेहोश होकर गिर पड़ी थी। इसलिए बहन की पिटाई और चोटों का पता उसे, उसके कराहने–कोसने से ही चला था।

....

फुँफकारता हुआ जीजा उस पाप को ले जाकर, सीधा, चूड़ी कारखाने में बिठला आया था।''[21] जब नर्मदा कमजोर हो जाती है, तो ठाकुर उसे काम से निकाल देता है, वह कहता है कि अब वह उनके यहाँ काम करने लायक नहीं रही है, तब भी जीजा द्वारा मारपीट की जाती है। वह कहती है –''जीजा के कान–कून तो खैर उमेठे, बहन से कहा भी, ''हरामजादी को इत्ता तेज–तेज दौड़ने की क्या जरूरत थी। अकल से काम लो तो कम काम करके भी रंग जम सके है। पर इस बदजात को तो घनी फुर्ती दिखलानी थी ना। ऊपर से जिस–तिस से जुबान चलाकर ठाकुर को नाराज कर दिया। अब ले, चाट अपनी माँ जाई की सूखी चमड़ी।'' ....

पर पिट–पिटा लेने पर, जब गंगा ने उसे समझाया कि नर्मदा अब उस उमर पर पहुँच चुकी थी, जहाँ चूड़ी कारखाने के मुकाबले, उसके साथ कोठियों का काम करवा कर, वह ज्यादा कमा सकती थी, तो बात उसके भेजे में बैठ गयी थी। सो नर्मदा पार्ट टैम वाली बाई की हैलपर बन गयी थी।''[22] बचपन से बेचारी नर्मदा जीजा की मार व गालियाँ सहती रही। वह उसके भाई भोला व उसकी पिटाई करता था और बेचारी नर्मदा विवश, लाचार होकर जीजा का अन्याय सहती रही। जवान होने पर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी उसके जीजा से ही करवा दी जाती है तथा वह चाहकर भी इस अनमेल विवाह का विरोध नहीं कर पाती है और विवश होकर अपने अधपगले भाई के लिए सबकुछ सहती है। उसका विवाह किस प्रकार जबरदस्ती उसके जीजा से करवा दिया जाता है, उसका वर्णन वह इस प्रकार करती है –''अलस्सुबह बहन जगा के बोली, ''जल्दी से नहा–धो के तैयार हो ले।'' कैसी तो रतनार लाल साड़ी पकड़ा दी मुझे। ठीक चूड़ियों के रंग की। वैसा ही ब्लाउज। अरे वाह!

....

मैं ऐसी मगन हुई कि चाय तक की तलब ना उठी। खाली पेट, उछाह से भरी, रगड़–रगड़ के नहायी और साड़ी मटक ली। सब कुछ पहले तय करके रखा है इस बार, पसन्द आ गया लगे लड़का जीजा को। कहा था ना बहन ने। हाय दैया, मुझे तो नेक सरम ना आयी, बस बल्लियों उछलता रहा हिया। बालों की चोटी गूँथी तो मन गजरा लगाने को कर आया। जैसे फिलमों में होवे है। देखा करूँ थी ना, असीमा के यहाँ, टी.वी. पे।

....

''मन्दिर काहे?'' मैंने पूछा।

''सादी है तेरी, ''बहन बोली।

सादी? एकदम। और असीमा बीबी?

....

''पर ...., मैंने कहा, ''लड़का? पहले देखने ना आवेगा?''

''देखी पड़ी है, ''उसने कहा, ''वो रहा लड़का।''

''कहाँ! वहाँ तो कोई ना है।''

''दीख ना रहा, वो भरा–पूरा मरद?''

''वो तो जीजा है।''

''उसी से है तेरी सादी।''

मैं दीदे फाड़े खड़ी रह गयी। मुँह से बोल ना निकला। लगा, बेहोस होके गिर पड़ूँगी पर ना गिरी। चक्कर आया और निकल गया। बेहोसी ना आयी। तीन साल में आदत छूट ली थी ना। तेरा लाख–लाख सुकर, मेरे साईं। मैं पूरा दम लगा के दौड़ी और सड़क पे आ गयी। ऑटो पकड़ूँगी और सीधा असीमा के घर। पर सड़क पार ना हुई। चार–पाँच औरतों ने मिल के मुझे धर दबोचा और घर के भीतर धकेल दिया।

बहन ने पीतल की थाली मेरे सिर पे दे मारी।

मैं पटाकदेनी से जमीन पे गिर पड़ी। बेहोस फिर भी ना हुई।

मैंने बहन के पैर पकड़ लिये। ''मुझे जाने दे। बस एक बार जाने दे।''

''रोने की जरूरत ना है, ''पड़ोसिनों ने कहा, ''हमारी बिरादरी की यही रीत है।''

....

दोनों तरफ से मुझे दो औरतों ने कस के पकड़ा और रोती–बिलखती को ले जाके मन्दिर में बिठला दिया। पंडित ने मन्त्र उचारे, मेरी माँग में सिन्दूर आन गिरा, आग के चारों तरफ घूमते भी बेहोसी ना आयी। मुझे कमरे में बन्द कर दिया गया।

मुझे टी.वी. पर देखी फिलम याद आ गयी। बूढा, जालिम दुल्हा कमरे में घुसा तो दुलहिन बिस्तर पे मरी पड़ी मिली।

ना, इत्ता आसान ना होता मरना। मुझे तो बेहोसी तक ना आयी। कित्ते दाँत भींचे, कित्ती बार सिर पटक के मारा, कुछ ना हुआ। मैं पूरे होस में रही।''[23] यह सब पीड़ा वह अपनी आर्थिक परवशता के कारण ही भोगती है। दर्जन बीवी भी सिलाई का कार्य आर्थिक अभाव के कारण करती है, परंतु वह स्वाभिमानिनी है तथा अपनी मेहनत से बच्चों का पालन–पोषण करती है।

'मिलजुल मन' उपन्यास में भी मृदुला जी ने आर्थिक उतार–चढ़ाव का चित्रण किया है। बैजनाथ के घर की माली हालत को भी चित्रित किया है। उनके बिजनैस की व्याप्ति से पूर्व उन्हें कुछ समय आर्थिक परवशता को झेलना पड़ा था। लेखिका का यह कथन – ''गुलमोहर और मोगरा की माँ साहिबा, कनकलता को इल्म न था कि, लाला के इंतकाल ने उनकी माली हालत पर क्या कहर ढाया था।..........रसोईया रामदेव इस कदर लज़ीज़ खाना बनाता था कि तंगहाली में भी, खिचड़ी को दाल–पुलाव कहकर खाने की नौबत नहीं आई। उसकी सबसे बड़ी खासियत यह थी कि, सब्जी के छिलकों से भी बढ़िया भाजी बना सकता था। ....तंगहाली के दिनों में, उसका हुनर बैजनाथ के खूब काम आया। सपनों की दुनिया में जीनेवाली कनकलता, यह न जान पाई कि उनके यहां एक दिन भाजी, ताजा सब्जी की बनती थी, तो दूसरे दिन उसके छिलके की।''[24] बैजनाथ की नौकरी छूट जाने पर उनके घर में बनने वाले खाने में फर्क आ चुका था। जो उनकी आर्थिक परवशता के कारण ही था। गुल की आर्थिक विवशता की ओर भी लेखिका ने संकेत किया है – ''शादी के शुरूआती सालों की मस्ती के

बाद, मैके से भी कड़क केन्जीय मंदी की आमद पर गुल ने रसोई में घुसना ही नहीं, रोज का खाना बनाना कबूल लिया था।''[25] तथा ''गुलमोहर के उपन्यास 'अनारो' का जर्मन में अनुवाद हुआ। फ्रैंकफुर्त पुस्तक मेले में लोकार्पण होना तय हुआ तो उसे वहाँ से बुलावा आया। आने–जाने के टिकट के साथ। हाथ में इतना रुपया–पैसा होता नहीं था कि अपने खर्च पर परदेश घूमने की कुव्वत हो, इसलिए दावतनामें का मिलना, नेमत माना गया।''[26] बंबई में भी गुल की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है तथा अपनी एक अलमारी तक खरीदने के पैसे उसके पास नहीं होते हैं। मोगरा का यह कथन गुल की आर्थिक परवशता की ओर संकेत करता है। वह कहती है कि – ''आखिरी शाम, बातों–बातों में उसकी पड़ोसिन सहेली ने कहा था, 'गुल ने गले की चेन बेचकर स्टील की अलमारी खरीदी थी, खास आप लोगों के लिए। लोहा बेच सोना खदीदते बहुतों को सुना; सोना बेच लोहा खरीदते सिर्फ इन्हें देखा।''[27] यहाँ गुल की आर्थिक परवशता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में आर्थिक परवशता की समस्या को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। भारत की आम जनता की आर्थिक स्थिति की दयनीयावस्था उनके उपन्यास 'मैं और मैं' में अभिव्यक्त हुई है। किस प्रकार अर्थ के अभाव में रोटी, कपड़ा व मकान जैसी आधारभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती हैं। 'कठगुलाब' की नर्मदा जैसे अनेक बच्चे खेलने कूदने की उम्र में कारखानों में काम करने को विवश होते हैं तथा पैसे न होने के कारण 'कठगुलाब' की स्मिता व 'अनित्य' की संगीता जैसी कितनी ही लड़कियाँ शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार होती हैं। इनके उपन्यासों की नमिता व गंगा जैसी औरतों को अपने पति से मार खानी पड़ती है व खरीखोटी, बुरी गालियाँ सुननी पडती हैं। अर्थ के अभाव में न चाहते हुए भी ये सभी औरतें विवश होकर अत्याचार सहन करने को मजबूर रहती हैं।

(घ) बालश्रम व शोषण :

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–24 के अनुसार बालश्रम अर्थात 14 वर्ष के कम उम्र वाले किसी बच्चे को कारखानों, खानों या अन्य किसी जोखिम भरे काम पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से ऐसे कार्य करवाना, जिनको करने के लिए वे मानसिक व शारीरिक रूप से तैयार व सक्षम नहीं होते हैं, एक दंडनीय अपनाध की श्रेणी में आता है। संविधान के अनुच्छेद–24 के अंतर्गत बालश्रम पर प्रतिबंध है। देश की बढ़ती जनसंख्या, गरीबी व अशिक्षा के कारण बालश्रम की समस्या बढ़ी है। समाज में गरीबी बालश्रम का मुख्य कारण है। गरीबी के कारण माता–पिता का लालच व असंतोष बढ़ने लगता है, जिसके कारण वे अपने साथ–साथ अपने बच्चों को भी पढ़ने–लिखने व खेलने–कूदने की उम्र में मजदूरी के लिए कारखानों, दुकानों, खानों, होटलों आदि जगहों पर काम पर लगा देते हैं। काम पर लगा दिए जाने के कारण ये बच्चे न तो स्कूल जा पाते हैं और न ही शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं।

यह बालश्रम आज हमारे समाज के लिए अभिशाप बन चुका है। जिन छोट–छोटे बच्चों के हाथों में कलम और किताब होनी चाहिए, उन्हें अवैध व्यवसायों में, कचरा बीनने में व कारखानों में काम पर लगाया जा रहा है। मनुष्य के जीवन में बचपन ही तो एक ऐसा समय होता है, जब बिना किसी चिंता–फिक्र के एक निश्ंचित जीवन जिया जाता है। जिंदगी के सफर का सबसे खूबसूरत हिस्सा होता है, बचपन, परंतु गरीब व लाचार परिवारों के बच्चों का बचपन तो उसी गरीबी और लाचारी की भेंट चढ़ा दिया जाता है। जो उम्र उनके खेलने–कूदने की होती है, उस उम्र में ही उनको कारखानों, दुकानों, खानों, होटलों, चूड़ी व पटाखे बनाने के कारखानों आदि जगहों पर काम के लिए लगा दिया जाता है, ताकि कुछ रुपए कमाए जा सकें। आधुनिक समय में बालश्रम बच्चों की मासूमियत के बीच अभिशाप बनकर सामने आ रहा है। बाल मजदूरी के कारण बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। बाल मजदूरों का उनके मालिकों द्वारा भी ज्यादा शोषण किया जाता है, क्योंकि छोटे बच्चे कम मजदूरी पर ही मिल जाते हैं तथा इनसे ज्यादा काम लिया जा सकता है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से हमारा ध्यान बालश्रम व शोषण की ओर आकृष्ट किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में मालिकों द्वारा किए जाने वाले शोषण को अभिव्यक्त किया है। अपने उपन्यास 'मैं और मैं' तथा 'कठगुलाब' में बाल मजदूरों का मालिकों द्वारा किए जाने वाले शोषण को नर्मदा व कौशल कुमार के वक्तव्य के माध्यम से चित्रित किया है। 'मैं और मैं' उपन्यास में मृदुला जी ने बालश्रम पर प्रकाश डाला है। कौशल कुमार का यह कथन – ''हमारी बस्ती में एसिड बनाने का एक कारखाना है।''...''एक क्या दसियों कारखाने हैं, जिनमें छोटे–छोटे बच्चे काम करते हैं। दस–दस, बारह–बारह बरस के बच्चे। कहने को यहाँ कानून बना हुआ है, कम उम्र के बच्चों से खतरनाक काम नहीं करवाया जा सकता। पर कौन मानता है कानून? पेट के आगे कौनसा कानून काम आता है? दिन–दहाड़े काम लिया जाता है और कोई आँखवाला देखने नहीं आता।''[28] यह अभिव्यक्त करता है, कि संविधान के अनुच्छेद–24 में बालश्रम के लिए बने कानून की हमारे समाज में ऐसे ही धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। वह आगे कहता है, कि किस प्रकार ये बच्चे कारखानों में दुर्घटना का शिकार होते हैं और इनके निर्दयी दुष्ट मालिक इनके साथ किस प्रकार अमानवीय व्यवहार करते हैं – ''कल एक बारह बरस का लड़का एसिड गिरने से बुरी तरह जख्मी हो गया। जानती हैं, कारखाने के मालिक ने क्या किया?''............''जख्मी लड़के को ले जाकर रेल की पटरी पर रख दिया। रेल वहाँ से गुजरकर उसका देहांत और क्रिया–कर्म एक साथ करती, उससे पहले वहाँ एक भलामानुस आया। घायल लड़के को खींचकर पटरी से अलग तो कर दिया पर और मदद नहीं की। समझ गया होगा, किसी नर–गिद्ध की जूठन है, अधिक दया दिखलाई तो फँस जाएगा..............।'' ''सारी रात वह वहाँ पड़ा रहा बेहोश, पर मरा नहीं।.........''सुबह जाकर पुलिस वहाँ पहुँची................उसे अस्तपताल पहुँचा दिया गया और उसने दम तोड़ दिया.....। ''बस्ती के तमाम गरीब आदमियों के बच्चे इन कारखानों में काम करते हैं। उन्हें डर है कि आवाज उठाने पर कारखाने बंद न कर दिए जाएँ! तब उनकी रोटी कैसे चलेगी?'' [29] बस्ती के गरीब माता–पिता आर्थिक मजबूरी के कारण ही अपने बच्चों को इन कारखानों में काम करने के लिए भेजते हैं। मृत लड़के के माता–पिता कारखाने के मालिक पर अपनी आर्थिक विवशता के कारण मुकदमा नहीं चलाना चाहते हैं। उसकी रोती–बिलखती माँ के इस कथन से उनकी विवशता स्पष्ट होती है – ''बाबू, जो पैसा आप देंगे, मुकदमा खा जाएगा। हमारे हाथ क्या आएगा ! अभी पाँच बच्चे और हैं। मालिक बहुत दयालु है। दूसरे लड़के को कारखाने में लगाने को तैयार है।''[30] उपन्यास में आए वक्तव्य से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, कि बालश्रम के लिए हमारा खोखला कानून व माता–पिता का लालच जिम्मेदार है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' में भी बालश्रम व बालशोषण पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यास की नारी–पात्र नर्मदा के बचपन के माध्यम से मृदुला जी बालश्रम का सशक्त चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। जब स्मिता अपनी बहन नमिता के घर आती है तब उसकी मुलाकात नर्मदा से होती है और वह नर्मदा से कहती है, कि वह अपने बचपन के बारे में बतलाए, तो नर्मदा अपने बचपन की दुःखभरी दास्तान सुनाती है। वह कहती है – ''बचपन बड़े लोगों का होवे है। हम तो पैदा ही कमाऊ होवे हैं। चलो, जब तक माँ की छाती मुँह में रहे, समझ लो बचपन है। पर उसकी याद किसे रहे है। रहे तो कित्ता अच्छा हो। बचपन नाम की जमा–पूँजी हम पे भी हो जाए। मुझे याद है तो बस भाई का कमर पर टँगे रहना। कित्ता दुखे थी कमर। बहन कहे थी, भारी नहीं, भाई है।...............भाई उँगली पकड़ने लगा तो उसका हाथ छूट गया। ....भाई, बहन के साथ घर–घर घिसटने लगा और मैं चूड़ी बनाने के अड्डे पर बिठला दी गई। उमर तो याद नहीं। समझो कि भाई पैरों–पैरों चलने लगा था। मैं ठहरी ऊपर–तले की, तो डेढ़–दो बरस बड़ी हूँगी, और क्या।'' [31] उसका जीजा उसे चूड़ी बनाने के कारखाने में मजदूरी के लिए काम पर लगा देता है। नर्मदा के इस कथन से स्पष्ट होता है, कि बाल मजदूरी कम देनी पड़ती है तथा काम अधिक लिया जाता है। वह कहती है –''ठाकुर ने कहा, देखें तू कित्ती तेज दौड़ सके है, एकदम भागती हुई जा, और लब जोड़ीदार के पास पहुँचा दे। देरी हुई तो सीसा ठंडा हो जाएगा। फिर चूड़ी कैसे बनेगी? तू पहनेगी चूड़ी? ले। सच्ची में उसने एक लाल और एक हरी चूड़ी मुझे पहना दी। दूसरे हाथ में

पहनाने लगा तो जीजा ने टोक दिया, बस रहने दो और पैसे ना कटाने मुझे। दोनों मुस्कराये, जीजा गया और मैं जी–जान लगा के दौड़ पड़ी लब हाथ में ले के। जोड़ीदार को सीसा खींचके गोल–गोल चूड़ी बनाते देख, इत्ता मजा आया, क्या बतलाऊँ। पर .... जादा देर देख ना पायी। आवाज पड़ी, ले, दौड़कर आ, दूसरी लब तैयार है। ले जा जल्दी। मैं दूसरी लब ले के दौड़ी। ''वाह, क्या खूब दौड़ लगाये है, छोरी'' , सुना इत्ता खुस हुई कि दुगनी ताकत लगा के दौड़ पड़ी............और दौड़ती रही...............

हाथ–पाँव जबर दुख रहे थे। बदन पसीने से तरबतर था। गरमी से आँखें जल रही थी। सिर में घुमेर जैसी उठ रही थी।

....

आँखें झपक गयीं, पता न लाग। मैं पैर हिला–हिला के गुनगुना रही थी, सो जा, राजा भैया, सो जा।

....

तभी कमर पर जोर का दुहत्थड़ पड़ा। ''हराम की औलाद लग काम पे। सोने के पैसे नहीं मिलते, हरामी, कामचोर।''[32] कारखानों में बच्चों को कितनी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं, नर्मदा के इस कथन से स्पष्ट है – ''उँगली क्या, हाथ–पाँव, सिर–आँख, सब जला करें थे भट्‌ठी की झुलस में। हाँ, जहाँ–तहाँ फफोले पड़ा करें थे बदन पे, पिघले सीसे के छींटों से। हाँ दरद से तड़पा करूँ थी मैं, बिलखा करूँ थी, बिलबिलाया करूँ थी।''[33]

नर्मदा का जीजा उसके भाई भोला को भी चूड़ी कारखाने में बिठला आता है। वहाँ काम करते–करते नर्मदा का शरीर कमजोर हो गया, जिससे वह पहले जैसी फूर्ती से कार्य नहीं कर पाती है तथा बेहोश हो जाती है। कमजोर होने के कारण ठाकुर यह कहकर, कि इसके बदन का पानी सूख गया, अब यह हमारे काम की ना रही और काम से निकाल देता है। काम से निकालने पर उसका जीजा कान उमेठता है तथा पिटाई भी करता है। कारखाने के ठाकुर द्वारा की गई पिटाई के कारण नर्मदा का कान अभी भी दर्द करता है। वह कहती है, कि जब कारखाने में बच्चों के बारे में जानने के लिए एक समाज सेविका आती है और नर्मदा उसको सच्चाई बता देती है, तो उसके जाने के पश्चात् ठाकुर ने उसकी पिटाई की थी। नर्मदा का यह कथन – ''वो गयी तो ठाकुर मेरे पास आया। ''हरामजादी ! बहोत जबान चलाने लगी है।'' उसने मुझे यों कान से खींचके उठाया और सामने दीवार पे दे मारा। आ–आ–आ–आई। आ–आ–आ आई। मेरा कान! मेरा सिर! आ ऽ ई ऽ ई ! ''क्या हुआ? क्या हुआ?'' वह मेरा कंधा हिला–हिला के पूछ रही थी। दरद। फिर वो ही पुराना दरद ! आ ऽ आ ऽ आ ऽ आ ऽ ई ऽ ! मैं चींख दी और चीखे चली गयी।'' [34] नर्मदा को बचपन में दिए गए दुःख आज भी पीड़ा ही पहुँचाते हैं।

मृदुला गर्ग ने 'कठगुलाब' की नर्मदा व 'मैं और मैं' में आए एसिड बनाने के कारखाने का वर्तांत स्पष्ट करते हैं कि गरीबी व अभावों के कारण न जाने कितने ही बच्चों का बचपन इस बालश्रम की भेंट चढ़ जाता है।

(ङ.) उच्च व मध्यम वर्ग व्यवस्था :

वर्ग मानव समाज की वह व्यवस्था है, जहाँ समाज का एक निश्चित व्यक्ति–समूह होता है तथा समूह के व्यक्तियों की संस्कृति, कार्य–योजना व स्तर आदि में समता पायी जाती है। आज अर्थ के प्रभुत्व ने मानव समाज की संरचना को ही बदल दिया है तथा समाज में बड़े–छोटे अर्थात उच्च व निम्न की भावना ने जन्म ले लिया है। समाज वैज्ञानिकों के अनुसार समाज का ढाँचा व्यक्ति या समूह के आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों की भिन्नता पर आधारित होता है। एक विशिष्ट प्रकार के आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति एक समूह के अंतर्गत

आबद्ध होकर एक विशिष्ट वर्ग का निर्माण करते हैं। प्राचीन वर्गीय अवधारणाओं के अनुसार वर्ग का निर्माण काम के आधार पर होता था, जो व्यक्ति जैसा कार्य करता था, उसी के अनुसार उसके वर्ग का निर्धारण होता था। आज आधुनिक समय में व्यक्ति के वर्ग का निर्धारण उसके जन्म के आधार पर तथा अर्थ के आधार पर होता है। आज समाज में बाजारवादी नीतियों के कारण व्यक्ति अपनी आर्थिक हैसियत से समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को अपनी ओर आकर्षित करता है। व्यक्ति अपनी आर्थिक हैसियत के आधार पर एक–दूसरे के नजदीक आते हैं तथा उनका नजदीक आना ही उनको किसी न किसी वर्ग से जोड़ता है। आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति का स्तर उसकी आय, संपत्ति, जीविका, रहन–सहन, शिक्षा, व्यक्तिगत विशेषताएँ आदि के आधार पर निर्धारित होता है।

आधुनिक समाज–व्यवस्था में वर्ग–विभाजन का सबसे बड़ा आधार अर्थ हो गया है तथा अर्थ के आधार पर कोई व्यक्ति किसी भी वर्ग में बड़ी आसानी से अपनी उपस्थिति दर्ज करवा सकता है। आज वर्ग–निर्धारण में बाजार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज समाज में अर्थ के आधार पर तीन वर्ग पाये जाते हैं – उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग।

1. **उच्च वर्ग** :– उच्च वर्ग समाज में संख्या की दृष्टि से अनाधिक्य होता है। आर्थिक दृष्टि से सभी वर्गों से समृद्ध होता है तथा यह स्वयं अनुत्पादक की भूमिका अदा कर संपन्नता के साथ वैभवमय जीवन जीता है। अन्य वर्गों की तुलना में इस वर्ग का वर्चस्व समाज में अधिक होता है। इस वर्ग में पूँजीपति, बड़े व्यवसायी, धनाढ़य व भूमिपति आते हैं। धनाधिक्य के कारण यह वर्ग विलासमय जीवन व्यतीत करता है। इस वर्ग के अधिकांश सदस्य महत्त्वाकांक्षी, स्वकेंद्रित होते हैं तथा इनके जीवन में प्रायः कृत्रिमता की अधिकता के कारण मानवीय मूल्यों का महत्त्व प्रायः न के बराबर होता है। यह वर्ग धन को ही सबसे अधिक महत्त्व देता है। इनका चिंतन समाज केंद्रित न होकर आत्मनिष्ठ होता है। इनका मुख्य ध्येय किसी भी प्रकार से धन–संचय ही होता है। यह वर्ग समाज का सबसे धनी वर्ग होता है तथा हर समय समाज के दूसरे वर्गों व व्यक्तियों का शोषण करता है।

2. **मध्यम वर्ग** :– मध्यम वर्ग उच्च व निम्न वर्ग के मध्य की स्थिति का होता है। इसमें एक ही रुतबे या ओहदे के लोग शामिल होते हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत छोटे व्यवसायों के स्वामी, पेशेवर लोग, बाबू वर्ग, किसान, शिक्षित वर्ग, शिक्षक व नौकरी–पेशा वाले सामान्य लोग आते हैं। यह बुद्धिप्रधान वर्ग होता है तथा सामाजिक क्रांति के प्रायः समस्त विचारों का सर्जनकर्त्ता होता है। इस वर्ग में आत्मनिर्भरता पाई जाती है तथा जीवन और परिस्थितियों से संघर्ष करने की अदभुत क्षमता होती है। यह वर्ग आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से आक्रांत रहता है। यह वर्ग परिवर्तन के लिए व्याकुल, असंतोष, आक्रोश, विवशता और घुटन में जीता है तथा इस वर्ग का व्यक्ति प्रदर्शनप्रिय, महत्त्वाकांक्षी, आत्मकेंद्रित तथा कल्पनाप्रिय होता है। यह समाज का प्रेरक वर्ग होता है। समय के परिवर्तन के साथ–साथ इसका स्वरूप बदलता रहता है। मध्यम वर्ग का क्षेत्र समाज के अन्य दोनों वर्गों की तुलना में बहुत बड़ा है। इस वर्ग में अन्य वर्गों का विलय होने के कारण इसका क्षेत्र बड़ा हो जाता है। उच्च वर्ग टूटकर जब कहीं जाता है, तो उसका विलय मध्यम वर्ग में ही होता है तथा निम्न वर्ग जब कुछ विकास करके अपना उत्थान करता है, तो वह भी मध्यम वर्ग में सम्मिलित हो जाता है, जिसके कारण इस वर्ग की पकड़ समाज के सभी वर्गों में समान ढंग से होती है। इसके विस्तार के कारण समाजशास्त्रियों ने इसको तीन वर्गों में विभाजित किया है – उच्च मध्यमवर्ग, मध्य मध्यमवर्ग, निम्न मध्यमवर्ग।

<u>उच्च मध्यमवर्ग :–</u> यह वर्ग उच्च वर्ग से कटकर बनता है तथा इसकी सामाजिक स्थिति मजबूत होती है। इस वर्ग की पहचान समाज के बड़े–से–बड़े नेता से लेकर पूँजीपतियों से होती है, जिसके कारण यह अपने हितों को सब जगह पूरा कर लेता है। यह वर्ग समाज के उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारियों से अपने मजबूत संबंध रखता है। इस वर्ग में आधुनिक व्यापारिक फर्मों के मालिक व संचालक, सौदागर व एजेंट शामिल होते हैं।

मध्य मध्यमवर्ग :– यह समाज का ऐसा व्यक्ति–समूह होता है, जो न तो बहुत अधिक धनी होता है और न ही बहुत गरीब। यह वर्ग सामाजिक आदर्शों एवं लक्ष्यों से बँधा होता है तथा आकार की दृष्टि से यह समाज का बहुत बड़ा वर्ग होता है। इस वर्ग का संबंध समाज के उच्च वर्ग व निम्न वर्ग दोनों से रहता है, जिसके कारण इसमें समाज के दोनों वर्गों के लक्षण पाये जाते हैं। यह वर्ग विविधतायुक्त होता है। इस वर्ग के कुछ लोग आर्थिक ऊँचाई छूते–छूते उच्च वर्ग के नजदीक पहुँच जाते हैं, तो कुछ आर्थिक पतन की ओर अग्रसर होकर निम्न वर्ग में पहुँच जाते हैं।

समाज में इस वर्ग की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्र मुक्ति आंदोलन में इस वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस वर्ग के द्वारा सोची गई बातें प्रायः धीरे–धीरे अन्य वर्गों में अपना स्थान बनाती हैं तथा समाज को गति देती हैं। अन्य वर्गों में होने वाले परिवर्तनों की सूचना भी यही वर्ग देता है तथा बाजारवादी शक्तियों के निशाने पर सर्वाधिक होता है। इस वर्ग के अन्तर्गत बीच की किस्म के व्यापारी, शिक्षित व्यक्ति आदि आते हैं, जो किसी संस्था या सरकारी कार्यालयों में पदाधिकारी आदि होते हैं।

निम्न मध्यमवर्ग :– मध्यमवर्गीय समाज के सभी वर्गों में यह आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर होता है। इस वर्ग के लोग आर्थिक विषमता की चक्की में पिसते हुए, अभावों की मार झेलते रहते हैं। आर्थिक अभाव के कारण भोजन, शिक्षा, आवास आदि की समुचित व्यवस्था करने में असमर्थ होते हैं। इस वर्ग में परिवार के सभी सदस्य अपनी क्षमतानुसार कार्य नहीं करते हैं, जिसके कारण कमानेवाला एक व खानेवाले अधिक होते हैं। इस वर्ग की आर्थिक स्थिति दयनीय होती है, जिसके कारण इस वर्ग के नवयुवक समुचित शिक्षा को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। अर्थाभाव के कारण यह वर्ग अशांत रहता है तथा इसमे परिवार के सदस्यों को समुचित आहार भी नहीं मिलता है। अर्थाभाव के कारण दीन–हीन होकर जीता है, जिससे बीमार होने पर ठीक से दवा–दारू भी नहीं कर पाता है। यह वर्ग सुनिश्चित आमदनी के लिए निरंतर संघर्ष करता रहता है तथा प्रायः थककर हार जाता है।

मध्यमवर्गीय समाज के व्यक्तियों की आय का स्रोत बहुत कम होता है। इनकी आमदनी का स्रोत प्रायः नौकरी होता है। इस कारण अर्थार्जन करना इनका सबसे बड़ा लक्ष्य होता है। इस वर्ग की सामाजिक स्थिति प्रायः उसकी आर्थिक हैसियत के हिसाब से आँकी जाती है, लेकिन यह वर्ग समाज की सारी मान मर्यादाओं का निर्वाह बहुत तल्लीनता से करता है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह वर्ग सामाजिक प्रतिष्ठा को सर्वोपरी मानता है। सामाजिक रूढ़ि–परंपराओं का बोझ अपने कंधों पर अन्य वर्गों की तुलना में ज्यादा वहन करता है, किंतु इस वर्ग के कुछ शिक्षित व आधुनिक विचारों वाले युवक रूढ़िगत परंपराओं को तोड़ना बेहतर समझते हुए उन रूढ़ परंपराओं को तोड़ रहे हैं, जो अप्रासंगिक हो चुकी हैं। इस वर्ग में संयुक्त परिवार का बहुत महत्त्व था, लेकिन इस वर्ग के बहुधा सदस्य नौकरी–पेशा वाले होते हैं, जिसके कारण व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ प्रबल हुई हैं तथा संयुक्त परिवार की सुगठित परंपरा पर एक प्रश्न चिह्न सा लग गया है। इस वर्ग के लोग शिष्टाचार के खोखलेपन व प्रदर्शनप्रियता की भावना से ग्रस्त होने के कारण अपने पास योग्यता व क्षमता रखने के बावजूद अपनी आकांक्षाएँ पूरी नहीं कर पाते हैं, जिसके कारण चिंतित, निराश, घुटनभरी जिंदगी जीने को विवश हैं।

स्वतंत्रता–पश्चात् के भारतीय समाज के मध्यमवर्ग में समाज के अन्य दो वर्गों की तुलना में अधिक परिवर्तन देखने को मिलता है। यह सामाजिक सम्मोहन को छोड़ने लगा है तथा विश्व की बड़ी से बड़ी क्रांतियों का प्रणेता भी यही है। इस वर्ग के पास समाज के अन्य दोनों वर्गों की तुलना में जन–समर्थन अधिक है। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के समय जिस उपनिवेशवादी मानसिकता का विरोध किया गया था, आज मध्यमवर्गीय समाज का व्यक्ति उसी मानसिकता का शिकार हो गया है। आज इस वर्ग का सामाजिक प्रतिष्ठा से तात्पर्य किसी भी प्रकार से अर्थ शक्ति का संचय करना हो गया है। बाजारवादी व्यवस्था में फिट होने के लिए

संघर्षरत यह वर्ग समाज को समय नहीं दे पा रहा है। धन–संग्रह की लालसा ने सब तरह के सामाजिक आदर्शों से इनको च्युत कर दिया है। पश्चिमीकरण का अंधानुकरण करने के कारण भारतीय शिक्षित वर्ग विशाल जन समुदाय से अलग हो रहा है तथा सारी सुविधाओं को अपने हक में कर लेने की होड़ सी लगने के कारण समाज में अलगाव बढ़ता गया। सामाजिक जीवन में सामुदायिक बोध की भावना खत्म हो रही है। पश्चिमी उपभोक्ता संस्कृति की चकाचौंध में फँसा भारतीय आधुनिक मध्यमवर्ग, जो साधन संपन्न है, वह संवेदनाहीन होता जा रहा है।

आधुनिक समाज में मध्यमवर्ग की आर्थिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। शिक्षा ने इस वर्ग को नई सोच व धनार्जन के नये–नये द्वार सुझाए हैं। इस वर्ग की महत्त्वाकांक्षाएँ पहले की तुलना में बढ़ी हैं। इस वर्ग की आर्थिक सुदृढ़ता पहले से ज्यादा होने के बावजूद भी इसमें निराशा और दिशाहीनता में वृद्धि हुई है। इस वर्ग में दिखावा, आत्मप्रशंसा आदि की भावना बढ़ने के कारण यह नैतिक रूप से कमजोर होता चला जा रहा है।

3. निम्न वर्ग:– इस वर्ग का स्थान समाज में सबसे नीचे होता है। इस वर्ग के लोग अपना संपूर्ण जीवन समाज के उच्चवर्ग तथा मध्यमवर्ग की सेवा करके बिता देते हैं। समाज में उत्पादक यही वर्ग होता है। इस वर्ग में छोटे किसान तथा अन्य सर्वहारा लोग आते हैं। शहरी निम्नवर्ग में मिलों–कारखानों में काम करने वाले लोग तथा साथ ही दफ्तरों, होटलों व अन्य संस्थानों में सेवारत नौकर–चाकर, कम आय वाले सरकारी कर्मचारी आदि आते हैं। इस वर्ग के अधिकांश लोग अशिक्षित होते हैं, जिसके कारण समाज के अन्य दोनों वर्गों द्वारा इनका शोषण किया जाता है। ये लोग अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा पुरानी मान्यताओं से जकड़े रहते हैं। इनकी आय इनकी जरूरतों से बहुत कम होने के कारण ये कुपोषण के शिकार रहते हैं। इस वर्ग का जीवन कष्टों व अभावों से घिरा होता है। इस वर्ग के पुरुषों में कई गलत आदतें होती हैं, जिसमें नशे की लत होना आम है। इनके परिवारों में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय होती है, क्योंकि उन्हें गृहकार्य के साथ–साथ धनार्जन के लिए नौकरानी या मजदूरिन के रूप में कठिन शारीरिक श्रम करना पड़ता है। इस वर्ग में प्रतिष्ठा का प्रश्न मायने नहीं रखता तथा गाली–गलौज के तरीके से बात करना आम बात होती है।

आधुनिक समाज मे अर्थ को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। जिसके कारण समाज में अर्थ आधारित वर्गीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। औद्योगीकरण, तकनीकी विकास व नगरीकरण के प्रभावस्वरूप जातिगत बंधनों में शिथिलता आई है तथा व्यक्ति अर्थ के आधार पर मुख्यतः तीन वर्गों–उच्च, मध्य और निम्न में विभाजित हो गया। उच्च वर्ग के अंतर्गत बड़े–बड़े साहूकार, महाजन, उद्योगपति आते हैं, जो अवसरवादी, व्यवहार कुशल, स्वार्थी व आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति के होते हैं तथा अपनी पूँजी के बल पर निम्न वर्ग का शोषण करते हैं। मध्यम वर्ग में आनेवाला जन समुदाय न तो उच्च वर्ग की भाँति सामर्थ्यवान होता है तथा न ही निम्न वर्ग की तरह दया का पात्र। इसमें वेतनभोगी सरकारी कर्मचारी, व्यापारिक संगठन, छोटे व्यापारी तथा निजी कारखानों के व्यापारी आते हैं। इस वर्ग में भी उच्च मध्यम वर्ग, मध्य मध्यम वर्ग व निम्न मध्यम वर्ग तीन भाग पाये जाते हैं। उच्च मध्यम वर्ग में उच्च वर्ग से समता की होड़ पाई जाती है तथा इस वर्ग में पारिवारिक विघटन, कुण्ठा, घुटन व मानसिक अवसाद जैसी वृत्तियाँ दिखाई देती हैं। यह वर्ग प्रदर्शनप्रिय व स्वार्थी वृत्ति का होता है। निम्न मध्यम वर्ग की सीमित आय होती है तथा विषमताओं व अभावों से ग्रसित होने के बावजूद मूल्यों व मर्यादाओं का अनुपालन करने में विश्वास करता है। यह वर्ग भाग्यवादी, अंधविश्वासी व अर्थ की कमी के कारण पारिवारिक कलह से ग्रसित होता है। निम्न वर्ग में उच्च व उच्च मध्यम वर्ग के घरों में नौकरी करने वाले व कारखानों आदि में मजदूरी करने वाला जन समुदाय आता है। यह वर्ग उच्च शिक्षा से दूर व अपने अधिकारों के प्रति अनजान होता है।

रचनाकार की रचना दृष्टि का मूल संबंध उसकी जीवनशैली व जीवनदृष्टि से होता है, जिसके कारण उसकी अपनी वर्गीय स्थिति व सामाजिक परिवेश का प्रभाव उसकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। रचनाकार चाहे जिस वर्ग का हो वह अपने निजी अनुभवों, संवेदनाओं व

कल्पनाओं की छाप अपनी रचना में अवश्य छोड़ता है। मृदुला गर्ग जैसी प्रखर लेखिका की रचनाओं में भी उनके जीवन के अनुभवों का असर दिखाई देता है। इन्होंने अपनी अभिव्यक्ति में बेबाकी पाई है तथा खरे को खरा व खोटे को खोटा कहने की हिम्मत रखती हैं। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में अपने सामाजिक अनुभवों के आधार पर उच्च व मध्यम वर्ग के स्वरूप को निरूपित करने का प्रयास करने के साथ–साथ उनकी समस्याओं व यथार्थ को चित्रित किया है। मृदुला जी ने उपन्यासों की रचना मुख्यतः मध्यमवर्गीय नारी को केंद में रखकर की है। मध्यमवर्गीय हिपोक्रेसी, बौद्धिक खोखलापन और भ्रष्ट जीवन जीने के तरीके की बखियाँ उधेड़ती हुई परिलक्षित होती हैं। मध्यमवर्गीय जीवन शैली को जिस तरह मृदुला जी ने बेपर्दा किया है, वह हिंदी साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है। जिस तरह जीवन अंतर्विरोधी होता है, उसी तरह वर्ग भी होता है तथा मध्यमवर्गीय आचरण इन अंतर्विरोधों का हामी है।

मृदुला जी के उपन्यास साहित्य में उच्च व मध्यम वर्ग तथा उसके यथार्थ का चित्रण भिन्न–भिन्न पड़ावों के अनुपात में चित्रित हुआ है। इन्होंने मुख्यतः मध्यमवर्ग के यथार्थ व समकालीन समस्याओं को केंद्र में रखा है। मध्यमवर्ग के व्यक्ति का मनोविश्लेषण उसके भीतर तक झाँक कर किया है। इनके उपन्यासों में मध्यमवर्ग के स्वरूप को निरूपित करने के साथ–साथ उनकी समस्याओं व यथार्थ को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है तथा उनके यथार्थ का चित्रण भिन्न–भिन्न पड़ावों के अनुपात में चित्रित किया है। मध्यम वर्ग विभिन्न संस्कृतियों के अन्तर्विरोधों से युक्त है तथा मध्यमवर्ग का यथार्थ समकालीन समस्याओं का केंद्र है। इनके उपन्यास साहित्य का यथार्थ भोगा हुआ यथार्थ है, इसीलिए मध्यमवर्ग के सभी पहलुओं आशा–आकांक्षा, निराशा, बेरोजगारी, परस्पर संबंध, कुंठाएँ, पीड़ा, घुटन, अनास्था, संत्रास व ऊब इत्यादि का चित्रण इनके उपन्यास साहित्य में बखूबी हुआ है। इन सभी के मूल में आर्थिक विपन्नता व अभावग्रस्तता है। भूख, गरीबी, अभाव निम्न वर्ग में है लेकिन मध्यम वर्ग के सम्मुख एक विवशता अपनी सफेदपोशी को कायम रखने की भी है।

मृदुला जी के उपन्यासों में उच्च मध्यमवर्गीय समाज की स्त्रियों ऊब और आकांक्षाओं का चित्रण है तो साथ ही निम्न मध्यमवर्ग की स्त्री जो कि पीड़ित, शोषित व विद्रोहिणी है, को भी चित्रित किया गया है। बौद्धिक व वैचारिक समन्वय द्वारा इन्होंने संबंधों की सूक्ष्म पर्तों को भी निरावृत्त किया है। स्त्री को विभिन्न परिवेशों और परिस्थितियों के मध्यनजर रखकर इनके उपन्यासों की कथा घटित होती है, जिनमें मध्यमवर्गीय नारी आधुनिक है, जो कि अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने व मुक्त होने के लिए छटपटाती हुई दृष्टिगोचर होती है। इन्होंने प्रबुद्ध स्त्रियों की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और स्वप्नों के साथ–साथ बुर्जुआ व सर्वहारा के बीच वर्गभेद व चेतना को भी चुना है। संपन्नता व विपन्नता के बीच के वर्गभेद व चेतना को अभिव्यक्त किया है। निम्न वर्ग पर होने वाले क्रूर शोषण व बालश्रम के द्वारा बच्चों पर होने वाले अत्याचार की ओर भी हमारा ध्यानाकृष्ट किया है।

मध्यम वर्ग समाज के प्रमुख वर्ग के रूप में निरंतर विकसित होता रहा है तथा आज भी समाज का प्रमुख वर्ग है। भारतीय समाज व्यवस्था का प्रमुख आधार संयुक्त परिवार प्रथा रही है, परंतु पाश्चात्य शिक्षा एवं आर्थिक संघर्ष तथा वैयक्तिक अभिरुचियों को पूरा करने की इच्छा ने संयुक्त परिवार के विघटन में सहयोग दिया तथा घर अणु परिवार में विभाजित होने लगे। इसका प्रमुख कारण प्राइवेसी की कमी व आर्थिक समस्या रही। मृदुला गर्ग के उपन्यासों के पात्र अणु परिवार से ताल्लुक रखते हैं। 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य', 'वंशज', 'कठगुलाब', 'चित्तकोबरा', 'मैं और मैं' आदि उपन्यासों में परिवार के सदस्यों की संख्या काफी कम है तथा इसके विपरीत इनके उपन्यास 'मिलजुल मन' में पुनः संयुक्त परिवार की ओर लोटते हुए दिखाई देती है। 'मिलजुल मन' में लेखिका ने संयुक्त परिवार का उल्लेख किया है।

मृदुला गर्ग ने व्यक्त किया है कि पढ़ी–लिखी स्त्री अपने व्यक्तित्व को ध्वंस होते हुए नहीं देखना चाहती है और वह स्वतंत्र निर्णय लेना चाहती है, तो उसके मन में अलग एकल परिवार की चाहत उत्पन्न होना स्वाभाविक हैं। इसी प्रकार माता–पिता व उनकी संतान के मध्य

आर्थिक आत्मनिर्भरता को लेकर वैचारिक खाई बढ़ जाती है, जिसके कारण एकल परिवार की मांग बढ़ी है। ऐसा महानगरीय संस्कृति के प्रभावस्वरूप होता है। पुराने समय में दादा–परदादा एकजुट होकर एक घर के भीतर कई रिश्ते संजोते थे, परंतु आज परिवार कटकर माता–पिता व बच्चों तक ही सीमित रह गया है। पहले जो रिश्ते जिये जाते थे, वे आज केवल यंत्र बनकर रह गये हैं। पुरानी व नई पीढ़ी की वैचारिकता में अंतर भी एकल परिवार के जन्म का कारण है, जिसे 'वंशज' उपन्यास में चित्रित किया गया है। माता–पिता व संतानों की महत्त्वाकांक्षा के कारण परिवार का पुराना ढाँचा टूट रहा है। माता–पिता और संतान के बीच हर घर में खाई बनती जा रही है, परंतु मध्यमवर्ग में व्यक्ति भीतर से चाहे जितने भी खोखले और दुःखी हों, पर बाहर इसकी जरा भी भनक नहीं पड़ने देते हैं। मध्यमवर्गीय समाज में अधिकांशतः पिता द्वारा संतान पर अपने विचारों को जबरदस्ती लादने की परंपरा होती है, जिससे पिता–पुत्र में संघर्ष उत्पन्न होता है। 'वंशज' उपन्यास में भी शुक्ला साहब द्वारा थोपी गई मान्यताओं, तालीम और नौकरी को त्यागकर बेटा सुधीर धनबाद और रानीगंज के कोयला खान में माइनिंग इंजीनियर का काम करने के लिए चला जाता है तथा वहीं अपना घर बसाना चाहता है।

मृदुला जी के सभी मध्यमवर्गीय पात्र अणु परिवार में जीते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा व जितेन या फिर पुनर्विवाह–पश्चात् मनीषा व मधुकर। 'वशंज' में सुधीर व सविता के दो बच्चे तथा जज शुक्ला साहब, लेकिन वहाँ भी सुधीर अलग रहना चाहता है। इसकी वजह पुरानी व नई पीढ़ी के विचारों की टकराहट है। पिता–पुत्र के उसूल अलग–अलग हैं, जिसके कारण संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। 'चित्तकोबरा' में मनु, महेश और दो बच्ची, 'अनित्य में श्यामा–अविजित व चार बच्चे, 'मैं और मैं' में माधवी–राकेश और दो बच्चे, 'कठगुलाब' में दर्जन बीबी के यहाँ असीमा–असीम दो बच्चे, नमिता व उसका पति तथा दो बच्चे हैं, जो सभी एकल परिवार का जीवन जीते हुए दिखाई देते हैं। इनके विपरीत 'मिलजुल मन' में माता–पिता और पाँच बच्चे, चाचा–चाची व दादाजी आदि का जिक्र करना, पुनः संयुक्त परिवार की ओर मृदुला जी के मोह को प्रकट करता है। 'मिलजुल मन' में वर्णित संयुक्त परिवार आज के समाज की मांग की ओर इंगित करता है।

मध्यमवर्ग अधिकांशतः नौकरीपेशा होता है। इसमें वेतनभोगी कर्मचारी, व्यापारिक संगठन, छोटे व्यापारी तथा निजी कारखानों के व्यापारी आदि आते हैं। स्त्री–पुरुष दोनों के नौकरी किए बगैर घर चलाना जटिल कार्य होता है। मध्यमवर्गीय स्त्री कभी खुद को बेकार नहीं रहने देती है। वह अपने लिए छोटा–मोटा काम या सृजन कार्य ढूंढ ही लेती है। मृदुला जी के उपन्यासों की नारी भी बेकार बैठना पसंद नहीं करती है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा खाली समय को भरने कि लिए कॉलेज में नौकरी करने लगती है तथा अंत में लेखन कार्य में आत्मसंतुष्टि प्राप्त करती है। 'मैं और मैं' की माधवी भी एक लेखिका है, 'चित्तकोबरा' की मनु भी लेखन कार्य करती है तथा लेखन द्वारा आत्मसंतुष्टि प्राप्त करती है। 'अनित्य' में काजल बनर्जी कॉलेज में इतिहास पढ़ाती है तथा संगीता एक डॉक्टर है। 'कठगुलाब' में स्मिता, मारियान, असीमा, नमिता, दर्जन बीबी, नर्मदा, नीरजा सभी कामकाजी महिलाएँ हैं, जो अलग–अलग प्रकार के कार्यों में व्यस्त दिखाई देती हैं। मनीषा कहती है – ''आखिर वह कॉलेज पढ़ाने आती ही क्यों है? सिर्फ इसलिए कि सुपात्र के अभाव में विवाह जल्दी न हो पाने के कारण उसने हिंदी में एम.ए. कर डाला था। और अब सुपात्र के सान्निध्य में उसके पास ढेर सारा फालतू समय बचा पड़ा रहता है। वह कहानियाँ भी तो लिखती है। घर पर बैठकर उन्हीं पर परिश्रम क्यों नहीं करती? बात यह है कि अपनी कहानियों से भी वह सन्तुष्ट नहीं है। जब भी लिखने बैठती है; लगता है वह सोच–सोचकर लिख रही है, प्रेरणा से वशीभूत होकर नहीं। लिखूँगी, उसने सोचा, एक दिन लिखूँगी कुछ–कहानी, उपन्यास, निबन्ध या नाटक; कुछ ऐसा जो लिखकर मुझे आत्मतुष्टि मिले; कुछ ऐसा जो मेरे भीतर यूँ कुलबुलाता रहा हो कि बिना लिखे चैन न आ रहा हो।''[35] वह खाली समय को भरने के लिए नौकरी करती है, आर्थिक अभाव को पूरा करने के लिए नहीं।

मृदुला जी ने मध्यम वर्ग की नौकर रखने की रीत पर भी प्रकाश डाला है। माधवी के घर पर घरेलू कार्य के लिए नौकर रखा हुआ है, तो नमिता ने भी नर्मदा को अपने बीमार पति की देखभाल व बच्चों तथा घरेलू कार्य के लिए नौकरी पर रखा हुआ है।

मध्यम वर्ग की एक बढ़ती समस्या दांपत्य संबंधों का बिखराव व तलाक की समस्या है। छोटी–छोटी बातों पर होते हुए तलाक व अनिश्चित भविष्य के भय के कारण भी स्त्रियाँ नौकरी करना पसंद करती हैं। ये नौकरीपेशा नारियाँ अपने व्यवसाय या नौकरी के कार्य में इतनी व्यस्त रहती हैं, कि अपने बच्चों के लिए भी समय नहीं निकाल पाती हैं और उन्हें घर की नौकरानी या आया के भरोसे छोड़ देती हैं। 'कठगुलाब' उपन्यास की नमिता अपने बच्चों व पति की देखभाल का पूरा कार्य नर्मदा पर छोड़ देती है। नर्मदा का यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है – ''ये नीरजा और परदीप, मेरे देखते–देखते बड़े हुए कि ना। कुछ दिन पहले तलक पजामे का नाड़ा बँधाने भी मेरे पास आवें थे और अब बन गये हैं लाट, डॉक्टर। और मैं? वहीं–की–वहीं, जवान से बूढ़ी हो रही ताबेदार। सारी उमर कमा–कमा के दूसरों का गोगड़ भरने के सिवा किया क्या? जब पढ़ने की उमर थी, पिघला सीसा लिये भागती फिरी या गीला पोंछा। जवानी आयी तो प्यार के दो बोल सुनने को तरस गयी। न मरद अपना हुआ, न सूनी गोद भरी। सारी उमर तुम्हारे पिल्लों को पालते काट दी। अरे, मैं ना होती तो कर सके थे, नीरजा–परदीप, इत्ती ऊँची पढ़ाई, बन सके थे, ये बड़े–बड़े बँगले, कारखाने? कौन राँध–राँध के खिलाता उने ताकत देनेवाला खाना और कौन करता, रात–दिन, तुम्हारे घर की पहरेदारी ?''[36] मध्यमवर्गीय व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होते हैं। उनके कई सपने होते हैं, जिन्हें वे पूरा करना चाहते हैं, परंतु रोजमर्रा की दौड़धूप में उनके ये सपने अधूरे रह जाते हैं। आर्थिक अभाव व जिम्मेदारियाँ उन सपनों की धज्जियाँ उड़ा देते हैं। स्मिता आगे पढ़ लिखकर अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है, उसके जीवन के कई सपने हैं, जिन्हें वह पूरा करना चाहती है, लेकिन आर्थिक परवशता के कारण वह अपने जीजा के घर में रहते हुए उसकी हवस का शिकार होती है तथा उसके सपने टूटकर चकनाचूर हो जाते हैं।

मध्यमवर्गीय परिवारों में पति–पत्नी दोनों के बीच खुला व्यवहार न होने के कारण अनेक गलतफहमियाँ पनपती रहती हैं, जिसके कारण उनके दांपत्य जीवन में टूटन व बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पति–पत्नी दोनों में से एक की व्यस्तता भी दांपत्य–संबंध में बिखराव का कारण बन जाती है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा अपने पति जितेन की व्यस्तता से परेशान है। वह अपने अकेलेपन को भरने के लिए कॉलेज में नौकरी करती है, जहाँ उसकी मुलाकात अर्थशास्त्र के प्रोफेसर मधुकर नागपाल से होती है और वह उसके साथ अपना रिश्ता आगे बढ़ाती है। कार की बंद खिड़कियों की अपेक्षा खुले स्कूटर पर सैर करना अधिक पसंद करती है। जितेन से तलाक लेकर मधुकर से विवाह कर लेती है। जितेन के पास उसके मन की बात सुनने तक की भी फुर्सत नहीं रहती है। मनीषा सोचती है – ''रात का खाना खाकर वह दोनों बैठक में आ बैठे थे, तभी उसने बात छेड़ी थी। चाह रही थी कि पूरी बात खोलकर उससे कहे जिससे उसे अपने से या वह उससे शिकायत का मौका न मिले। पर इसके लिए आवश्यक था जितेन का एकाग्र मनोयोग। वही मिलना कठिन हो रहा था। वह कुर्सी के एक कोने पर बैठी बेचैनी से टेलीफोन के समाप्त होने की राह देख रही थी पर वह था कि खतम होने में ही नहीं आ रहा था। शायद फैक्टरी में गड़बड़ होगी। वार्तालाप सुनने का उसने प्रयत्न नहीं किया; मन–ही–मन जो उससे कहना था वह दुहराती रही।''[37] तथा ''जिस आदमी को उससे दो बात करने तक की फुर्सत नहीं है उससे कैसा लगाव? जो रिश्ता रात के अँधेरे में जन्म लेता है और चन्द घण्टे कायम रहकर दिन के उजाले के साथ–साथ खत्म हो जाता है, उसे तोड़ने में कैसा संकोच?''[38] पति–पत्नी कभी–कभी एक दूसरे के साथ नापसंद होते हुए भी साथ रहने के लिए बाध्य होते हैं। मधुकर व मनीषा को भी हमेशा एक साथ रहना पड़ता है चाहे वे उस वक्त एकांत ही क्यों नहीं चाहते हों। मनीषा का यह कथन – ''यह वैवाहिक–जीवन भी अजीब चीज है, वह सोच रही थी। जो करो एक साथ! साथ बैठो, साथ बोलो, चाहे बोलने को कुछ हो, चाहे नहीं, साथ घूमों, साथ दोस्त बनाओ, चाहे एक का दोस्त दूसरे को कितना ही नामुराद क्यों न लगे, साथ खाओ और साथ सोओ, चाहे एक के खर्राटे

दूसरे को सारी रात जगाये क्यों न रखें। वह थका है दिमाग से, और कसरत करना चाहता है, वह थकी है जज़्बात से और अकेले रहना चाहती है, पर चूँकि वे विवाहित है, इसलिए जरूरी है कि जो भी वे करें; दोनों करें, चाहे उससे एक को कितनी ही कोफ़्त क्यों न हो।''[39]

मध्यमवर्ग व उच्च मध्यमवर्ग के दंपति एक–दूसरे के साथ खुलकर जीवन नहीं जी पाते हैं। घर में अंतिम निर्णय हमेशा पुरुष लेता है। 'उसके हिस्से की धूप' के जितेन व 'मैं और मैं' के राकेश का जीवन बाहरी कामों में व्यस्त रहता है। दोनों ही कारखाने के कार्यों में व अर्थ कमाने में व्यस्त रहते हैं तथा पत्नी के लिए व बच्चों के लिए पर्याप्त समय नहीं निकाल पाते हैं। अर्थ की दौड़ में जितेन का दांपत्य बिखर जाता है, परंतु माधवी के दो बच्चे होने और लेखन कार्य में व्यस्त होने के कारण वह अकेलेपन से मुक्त रहती है, जिससे उसका दांपत्य बिखरने से बच जाता है। माधवी का देर से उठना और राकेश का सुबह पाँच बजे उठकर दवाई के कारखाने की तरफ फरीदाबाद चले जाना तथा शाम सात बजे वापस आकर फोन की घंटियों के बीच उलझने में व्यस्त जीवन शैली से वैवाहिक बंधन खो–सा गया है। माधवी टेलीफोन की घंटी की आवाज को बार–बार सुनकर कहती है, कि यदि यह संगीत का सुर होता तो अच्छा होता –''राकेश को ताजी हवा का मिराक है। खिड़की–दरवाजे सब खुले रखना चाहता है और माधवी है कि तमाम दरवाजे बन्द करके अँधेरे में अपने भीतर झाँकना चाहती है। राकेश को क्या कभी भीतर झाँकने की जरूरत महसूस नहीं होती? फुर्सत ही कहाँ है? सुबह छह बजे फोन लेकर जो बैठता है तो नौ बजे चोंगा छोड़कर सीधा फरीदाबाद जाता है, दवाइयों के अपने छोटे–से कारखाने पर। सात बजे लौटने पर फिर वही फोन की टन–टन। हर पाँच मिनट पर घंटी बजती है तो माधवी सोचती है, क्या अच्छा हो अगर फोन की घंटी सितार या सरोद के सुरों में बज सके। और कुछ नहीं तो संगीत रसास्वादन हो। राकेश को फोन से अलग नहीं किया जा सकता। वह तो ऐसे होगा जैसे चाँद से दाग को हटा देना। जो हो नहीं सकता.........यह दाग रहेगा ही। दाग क्या, काली–कलूटी मक्खी है, भीमकाय, जो हर कमरे में भिनभिन करती घूमती रहती है। राकेश ने इन्तजाम करवा रखा है कि फोन उठाकर हर कमरे में ले जाया जा सकता है।''[40]

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय पति–पत्नी के दांपत्य–जीवन में आई टूटन तथा बिखराव को चित्रित किया है। एक–दूसरे के संबंधों के प्रति शंकालु होने की स्थिति में भी दांपत्य–जीवन में टूटन आई है। 'वंशज' उपन्यास में सविता और सुधीर के माध्यम से टूटते दांपत्य को दिखाया है, तो रेवा और संदीप का सुखदायी संसार भी दिखाया है। 'कठगुलाब' में दर्जन बीबी को अपने पति के सामने देह बनकर जीना स्वीकार नहीं था इसलिए उसका अपने पति से संबंध टूटा है, तो स्मिता का जिम जारविस द्वारा किए गए दुर्व्यवहार व बलात्कार और शिशु हत्या के कारण संबंध टूट जाता है। मारियान को भी उसका पति इर्विंग धोखा देता है तथा उसका उपन्यास 'वुमेन ऑफ द अर्थ' अपने नाम से छपवा लेने के कारण संबंधों में दारार आती है तथा संबंध–विच्छेद हो जाता है। नमिता भी अपने दुष्ट पति के स्वभाव के कारण ही असीमा के भाई असीम से रिश्ता जोड़ती है। इनके उपन्यासों के सभी पात्रों के टूटते–जुड़ते संबंध उच्च मध्यमवर्गीय समाज में देखे जा सकते हैं।मध्यमवर्गीय स्त्री घर–परिवार के बीच उलझी रहती है – अपने पति, बच्चे, उनकी देखभाल, घर का काम–काज, बजट की चिंता आदि के साथ ही लेखन कार्य भी करना इत्यादि। 'मैं और मैं' उपन्यास की माधवी भी इसी प्रकार से घर–परिवार व लेखन कार्य के बीच उलझी हुई दिखाई देती है। माधवी और राकेश के बीच का दांपत्य सफल है। वह हर मध्यमवर्गीय स्त्री की भाँति लेखन से पहले अपने पति और बच्चों का ध्यान रखती है।

उच्च मध्यमवर्ग में लड़कियाँ शादी बहुत सोच समझकर करती हैं। लड़के से अधिक खानदान और आर्थिक संपन्नता को देखती हैं। प्रेम में खुद को भूलकर जिंदगी भट्टी में नहीं झोंकती हैं तथा सोच–समझकर विवाह के फैसले लेती हैं। 'वंशज' उपन्यास की सविता ने भी ऐसा ही किया था। वह भी पूरी जानकारी के साथ सुधीर की जिंदगी में प्रवेश करती है तथा वह व्यावहारिकता, दुनियादारी, दूरदर्शिता, निर्भीकता, स्वार्थपरता में निपुण है। उसके भाई

अतुलदेव का यह कथन व्यक्त करता है – ''लड़कियों को दिलचस्पी पति और घरबार में होती है। होनी भी चाहिए। हमारी बहने यह अच्छी तरह जानती हैं।''[41] सुधीर और सविता का दांपत्य भी असफल और अनमेल है। सुधीर का यह सोचना अनमेल व असफल दांपत्य को व्यक्त करता है। वह सोचता है – ''पाक कला में निपुण, दुनियादारी में माहिर, रुपये पैसे में चौकस, ये तो नहीं चाहता था वह?''[42] 'चित्तकोबरा' की मनु भी महेश के होते हुए अन्य पुरुष रिचर्ड से प्रेम करती है। 'अनित्य' का अविजित भी अपनी पत्नी श्यामा के होते हुए संगीता, रंजना, काजल बनर्जी के बीच फँसा रहता है। 'मिलजुल मन' उपन्यास भी एक मध्यमवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। जिसमें आर्थिक उतार–चढ़ावों को चित्रित करते हुए सफल दांपत्य संबंधों को चित्रित किया है।

मृदुला जी ने अंग्रेजों की अनुशासनप्रियता से घिरे हुए मध्यमवर्गीय समाज के जीवन को अपने उपन्यास 'वंशज' में अभिव्यक्त किया है। टेबल मैनर्स, दूसरों से बात करने का लहजा, चलना–फिरना आदि की अलग ही शैली आदि पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है। शुक्ला साहब भी अनुशासन के कायल हैं और इसीलिए सुधीर की हरकतों के लिए उसे हमेशा डाँटते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। मृदुला जी ने मध्यमवर्गीय अकेलेपन को भी अपने उपन्यासों मे चित्रित किया है। 'उसके हिस्से की धूप' में जितेन की व्यस्तता के कारण मनीषा और जितेन के बीच अकेलेपन व अजनबीपन की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए नौकरी करके व्यस्त रहना चाहती है। 'वंशज' में सुधीर भी अपने उसूलों के कारण अकेलापन महसूस करता है और उसे लगता है कि घर में उससे कोई प्यार नहीं करता है। 'कठगुलाब' में सभी स्त्री पात्र अकेलेपन में जी रहे हैं। स्मिता, नीरजा, नर्मदा, असीमा, नमिता, मारियान, दर्जन बीबी आदि सभी अकेलेपन में जीती हैं, परंतु अंत में वे अपना अकेलापन बाँट लेती हैं तथा खुशहाल जीवन जीती हैं। 'मिलजुल मन' उपन्यास में मोगरा व उसकी माँ हमेशा अकेले रहना पसन्द करती हैं। 'अनित्य' उपन्यास का अनित्य परिचित होने पर भी अजनबी है। अविजित भी अकेलेपन से घिरा हुआ दिखाई देता है। उसकी पत्नी श्यामा बीमार है तथा पुत्र सुधांशु मंदबुद्धि है। उसका अंतरंग व्यक्तित्व उसे अपराध बोध से घेर लेता है। वह काजल बनर्जी के साथ किए बर्ताव पर शर्मिंदा है। अपनी बेटी की उम्र की संगीता के साथ भी अपने शारीरिक संबंध बनाता है और अपने इस अतीत में किए गए अपराध के लिए विचलित रहता है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से मध्यमवर्गीय समाज में होने वाले जीवन मूल्यों के अवमूल्यन को भी चित्रित किया है। महानगर की तरफ बढ़ते कदम व पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप आज की पीढ़ी पुराने मूल्यों का अवमूल्यन करते हुए दिखाई देती है। इनके 'वंशज' उपन्यास में जज शुक्ला साहब व सुधीर के माध्यम से दिखाया गया है कि किस प्रकार एक बेटा अपने पिता से विद्रोह करता है तथा उनके अंग्रेजी अनुशासन से बाहर निकलना चाहता है। उनकी बहू सविता द्वारा जायदाद में हिस्से के लिए अपने श्वसुर और पति से प्यार का झूठा स्वांग रचना आज के अर्थलोभी मध्यमवर्ग की ओर इशारा करता है। 'अनित्य' उपन्यास में सरण, मुकर्जी बाबू जैसे लोगों के माध्यम से भ्रष्टाचार जैसे अवमूल्यन दिखाए गए हैं तथा अविजित का अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से संबंध व अपनी आश्रिता संगीता के साथ संबंध भी जीवन मूल्यों के अवमूल्यन को ही दर्शाता है। 'चित्तकोबरा' व 'उसके हिस्से की धूप' में पति के रहते अन्य पुरुष से शारीरिक संबंध बनाना भी बदलती मानसिकता व जीवन मूल्यों के पतन को चित्रित करता है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है कि व्यक्ति में अहं बोध के कारण मूल्यों का पतन होता है, जिसके कारण अपराध बोध जन्म लेता है। अधिकांश मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपराध बोध से घिरे होते हैं। वे अपने चारों ओर होती लापरवाही, अत्याचार, अन्याय व शोषण से आगाह हैं। उनके मन में इन सबके प्रति द्वेष होते हुए भी इनका विद्रोह नहीं कर पाते हैं। 'मैं और मैं' उपन्यास का पात्र कौशल कुमार भी ऐसा ही एक निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्ति है। समाज की बुराइयों के प्रति उसके मन में आक्रोश है, जिसे वह माधवी के माध्यम से पूँजीपति वर्ग के प्रति प्रकट करता है। माधवी मे भी विद्रोह करने का आग्रह है।

उसके पड़ोस में हुई चोरी के लिए जब एक नौकर को दोषी ठहराकर जेल में डाल दिया जाता है और वहाँ उसकी मौत हो जाती है तब उसके मन में कुछ न कर पाने के कारण अपराध बोध दिखाई देता है। अपने चारों ओर हो रहे अत्याचार, अन्याय व शोषण के प्रति द्वेष होते हुए भी इनका विद्रोह न कर पाने का दुःख तो है, परंतु विद्रोह नहीं कर पाती है। अपने लेखन में जिन मूल्यों को रचती है, वास्तविक जिंदगी में उन्हीं मूल्यों से मुँह मोड़ते हुए दिखाई देती है। 'कठगुलाब' उपन्यास की स्मिता का बलात्कार उसकी बहन की साझेदारी से होता है, जिससे एक बहन द्वारा अपनी बहन के बलात्कार में भागीदारी होना भी जीवन–मूल्यों के पतन को दर्शाता है। इसी उपन्यास की नर्मदा का विवाह उसके जीजा गणपत से करवाने में उसकी बहन सहयोगी होती है। एक नाबालिग लड़की की शादी उसकी बहन के होते हुए, उसके पति से करवाना भी जीवन–मूल्यों के पतन की ओर संकेत करता है। नमिता का असीम के साथ अवैध संबंध भी मूल्य–ह्रास को ही चित्रित करता है। विपिन का नीरजा के साथ अपने पिता बनने का आग्रह व बिना शादी के ही साथ रहना भी पुराने भारतीय जीवन–मूल्यों का अवमूल्यन दर्शाता है।

मृदुला जी के 'अनित्य' उपन्यास में भी काजल बनर्जी, संगीता, अविजित के माध्यम से पति–पत्नी के जीवन–मूल्यों में आए पतन को चित्रित किया है। 'मैं और मैं' का कौशल कुमार अपने जीवनानुभवों से प्रेरित होकर जिन मूल्यों की बात करता है, उन्हें खुद ही तोड़ते हुए दिखाई देता है। माधवी का आर्थिक व मानसिक शोषण करके, उसकी जिंदगी में खलबली मचाकर अपने ही मूल्यों को तोड़ते हुए दिखाई देता है। कौशल कुमार के मन में सर्वहारा वर्ग पर हो रहे अन्याय के खिलाफ आक्रोश है, क्योंकि वह स्वयं उस दर्द का भोक्ता है, परंतु वह भी माधवी के साथ मानसिक और आर्थिक अत्याचार ही तो कर रहा है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में मुख्यतः मध्यमवर्गीय व्यवस्था के यथार्थ का विश्लेषण किया है। इन्होंने मध्यमवर्गीय समाज के सभी कोनों पर प्रकाश डाला है। इनके द्वारा चित्रित मध्यमवर्गीय व्यवस्था में डर भी है, तो विश्वास भी। निःस्वार्थता है, तो स्वार्थीपन भी। इस वर्ग के व्यक्ति की ऊब, आकांक्षा, कुंठा, अजनबीपन व अकेलेपन, आक्रोश, मूल्य–ह्रास आदि का बखूबी चित्रण किया है। सबके साथ होते हुए भी अकेलापन, असुरक्षा की भावना के कारण विदेशी लगाव आदि को भी अभिव्यक्त किया है।

(च) वाणिज्य व व्यापार चेतना :

मनुष्य को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अर्थ अर्थात धन की आवश्यकता होती है। वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इनमें से अधिकांश वस्तुएँ उसे बाजार से मोल खरीदनी पड़ती हैं। वस्तुओं को खरीदने के लिए धन की आवश्यकता होती है तथा धन को प्राप्त करने के लिए या तो वह दूसरों की सेवा करता है, या फिर ऐसी वस्तुएँ तैयार करता है, जिनका क्रय–विक्रय किया जा सकता है, जो स्वयं और दूसरों के लिए उपयोगी हैं। वस्तुओं का रूप बदलकर उनको अधिक उपयोगी बनाने का कार्य करता है, जो उद्योग कहलाता है।

समाज में व्यावसायिक गतिविधियों को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया है – उद्योग या वाणिज्य। अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान की सुविधा का संबंध वाणिज्य से ही है। वाणिज्य व व्यापार दोनों शब्द एक नहीं हैं, अपितु इनका उपयोग परस्पर किया जाता है। व्यापार से तात्पर्य केवल धन या धन के बदले में वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने व बेचने से है। वाणिज्य का दायरा व्यापार की अपेक्षा अधिक व्यापक है, जिसमें केवल वस्तुओं और सेवाओं का आदान–प्रदान ही संदर्भित नहीं होता, अपितु उस विनिमय को पूरा करने वाली गतिविधियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

व्यापार एक सामाजिक गतिविधि है तथा वाणिज्य एक आर्थिक गतिविधि है। व्यापार में माल या सेवाओं का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को नकद या नकद–समकक्षों पर

विचार करने के लिए स्थानांतरित किया जाता है। यह दो या दो से अधिक दलों के बीच किया जा सकता है। व्यापार घरेलू व विदेशी दोनों हो सकता है अर्थात देश की सीमाओं के भीतर व सीमाओं के पार भी हो सकता है। विदेशी व्यापार प्रतिभूतियों या निधियों में निवेश के माध्यम से किया जाता है तथा इसे आयात–निर्यात के रूप में जाना जाता है। वस्तु के निर्माता से अंतिम उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान को सुविधाजनक बनाने वाली गतिविधियाँ वाणिज्य में शामिल होती हैं। जब उत्पाद निर्मित हो जाते हैं, तो ग्राहकों तक पहुँचाने के लिए गतिविधियों की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। सर्वप्रथम थोक व्यापारी माल को क्रय करता है तथा परिवहन का उपयोग करते हुए सामान को भंडार गृहों तक उपलब्ध करवाता है और माल के नुकसान की सुरक्षा के लिए बैंकिंग व बीमा सेवाओं का लाभ भी उठाता है। खुदरा विक्रेता माल को अंतिम उपभोक्ता को विक्रय कर देता है। वाणिज्य व्यापार की शाखा है, जो विनिमय की सुविधा में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करने में मदद करता है। वाणिज्य में किसी आर्थिक महत्त्व की वस्तु जैसे–सामान, सेवा, सूचना या धन का दो या दो से अधिक व्यक्ति या संस्थाओं के बीच सौदा किया जाता है। वाणिज्य पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का मुख्य वाहक है। वाणिज्य में वे सभी कार्य सम्मिलित रहते हैं, जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक होते हैं।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में वाणिज्य व व्यापार की स्थिति को भी चित्रित किया है। पूँजीवाद के शिकंजे आज अधिनिवेशी शक्तियों, जैसे – मल्टी नेशनल कंपनियाँ, भारत जैसे देशों को अपनी नयी व्यापारिक नीतियों से गुलामी की ओर वापस धकेल रही हैं। गांधीजी का हवाला देकर कहा गया है, कि यंत्रीकरण को अनिवार्य मत बनने दो। इससे पहले कि पूँजीवाद का राक्षस हमें हजम कर जाये, हमें उसकी पकड़ से बाहर हो जाना चाहिए। हमें भारत में छोटे उद्योगों और खुदकाश्त खेती की तरफ अग्रसर होना चाहिए। अपना फायदा देखने वाले उद्योगपतियों पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है, कि मुनाफा कमाने के लिए छोटे उद्योगों की आड़ में बड़े उद्योग चलाए जा रहे हैं तथा मजदूरों व कामगारों का आर्थिक शोषण किया जाता है।

'मिलजुल मन' उपन्यास में मृदुला जी ने भारत के वाणिज्य व व्यापार की ओर ध्यानाकृष्ट किया है। उद्योगों व व्यापार को लेकर देश में अपनाई जा रही नीतियों, विदेशी कंपनियों के साथ साझा व्यापार व विदेशी कंपनियों का भारत आकर व्यापार करना और उनकी कूटनीतिज्ञता पर प्रकाश डाला है। उद्योग धंधों को सरकार द्वारा अपने नियंत्रण में लिए जाने व विदेशी साझेदारी की ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए लेखिका कहती हैं – ''सियासी जुबान में उसे एक तरफ, गैरमुत्तासिर हिकमत कहा गया तो दूसरी तरफ, मिला–जुला आर्थिक कायदा। असल मतलब दो हुए। एक तरफ, सरकार ने इस्पात कारखाने से लेकर डबल रोटी बनाने तक का, हर मुमकिन कारोबार अपने कब्जे में कर लिया। दूसरी तरफ, अमेरिका से होड़ लेती, बड़ी–बड़ी बहुआयामी पन–बिजली योजनाओं पर काम शुरू कर दिया। अमेरिका और सोवियत संघ दोनों खेमों के सरदारों और उनके चेले–चपाटे देशों की मदद से, बड़े–बड़े बांध बनाए जाने लगे।''[43] यहाँ सरकार की वाणिज्य व व्यापार के प्रति चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। विदेशी कंपनियों के हमारे यहाँ आकर काम करने का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''मेरे साथ काम करना चाहेंगे? मैं रिहांड–बांध पर प्रोजेक्ट तैयार करवा रहा हूँ।''

'आपकी कंपनी..........'

'अमेरिकन है। मुझे लिएजां के लिए रखा है।'

..............मैं पहले से जानता था कि यह बांध अमेरिका के हिस्से आएगा।''[44]

तथा ''हमे कंजूस–मक्खीचूस की ही जरूरत है, जो हिन्दुस्तान की हरामी सरकार से हमें, कम–से–कम खर्चे पर कॉन्ट्राक्ट दिलवा सके।''[45]

उक्त कथन के माध्यम से लेखिका व्यक्त करना चाह रही हैं, कि विदेशी कंपनियाँ हमारे देश में आकर हमें अंदर–ही–अंदर खोखला बना देंगी, क्योंकि वे सिर्फ अपना स्वयं का ही आर्थिक फायदा देखती हैं। बैजनाथ के द्वारा व्यापारिक कूटनीतिज्ञता का परिचय देते हुए कहा गया है –

''तभी आपने एक हरामी अमेरिकन कंपनी को चुना।''

'क्यों माबदौलत आपको कम हरामी लगे?'

'नहीं, ज्यादा। आखिर आप हरामियों के दलाल हैं।'

'कहीं आप मेरी बेइज़्ज़ती तो नहीं कर रहे?'

'बिल्कुल नहीं, तारीफ कर रहा हूँ। जात से मैं बनिया हूँ। जानता हूँ, दलाली से ज़्यादा हुनरमंद और मुश्किल पेशा, दूसरा नही है।''[46] बैजनाथ का यह वार्तालाप यहाँ व्यापार के मध्य दलालों की भूमिका की ओर इंगित करता है।

व्यापार के बहाने आने वाली विदेशी कंपनियों की सच्चाई को लेखिका ने बैजनाथ व पीटरसन के वार्तालाप द्वारा व्यक्त किया है – ''आप क्या समझते हैं, हम यहाँ बिजनेस करने आए हैं! चुगद हैं आप। हम आए हैं, कम्यूनिज़्म से लड़ने। उसे आपके यहाँ पाँव पसारने से रोकने। ऱफ्ता–ऱफ्ता पूरी दुनिया से उसे नेस्तनाबूद करने। आप हमारी मुहिम के पहले चैक पोस्ट हैं। ....औजार खरीदेंगे तो कभी इस गुट से, कभी उस गुट से। अफ़सरों की मौज है। माल खरीदो उससे, जो तकनीक में सिफर हो पर रिश्वत देने में अव्वल। हसमे लीजिए हर माल। हम रिश्वत भी देंगे, मदद भी।''[47] तथा ''दो महीने गुजार लो, मैं नई अमेरिकन कंपनी पीटरसन एंड पीटरसन को कॉन्ट्राक्ट दिलवाने में उलझा हूँ।''[48] तथा ''आप बहस करना चाहते हैं, चलिए, आप ही सही। यह बतलाइए, ये जो ढेरों अमेरिकन कंपनियाँ देश में घुसी चली आ रही हैं, उनमें नौकरी पाने की आस, हमारे नवयुवकों को अमेरिका पलायन के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगी? पहले अंग्रेजों ने लादी थी, अब अमेरिकन हमारे सिर पर अंग्रेजी लादेंगे।''[49] यहाँ लेखिका व्यक्त करना चाहती हैं, कि ये विदेशी कंपनियाँ हमें फिर से गुलामी की ओर धकेल रही हैं। हम काम के लिए परनिर्भर बन जाएँगे।

देश की कमजोर आर्थिक स्थिति का फायदा हर विदेशी मुल्क उठाना चाहता है। व्यापार व मदद के नाम पर सभी सिर्फ अपना ही फायदा देखते हैं। इसे लेखिका ने इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है – ''हमारा वज़ीरे मालियात कटोरा लिए, इस मुल्क से उस मुल्क घूमता है कि दो, मदद के नाम पर कर्ज दो। इंगलिस्तान ठहरा कर्जदार, सो स्टरलिंग खाते के एवज़ में, जरूरी माल मुहैया करवा रहा है। ....मुफ्त तो अमेरिका किसी को ज़हर भी नहीं देता सो बदले में, हम बेचारे जो दे सकते हैं, दे रहे हैं। एक ही चीज बहुतायत में थी हमारे पास, पुरानी तहज़ीब। सो ढेरों–ढेर नाचने–गाने वाले और धर्मगुरु वहाँ भेजे। पलड़ा फिर भी उनका भारी रहा तो पुरानी के साथ नई किताबें भी थोक के तोल भेजने लगे।''[50]

देश के अंदर भी उद्योग व व्यापार पर प्रकाश डालते हुए लेखिका कहती हैं, कि देश के अंदर भी व्यापार व्यवस्था में दलालों व बिचोलियों का बोलबाला था। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''वाजिब से बहुत कम कीमत पर खादी बुनवाई जाती और फैशनबुल छापे मार, महंगे दाम बेची जाती। तमाम फायदा दलालों–बिचौलियों का।''[51] इसी क्रम में मृदुला जी आगे कहती है, कि – ''1960 का वक्त था जब निजी उद्योग, सरकार की गिद्ध नजर के तहत चलते थे। जिसके पास जो नौकरी होती पकड़कर बैठा रहता। जुग्गी चाचा की पीढ़ी की तरह सरकारी नौकरी के पीछे न भी भागता पर निजी कारोबार में उसी मुस्तकिल हिफाज़त के लिए किस्मत आजमाई जाती। नौकरी छोड़ने–पकड़ने की अमेरिकन रिवायत, अनहोनी चीज थी।''[52] लेखिका का यह कथन सरकार की उद्योग के प्रति चेतना को व्यक्त करता है।

मृदुला जी का यह कथन वाणिज्य व व्यापार चेतना को अभिव्यक्त करता है – ''अगर हमने यूरोपीय आर्थिक इकाई और साझा बाजार (यूरोपियन इकोनोमिक कम्युनिटी और कॉमन मार्केट) की तर्ज पर, जो तीन साल पहले बनी है, एशियाई आर्थिक इकाई नहीं बनाई तो हम आर्थिक दौड़ में पिछड़ जाएँगे। हमेशा के लिए अमेरिका और यूरोप का मुँह ताकने पर मजबूर होंगे।''[53] लेखिका सचेत करते हुए कह रही हैं, कि यह वैश्वीकरण का दौर है, इसमें बाजार बन कर रह जाने के बाद पश्चाताप करने से कोई फायदा नहीं है। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भी हमारे देश से पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं, बल्कि और भी गहरी हो गयीं। ''यह उपभोक्ता संस्कृति एक खास किस्म की महाजनी सभ्यता को जन्म देती है, जहाँ हर व्यक्ति का ध्येय होता है अधिक–से–अधिक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करना। ......हर संबंध को वह उसकी उपयोगिता के आधार पर आँकता है और एक प्रकार की संबंधहीनता में जीने पर मजबूर रहता है।''[54] समाज में फैली अंधानुकरण की यह भावना एक विकराल रूप ले चुकी है, जो देश के अंदर की भयानक आर्थिक वैषम्य की स्थिति को भूलकर विकसित देशों की उपभोग–वृत्तियों के लिए लालायित है।

(छ) अन्याय व शोषण का विरोध :

वर्तमान वैज्ञानिक युग में अर्थ ही जीवन विधायक व सर्वमान्य तत्त्व बन गया है। आर्थिक समृद्धि द्वारा ही शक्ति का संचय होता है तथा शक्ति से ही सत्ता चलती है। प्रत्येक युग का राजीतिक, सामाजिक घटनाक्रम तात्कालिक आर्थिक परिस्थिति से प्रभावित रहता है। आज मानव का मूल्यांकन भी अर्थ के आधार पर किया जाने लगा है तथा अर्थ की प्रतिष्ठा ने समाज में विभिन्न विषमताओं को जन्म दिया है। संपूर्ण समाज हमें अर्थ के आधार पर वर्गों में विभाजित दिखाई देता है, जिसका प्रभाव प्रत्येक वर्ग पर पड़ता है। अर्थ के आधार पर ही उस वर्ग के लोगों की मानसिकता, वर्गगत भावनाएँ, दृष्टिकोण व विचारधाराएँ बनती हैं। अर्थ के असमान वितरण के कारण ही वर्गों के बीच दूरी बढ़ती जाती है। मार्क्सवादी सिद्धांत ानुसार समाज में दो मूलभूत वर्ग–विभाजन का कार्य भी संपत्ति की बुनियादी आर्थिक संरचना की देन हैं – बुर्जुआ और सर्वहारा। उत्पादन के साधन पूँजीपतियों के पास हैं, लेकिन इसमें प्रभावी रूप से सर्वहारा वर्ग के रूप में वे लोग शामिल हैं, जो केवल अपनी श्रमशक्ति बेचने में सक्षम हैं। उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के संदर्भ में दो वर्ग सदैव बने रहे हैं – एक वर्ग तो वह होता है, जिसका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होता है और दूसरा वह होता है, जो इसके स्वामित्व से वंचित रहता है। औद्योगिक विकास के कारण समाज में दो वर्ग उद्योगपति और मजदूर वर्ग स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। दोनों की आर्थिक परिस्थितियाँ एक–दूसरे के प्रतिकूल होती हैं। उद्योगपति अर्थात पूँजीपति वर्ग उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार जमा लेने के कारण शोषक वर्ग की भूमिका निभाता है, तो वहीं दूसरी ओर मजदूर वर्ग होता है, जिसका शोषण पूँजीपति वर्ग द्वारा किया जाता है। इन दोनों की परिस्थितियाँ एक–दूसरे के विपरीत होने व परस्पर विरोधी आर्थिक स्वार्थ होने के कारण दोनों में परस्पर निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। मशीनी उद्योग के कारण इन दोनों वर्गों के बीच संघर्ष तीव्र होने लगा तथा सर्वहारा अर्थात शोषित वर्ग अन्याय व शोषण का विरोध करते हुए दृष्टिगोचर होता है।

भारतीय समाज में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग जैसी वर्गभेद की स्थिति पहले से ही चली आ रही है। अंग्रेजी राज के समय भी भारत का जबरदस्त आर्थिक शोषण हुआ तथा औद्योगिक क्रांति के पश्चात् तो भारत की स्थिति और भी दयनीय हो गई। मशीनी उत्पादन के कारण भारत में गृह–उद्योग प्रभावित हुआ तथा मध्यमवर्ग और मजदूरों की आर्थिक स्थिति का पतन हुआ। उद्योगपति और अधिक अमीर होते गए तथा मजदूरों का शारीरिक व आर्थिक शोषण बढ़ता गया, जिसके कारण आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए वर्ग–संघर्ष चलता रहा। उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण चलता आया है तथा सर्वहारा वर्ग हमेशा ही पूँजीपतियों द्वारा शोषण का शिकार होता आया है। अपनी मूलभूत चेतना के कारण कभी–कभी सर्वहारा वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर, अपने शोषण से मुक्ति के लिए उसकी प्रतिक्रियास्वरूप सम्पन्न और पूँजीपति वर्ग के खिलाफ विद्रोह कर उठता है तथा ऐसा करते हुए उसे

नैतिक–अनैतिक की बात का अहसास नहीं रहता है। अपने अधिकार–बोध से परिचालित होकर वह जो कुछ करता है, उसके लिए उसे कोई पश्चाताप नहीं होता है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में भी समाज के आर्थिक परिवेश को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया गया है। इनमें उच्चवर्ग और निम्नवर्ग, सामंती वर्ग व कृषक वर्ग, पूँजीपति वर्ग व श्रमिक वर्ग आदि के बीच के वर्ग–संघर्ष को चित्रित किया गया है। समाज की आर्थिक विषमता का चित्र अपनी रचनाओं में खींचते हुए आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया है। प्रबुद्ध रचनाकार मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यास साहित्य में आर्थिक आधार पर विभाजित हुए उच्च, मध्यम व निम्न वर्ग की आर्थिक समस्याओं का विशद् निरूपण किया है। संपन्नता व विपन्नता के बीच वर्ग–चेतना को अभिव्यक्त किया है। निम्न वर्ग का होने वाला क्रूर शोषण व बालश्रम के द्वारा बच्चों पर होने वाले अत्याचार की ओर पाठकों का ध्यानाकृष्ट किया है। इनके उपन्यासों में मजदूरों की दयनीय दशा को अभिव्यक्त किया गया है, तो वहीं शोषण के प्रति विद्रोही चेतना का भी चित्रांकन किया गया है। वर्ग–संघर्ष के विभिन्न स्तरों का जीवंत चित्रण करते हुए तथा पूँजीपतियों की खुलकर भर्त्सना करते हुए निम्न वर्ग के द्वारा अन्याय का विरोध करने की भावना को चित्रित किया है। धन संचय की प्रवृत्ति के कारण बड़े–बड़े उद्योगपतियों, मंत्रियों, अफसरों आदि से साँठ–गाँठ द्वारा राजनीतिक प्रभाव से अधिकाधिक मुनाफा कमाने के लिए अधिकाधिक कोटा, परमिट और लाइसेंस प्राप्त करने की प्रवृत्ति को भी चित्रित किया है। अर्थमूलक संस्कृति के कारण समाज में पनपती अनैतिकता, भ्रष्टाचार, शोषण व अन्याय के प्रति विद्रोह के भाव को भी चित्रित किया है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास–साहित्य में अभिव्यक्त किया है, कि आर्थिक असमानता के कारण जनता में असंतोष की ज्वाला प्रज्वलित होती है। जब तक गरीब व मजदूर वर्ग भी आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं होंगे और उनके हक उन्हें नहीं मिलेंगे तब तक समाज में विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित होती रहेगी। आर्थिक विषमता के कारण ही वर्ग–संघर्ष उत्पन्न होता है। इन्होंने 'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। कौशल कुमार के माध्यम से सर्वहारा व मजदूर वर्ग के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई गई है। लेखिका यहाँ समानता की पक्षधर है तथा समाज में अमीर–गरीब व मजदूर–मालिक के संबंधों को समाप्त करने की ओर संकेत करते हुए दिखाई देती हैं। मजदूरों के शोषण के विरुद्ध चेतना व उनकी गिरती अवस्था को सुधारने के लिए उनके संगठित यत्न पर बल दिया है। कौशल कुमार के माध्यम से शोषित पीड़ित जनता के मन में समानता की आकांक्षा ही समाजवाद की आकांक्षा के रूप में प्रकट हुई है। उपन्यास में लेखिका ने उच्च वर्ग की सुविधाभोगी प्रवृत्ति तथा निम्न वर्ग का आर्थिक अभाव व दयनीय स्थिति दिखाकर कौशल कुमार की संपन्न वर्ग के प्रति ईर्ष्या, द्वेष व नफरत को चित्रित किया है। माधवी के प्रति कौशल कुमार का ईर्ष्याभाव है। निम्न व सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कौशल कुमार द्वारा उच्चवर्गीय लेखिका माधवी का आर्थिक शोषण चित्रित करके, सर्वहारा वर्ग का उच्च वर्ग पर अधिकार बोध तथा उच्च वर्ग का सर्वहारा वर्ग की स्थिति को देखते हुए अपराध बोध दिखाया गया है। कौशल द्वारा माधवी के आर्थिक व मानसिक शोषण के साथ ही समय–समय पर कौशल की उच्च वर्ग के प्रति घृणा, नफरत व द्वेषपूर्ण मानसिकता संपूर्ण उपन्यास में प्रकट होती हुई दिखाई देती है।

कौशल कुमार एक जीनियस लेखक है, जो उच्चवर्ग को अपना दुश्मन मानता है। विपन्नावस्था में जीवन व्यतीत करनेवाला, मार्क्सवादी विचारोंवाला कौशल कुमार अच्छी तरह से जानता है, कि उसके भाषण देने से कुछ भी नहीं बदलने वाला है। बदलाव के लिए एक बड़ी लड़ाई लड़ने की आवश्यकता है। वह कहता है –''बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए अपने को तैयार करना पड़ता है। और उसके लिए जरूरी है कि छोटी–छोटी मुठभेड़ों में जीत हासिल करके अपना हौसला बढ़ाते रहें।''[55] अपनी इसी चेतना के कारण वह माधवी से पैसे ऐंठता रहता है। धन के अभाव में व्यक्ति किस हद तक जा सकता है, इसको कौशल के माध्यम से चित्रित किया गया है। लेखिका ने कौशल के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, कि न्याय से वंचित,

आर्थिक लाभ से वंचित सर्वहारा वर्ग अब सक्रिय हो रहा है तथा अपने आसपास घटित घटनाओं को सजग होकर देख रहा है। उत्पादन में सक्रिय भूमिका निभाने वाले श्रमिक के खून पसीने पर पल रहे परजीवी जोंकनुमा पूँजीपति वर्ग से बदला लेने के लिए वह चतुराई से, अपने वाग्जाल से या किसी न किसी तरह अपने प्रति सहानुभूति पैदा करके अब उसका आर्थिक व मानसिक शोषण करते हुए दिखाई देता है। वह माधवी से पैसे भी ठगता रहता है और अपनी बातों की चतुराई से दया का पात्र भी बना रहता है। जब वह माधवी से एक हजार रुपये माँगता है, तो पहले लिए गए रुपयों के लिए उसके मन में कोई ग्लानि नहीं है तथा अभी भी विद्रोही भाव स्पष्ट झलक रहे थे। माधवी ने जब कौशल के चेहरे की ओर देखा तो उसका चेहरा तमतमा रहा था। उक्त कथन में उसके विद्रोह के तेवर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं –''वह स्तब्ध खड़ी रह गई। आँखों के सामने एक धुन्ध–सी उठ आई। उसी धुन्ध के बीच से उसने देखा, कौशल कुमार का चेहरा तमतमा रहा है, आँखों में बिजली कौंध रही है, माथे पर पसीने की बूँदे झिलमिला रही हैं, नथुने फड़क रहे हैं। दिमाग में अस्पष्ट–सा खयाल आया, पैसा माँगते हुए आदमी की आँखें शर्म से झुकी नहीं रहतीं? कौशल कुमार की आँखें तो ऐसे चमक रही हैं, जैसे प्रतिद्वंद्वी पर तलवार का वार तौल रही हों।''[56] जब माधवी कहती है, कि रोज–रोज पैसा देना संभव नहीं है, तब भी कौशल कुमार व्यंग्य में कहता है – ''जानता हूँ। जितने पैसों में मेरा पूरा परिवार महीने–भर की रोटी खाएगा, उतने का तो आपकी गाड़ी में पेट्रोल डलेगा। इसलिए तो कह रहा हूँ, परसों लौटा दूँगा।''[57] राकेश का यह कथन सर्वहारा की विद्रोह प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। वह कहता है – ''विद्रोह का यह भी तो रूप हो सकता है कि बैल की तरह जुआ ढोने के बजाय आदमी जोंक की तरह खून पीने लगे।''[58] रुपये मिलने के पश्चात् कौशल उन्हें लोटाना नहीं चाहता है, क्योंकि वह मौका देखकर उच्च वर्ग से इसी तरह बदला लेना चाहता है – ''अच्छा है। इतनी आसानी से रुपए मिलते रहते तो उसमें और उन परजीवी सेठों में अन्तर क्या रहता जिनके विरुद्ध उसका वर्ग–संघर्ष है। वर्ग–संघर्ष! वह ठठाकर हँस पड़ा। कैसा वर्ग–संघर्ष? सब अपने–अपने में गर्क हैं, अपने लिए लड़ रहे हैं; लड़ भी कहाँ रहे हैं, बस मौका देखकर एक–दूसरे को मार रहे हैं। वह भी ....''[59] उसके प्रतिरोध का यही तरीका है। वह कहता है – ''हर आदमी के अन्दर ऐसी आवाजें बुदबुद करती रहती हैं जिन्हें हमने बुर्जुआ संस्कृति से विरासत में पाया है। उनका काम ही है, घिसे–पिटे तर्क पेश करके पेंग भरते आदमी को अड़ंगी मारकर नीचे पटक देना। कौशल कुमार उनसे टक्कर लेना खूब जानता है। एक बार ये रुपए लौटा देने पर ....सम्भावनाएँ–ही–सम्भावनाएँ हैं।''[60] हिन्दू–मुस्लिम दंगों की बात करते हुए भी पूँजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है – ''दंगों के दौरान किया गया कत्ल आपके लिए कत्ल नहीं है। मुझे ऐसे लोगों से नफरत है जो सामाजिक अपराधों को अपराध नहीं मानते। जानती हैं, सामूहिक रूप से किया गया अपराध कहीं ज्यादा संगीन होता है। कहीं अधिक अमानवीय। पर आपके वर्ग के लोग ऐसा नहीं समझते। कैसे समझेंगे! समाज का पैसा बटोरकर लाखों लोगों को भूखा मरने के लिए मजबूर करते हैं पर उसे चोरी नहीं मानते।''[61] यहाँ उक्त कथन के माध्यम से पूँजीपति वर्ग के द्वारा किए गए शोषण के विद्रोहात्मक रूप में सर्वहारा वर्ग के आक्रोश को व्यक्त किया गया है। कौशल कुमार कहता है, कि विद्रोह रूपी आँधी व जलजला आए और पूँजीपति वर्ग अर्थात शोषकों की जड़ें हिला दे, उसके अस्तित्व को ही मिटा दे। कौशल का यह कथन शोषकों के प्रति विद्रोह को व्यक्त करता है –''वाह! चारों तरफ के मातमी सन्नाटे को चीरकर कौशल की हँसी गूँजी। वाह, बढिया है! आए आँधी। सब कुछ उड़ जाए, मिट जाए, ध्वंस हो जाए। काश, आँधी नहीं, जलजला आ जाए। आसमान से उतनी आशा बेकार है, पृथ्वी विद्रोह करेगी, खुद अपना पेट फाड़ लेगी तभी ध्वंस का लावा उठेगा, तभी ये भव्य अट्टालिकाएँ और सदियों से उन्हें छाँव देते पुराने पेड़ जड़ से उखड़कर गिरेंगे; आग और पानी मिलकर तांडव–नृत्य करेंगे और कौशल हँसेगा। अपने बदन को चिन्दी–चिन्दी होते देखेगा और हँसेगा; मरो, सब मरो। मैं अकेला नहीं हूँ, सब मेरे साथ हैं, मरो, मेरे साथ सब मरो!''[62]

मृदुला जी ने उच्च वर्ग की सुविधाभोगी प्रवृत्ति तथा निम्न वर्ग का आर्थिक अभाव दिखाकर कौशल की संपन्न वर्ग के प्रति ईर्ष्या, द्वेष एवं नफरत को चित्रित किया है। माधवी के

प्रति कौशल अपना ईर्ष्या भाव दिखाकर उच्च वर्ग के प्रति मन में व्याप्त नफरत व विद्रोह को ही दिखाता है। अपने जीवन में वह कुछ भी सुंदर नहीं मानता है। पैसों के अभाव में उसकी जिंदगी घृणास्पद है तथा वह माधवी के दंभ को जानकर कहता है –''रुपया हाथ का मैल है। जी हाँ, यह मैल सिर्फ बड़े आदमियों की हथेलियों पर जमता है। हमें मिल जाए तो हम साबुन की तरह उसका इस्तेमाल करें।''[63] यहाँ वर्ग–संघर्ष है, गरीबी–अमीरी का । 'मैं और मैं' में आर्थिक भेद को दो इनसानों के मध्य दिखाया है। एक लेखक बार–बार उधार माँगता है और माधवी उस लेखक को इनकार नहीं कर पाती है। वह अभावग्रस्तता और निर्धनता में जिंदगी गुजारता है तथा रोटी, कपड़ा व मकान जैसी आधारभूत आवश्यकता भी पूरी नहीं कर पाता है। माधवी के प्रति कौशल कुमार के मन में ईर्ष्याभाव है। वह कहता है –''पूँजीपति व्यवस्था में रहती हैं और इतना नहीं जानतीं कि यहाँ बिना बिचौलियों के कोई काम सिद्ध नहीं होता। मैंने कह दिया और आपने मान लिया! इतनी मासूम हैं तो..........यह मासूमियत भी इन्हीं बड़े लोगों की बपौती है। मासूमियत नहीं, यह खुदगर्जी है, उदासीनता है, क्रूरता है। जिन्दगी की जद्दोजहद से सिर्फ वही आदमी नावाकिफ रह सकता है जो अपने सोने के किले में महफूज बैठा रहे। ऊँची मंजिल के छज्जे पर खड़े होकर बाल सुखा लेने से ही आप सड़क के आदमी की हमसफर नहीं बन जाती।''[64] कौशल परपीड़क वृत्ति का व्यक्ति है और वह यह जान चुका है, कि माधवी को कहानी लेखन में उसकी आवश्यकता है। माधवी के सामने ही उच्च वर्ग पर टीका करते हुए कौशल भड़क उठता है – ''पर आपके वर्ग के लोग ऐसा नहीं समझते। कैसे समझेंगे! समाज का पैसा बटोरकर लाखों लोगों को भूखा मरने के लिए मजबूर करते हैं पर उसे चोरी नहीं मानते।'' हाँ, उनके अपने घर से कोई दो रोटी उठा ले जाए तो चोर–चोर की चीखोपुकार से आसमान सिर पर उठा लेते हैं। नफरत है मुझे आपके वर्ग के लोगों से...........''[65] कौशल के मन में छिपी विद्रोह की भावना को जानकर राकेश भी माधवी से कहता है, कि कौशल विद्रोही प्रवृत्ति का व्यक्ति है और इसी कारण वह कोई मेहनत नहीं करना चाहता है तथा पूँजीपति वर्ग का खून चूसना चाहता है। उच्च वर्ग के प्रति उसके मन में अत्यधिक घृणा व आक्रोश का भाव है। वह चाहता है कि पूँजीपति वर्ग का संपूर्ण विनाश हो जाए। वह स्वयं को पीड़ित, शोषित, वंचित और पूँजीपति वर्ग का शिकार मानता है तथा माधवी का आर्थिक व मानसिक शोषण करता है। मृदुला जी ने यहाँ कौशल को सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित करते हुए उसके माध्यम से अन्याय व शोषण के प्रति विद्रोह का भाव व्यक्त किया है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास 'वंशज' में भी मजदूरों के शोषण व विद्रोह के भाव को अभिव्यक्त किया है। उपन्यास का पात्र सुधीर जब रानीगंज, धनबाद की कोयला खान में नौकरी करते समय वहाँ के मजदूरों की विवशता व दुर्दशा देखकर तिलमिला उठता है तथा जब वह यह देखता है कि ठेकेदार भादूड़ी मजदूरों से ढाई रुपये पर अंगूठा लगवाता है और सिर्फ एक रुपया रोज देता है, यह देखकर वह सहन नहीं कर पाता है। मजदूरों के इस शोषण को देखकर सुधीर भादूड़ी से लड़ जाता है तथा उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। लेखिका ने मजदूरों के प्रति सहानुभूति व शोषण के प्रति विद्रोहभाव व आक्रोश को सुधीर के माध्यम से व्यक्त किया है। जब सुधीर का नौकर हरि अपने भतीजे रामू के लिए पक्की नौकरी की सिफारिश माँगता है, तब सुधीर को मजदूर की वास्तविक मजदूरी के बारे में ज्ञात होता है। रिकार्ड में ढाई रुपया दिखलाकर सिर्फ एक रुपया मजदूरों के हाथ में दे दिया जाता है, इस बात से सुधीर क्रोधित हो उठता है। मैनेजर भादूड़ी के कथन से मजदूरों के ऊपर होने वाले अत्याचार व शोषण का पता चलता है। भादूड़ी द्वारा किए जाने वाले शोषण के प्रति विद्रोह की ज्वाला सुधीर के शब्दों में निम्नानुसार अभिव्यक्त होती है – ''पागल? पागल आप किसे कह रहे हैं मिस्टर भादूड़ी? आप समझते क्या हैं? गरीब, भूखे–नंगे मजदूरों को बेचकर खा जाएंगे?''[66] शोषक वर्ग के प्रति तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति सुधीर के इस कथन में अभिव्यक्त होती है –''साले समझते क्या हैं अपने आपको। अंग्रेजों के जूते साफ करके जज की कुर्सी पर बैठ गये तो सबका भविष्य तय करने का ठेका मिल गया? जिसे चाहें फाँसी लगवा दें, जिसे चाहें नौकरी से निकलवा दें।''[67] सुधीर के उक्त कथनों से अभिव्यक्त होता है कि अन्याय व शोषण के विरोध में वर्ग–संघर्ष व विद्रोह की भावना तेजी से उत्पन्न हो रही थी।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में भी पूँजीपति वर्ग द्वारा मजदूरों व सर्वहारा वर्ग के शोषण के प्रति आक्रोश व विद्रोहभाव को चित्रित किया है। फैक्टरी में काम करने वाले मजदूरों की माँगे पूरी नहीं होने पर उनके द्वारा विद्रोहस्वरूप की जाने वाली हड़ताल से व्यक्त होता है, कि सर्वहारा व मजदूर वर्ग हमेशा ही पूँजीपतियों के शोषण का शिकार होता आया है, परंतु अब यह सर्वहारा वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर, अपने शोषण की प्रतिक्रियास्वरूप पूँजीपति वर्ग के खिलाफ विद्रोह करते हुए दृष्टिगोचर हो रहा है। जितेन का यह कथन – ''बंगलूर से ट्रंक कॉल थी। फैक्टरी में हड़ताल हो गयी है। मुझे फौरन जाना है।''[68] मजदूर वर्ग की अपने अधिकारों के लिए चेतना व विद्रोह को अभिव्यक्त करता है। लेखिका ने मधुकर के माध्यम से उच्च वर्ग के प्रति नफरत व द्वेष को अभिव्यक्त किया है। मधुकर कहता है –''किसी मैनेजर के पास चले जाइये, वह धड़ाधड़ बोलता चला जायेगा – मैनजमैन्ट बाई आब्जैक्टिव्स, आपरेशन रिसर्च, टाइम एण्ड मोशन स्टडी, और न जाने क्या–क्या। सब विदेशों से चुराई लफ्फाजी! मैनेजर बनने के लिए उन अमीरजादों ने तालीम अमरीका में जो पायी होती है।''[69] जब मधुकर बुद्धिजीवियों के क्रांति में सक्रिय भाग लेने की बात कहता है, तब जितेन कहता है, कि हमारे देश की यही त्रासदी है कि हमने हमेशा विचारकों को, बुद्धिजीवी वर्ग को क्रांति करनेवालों से ऊँचा स्थान दिया, जिसके कारण हमारे विचारक नपुंसक हो गए हैं। जितेन कहता है –''यही हमारी त्रासदी रही है, विचारकों को हमने हमेशा करनेवालों से ऊँची जगह दी है। इसलिए हमारे यहाँ विचारक नपुंसक हो गया है। बोलता है और बोल–बोलकर आखिर थककर चुप हो जाता है, न खुद कुछ करता है, न दूसरों को करने के लिए प्रोत्साहित करता है और–तो–और, जिन श्रमिकों के नाम की शाब्दिक माला वह हमेशा जपता रहता है, उनका संचालन ही कब किया है उसने? संचालन करनेवाला है अवसरवादी राजनीतिज्ञ, जिसे हर कर्मठ इनसान में प्रतिद्वंद्वी की बू आती है।''[70] मधुकर का यह कथन श्रमिक वर्ग के शोषण की ओर संकेत करता है –''श्रमिकों का संचालन हम क्या करेंगे? वे तो आपकी मुट्ठी में हैं। और अवसरवादी राजनीतिज्ञ, वे भी आपके ही चट्टे–बट्टे हैं,'' मधुकर उग्र स्वर में बोला।''[71] यहाँ शोषण व अन्याय के प्रति विद्रोह का भाव परिलक्षित होता है।

लेखिका ने अन्याय व शोषण के प्रति विद्रोह को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम हड़ताल को व संगठनात्मक विद्रोह को बताया है। वर्षों से चली आ रही अव्यवस्था व शोषण के खिलाफ मधुकर जैसे सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि, युवा पीढ़ी को संगठित करते हैं और अन्याय, शोषण व भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाते हैं। मधुकर व मनीषा के वार्तालाप के माध्यम से मृदुला जी ने अपने उपन्यास में इसे अभिव्यक्त किया है –

''बहुत जल्दी आ गये आज,'' मधुकर ने कुछ कहने से पहले ही वह बोल पड़ी।

''हाँ, ''मधुकर ने कहा, ''कॉलेज में स्ट्राइक हो गयी।''

''क्यों, क्या हुआ?''

''नया कुछ नहीं हुआ'', उसने कहा, ''वर्षों से जो भ्रष्टाचार और शोषण चल रहा है, वही है, बस कीमतें और तेजी से बढ चली हैं।''[72]

तथा –

''तुम लोग क्या सचमुच समझते हो कि तुम्हारे हड़ताल करने से यह समस्याएँ हल हो जायेंगी?''

....

''हाँ,'' मधुकर का स्वर दृढ़ था, ''देश के युवा–वर्ग की ताकत कोई छोटी–मोटी ताकत नहीं है। संगठन के साथ मोर्चा लेंगे तो व्यवस्था को उनकी बात सुननी ही होगी।''

''ऐसी छात्र–क्रान्तियाँ पहले भी हो चुकी हैं, पर उनसे बना–बिगड़ा क्या? अव्यवस्था और अराजकता ही फैली है।''

''अवश्य फैली है। फैलानी ही चाहिए। एक व्यवस्था को तोड़कर दूसरी व्यवस्था लाने में, कुछ समय के लिए अराजकता फैलेगी ही। पर उसके डर से क्या प्रतिवाद करना छोड़ देना होगा?''[73]

मधुकर चाहता है कि जो अनुपयोगी है, उसमें परिवर्तन होना ही चाहिए तथा इसके लिए प्रतिवाद करना आवश्यक है। जब मनीषा कहती है कि हड़ताल के बिना भी तो परिवर्तन लाया जा सकता है तथा दंगे फसाद के बिना भी तो इसके लिए प्रयत्न किया जा सकता है। आजकल हमारे देश में हड़ताल करना तो जैसे आम बात हो गई है। क्योंकि आजकल अखबार में भी रोज हड़ताल का समाचार अवश्य ही आता है। तब मधुकर उग्र स्वर में कह उठता है –''होना ही चाहिए। आखिर कब तक मजदूर अपना शोषण करवाते रहेंगे?'' ''तो क्या हर स्ट्राइक के बाद शोषण समाप्त हो जाता है?'' ''नही, पर वह इसलिए है कि स्ट्राइक मुकम्मल तरीके से नहीं होती। संकीर्ण दृष्टिकोण को लेकर छिटपुट तरीके से छोटे–छोटे क्षेत्रों में होती है। पर हमारी लड़ाई सम्पूर्ण व्यवस्था से है। इसका असर होकर रहेगा।''[74] समाज में मौजूदा भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति मधुकर के मन में आक्रोश है। अटल विश्वास व निश्चय की क्रांति से चमकते हुए चेहरे के साथ वह कहता है –''आज हमारे छात्र पूरी दिल्ली की दुकानों पर तैनात हैं, यह देखने के लिए रोजमर्रा की चीज ठीक दामों पर बिक रही हैं या नहीं। फिर हम सब जलूस लेकर लोकसभा जा रहे हैं। यह लोकसभा भंग करनी होगी। अब न मौजूदा भ्रष्ट व्यवस्था को बर्दाश्त किया जायेगा और न इस भ्रष्ट चुनाव प्रणाली को।''[75] वह कहता है कि इस विद्रोह से कुछ नतीजा न भी निकले तो भी मुझे कम से कम यह तसल्ली तो होगी कि जो कुछ मैं कर सकता था मैंने किया। मधुकर को इस देश के पूँजीपतियों का कार्य करने का ढंग पसंद नहीं है। उसका मानना है कि पूँजी के बल पर कठोरता का तांडव नृत्य करनेवाले, मजदूर वर्ग का अपने कारखानों में शारीरिक व आर्थिक शोषण करनेवाले इन पूँजीपतियों का विरोध करना अत्यंत आवश्यक है। मधुकर व जितेन के बीच फैक्टरी में आयात किये जाने वाले विदेशी पूर्जे को लेकर बातचीत होती है। मधुकर व जितेन के मध्य वार्तालाप से विद्रोह के भाव को व्यक्त किया गया है –

''मशीन इम्पोर्टड होगी?'' मधुकर ने पूछा।

''हाँ'' उसने लापरवाही से कहा।

''शायद इसीलिए ठीक करवाने में तकलीफ हो रही है।''

''हो सकता है।''

''मेरी समझ में नहीं आता आप लोग ऐसी मशीनें क्यों लगाते हैं जिन्हें हमारे श्रमिक न चलाना जानते हैं, न सुधारना।''

''तब क्या करें?''

''और भी मशीने हो सकती हैं जो इन्टैनसिव हो।''

''कहाँ हैं?''

''बन सकती हैं, अपने देश में।''[76]

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मधुकर ने देश की दुर्दशा को सुधारने का हल, समाज में सुचारू रूप से न चलने वाली व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति करने के रूप में निकाला है। वह अपने कॉलेज के छात्रों को साथ लेकर देश में व्याप्त अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, देश की

दुर्दशा, कॉलेज के अनुपयोगी पाठ्यक्रम आदि के विरुद्ध खड़ा होता है तथा हड़ताल करवाकर क्रांति करना चाहता है। बढ़ती कीमतों व शोषण के विरूद्ध खड़ा होता है। देश में मौजूदा हालात में सुधार व परिवर्तन लाने के लिए सर्वहारा वर्ग की चेतना को लेखिका ने मधुकर नागपाल के माध्यम से अभिव्यक्त किया है तथा चित्रित किया है कि अन्याय व शोषण का प्रतिवाद हड़ताल व विरोध प्रदर्शन द्वारा किया जाना आवश्यक है। वह युनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में परिवर्तन आवश्यक मानता है। यहाँ क्रांति के माध्यम से शोषण करनेवाले पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश व विद्रोह का भाव अभिव्यक्त हुआ है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास मिलजुल मन में भी पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए उद्योग धंधों में मजदूरों की स्थिति व शारीरिक–मानसिक शोषण पर प्रकाश डाला है। डालमियानगर कस्बे के कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है कि मिल मालिक मजदूरों को रोजगार तो दे रहे थे, परंतु उनके स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखते थे। मृदुला जी का यह कथन इसे चित्रित करता है –''उनमें कामगार हजारों मजदूर थे, सैकड़ों अफसर, उनके भरे–पूरे परिवार। पर ढंग का स्कूल या अस्पताल नहीं था तो कॉलेज कैसे होता? आम बीमारियों के लिए डॉक्टर और दवाखाना था। बड़े अफसर को पेचीदा या नाजुक बीमारी होती तो कंपनी, पटना भेजने का इंतजाम कर देती। बाकी रामभरोसे रहते। मजदूर ही नहीं, अफसरो की बीवियाँ भी।''[77] मजदूर वर्ग के शोषण व अन्याय के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए मोगरा कहती है –''स्वदेशी के नाम पर बदहाल बुनकरों को, जमकर लूटा जा रहा था। वाजिब से बहुत कम कीमत पर खादी बुनवाई जाती और फैशनबुल छापे मार, महंगे दाम बेची जाती। तमाम फायदा दलालों–बिचौलियों का। कपड़ा मिल भी देसी, बुनकर भी। पर यूनियन बनाए मिल मजदूरों को, उस तरह अंगूठे के नीचे नहीं किया जा सकता था, जैसे अलग–थलग पड़े, खस्ताहाल बुनकरों को।''[78] लेखिका ने अपने इस कथन से जिंदगी में संघर्ष के साथ आगे बढ़ते रहने की ओर संकेत किया है – ''चेहरे की रंगत बचाना एक बात है, जिंदगी को आंधियों से बचाना, दूसरी। मेरे हिसाब से जो डर कर भागने के बजाय, ताप–लू–गर्दिश को अपने हक में कर ले, वह है गुलमोहर। शोख और लचीला एक साथ।''[79] तथा मार्क्स के बारे में चर्चा करके मोगरा के माध्यम से शोषितों के प्रति तीव्र आक्रोश व उनके नामोनिशान को मिटा देने की ओर भी संकेत किया है। मोगरा का यह कथन – ''अर्थशास्त्री केन्ज की उक्ति सुनी होगी, पूँजीवाद में उतार–चढ़ाव का आना लाजिमी है।''

''वह तो कार्ल मार्क्स ने कहा था।''

''हां, वही केन्ज ने कहा। पर दोनों में जमीन–आसमान का फर्क था। मार्क्स के लिए वह पूँजीवाद के नेस्तानाबूद होने का पैगाम था तो केन्ज के लिए, उससे लोहा लेने की चुनौती।''[80] उक्त कथनों के माध्यम से लेखिका ने पूँजीपति वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग अर्थात मजदूर वर्ग पर किए जाने वाले अत्याचार व उनके शोषण के प्रति विद्रोह का भाव अभिव्यक्त किया है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास 'अनित्य' में भी पूँजीवादी वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग पर किए जाने वाले अन्याय व शोषण के प्रति विद्रोह का भाव व्यक्त किया है। 'अनित्य' में लेखिका ने स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े महान व्यक्तियों की विचारधारा को विश्लेषित करने के साथ–साथ गांधीवाद और साम्यवाद के संघर्ष को सफल अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास के पात्र गांधी दर्शन, अहिंसा आदि में विश्वास न कर क्रांति में विश्वास करते हैं। क्रांतिकारी आंदोलन का चित्रण करके अपनी विचारधारा को एक क्रियात्मक रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह का भाव व्यक्त किया गया है। मृदुला जी का कहना है, कि स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भी हमारे देश में पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं बल्कि और भी गहरी हो गईं। अन्याय व शोषण से मुक्ति के लिए भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी को महत्त्व देती हैं। देश की व्यवस्था व जनमानस को समझने के लिए भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी की आवश्यकता को महत्त्व देते हुए वे कहती हैं – ''भगतसिंह एक ऐसे विचारशील क्रांतिकारी हैं, जो भारत की अपनी मिट्टी से जन्मे हैं। अपने देश की व्यवस्था और जनमानस को उन्होंने समझा, उसकी

समस्याओं का अध्ययन किया और उस परिप्रेक्ष्य में अपने विचार व्यक्त किये। इसलिए मैं मानती हूँ कि अगर हमारा युवा–वर्ग उनसे प्रेरणा लेकर काम करेगा, तो स्वयं को अपनी मिट्टी के कहीं ज्यादा नजदीक पायेगा।''[81] इनके उपन्यास में वर्गभेद और आर्थिक असंतुलन से उपजी व्याकुलता दृष्टिगोचर होती है। भगतसिंह की शहादत का अर्थ सिर्फ बहादुरी से देश के लिए कुर्बान हो जाना नहीं था, अपितु उसका उद्देश्य समाज के मौजूदा ढाँचें को बदलकर समाजवाद लाना था। भगतसिंह का कहना था –''हमारे दल का लक्ष्य एक सोशलिस्ट सामाजिक संगठन की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि जब राजनीतिक क्रांति से शासन–शक्ति अंग्रेजों के हाथ से निकलकर हिंदुस्तानियों के हाथों में आ जायेगी, तब हमारा लक्ष्य शासन–शक्ति को उन हाथों के सुपुर्द करना है, जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिए मजदूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा।''[82]

मृदुला जी ने 'अनित्य' उपन्यास में वर्गभेद के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए अवसर की समानता को महत्त्व दिया है। विशिष्ट वर्गीय समाज के प्रति, आर्थिक असमानता व वर्ग–विभाजन के प्रति आक्रोश का भाव व्यक्त करते हुए लेखिका कहती हैं –''विशिष्ट वर्ग के अनेक सदस्यों ने इस लड़ाई में हिस्सा लिया, पर जेल के अंदर चाहे बाहर, उनके और आम जनता के सत्याग्रहियों या क्रांतिकारियों के बीच का फर्क बराबर बना रहा। यह इसी इलीट की कोशिशों का नतीजा था कि आजादी जब मिली, तो सत्ता इलीट के हाथों में आयी, जनता केवल बक्से में वोट डालने का काम करती रही।

सिर्फ इतना ही नहीं कि इलीट को यहाँ सब सुविधाएँ प्राप्त हैं और आम जनता को एक भी सुविधा उपलब्ध नहीं है, इससे कहीं भयानक बात यह है कि हमारी हर नीति, चाहे वह शिक्षा के क्षेत्र में हो चाहे उद्योग के, इस विभाजन को कायम रखने के लिए काम करती है।''[83] हमारे देश में विशिष्ट वर्गीय समाज को पहले से ही विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे तथा आजादी के बाद सत्ता भी उसी विशिष्ट वर्ग के हाथ में आई तथा जनता केवल वोट डालने का काम करती रही। प्रदर्शन प्रभाव के कारण हमारी आर्थिक नीति बूरी तरह विकृत हो चुकी है, जिसका हमारे देश की जनता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लेखिका का यह कथन –''हमारी आर्थिक नीति का स्वरूप ही यह हो गया है कि हम हरदम इस कोशिश में रहते हैं कि पश्चिम के पूँजीवादी देशों में जो ऊँचे दर्जे का रहन–सहन है, उसकी टक्कर का रहन–सहन हमारे इलीट का भी हो, चाहे इसके लिए आम जनता की पीने के पानी या पेट भर खाने की माँग को भी क्यों न नजरअंदाज करना पड़े। यह नकल की भावना इतना विकराल रूप धारण कर चुकी है कि हम देश के अंदर की भयानक–से–भयानक आर्थिक असमानता को भूलकर विकसित देशों की उपभोग–क्षमता से आक्रांत रहते हैं।''[84]

उपन्यास में भगतसिंह से प्रेरित पात्र हैं – काजल बनर्जी, विमल दत्त व प्रभा जो खुलकर महाजनी संस्कृति से विद्रोह करते हैं। इनके माध्यम से सर्वहारा वर्ग के लिए गहरी व्यथा व संवेदना को चित्रित करते हुए समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता के प्रति विद्रोहात्मक भावों को अभिव्यक्त किया गया है। वर्गभेद होने पर ही तो अमीर, गरीब के प्रति दयाभाव दिखला सकते हैं, जो कि गलत है। जब शुभा, प्रभा को कहती है, कि बाढ़–पीड़ितों के लिए जो खाना बाँटने आये थे, वे लोग बढ़िया पोशाकें पहनकर उम्दा गाड़ियों में बैठकर आये थे और खाना इतना लाये थे कि ज्यादा हो गया, और लोगों के लेने से मना करने पर नाराज होने लगे, तब प्रभा के मन में विद्रूप उत्पन्न होता है और प्रभा कहती है – ''ऐसी मदद गलत है,'' प्रभा ने कहा, ''जो देता है उसके मन में हिकारत होती है; जो लेता है उसके मन में नफरत।''

''मदद गलत है?''

''नहीं, मदद करने की सामर्थ्य होना गलत है। एक समाज में रहने वाले लोग इस तरह क्यों बँटें कि एक वर्ग के पास इतना हो कि वह मदद करने की सामर्थ्य रखे और दूसरे वर्ग के पास कुछ न हो, कि उसे मदद की जरूरत पड़े।''

''तब तो.......एक ही रास्ता है.......कौम्यूनिज्म?''[85] प्रभा के कथन में क्रांतिकारिता का भाव अभिव्यक्त हो रहा है, हमारे समाज में जो गलत है, उसके प्रति आक्रोश का भाव परिलक्षित हो रहा है। प्रभा के माध्यम से लेखिका ने गलत समाज–व्यवस्था व कानून–व्यवस्था को बदलने क लिए विद्रोहत्मक भाव अभिव्यक्त किए हैं। प्रभा कहती है – ''पाँच साल में एक बार चुने जाने पर कोई एक आदमी लगातार सब का प्रतिनिधित्व केसे कर सकता है? और फिर सत्ता का नशा होता ही ऐसा है कि हाथ में आते ही आदमी सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए काम करने लगता है। न भी करे तो देश की अर्थव्यवस्था बदले बगैर वर्ग–भेद मिट ही नहीं सकता। देश के अधिकांश लोग शोषित और गरीब बने ही रहेंगे। पूँजी–रहित श्रम को बेचने वाला आदमी गुलाम से सिर्फ एक मायने में फर्क होता है – यह कि वह अपना मालिक तब्दील कर सकता है। मालिक उसे नहीं बेचता; वह खुद, खुद को बेचने पर मजबूर होता है.................''

''गुलामों की कमी रूस में भी नहीं है,'' सहसा शुभा ने कहा, ''वहाँ तो क्रांति हो चुकी। उनकी 'बेगारी' के बारे में नहीं पढ़ा?''

''वह सब अंतर्कालीन समय में होना पड़ता है। क्रांति होने पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था बिल्कुल टूट जाती है पर नयी व्यवस्था स्थापित होने में समय लगता है।

जब तक नये और पुराने का संघर्ष चलता रहता है, लड़ाई में पूरी तरह विजय पाने के लिए जरूरी हो जाता है कि पार्टी सेना की मदद से शासन करे। एक बार आर्थिक समानता स्थापित हो जाने पर लाभ के लिए श्रम करने की प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है और एक समय वह आता है, जब किसी प्रकार के दमन या बल–प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती।''

''कब, प्रभा? कब आता है वह समय? आज तक आया है किसी देश में?

''नहीं, पर आयेगा जरूर।''

''कब?''

''यह हम नहीं जानते। एक कदम उठाते ही आदमी पहाड़ की चोटी पर नहीं पहुँच जाता। इसलिए क्या कदम बढ़ाना ही छोड़ देना होगा?''[86] काजल का यह कथन भी विद्रोहात्मक भावों को अभिव्यक्त करता है –''और सोयी हुई जनता को जगाकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने के लिए बम के धमाके काफी नहीं है। बहुत जबरदस्त उफान की जरूरत है उसके लिए, बहुत महंगे प्रचार की। आत्म–बलिदान से महंगा प्रचार क्या हो सकता है?''

''तुम करना क्या चाहती हो काजल?''

''इतिहास को दुहराना चाहती हूं। जो अधूरा रह गया उसे पूरा करना चाहती हूं।''[87]

काजल का मानना है कि दुनिया का सुधार वर्तमान सामाजिक ढाँचे को तोड़कर ही हो सकता है। वह अविजित से कहती है –

''देश के युवा लोग हैं,'' काजल ने कहा।

''तुम सब इसी में विश्वास करते हो – प्रोपोगेंडा बाई डेथ?''

''मैं करती हूँ। मैं क्रांति जगाना चाहती हूँ। मेरे साथी क्रांति लाना चाहते हैं।''

''कैसे''

''साधन और सत्ता पर कब्जा करके। आम लोगों की हुकूमत कायम करके।''

''कैसे होगा?''

''होगा। साधन रहेंगे तो होगा। किसी एक गाँव के भूमिहीन किसान अपने गाँव की जमीन पर कब्जा कर लेंगे, अपनी सरकार बना लेंगे। फिर प्रचार........प्रचार........मृत्यु से रंगा प्रचार।''[88]

'अनित्य' उपन्यास में बंगाल–बिहार में भयानक बाढ़ के चित्रण के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप से मृदुला जी ने उच्च वर्ग अर्थात शोषक पूँजीपति वर्ग के प्रति सर्वहारा वर्ग के विद्रोहात्मक स्वरूप को अभिव्यक्त किया है। यहाँ 'शहर', उच्च वर्ग का प्रतीक है तथा 'गाँव' निम्न व शोषित सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है तथा 'जमना नदी का तेज बहाव' सर्वहारा वर्ग के आक्रोश व विद्रोह का प्रतीक है। पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति सांकेतिक विद्रोह को अभिव्यक्त किया गया है –''बंगाल–बिहार में भयानक बाढ़ आयी हुई है। दिल्ली के पास गाँव में भी आया करती है। हर बरस बाढ़ आती है। नहीं, बीच–बीच में किसी बरस सूखा भी पड़ता है। दरअसल, हर साल बाढ़ भी आती है, सूखा भी पड़ता है। कुछ गाँव बह जाते हैं, कुछ गाँव सूख जाते हैं। इतना बड़ा देश जो है। किसी–न–किसी कोने में विनाश होगा ही। विनाश को झेलने के नियति चक्र में जो फंसा रहे, वह गाँव कहलाता है। तहलका तब मचता है जब बाढ़ शहर में आती है!

जमना नदी किनोर तोड़ रही है; गाँव पर गाँव बहे चले जा रहे हैं.....बस एक खबर है जो अखबार की सुर्खी तक नहीं बन पाती।''[89] तथा –''शहर और गाँवों का फर्क मिट रहा है..... .....कच्ची–पक्की सड़कों पर नदी का पानी वेग से बढ़ता चला जा रहा है.............ऊपर से मूसलाधार बारिश बरस रही है। लोग डूबे रहे हैं, कुछ आसमान से बरसते पानी की धार में, कुछ धरती पर उमड़ते जल प्रवाह में। ऊँची इमारतें आसमान की मार सह नहीं पा रहीं। पानी की धार से पिघल–पिघल कर नीचे सरक रही हैं। पानी के शोर से बीच बेआवाज, आहिस्ता–आहिस्ता छतें फिसल कर फर्श से मिल रही हैं। मंजिलों के बीच फंसे लोग पिस–कुचल कर नीचे लटक रहे हैं और धीमे–धीमे पानी में टपक रहे हैं। पानी के ओर–छोर–हीन सीने पर जो लाश आकर गिरती है, उसका चेहरा गायब हो जाता है.......धड़ तैरते रहते हैं...........सड़ते रहते हैं..........एक दूसरे से लिपट–चिपट कर खाद बनते रहते हैं..........

फिर भी कुछ इमारतें नहीं गिरतीं। छज्जों पर खड़े बड़े आदमी सब्र के साथ इंतजार करते हैं.........कब पानी उतरे और बढ़िया खाद से उर्वरा हुई धरती उनके हाथ लग सके।''[90] उक्त सांकेतिक कथन के माध्यम से शोषक वर्ग के प्रति तीव्र आक्रोश का भाव अभिव्यक्त हुआ है। उच्च व निम्न वर्ग के मध्य की खाई को मिटाने की ओर संकेत किया गया है। मृदुला जी आर्थिक वैषम्य को समाप्त करके समानता के लिए प्रयत्न करते रहना आवश्यक मानती हैं। एक समाज में रहनेवाले लोग इस तरह क्यों बँटें कि एक वर्ग के पास इतना अधिक हो कि वह दूसरों की मदद करने की सामर्थ्य रखे तथा दूसरे वर्ग के पास कुछ न हो कि उसे मदद की आवश्यकता पड़े।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास 'चित्तकोबरा' में भी अपने समाज में व्याप्त अन्याय व शोषण के प्रति चिंता व्यक्त की है। मनु व रिचर्ड को युद्ध की विभीषिका से चिंतित तथा अपने सहजीवों के प्रति करुणा भाव से युक्त दिखाया है। रिचर्ड को एक समाज सेवक के रूप में चित्रित किया है। स्वतंत्रता–पश्चात् भी भारतीय जनता की चिंताजनक वर्तमान अवस्था व उसके प्रति मन में आक्रोश के भावों को एक कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है –

''बेकारी–भूख–गोलीकांड............

अखबारों ने अफवाहें उड़ाई है

भला कैसे ये सब मुमकिन है

....

गोली खाकर मरती ही हैं गुलामी।

पंतनगर में किसानों की हत्या?

बस्तर में मजदूर बस्ती का नाश?

....

भूख से तड़पकर मरते ही हैं गुलाम।

मुजफ्फरपुर में अनाज के लिए दंगा?

आंध्र में भूखों के जुलूस पर गोली?

गोदामों में अटे अनाज के बोरे?

राशन की दुकानों के तख्ते खाली?

....

बेकारों के जुलूस पर गोली चला दी।

....

''अकेला आदमी क्या करेगा?'' महेश ने कहा।

............कर सकता है। ऐसा आदमी जिसका कोई देश न हो।

.............कहीं तो होगा वह।''[91] उक्त कथन के माध्यम से चित्रित किया गया है, कि एक ओर उच्चवर्ग के पास अनाज के गोदाम भरे हैं तो दूसरी ओर भूख से तड़पकर मरते हुए गुलाम व गरीब लोग हैं। शोषित व पीड़ित जनता अन्याय के प्रति विद्रोह करते हुए दिखाई देती है तथा अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जुलूस निकालना व दंगे करना शोषकों के प्रति आक्रोश व विद्रोह की ओर संकेत करता है। लेखिका ने पूँजीवाद पर गांधीजी और मार्क्स के विचारों की बढ़ती अहमियत को विश्लेषित किया है। विद्रोह के रूप को लेखिका ने कम्यूनिज्म के रूप में माना है। शोषण व अन्याय को मिटाने के लिए समानता को आवश्यक माना है जिसके लिए आवश्यकता होने पर विद्रोह अनिवार्य है – ''तो बतलाओ क्राइस्ट पहला कम्युनिस्ट कैसे था? क्या इसलिए कि उसने आदमी–आदमी के बीच साम्य देखा था? क्या कहा था उसने – सुई की नोक से ऊँट भले निकल जाए, स्वर्ग के दरवाजे में अमीर नहीं घुस सकता।''

''उसने कहा था – सिर्फ कमांडमैंट्स मानकर चलने से क्या मिलेगा तुम्हें। अपनी जमीन–जायदाद बेच दो और गरीबों में बाँट दो। तभी भगवान को प्राप्त कर पाओगे।

....

जो मैं लाया हूँ, शान्ति नहीं तलवार है – उन्हीं, डिसइनहैरिटेड ऑफ द अर्थ' के लिए। उन खाली हाथ गरीबों के लिए जिन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर दिया है।''[92]

'मृदुला जी ने 'चित्तकोबरा' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है कि पूँजीवाद की पकड़ से बाहर निकलने के लिए यंत्रीकरण को अनिवार्य बनने से रोकना होगा। शोषण व अन्याय से मुक्ति के लिए विद्रोह को अनिवार्य मानते हुए कहती हैं कि –''मार्क्स का कहना था – पूँजीवाद और यंत्रीकरण, इतिहास की अपरिहार्य और निष्ठुर तर्क–युक्ति के अंश हैं। इनसे छुटकारा मिल तो सकता है पर तभी जब वे अपने 'लॉजिक' को पूरा करके उस चरम बिन्दु पर पहुँच जाएँ, जहाँ विद्रोह खुद–ब–खुद पनप उठता है।

.........................गहराई से सोचने पर क्या तुम्हें नहीं लगता कि सच्चा विद्रोही मार्क्स नहीं, गांधी था? वह ऐतिहासिक नियति से विद्रोह करना सिखला रहा था। इनसानों को ईश्वर की मदद से राक्षसी नियति को पछाड़ने का सबक दे रहा था। उसके मन में आशा थी और शोषितों के प्रति विश्वास।''[93] रिचर्ड कहता है कि – ''किसी कौम का सच्चा स्वरूप जानना चाहते हो तो शोषितों के बनाए कार्टून देखो। पता चल जाएगा, कौम जिन्दा है या मर गई। और जिन्दा है तो कब तक बगावत करेगी।''[94] देश सेवा का ढोंग रचनेवाले तथा उसकी आड़ में मुनाफा कमानेवाले उद्योगपतियों के प्रति भी आक्रोश का भाव अभिव्यक्त हुआ है। मनु का यह कथन – ''अच्छा काम है लघु उद्योग चलाना। सामाजिक अपराध बोध से आदमी बचा रहता है। लघु शब्द बड़ा करामाती है। बड़े उद्योग चलाओगे तो शोषक कहलाओगे, लघु उद्योग चलाओगे तो देशसेवक। लाभ पूरा होगा, ऊपर से सरकार इनाम देगी। मजदूरों की संख्या कम रहेगी, यूनियम वगैरह के चक्कर से बचाव रहेगा। कम वेतन देने पर कोई एतराज नहीं कर सकता, वजह तो वजनी है। सभी उद्योगपति कम वेतन देते हैं।''[95] लघु उद्योगों की आड़ में किए जाने वाले मजदूर वर्ग के शोषण के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है कि अफसरशाही अंग्रेजों के समय से ही भारत में व्याप्त रही है तथा स्वतंत्रता–पश्चात् भी उसका विकराल रूप हमारे सामने उपस्थित है। 'अनित्य' उपन्यास में स्वतंत्रता के समय की राजनीति और शासन व्यवस्था पर विचार व्यक्त करते हुए मृदुला जी कहती हैं कि –''स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे देश से पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़े उखड़ी नहीं, और भी गहरी हो गयीं।''[96] स्वतंत्रता–पश्चात् हमारे देश में पूंजीवाद और अवसरवाद की जड़ें और भी गहरी हो गयी, इसके प्रति लेखिका के मन में आक्रोश का भाव है। मृदुला जी के अनुसार आर्थिक वैषम्य को समाप्त करने के लिए राष्ट्र की जनता अर्थात पूरे समाज में आर्थिक स्वावलंबन के लिए चेतना जाग्रत करनी होगी। इन्होंने अपने उपन्यासों में निम्नवर्ग अर्थात शोषित वर्ग के स्वतंत्रता–बोध को वाणी दी है। अपनी अस्मिता व स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए संघर्षशील दिखाया है।

मृदुला गर्ग ने अपने 'कठगुलाब' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास की रचना करके नारी के दमन व शोषण के साथ–साथ नारी–संघर्ष व चेतना को भी दर्शाया है। स्त्री पर पुरुष द्वारा होनेवाला आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण और उसके फलस्वरूप स्त्री की प्रतिक्रिया को चित्रित करते हुए समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करनेवाली, स्वाभिमानयुक्त व प्रत्येक चुनौती को स्वीकारने वाली, सामाजिक नैतिकता के पुराने मूल्यों का विरोध करनेवाली प्रतिरोध की भावना से युक्त नारी को चित्रित किया है। उपन्यास में लेखिका ने चार नारी पात्रों के माध्यम से नारी के जीवन–संघर्ष तथा उसकी सामाजिक व मानसिक पीड़ा को व्यक्त किया है। सभी नारी पात्र किसी न किसी रूप में पुरुषों द्वारा सताए गए हैं तथा ये सभी किसी न किसी रूप में पुरुषों द्वारा शोषित व पीड़ित होने के कारण प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त हैं। अपने जीजा की अमानुषिक हवस का शिकार स्मिता के अंतर्मन में हमेशा के लिए तेज रोशनी व आदमकद शीशों से खौफ जड़ें जमा लेता है तथा वहीं दूसरी ओर मनोचिकित्सक के भेष में वहशी भेड़िया उसका पति जिम जारविस भी लात मारकर उसकी कोख में पल रहे बच्चे को जन्म से पहले ही मार देता है। मारियान का पति इर्विंग भी अपने लेखन के स्वार्थ को पूरा करने के लिए मानसिक व भावानात्मक रूप में उसका शोषण करता है तथा उसके उपन्यास 'वुमेन ऑफ द अर्थ' पर नाजायज कब्जा कर लेता है। नमिता व गंगा भी आर्थिक परवशता के कारण अपने पतियों के द्वारा की गई पिटाई सहन करती हैं। दर्जन बीबी का पति उसे छोड़कर दूसरी औरत से इसलिए शादी कर लेता है क्योंकि वह उसके अनुसार देह बनकर नहीं जीती है। नर्मदा का आर्थिक, मानसिक व शारीरिक शोषण उसी के जीजा गणपत द्वारा किया जाता है। 'कठगुलाब' उपन्यास की ये सभी स्त्रियाँ आँसुओं व चीत्कारों में प्रतिशोध का कतराभर बहाने को तैयार नहीं है, बल्कि अपनी संपूर्ण ऊर्जा को प्रतिशोध के लिए बचाकर रखना चाहती हैं। स्मिता का यह कथन इनकी प्रबल प्रतिशोध की भावना को व्यक्त करता है –''फिर एक बलात्कार। पहले अस्मिता पर, अब शिशु पर। मेरी चीख ने अस्पताल के दरो–दरवाजे हिला दिये। बचपन के बँधे–रुँधे बलात्कार के क्षण से, आँतों में घुटी जो पड़ी थी।

उसके बाद मैंने ओंठ कस लिये। मुट्ठियाँ भींचकर भीतर उठती चीखों को वापस घोंट दिया। आदत थी। मुझे अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखनी थी। प्रतिशोध। बन्दूक से दागी गोली की तरह, वह एक शब्द बार–बार दिमाग में बज रहा था।''[97] तथा –''कमजोरी पर विजय पाने में बहुत समय निकल गया, पर अब मैं बच्ची नहीं हूँ मजलूम भी नहीं हूँ, पूरी तरह समर्थ हूँ। मेरे पीछे रॉ की स्त्री–शक्ति है। बस जो कुछ करना है, तत्काल करना होगा। ऐसा न हो कि मैं रोती–कलपती रह जाऊँ और मेरा अपराधी, सजा पाने से पहले, एक बार फिर, खुद अपनी मौत मर जाए।''[98] असीमा बचपन से ही अपनी माँ के दुःखी जीवन को देखती है। अतः असीमा के मन में पुरुषों के प्रति घृणा व तीव्र आक्रोश का भाव व्याप्त है। समाज में लड़की व लड़के के बीच किए जानेवाले भेद के प्रति उसके मन में आक्रोश है। उसका यह आक्रोश का भाव इन पंक्तियों में व्यक्त होता है – ''मेरा नाम असीमा है। कभी सुना है किसी लड़की का नाम असीमा? नहीं न? लड़को का, अलबत्ता सुना होगा असीम। सारा खेल मेल शॉविनिज्म का है। सीमा में बँधे रहने का ठेका लड़कियों ने जो ले रखा है।

मेरे माँ–बाप ने कौन–सा मेरा नाम असीमा रखा था। वही घिसा–पिटा, सीमा। मेरे पिद्दी भाई को जरूर असीम नाम दिया था। वह तो मैंने खुद बदलकर असीमा कर लिया।''[99] इसकी नजर में सभी पुरुष एक–से–एक बढ़कर हरामी होते हैं। उसे मर्दों से नफरत है तथा अपने कराटे की किक से मर्दों को पीटने में उसे आनन्द आता है। वह कहती है – ''अब आये तो कोई मर्द मेरी सीमा में, टाँग तोड़कर पूँछ बना दूँ। मुझे मर्दों से नफरत है। सब एक–से–एक बढ़कर हरामी होते हैं। सबसे बड़ा हरामी था, मेरा बाप। लम्बा, तगड़ा, खूबसूरत हरामी।''[100] वह विद्रोहिणी, स्वावलंबिनी तथा स्वाभिमानिनी है। वह अपने ऊपर व अन्य नारियों पर होने वाले अत्याचार का विरोध करती है। नर्मदा जैसी देशी औरत जो अपने जीजा गणपत के हाथों शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार होती है, समय के साथ–साथ वह भी दबंग बन जाती है। जब एक दिन उसका जीजा, उसके रहते अचानक असीमा के घर आ जाता है तब वह शेरनी की तरह दहाड़ते हुए उसे फटकारती है – ''हिम्मत हो तो आ मेरे सामने।'' और वह सचमुच चाकू खोल खड़ी हो गयी।

....

''पहले जान लेती कि बहन उसके साथ मिलके घर और जेवर हड़पने की चाल चले है तो मैं पुलिस में गलत बयान ना देती।''[101] नर्मदा का आर्थिक, मानसिक व शारीरिक शोषण उसका जीजा गणपत करता है। बचपन में चूड़ियों के कारखाने में भट्टी के पास काम करके फफोलों की पीड़ा व मालिक की डाँट तथा जीजा की मार व गालियाँ सहती रहती है। जवान होने पर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह उसके जीजा गणपत से ही करवा दिया जाता है और वह चाहकर भी उसका विरोध नहीं कर पाती है और अपने अधपगले भाई भोला के लिए सब कुछ सहती रहती है। दर्जन बीबी के यहाँ काम करते हुए असीमा के आधुनिक विचारों को सुनकर उसमें आत्मविश्वास जागता है तो वह जीजा को छोड़कर एक स्कूल में नौकरी कर लेती है तथा बाद में नमिता के यहाँ उसके अपाहिज पति की सेवा व दो बच्चों के पालन–पोषण में अधिकांश जिंदगी गुजार देती है। बचपन में सही पीड़ा के कारण नर्मदा के मन में पूँजीपति वर्ग के प्रति विद्रोह का भाव अभिव्यक्त होता है।

नर्मदा की प्रतिक्रियाएँ तीखी, तल्ख और दो टूक हुआ करती हैं। अमीरों के मुखौटे को नर्मदा का यह कथन चीरकर रख देता है –''अजीब बात है कि नहीं, चौराहे पर खड़ा बालक खुद अपनी तकलीफ का रोना रोये तो कोई सुनने को तैयार ना हो। लाल बत्ती पर गाड़ी रोकनी पड़े तो शीशे ऊपर चढ़ा लें हैं। यों सामने देखे हैं जैसे अनदेखा करे से कान से सुनना भी बन्द हो जावेगा। पर वो ही सब सुन–सुना के ये दुहराएँगी तो वही अंधे–बहरे लोग, पैसा खरचा करके, दुःख खरीदेंगे। हाय–हाय करके आँसू काढ़ेंगे। उनें एक पैसा न देंगे, इनकी तरफ सौ–सौ के नोट फेंकेंगें।''[102] नर्मदा के माध्यम से बाल मजदूरों की दयनीय स्थिति, शारीरिक–मानसिक–आर्थिक शोषण के प्रति भी आक्रोश को व्यक्त किया गया है। बचपन में

चूड़ी बनाने के कारखाने में मालिक द्वारा दी गई शारीरिक पीड़ा को याद करके नर्मदा के मन में दुःख व आक्रोश का भाव उसके इस कथन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है –"उँगली क्या, हाथ–पाँव, सिर–आँख, सब जला करें थे भट्टी की झुलस में। हाँ, जहाँ–तहाँ फफोले पड़ा करे थे बदन पे, पिघले सीसे के छींटों से। हाँ दरद से पड़पा करूँ थी मैं, बिलखा करूँ थी, बिलबिलाया करूँ थी।"[103] नर्मदा एक परिश्रमी और धैर्यशाली नारी है। जब उसे पता चलता है कि जीजा गणपत द्वारा किए गए उसके आर्थिक व शारीरिक शोषण में उसकी बहन गंगा का भी हाथ है, तब वह विद्रोही स्वर में फुफकार उठती है। अब नर्मदा पहले वाली डरपोक, नाखून से जमीन कुरेदनेवाली, खामोश नर्मदा नहीं रही थी। वह शेरनी की तरह दहाड़ती हुई अपने जीजा को खरी–खोटी सुनाती है। वह सिलाई मशीन लेकर अच्छी जिंदगी गुजारने के लिए आत्मनिर्भर बन जाती है। 'कठगुलाब' उपन्यास की पात्र दर्जन बीबी का प्रतिशोध भले ही थोड़ा पारंपरिक लगता है, परंतु वह अपने स्वाभिमान की रक्षा में सफल रहती है। अपने पति से धोखा खाकर जटिल संघर्ष करते हुए सिलाई का कारखाना खड़ा करके अपने बच्चों का पालन–पोषण करती है।

मृदुला जी ने 'कठगुलाब' उपन्यास में पुरुष द्वारा प्रवंचित व शोषित नारी पात्रों का चित्रण करने के साथ–साथ नारी द्वारा अपनी अस्मिता को बचाए रखने के लिए किए गए संघर्ष को भी चित्रित किया है। स्मिता की बहन नमिता भी अपने पति से प्रतिशोध लेती है। वह अपने प्रतिशोध की ज्वाला को पति के प्रति अवहेलना व अमानवीयता द्वारा शांत करती हैं। पति की अपाहिज–अवस्था में वह उसकी तरफ देखती भी नहीं है तथा नर्मदा पर ही सब कुछ छोड़ देती है।

मृदुला जी का 'कठगुलाब' उपन्यास यह अभिव्यक्त करता है, कि नारी का पुरुष द्वारा आर्थिक, शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से शोषण किया जाता रहा है तथा 'कठगुलाब' के नारी–पात्र इसी शोषण का विरोध करते हुए, संघर्ष करते हुए और सफल होते हुए दिखाई देते हैं। सभी नारी पात्र प्रतिशोध और विद्रोह की मुद्रा लिए हुए हैं। वे पुरुष की सहगामिनी बनकर नहीं बल्कि प्रतिस्पर्धी बनकर जीवन–रणक्षेत्र में आगे बढ़ते हुए दृष्टिगोचर हो रही हैं। स्मिता की तरह ही 'रॉ' में काम करनेवाली एक अमेरीकन स्त्री मारियान भी पुरुष द्वारा शोषण का शिकार होती है। मारियान का पति इर्विंग हिटमेन उसका बौद्धिक व मानसिक शोषण करता है। इर्विंग के साथ रहकर उपन्यास की रचना के लिए सामग्री जमा करने का काम मारियान करती है तथा घाघ प्रवृत्ति का इर्विंग अपनी स्वार्थी वृत्ति के कारण उपन्यास 'वुमेन ऑफ द अर्थ' जो कि मारियान की प्रतिभा के सहारे लिखा गया था, केवल अपने नाम से छपवा लेता है। मारियान के साथ विश्वासघात होने पर उसे मर्दों की घाघ प्रवृत्ति का अहसास होता है, जिसके सहारे स्त्रियों के व्यक्तित्व और बौद्धिकता का दमन किया जाता है। अपने साथ हुए विश्वासघात के कारण मारियान नागिन की तरह फुफकारते हुए इर्विंग को कमीना, बास्टर्ड, धूर्त, नामर्द, कपटी, दगाबाज, चोर आदि गालियों से संबोधित करती है तथा उस पर प्लेम्यरिज्म का चार्ज लगाकर उसको जेल भिजवाना चाहती है। इर्विंग द्वारा सताए जाने पर मारियान 'रॉ' के दफ्तर में पहुँचकर, बदले और प्रतिशोध की भावना से युक्त होकर, रेड बुक में इर्विंग के खिलाफ वक्तव्य छपवाती है। इर्विंग द्वारा किए गए अत्याचार को चुपचाप सहन न करके उसका विरोध करती है।

(ज) वैश्विक बाजारवाद के कारण उत्पन्न उपभोक्ता संस्कृति :

आधुनिकता के इस युग में वैश्वीकरण की अर्थ आधारित प्रक्रिया ने न केवल पाश्चात्य जगत में अनेकानेक परिवर्तनों को जन्म दिया है, बल्कि भारतीय सामाजिक संरचना के साँस कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक पक्षों को भी प्रभावित किया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बाजारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय जीवनशैली व वैचारिक चिंतन को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। भूमंडलीकरण के इस युग की चकाचौंध ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र को अधिक प्रभावति किया है। वैश्विक बाजारवाद के कारण

सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों का विकास तो हुआ है, परंतु इसका प्रभाव दोनों पर ही विपरीत दिशा में पड़ा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हमारी सामाजिक–साँस कृतिक प्रक्रिया को इतना अधिक प्रभावित किया है, कि आज हम अपनी संस्कृति, रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान के तौर–तरीके और नियम भूलते जा रहे हैं। हमारे परंपरागत व्यवसाय, धंधे, लोकनृत्य तथा अपनी वास्तविक संस्कृति वैश्वीकरण के कारण पतन की ओर अग्रसर है।

वैश्विक बाजारवाद की प्रक्रिया ने आज देश के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, जिससे हमारा समाज व संस्कृति भी अछूते नहीं रहे हैं। वैश्वीकरण की विचारधारा वैश्वीय संस्कृति व विश्व ग्राम की बात करती है। इस प्रक्रिया में भौगोलिक दबाव कमजोर हो गए हैं और सामाजिक–साँस कृतिक संबंधों की पकड़ ढीली हो गई है। वैश्वीकरण ने हमारी स्थानीय संस्कृति में ऐसी विघटनात्मक प्रक्रिया को जन्म दिया है, कि आज का युवा वर्ग पुरातन व वैश्वीय संस्कृति के दौराहे पर खड़ा है, जहाँ एक तरफ अपनी संस्कृति है, तो दूसरी तरफ ऐसे मूल्य व प्रतिमान हैं, जो उसे आकर्षित तो करते हैं, लेकिन पारिवारिक दायित्वों व कर्तव्यों से दूर ले जाते हैं।

वैश्वीकरण के सामाजिक–साँस कृतिक प्रभाव के कारण ही संयुक्त परिवार का विघटन तथा एकाकी परिवार का प्रचलन बढ़ा है। परिवार के कार्यों का स्थान अन्य समितियों द्वारा ले लिया जाने से परिवार का वास्तविक महत्त्व व जरूरतें घटी हैं। युवाओं में उनमुक्त स्त्री–पुरुष संबंधों की सोच पनप रही है तथा प्रेम विवाह व अन्तर्जातीय विवाह की तरफ रुझान के कारण तलाक व दांपत्य संबंधों में दरार जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। अपने परंपरागत मूल्यों की पहचान खोकर पाश्चात्य संस्कृति के मूल्यों को अपनाने से साँस कृतिक संघर्ष पनपने लगा है। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पनपने के कारण सामाजिक संबंधों में घनिष्ठता के स्थान पर औपाचारिकता बढ़ रही है। परिवार में बढ़ती संवादहीनता और परिवार के सदस्यों में बढ़ती गैर जिम्मेदारी एवं स्वार्थ प्रवृत्ति तथा बुजुर्ग और युवा पीढ़ी के बीच बढ़ता अंतराल आदि वैश्विक बाजारवाद के कारण उत्पन्न उपभोक्तावादी संस्कृति के ही दुष्प्रभाव हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभावस्वरूप आम आदमी का चरित्र और मनोविज्ञान परिवर्तित होता जा रहा है। इस संस्कृति के प्रभाव से आज हम पश्चिम की जीवनशैली के गुलाम बनते जा रहे हैं तथा अपनी मूल साँस कृतिक विचारधारा व जीवनशैली से दूर होते जा रहे हैं। उपभोक्तावाद ने हमें दिमागी रूप से अपना दास बना लिया है, जिसके फलस्वरूप हम प्रगति और विकास को उपभोग की जाने वाली वस्तुओं से सीधा जोड़ने लगे हैं। उपभोक्तावाद हमारी जरूरतों को ही नहीं बल्कि हमारे नजरिए को भी परिवर्तित कर देता है, जिसके कारण हम अपने ज्ञान, प्रतिभा, कौशल, परंपरा, अनुभव और आस्था पर भरोसा न कर पश्चिमी जीवन दर्शन को प्रामाणिक मानने लगते हैं तथा उसका अंधानुकरण करने लगते हैं।

आधुनिक उपन्यास रचनाकार मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में यह बखूबी अभिव्यक्त किया गया है, कि उपभोक्तावाद ने हमारी संस्कृति को किस प्रकार से दूषित कर दिया है। पढ़ी–लिखी गृहणियों के अतिरिक्त कामकाजी स्त्रियाँ भी बाजार के व्यामोह में डूबती जा रही हैं, जिसके कारण समाज के साथ–साथ नारी के जीवन में भी बदलाव आया है। वैश्विक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने के लिए नारी को जिन क्षमताओं से परिपूर्ण होना चाहिए, उनकी ओर भारतीय नारी का अभी तक सही रुझान नहीं है। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से आज नारी 'वस्तु' बनती जा रही है। उसके सामने एक आकर्षक बाजार की चकाचौंध है, जिसमें वह अपनी अस्मिता के सही मायने भूलती जा रही है। घर–परिवार, रिश्ते–नाते, संवेदनाएँ सब उसके लिए बेमानी होते जा रहे हैं। हमारे पर्व–त्योहार, रिश्ते–नाते संवेदनाएँ सभी कुछ उपभोक्तावाद लीलता चला जा रहा है और आज की नारी उसके मायाजाल में फँसकर भ्रमित होकर चक्कर काट रही है। बदलते हुए समय के साथ नारी चाहे जितने स्वरूप बदल ले, लेकिन आपने घर की धुरी तो वह तब भी बनी रहना चाहेगी, जब शायद 'घर' का ही अस्तित्व न रहे।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से संपूर्ण भारत की उपभोक्तावादी संस्कृति के कई पहलुओं पर दृष्टि डालते हुए, अत्याधुनिक सुविधाओं से पूर्ण मॉल संस्कृति के प्रभाव से समाज के नैतिक मूल्यों में आई बेतहाशा गिरावट की ओर संकेत किया है। यांत्रिकता के कारण हमारा जीवन बाह्य और आंतरिक रूप से प्रभावित हुआ है। मनुष्य वैज्ञानिक उपलब्ध्यिों का जाने–अनजाने में अपने जीवन में स्वागत कर रहा है, जिससे सामाजिक जीवन में सहानुभूति, मानवीयता, आत्मीयता का भाव धीरे–धीरे समाप्त होता जा रहा है। आधुनिकीकरण के बदलते चरण में मनुष्य ने तंत्र और विज्ञान का सहारा लेकर अपनी निजी ज्ञान–सीमाओं तथा चिंतन–प्रणाली को आगे बढ़ाया है। बदलती चिंतन–प्रणाली के कारण प्राचीन मूल्यों, सामाजिक–पारिवारिक संबंधों, रूढ़िगत विचारों में परिवर्तन आया है। वेशभूषा, खान–पान, सामाजिक–साँस कृतिक व्यवहारों तथा विचारों तक को प्रभावित करने में इस प्रक्रिया ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। बाजारवाद की जंजीरों में जकड़ी 21वीं सदी का समाज सामाजिक और मानवीय मूल्यों से कटता जा रहा है तथा पश्चिम की भोगवादी संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है। महानगरों की चकाचौंध में बाजार ने अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित किया है, जिससे समाज व्यवस्था में बदलाव आया है। यह बाजारवाद अब मंडी से सीधा घरों में और लोगों के जीवन में प्रवेश कर चुका है। महानगरों की अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता को मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में चित्रित किया है। इन्होंने अभिव्यक्त किया है, कि भौतिक सुख–सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण आज अर्थ–प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा की कसौटी मानव मूल्य न होकर केवल भौतिक समृद्धि होती जा रही है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों पर अर्थतंत्र हावी होता जा रहा है।

कस्बों और महानगरों में जीवन के लिए संघर्षरत मनुष्य मृदुला जी के उपन्यासों के केंद में है। 'मैं और मैं' में महानगर में जीने वाले निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक असमानताओं, विवशताओं कुंठाओं व संदेहवृत्ति को अभिव्यक्त किया गया है तथा 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'मिलजुल मन', 'वंशज' में नगरीय जीवन की आंतरिक व बाह्य सच्चाई को व्यक्त करते हुए पूँजीपति वर्ग की संस्कृति व अपसंस्कृति और मध्यमवर्ग की विडंबना को चित्रित किया है। 'कठगुलाब' में आर्थिक अभाव की समस्या व सामाजिक रूढ़ियों की समस्या के कारण पुरुष द्वारा शोषित व पुनः संभलकर सशक्त रूप में खड़ी होकर अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण करने वाली नारी को चित्रित किया है। पूँजीवादी सभ्यता में व्यक्ति से अधिक पैसे को महत्त्व दिया जा रहा है, जिसके सामने रिश्ते–नाते कोई मायने नहीं रखते हैं। लेखिका का यह कथन – ''जैसे ही उसे समझ में आ गया कि उस संभ्रांत घर की ऐश्वर्यमयी स्वामिनी बनने के लिए उसे सुधीर के नहीं, जज साहब के कंधे थामने होंगे, वह 'पिया मिलन' को व्यग्र रोमानी वधू से कर्त्तव्यनिष्ठा से ओत–प्रोत कुलवधू बन गयी।''[104] धन को संबंधों से अधिक महत्त्व दिया जाना ही इनके संबंधों में बिखराव लाता है। असीम का यह कथन – ''हमारे लिए तो शर्म की बात है। पूरा बचपन कंगालों की तरह काटना पड़ा। दोस्तों के सामने जलील होना पड़ा। सब तुम्हारी अकड़ की वजह से। पति से एक पैसा तक नहीं लूँगी, वाह भई–वाह! वे सिर्फ तुम्हारे पति नहीं, हमारे डैडी भी हैं। जिस–तिस पर लाखों लुटाते फिरते हैं, और उनके बच्चों को तुम भिखमंगों की तरह पाल रही थी। तुम माँ हो या दुश्मन।''[105] असीम के इस कथन के माध्यम से सामाजिक–पारिवारिक मूल्यों में गिरावट व अर्थ केंद्रित समाज का सशक्त चित्रण किया गया है।

समाज में आज व्यक्ति भौतिकता की दौड़ में अंधा होकर अधिकाधिक धन संचय की ओर प्रवृत्त हो रहा है। लेखिका ने इस पर तीखा प्रहार किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''इससे बहुत कम दाम पर औरतें अपना प्यार बेचा करती हैं। माँ कहती थी, प्यार चाहे खाविंद को दो चाहे महबूब को, दाम हमेशा ऊँचे लगाओ। सस्ती चीज की कोई कदर नहीं करता................।''[106] तथा ''बरसों उसका शरीर खुद को खाता रहा था................वह अपने को काम, और काम में होम करता गया था, काम नहीं पैसा,...............। हाँ, पैसा। पैसा कमाने में एक नशा है; संभोग से भी गहरा। पैसा, पद, इज्जत, नाम, पैसा। एक पूरा चक्र। अहम् की तुष्टि, देह की

थकन, सफल होने का नशा...............कुछ कम तो नहीं।"[107] वर्तमान में पैसे ने समाज में गहरी जड़ें जमा ली हैं तथा औद्योगीकरण व बाजारीकरण के प्रभावस्वरूप मानवीय मूल्य छिन्न–भिन्न होते दिखाई दे रहे हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति में इंसान को आदमी से ज्यादा पैसों की परवाह है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद की ताकतें कई चेहरों में मंडी का रूप अख्तियार कर रही है। स्त्री, बच्चे, रिश्ते, माँ–बाप, ममता आदि तराजू में तोल कर मोल लगाए जाते हैं। जज्बातों का स्थान अर्थ ने ले लिया है और स्नेह का बाजार की चकाचौंध ने। साँस कृतिक धरोहर दिनोंदिन अपसंस्कृति के दलदल में धँसती चली जा रही है। व्यक्ति अपने स्वार्थ व लौकिक सुख के लिए मूल्यों–मर्यादाओं से भागता हुआ दिखाई दे रहा है। बाजारवाद ने लोगों को अपनी धुन में गुमराह कर दिया है। 'अनित्य' उपन्यास के पात्र सरण, मुकर्जी बाबू, शुक्ला जी आदि के माध्यम से उपभोक्ता संस्कृति को दर्शाया गया है। इनका उद्देश्य अधिकाधिक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करना है, जिसमें वे खुद को समर्पित पाते हैं और उनमें किसी प्रकार का अपराधबोध नहीं है। सरण जैसे नेता टोपी लगाकर गांधीवाद की आड़ में खुद का फायदा करना चाहते हैं। वह लाइसेंस, कोटा–परमिट और संस्था की दलाली का कार्य करते हुए अपना ही स्वार्थ सिद्ध करता है। हर कोई अपना फायदा चाहता है तथा उसके लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार है।

'कठगुलाब' उपन्यास में भी स्त्रियों का मानसिक, शारीरिक शोषण व मारियान की माँ वरजिनया उपभोक्तावादी संस्कृति को ही व्यक्त करते हैं। आज के बाजारवाद में हर चीज की कीमत होती है। पैसे के बल पर सब कुछ हासिल करने का प्रयास रहता है। स्मिता व मारियान का शोषण यही व्यक्त करता है कि बाजारवाद में एक की मेहनत दूसरा हड़प लेता है। पहले मारियान का पति इर्विंग मारियान को स्त्री सहज दुर्बलता के साँचे में ढालकर 'वुमेन ऑफ द अर्थ' किताब, जिसका पूरा रिसर्च मारियान ने किया था, अपने नाम से छपवा लेता है तथा बाद में मारियान भी स्मिता के नाम अगली किताब छपवाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करती है। स्मिता भी जिम जारविस की केस स्टडी का शिकार होती है तथा नर्मदा भी अपने जीजा की स्वार्थपूर्ति का शिकार होती है। मारियान को इर्विंग एक वस्तु की तरह इस्तेमाल करता है। दर्जन बीबी का पति भी उसको सिर्फ इसलिए छोड़ देता है क्योंकि वह उसके लिए बाजार बनना स्वीकार नहीं करती है। उपन्यास में आया यह वक्तव्य अभिव्यक्त करता है, कि उपभोक्तावादी संस्कृति में बाजारवाद के प्रभावस्वरूप औरत को भी एक वस्तु ही समझा जाने लगा है –

"पर माँ देह प्रदर्शन के खिलाफ थी। यह उसका दूसरा सिद्धांत था। मेरा बाप चाहता था कि मेरी माँ ऐसे कपड़े पहने, जिनमें उसकी देह का सौंदर्य और सौष्ठव वही नहीं, उसके दोस्त–अहबाज भी देखें। और वह गर्व से सिर ऊँचा करके मूक कटाक्ष फेंक सके कि देखो क्या बाँकी औरत ब्याहकर लाये हैं हम, तुम लाख लार गिराते रहो, हाथ नहीं आएगी। पर माँ पर उसका कोई बस नहीं चलता था।

माँ दो टूक कहती, "मैं अपनी सीमा नहीं लाँघूँगी। न घर को बाजार बनाऊँगी, न बाजार को ख्वाबगाह।" मार–पीट करने की मेरे बाप को आदत नहीं थी। औरत की देह उसके लिए भोग की खूबसूरत वस्तु थी, उसे पीट–पीटाकर दाग–धब्बेदार बनाना उसे गवारा नहीं था। मन के दाग, अलबत्ता, चेहरा खराब करने में वक्त लगाते हैं, तो............"[108]

मारियान की माँ वरजिनया भी उपभोक्तावादी संस्कृति को व्यक्त करती है। उसने जॉर्ज से दूसरा विवाह उसकी संपत्ति के लिए ही किया था। वह खूबसूरत थी और अपनी खूबसूरती के बल पर उसने जॉर्ज से शादी इसलिए की थी, क्योंकि जॉर्ज खूब अमीर था। उसने अपनी खूबसूरती को कभी ढलने नहीं दिया बल्कि मेकअप से हमेशा छुपाकर रखा। मारियान का यह कथन – "अपने प्रसाधन के लिए माँ हमेशा वहाँ प्रख्यात ब्यूटीशियन, एवा कारसन के पास जाती रही थी। उसका दावा था कि वह मामूली–से–मामूली औरत को हूर बनाकर पेश कर सकती है।"[109] तथा – "मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहती। मैं उससे पहले मर जाऊँगी।

सारा पैसा....बेकार....हो.....गया।''[110] तथा – ''आखिरी क्षणों में, माँ का अवरुद्ध कंठ, एक बार, अपनी जकड़ से छूटा था। ऊँची और स्पष्ट आवाज में उसने कहा था, ''मैं हार गयी। सारी जायदाद ब्रायन को मिल गयी।''[111] उक्त उद्धरणों से व्यक्त होता है, कि ऐसी कई औरतें होती हैं, जो शादी के बाद तलाक लेकर सिर्फ पैसों के लिए दूसरी शादी करती हैं। शादी को बाजार बनाती हैं तथा आज का बाजारवाद बाजार में बिकनेवाली चीजों की खूबसूरती को महत्त्व देता है। उपभोक्तावादी संस्कृति में बाजारवाद के प्रभावस्वरूप भारत जैसे राष्ट्र में सामाजिक विखंडन का खतरा दिन–प्रतिदिन और भी गहराता जा रहा है। आज मानव के आपसी रिश्तों और सरोकारों में एक यांत्रिक अपरिचय और अजनबियत पसर रही है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं – घुटन द्वंद्व, छटपटाहट व संघर्ष को विभिन्न वर्गों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। आर्थिक संरक्षण व निर्धन लोगों की विवशता, मालिक का अन्यायपूर्ण व्यवहार, आर्थिक विवशता के कारण स्त्री का शारीरिक व मानसिक शोषण तथा जीवन–संघर्ष को अपने उपन्यास साहित्य में चित्रित किया है। अर्थाभाव के कारण उत्पन्न वर्गगत विषमता को चित्रित करते हुए सर्वहारा वर्ग की वर्ग चेतना को अभिव्यक्त किया है। अर्थ के आधार पर वर्गों में विभाजित सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के मध्य की खाई के कारण उत्पन्न वर्गभेद व आर्थिक विषमता के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। संपन्नता–विपन्नता के बीच वर्गचेतना को अभिव्यक्त करते हुए निम्न वर्ग का होने वाला क्रूर शोषण, बालश्रम के द्वारा बच्चों पर होने वाले अत्याचार की ओर पाठक वर्ग का ध्यानाकृष्ट किया है। सर्वहारा वर्ग का अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर तथा अपने शोषण की प्रतिक्रियास्वरूप बुर्जुआ वर्ग के प्रति विद्रोह के भाव को चित्रित किया गया है। वर्गगत विषमता के विद्रोहस्वरूप उत्पन्न वर्ग चेतना को अभिव्यक्त किया है।

आर्थिक परवशता के कारण उत्पन्न व्यक्ति के मानसिक तनाव, कुंठा, घुटन व शोषण को चित्रित किया है। अर्थ के अभाव में न चाहते हुए भी व्यक्ति विवश होकर अत्याचार सहने पर मजबूर होता है। आर्थिक अभाव ने ही बालश्रम को बढ़ावा दिया है। गरीब व लाचार बच्चों का बचपन अर्थाभाव के कारण नष्ट हो जाता है। उस उम्र में ही उनको कारखानों, दुकानों, खानों व होटलों में काम पर लगा दिया जाता है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में पाठक वर्ग का ध्यान बालश्रम व शोषण की ओर आकृष्ट किया है। मध्यमवर्गीय समाज की व्यवस्था का यथार्थ चित्रण करते हुए इस वर्ग के व्यक्ति की ऊब व आकांक्षा, कुंठा अजनबीपन, अकेलेपन, मूल्य–ह्रास आदि को बखूबी अभिव्यक्त किया है।

वाणिज्य व व्यापार की स्थिति को चित्रित करते हुए अभिव्यक्त किया है, कि पूँजीवाद के शिंकजे आज अधिनिवेशी शक्तियों, जैसे – मल्टी नेशनल कंपनियाँ, भारत जैसे देशों को अपनी व्यापारिक नीतियों से गुलामी की ओर वापस धकेल रही है। आर्थिक असमानता के कारण जनता में उत्पन्न असंतोष की ज्वाला व वर्ग–संघर्ष के विभिन्न स्तरों का जींवत चित्रण करते हुए अर्थमूलक संस्कृति के कारण समाज में पनपती अनैतिकता, शोषण व अन्याय के प्रति विद्रोहात्मक भाव की अभिव्यक्त किया गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव स्वरूप मानव नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, जिसके कारण मानवीय संबंधों की डोर कमजोर होती जा रही है। उपनिवेशवादी ताकतें कई चेहरों में मंडी का रूप अख्तियार कर रही हैं। जज्जबातों का स्थान अर्थ ने ले लिया है और स्नेह का बाजार की चकाचौंध ने, जिसके कारण साँस कृतिक धरोहर दिनोंदिन अपसंस्कृति के दलदल में धँसती चली जा रही है। आज मानव के आपसी रिश्तों और सरोकारों में पसर रही यांत्रिकता व अजनबियत के कारण भारत जैसे राष्ट्र में सामाजिक विखंडन का खतरा दिन–प्रतिदिन गहराता जा रहा है।

–: संदर्भ ग्रंथ :–

1. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 206.
2. वही, पृ. सं. – 48.
3. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 33.
4. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 15.
5. वही, पृ. सं. – 15.
6. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 21.
7. वही, पृ. सं. – 21–22.
8. वही, पृ. सं. – 47.
9. वही, पृ. सं. – 48.
10. वही, पृ. सं. – 145–147.
11. वही, पृ. सं. – 135.
12. गर्ग, मृदुला. (2019). वंषज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 135.
13. गर्ग, मृदुला. (2013). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 18.
14. वही, पृ. सं. – 15.
15. वही, पृ. सं. – 16.
16. वही, पृ. सं. – 20.
17. वही, पृ. सं. – 129.
18. वही, पृ. सं. – 130.
19. वही, पृ. सं. – 131–132.
20. वही, पृ. सं. – 135–136.
21. वही, पृ. सं. – 136.
22. वही, पृ. सं. – 151–153.
23. गर्ग मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 34–35.
24. वही, पृ. सं. – 178.
25. वही, पृ. सं. – 179.
26. वही, पृ. सं. – 317.
27. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 134.
28. वही, पृ. सं. – 135.
29. वही, पृ. सं. – 135.
30. गर्ग मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 129.
31. वही, पृ. सं. – 129–130.
32. वही, पृ. सं. – 131–132.
33. वही, पृ. सं. – 135.
34. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 75.
35. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 154–155.
36. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 129.
37. वही, पृ. सं. – 123.
38. वही, पृ. सं. – 18.
39. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 16.
40. गर्ग, मृदुला. (2009). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 65.
41. वही, पृ. सं. – 73.
42. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 38.
43. वही, पृ. सं. – 40–41.
44. वही, पृ. सं. – 42.
45. वही, पृ. सं. – 42–43.

46. वही, पृ. सं. – 160.
47. वही, पृ. सं. – 164.
48. वही, पृ. सं. – 168.
49. वही, पृ. सं. – 199.
50. वही, पृ. सं. – 235.
51. वही, पृ. सं. – 261–262.
52. वही, पृ. सं. – 276.
53. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – XII.
54. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 206.
55. वही, पृ. सं. – 38.
56. वही, पृ. सं. – 39.
57. वही, पृ. सं. – 43.
58. वही, पृ. सं. – 45.
59. वही, पृ. सं. – 45–46.
60. वही, पृ. सं. – 61.
61. वही, पृ. सं. – 78.
62. वही, पृ. सं. – 21.
63. वही, पृ. सं. – 34–35.
64. वही, पृ. सं. – 61.
65. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 135.
66. वही, पृ. सं. – 139.
67. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 55.
68. वही, पृ. सं. – 100.
69. वही, पृ. सं. – 100.
70. वही, पृ. सं. – 100.
71. वही, पृ. सं. – 144.
72. वही, पृ. सं. – 145–146.
73. वही, पृ. सं. – 146.
74. वही, पृ. सं. – 147.
75. वही, पृ. सं. – 98.
76. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 307.
77. वही, पृ. सं. – 307.
78. वही, पृ. सं. – 235.
79. वही, पृ. सं. – 27.
80. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – IX – X.
81. वही, पृ. सं. – VII.
82. वही, पृ. सं. – XI.
83. वही, पृ. सं. – XII.
84. वही, पृ. सं. – 177.
85. वही, पृ. सं. – 187–188.
86. वही, पृ. सं. – 201.
87. वही, पृ. सं. – 202–203.
88. वही, पृ. सं. – 168.
89. वही, पृ. सं. – 170–171.
90. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 138–139.
91. वही, पृ. सं. – 71.
92. वही, पृ. सं. – 72.

93. वही, पृ. सं. – 73.
94. वही, पृ. सं. – 105.
95. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – IX.
96. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 59.
97. वही, पृ. सं. – 61.
98. वही, पृ. सं. – 165.
99. वही, पृ. सं. – 165.
100. वही, पृ. सं. – 189–190.
101. वही, पृ. सं. – 131.
102. वही, पृ. सं. – 131–132.
103. गर्ग, मृदुला. (2019). वंषज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 80.
104. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 169.
105. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 209.
106. वही, पृ. सं. – 160.
107. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 166–167.
108. वही, पृ. सं. – 70.
109. वही, पृ. सं. – 70.
110. वही, पृ. सं. – 71.

—: सप्तम अध्याय :—

—: मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :—

संस्कृति वह गुण है, जो मानव को मानव बनाती है। संस्कृति ही मानव को जीवन का अर्थ बताती है तथा जीवन जीने का तरीका सिखाती है। संस्कृति हमारी परंपराओं से, विश्वासों से, जीवन शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से, भौतिक पक्ष से निरंतर जुड़ी रहती है। संस्कृति के तीन शाश्वत मूल्य हैं — सत्यं, शिवं और सुंदरं। इसके द्वारा हम नैतिक मानव बनते हैं तथा प्रेम, सहिष्णुता और शांति का पाठ सीखते हैं। अतः संस्कृति सामाजिक अंतःक्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है। यह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन व नियंत्रण करती है। संस्कृति किसी भी देश—जाति तथा धर्म की अभिव्यक्ति होती है, जो समाज व देश की तात्कालिक स्थिति के अनुसार परिवर्तित—परिमार्जित होती रहती है। प्रत्येक कालखंड की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। संस्कृति का स्वरूप समय के साथ धीर—धीरे बदलता रहता है तथा उसमें नये—नये अनुभवों व विचारों का मिश्रण होता रहता है, जिसके कारण एक कालक्रम के पश्चात् संस्कृति का स्वरूप अपने मूल रूप से भिन्न—भिन्न दिखाई देता है। आज हम जिस साँस कृतिक वातावरण में जी रहे हैं, वह हमारी वर्तमान संस्कृति है, जो कुछ बातों में प्राचीन संस्कृति का अनुकरण करते हुए भी उससे भिन्न है। संस्कृति में होने वाले बदलाव की गति अति मंद व सूक्ष्म होने के कारण उसका परिवर्तन हम आसानी से समझ नहीं पाते हैं। साहित्यकार भी सामाजिक स्थितियों से संवेदित होता है तथा साँस कृतिक परिवर्तनों से प्रभावित होता है, जिसकी स्पष्ट छाप उसके साहित्य में प्रतिबिंबित होती है। एक कुशल व सजग साहित्यकार सामाजिक—साँस कृतिक घटनाओं, परिवर्तनों आदि को अपनी रचनाओं में संश्लेषित व विश्लेषित करता चलता है।

मृदुला गर्ग भी ऐसी ही प्रबुद्ध उपन्यासकार हैं, जिन्होंने परिवर्तित होते समाज के साथ—साथ परिवर्तित व संक्रमित हो रहे साँस कृतिक मूल्यों को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। इनके औपन्यासिक चरित्र प्रायः समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वर्तमान समाज के साँस कृतिक विरोधाभासों के प्रति स्पष्ट प्रतिसंवदेन व्यक्त करते हैं। वर्तमान समय में समाज में व्याप्त विदेशी मानसिकता व भूमंडलीकरण के प्रभावों तथा परिणतियों का सूक्ष्म अंकन मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में किया है। चाहे वह अमीर सुसंपन्न परिवार की नारी की आत्मतुष्टि की खोज हो, या निम्न वर्गीय परिवार की नारी पर होने वाला अत्याचार व उसका संघर्ष, पति अथवा पत्नी के प्रेम प्रसंग में उत्पन्न विसंगति हो या दांपत्य संबंधों की कड़वाहट आदि का चित्रण सरलता व सहजता के साथ प्रभावित रूप से किया है। वर्तमान सदी की संचार क्रांति में जी रहे उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित आज के वैश्विक गाँव में बदलते समाज का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें इन परिवर्तनों के फलस्वरूप आई विसंगतियों को भारतीय स्त्री—पुरुष अभिशाप की भाँति झेलने के लिए विवश हैं।

(क) ग्रामीण व शहरी परिवेश :—

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा यहाँ की जनसंख्या का अधिकांश भाग गाँवों में निवास करता है। गाँव के लोगों में सामूहिकता की भावना पाई जाती है तथा लोगों की आवश्यकताएँ एक—दूसरे के सहयोग से पूरी होती हैं। किसान ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं तथा वे अपने खेतों में अनाज और सब्जियों को उगाने के लिए कड़ा परिश्रम करते हैं। किसानों का जीवन शहरों की भागदौड़ एवं हलचलों से दूर एवं प्रकृति के करीब होता है। ग्रामीण परिवेश में यदि भूमि और जातीय पूर्वाग्रहों तथा प्रचलित अंधविश्वासों व रूढ़ियों को छोड़ दिया जाए तो यहाँ शांति व सौहार्द्र का माहौल होता है। प्रथम महायुद्ध के उपरांत तथा फ्राँस की औद्योगिक क्रांति के कारण विश्वभर में असाधारण परिवर्तन हुए। यातायात की सुविधा, यंत्रीकरण व नवीन उद्योग धंधों ने गाँवों में बसी जनता को अपनी ओर आकर्षित किया तथा अर्थाभाव, दारिद्रय, बेरोजगारी आदि के कारण लोग शहरों की ओर आने लगे। नगरों की

आबादी में वृद्धि हुई तथा निकटवर्ती गाँवों में भी तीव्र गति से परिवर्तन होने लगे। इन सब परिवर्तनों के कारण गाँव कस्बे में, कस्बे नगर में और नगर महानगर में परिवर्तित होते गए।

ग्रामीण व शहरी जीवन एक–दूसरे के विपरीत होता है। एक तरफ जहाँ ग्रामीण जीवन में संयुक्त परिवार, रिश्ते–नातों, मित्रों और साँस कृतिक मूल्यों को महत्त्व दिया जाता है, वहीं शहरी जीवन में लोग एकाकी व चकाचौंध भरा जीवन जीते हैं। ग्रामीण जीवन काफी शांतिपूर्ण तथा साधारण होता है, वहीं शहरी जीवन व्यस्तता व भारी तनाव से भरा हुआ होता है। गाँवों में ज्यादातर आधारभूत सुविधाओं, जैसे – अच्छी व उच्च शिक्षा, नर्सिंग होम, कारखाने, उद्योग–धंधे आदि जहाँ लोगों को रोजगार मिलता है, की कमी होने के कारण लोग अच्छी तथा उच्च शिक्षा–प्राप्ति, रोजगार की प्राप्ति तथा जीवन की सुख–सुविधाओं की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहर में लोगों के पास आराम और सुविधाओं की कई सामग्रियाँ होती हैं, लेकिन उन्हें मानसिक शांति नसीब नहीं होती है और उनका जीवन दबाव, तनाव और चिंता से भरा हुआ है तथा औद्योगिक क्रांति–पश्चात् आर्थिक व सामाजिक–साँस कृतिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ है। स्वतंत्रता–पश्चात् भारतीय जन जीवन में आए विराट परिवर्तन को ग्रामीण व शहरी जीवन में स्पष्ट देखा जा सकता है। सुख–समृद्धि की चाह में हर कोई शहर की ओर भाग रहा है, जिसके कारण जनसंख्या का एक वृहत हिस्सा आज नगरों में झुग्गी–झोपड़ियों व कॉलोनियों में बस गया है तथा महानगरीय सभ्यता के विकास में योगदान दे रहा है। महानगरीय जीवन शैली से परिवर्तित मानसिकता, दृष्टिकोण में परिवर्तन, व्यक्तिवादी सोच, अवसरवादिता, आधुनिकतावादी व्यवहार, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, स्त्री–पुरुष संबंधों की शिथिलता, अर्थाभाव, आत्मकेंद्रित रिश्ते, अनमेल विवाह जैसी शहरी परिवेश की समस्याओं का जन्म हुआ, जो आज स्पष्ट दिखाई दे रही हैं।

मृदुला गर्ग ने नगरीय जीवन को पास से देखा व भोगा है तथा इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य का कथ्य नगरीय जीवन को ही बनाया है, लेकिन कुछ स्थानों पर ग्रामीण परिवेश को भी चित्रित किया है। शहरी जीवन की कृत्रिमता के साथ–साथ ग्रामीण जीवन की संवेदनशीलता व अपनेपन का भी चित्रण किया है। इनके 'कठगुलाब' उपन्यास में शहरी कृत्रिमता पर ग्रामीण संवेदनशीलता व अपनेपन की विजय को स्पष्ट देखा जा सकता है। शहरीकरण–नगरीकरण के कारण मानवीय स्वभाव में भी बदलाव आया है, जिसके कारण सामाजिक–साँस कृतिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव दृष्टिगोचर होता है। इस बदलाव का प्रभाव भारतीय जनमानस पर भी पड़ा है तथा एक नया बोध सर्वत्र छा गया है। शहरी परिवेश में दबावों तले व्यक्ति सोच विचार में स्वतंत्र होकर भी घुटन महसूस कर रहा है। आधुनिक जिंदगी के विविध आयाम उसके मस्तिष्क को झकझोर रहे हैं। समाज में मूल्यों, मान्यताओं की स्थापना युगीन परिवेशानुसार होती है, इसलिए युगीन संदर्भों में बदलाव आने के साथ–साथ उनमें भी बदलाव आना अनिवार्य हो जाता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की झलक ग्रामीण व शहरी परिवेश के विविध रूपों में परिलक्षित होती है। इन्होंने अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय नारी की विविध समस्याओं के साथ ही समाज में व्यक्ति की पीड़ा, विवाह–संबंध, प्रेम–संबंधों में परायापन, नैतिक मूल्यों का पतन, भ्रष्टाचार अलगाव व अकेलापन आदि समस्याओं को भी चित्रित किया है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों को महत्त्व दिया जाता रहा है, परंतु उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभावस्वरूप शहरी परिवेश में वर्तमान सामाजिक संस्कृति में अर्थ को प्राथमिकता दी जाने लगी है। कस्बों और महानगरों में जीवन के लिए संघर्षरत मनुष्य इनके उपन्यासों के केंद में है। 'मैं और मैं' में महानगरीय परिवेश में जी रहे निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक असमानताओं, विवशताओं, कुंठाओं व संदेहवृत्ति को व्यक्त किया है तथा 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'कठगुलाब', 'वंशज', 'मिलजुल मन' में महानगरीय परिवेश की आंतरिक व बाह्य सच्चाइयों को व्यक्त करते हुए पूँजीवादी सभ्यता से प्रभावित संस्कृति व अपसंस्कृति और मध्यवर्ग की विडंबना को चित्रित किया है। 'कठगुलाब' में आर्थिक अभाव की समस्या व सामाजिक रूढ़ियों के कारण पुरुष–द्वारा शोषित व पुनः

संभलकर सशक्त रूप से खड़ी होकर अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करने वाली नारी को चित्रित किया है तथा 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'वंशज' मे पति–पत्नी के संबंधों में आई कटुता व पारिवारिक बिखराव को चित्रित किया है। नगरीय जीवन में स्त्री–पुरुष के बदलते संबंधों उनके अलगाव तथा संघर्ष का जीवंत चित्रण इनके उपन्यास साहित्य में मिलता है।

मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' व 'मिलजुल मन' उपन्यास में ग्रामीण परिवेश की झलक भी मिलती है। 'कठगुलाब' में लेखिका गाँव की बेहतरी के लिए लघु उद्योग शुरू करने, पर्यावरण–संतुलन हेतु खेती करने, पेड़–पौधे लगाने व ग्रामीण बच्चों को शिक्षा देने जैसे सामाजिक कार्यों का चित्रण करके लेखिका ने मानो देश की अधिकांश आबादी को गरीबी से ऊपर उठाने की अपनी इच्छा को वाणी दी है। स्मिता अपने प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए गुजरात के गोधड़ ग्राम में जा रही है तथा वहाँ पर वह ग्रामीण परिवेश में रहकर कस्बे की औरतों के लिए लघु उद्योग खोलने व बच्चों के लिए स्कूल चलाने की योजना को मूर्त रूप देती है। असीमा भी स्मिता के साथ में काम करने के लिए तैयार हो जाती है तथा वह गोधड़ के वंथाल गाँव में शिक्षा के लिए चलाई जा रही, प्राइमरी स्कूल व बालिकाओं के दाखिले को लेकर उत्साहित दिखाई देती है। ग्रामीण परिवेश में शिक्षा, बिजली, पानी, रोजगार, लड़के–लड़की में किया जाने वाला भेदभाव तथा अपने परिवार व सामाजिक मूल्यों के प्रति चिंता व सुरक्षा का भाव आदि को चित्रित किया है। असीमा के इस कथन से अभिव्यक्त होता है, कि आज भी गाँव में पानी–बिजली की समस्या है, वहाँ स्त्री को निर्णय लेने का अधिकार नहीं है तथा बालिकाओं को भी बाहर भेजकर लड़को के साथ शिक्षा दिलवाने के पक्ष में नहीं हैं। अपने भाई को साथ में रखकर, भेड़–बकरियाँ चराने के पश्चात् तथा घर का काम निपटाने के पष्चात् ही पढ़ने की अनुमति मिलती है। असीमा कहती है कि –"वन्थाल और उसके आसपास का इलाका सूखा–पीड़ित प्रदेश कहलाता है यानी वन्थाल भी इस महान देश के अन्य आम गाँवों की तरह है। नुचा–खुसटा जंगल, भेड़–बकरी पालने पर विवश खेतिहर, सूखा–राहत के नाम पर हर साल बनती–ढ़हती, नाकारा, कच्ची सड़क।...... कुँवरजी ने स्थानीय व्यवस्था और गाँव के मर्दों को इस बात पर राजी कर लिया कि पम्पों के रखरखाव का काम; गाँव की औरतों को सिखला दिया जाए और उसकी तमाम जिम्मेवारी उनकों सौप दी जाए। हिन्दुस्तान में यह भी कम नहीं है। औरतों के काम करने से किसी को ऐतराज नहीं होता। पर काम सीखकर, वे बाकायदा मिस्त्री कहलाएँ या निर्णय लेने की गुस्ताखी करें, उससे हर किसी को समाज और परिवार की मर्यादा संकट में नजर आने लगती है। ....जब मैं वहाँ पहुँची तो दस में से आठ पम्प एकदम फिट–फाट काम कर रहे थे। फिर कुँवरजी ने औरतों के लिए टोकरी–चटाई बुनने के काम शुरू किये और साथ में बच्चों के लिए स्कूल।................गाँव के पिताओं ने बतलाया कि इस देहाती स्कूल में केवल कन्याओं को इसलिए पढ़ाया जाता था, क्योंकि सरकारी स्कूल गाँव की सरहद से बाहर, सड़क पार करके था। लडकों को तो वहाँ भेजा जा सकता था पर लड़कियाँ ठहरी घर की इज्जत। उन्हें जवान–जहान छोकरों के सामने इतनी दूर कैसे घुमाया जा सकता था? खुली हवा में घूमने की आदत पड़ जाती तो खूँटे से बाँधकर रखना मुश्किल हो जाता न। कुँवरजी के यह कहने पर कि स्कूल में छोटे भाई–बहनों को साथ ले जाने का इन्तजाम था, वे लोग लड़कियों को, भेड़–बकरी चरा लाने के बाद, वहाँ भेजने के लिए तैयार हो गये थे। कुँवरजी ने सबके लिए दूधिया मीठी चाय के साथ बिस्कुट का भी बन्दोबस्त कर रखा था। सो, छोटे भाई के साथ छोटी के चाय गुटक लेने में किसी को ऐतराज नहीं था।"[1] जागीरदार कुंवरजी देहात में समाज सेवा का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। गरीब ग्रामीण बच्चों की शारीरिक कमजोरी को भी इस प्रकार अभिव्यक्त किया है – "पर, साले, इस बदनसीब मुल्क में समाज–सेवा कौन आसान है! उन कबीली किस्म के गरीब देहाती बच्चों ने पहले कभी दूध चखा न था। डाँट–मार के डर से पीने को राजी हुए भी तो, मारे दस्त–पर–दस्त। हारकर कुँवरजी ने गाढ़ी कड़क चाय में दूध डालकर नासपीटों को पिलानी शुरू की। साथ में बिस्कुट का चारा। फिर तो, कुछ ही महीनों में चाय का ऐसा चस्का लगा कि जिसे देखो स्कूल में हाजिर। कुँवरजी स्कूल का समय मौसम और जरूरत के साथ बदलते रहते

थे, जिससे लड़कियाँ घर का और भेड़–बकरियों का सारा काम निबटाकर, भाई–बहनों को साथ लेकर पढ़ने आ सकती थी। तो यह था उनकी सफलता का राज।''''[2]

ग्रामीण परिवेश में शिक्षा व चिकित्सा के अभाव का चित्रण मृदुला जी ने कुछ इस प्रकार किया है। लेखिका असीमा के शब्दों में अभिव्यक्त करती हैं –''वन्थाल के बारे में मजेदार घटना सुनाऊँ? जब पहले दिन हम वहाँ का स्कूल देखने गये तो पता है क्या हुआ। जैसे ही स्मिता और मैं क्लास में घुसे, सारे–के–सारे बच्चे धाड़ मारकर रोने लगे। हम दोनों चक्कर में पड़ गये।''[3] जब कुंवरजी ने बच्चों को डाट–डपटकर चुप करवाया और बताया कि बच्चे क्यों रो रहे थे। असीमा का यह कथन – ''हमें बतलाया गया कि बच्चे हमें डॉक्टर समझकर सूई के डर से रो रहे थे। उस गाँव में डॉक्टरनी ही एक ऐसी औरत थी जो ढंग से साड़ी–ब्लाउज में दिखाई देती थी, सो बच्चों ने सोचा, इस बार, एक के बजाय दो जनियाँ टीके लगाने पधारी थी। बड़ी मुश्किल से उन्हें चुप कराया और समझाया कि हमारा सूई लगाने का कोई इरादा नहीं था। पूरा यकीन उन्हें तभी हुआ जब हम मेडिकल हरकते किये बिना बाहर निकल आये।''[4]

असीमा शिक्षा के द्वारा लड़के–लड़की के बीच किए जाने वाले भेद को समाज से मिटाना चाहती है। वह कहती है, कि अगर अवसर दिया जाए तो लड़कियाँ भी बहुत कुछ बन सकती हैं, समाज के लिए बहुत कुछ कर सकती हैं। उसका यह कथन इस बात को इंगित करता है –''जब यह पूछने पर कि उनका पसन्दीदा विषय क्या था, एक लड़की ने सहज भाव से कहा, ''गणित।'' और ये साले मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री कहते फिरते हैं कि स्त्रियों की गणित में दिलचस्पी नहीं होती। अवसर मिले, तब न दिलचस्पी सकारात्मक हो पाये। सच, वहाँ जाकर मुझे लगा कि माकूल मौके मिलें तो ये लड़कियाँ क्या–कुछ बनकर नहीं दिखला सकतीं, डॉक्टर, इंजीनियर, सब।''[5] आगे वह कहती है –''मैं जानती हूँ, हमारा लक्ष्य ऐसा समाज होना चाहिए, जहाँ लड़के–लड़की का फर्क मिट जाए। पर अभी तो हम तराजू के पलड़े ऊपर–नीचे करने की स्थिति में हैं। पर घबराओ मत, मैं लड़को को अपने स्कूल में आने से रोकूँगी नहीं। सच, मैं चाहती हूँ, हमारे ही नहीं, गाँवों के सभी स्कूलों में लड़के–लड़कियाँ साथ पढ़े, मिलकर भेड़–बकरियाँ चरायें, पानी भरें, लड़कियाँ बीनें, चूल्हे बनायें, खाना पकायें....पर एकदम सब कुछ थोड़ा हो सकता है।''[6]

असीमा व स्मिता के प्रयास से ग्रामीण परिवेश में शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में बदलाव आता है। वहाँ की औरतों व लोगों के साथ मिलकर कार्य करने से अपनत्व की भावना उत्पन्न होती है। वहाँ आए बदलाव को उक्त वक्तव्य में दर्शाया गया है – ''फिर भी, गोधड़ में जो बदलाव आया था वह काफी प्रशंसनीय था। असीमा की रपटों और पर्यावरणहितू पत्रकारों की अनुशंसाओं के आधार पर इतना जरूर कहा जा सकता था कि बहुत दिनों बाद, गोधड़ गाँव को एक नयी दृष्टि मिली थी। या कहें कि उसने बन्द आँखें खोलकर, दुबारा, अपनी पुरानी सन्तुलित दृष्टि से चीजों को देखना शुरू कर दिया था। इस प्रक्रिया की शुरुआत असीमा ने की थी। उसी ने बरसों बाद गोधड़ में वह देखा था, जो भविष्य में हो सकता था और अतीत में हो चुका था। पर उसकी दृष्टि नारी–उत्थान की भावना से सीमित थी। असीमा ने बालिकाओं को शिक्षा और व्यस्क औरतों को काम दिलाने का बीड़ा उठाया था। कुछ सफलता भी पाई थी पर स्मिता न होती तो शायद, अन्ततः उसे हार मानकर लौट जाना पड़ता। स्मिता ने चुपचाप, बिला शोर–शराबे, एकदम सहज–स्वाभाविक ढंग से, पेड़–पौधों, प्रकृति और पर्यावरण को अपना हमसफर बना लिया था। प्रकृति और परिवेश के सामंजस्य में आस्था रखनेवाला उसका स्वभाव, गाँव की आदिवासी औरतों को अपना–अपना–सा लगा था। वेशभूषा, हाव–भाव और व्यवहार में अलग होने पर भी, उनके साझे लगाव ने उन्हें ऐसे सूक्ष्म और मार्मिक तन्तु से जोड़ दिया था कि, अनायास उन्हें एक–दूसरे पर विश्वास हो गया था।''[7]

ग्रामीण पहनावे का भी लेखिका इस प्रकार से चित्रण करती हैं –''गाँव की आदिवासी महिलाओं से प्रथम साक्षात्कार की तैयारी, काफी सोच–विचार के बाद की गयी थी। असीमा के सुझाव पर, जब स्मिता और वह उनसे मिलने गयी तो उस प्रदेश की ठेठ गँवई, गुजराती

छापेवाली सूती धोतियाँ पहने थीं। आदिवासी महिलाओं ने उन्हें खासे अचरज और अविश्वास से देखा था। खुद उन सभी ने सिंथेटिक नायलोन की साड़ियाँ पहन रखी थीं। छह महीने पहले सूखे के दिनों में, एक स्वयंसेवी संस्था ने ये साड़ियाँ वितरित की थीं और वे उनकी कायल हो गयी थीं। रोजमर्रा के इस्तेमाल और पानी में निचोड़कर तेज धूप में सुखाने के बावजूद वे न फटी थीं, न फिड्डी हुई थी। वे उनके टिकाऊ वजूद से उतनी ही चमत्कृत थीं, जितनी गाँव के ओझा के करिश्मों से।''[8] वे उन्हीं के अनुसार अपने को ढालने का प्रयास करती हैं तथा साथ ही शिक्षा देकर उनमें आत्मविश्वास पैदा करके स्वावलंबी बनाने का प्रयास करती हैं। गोधड़ में किए गए प्रयास को असीमा इस प्रकार से अभिव्यक्त करती है – ''वन्थाल में किये गये शोध–अनुसन्धान के आधार पर, उसने स्कूल के हर पहलू को गाँव के रहन–सहन और जरूरतों के मुताबिक ढाला था। भेड़–बकरियों के चराने के समय से लेकर उनकी माँओं के सालाना जापों तक का खयाल रखकर, टाइम–टेबल बनाया था। वह स्वीकार करके कि लड़कियाँ पढ़ने तभी आ सकती थीं, जब अपने छोटे भाई–बहनों को साथ ला पाएँ। उसने स्कूल के साथ 'क्रेश' का भी बन्दोबस्त किया था, जहाँ बच्चों के खेलने–खाने का बढ़िया इन्तजाम था। उसके साथ ही गाँव की औरतों की आय और आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए, उन्हें हैंडपम्प मैकेनिक की ट्रेनिंग देने की पेशकश भी की थी।''[9] ग्रामीण औरतों को काम सिखाने में सबसे बड़ी बाधा वहाँ के पुरुष थे। असीमा ने देखा कि पुरुष चाहे उन औरतों पर कितना ही अत्याचार करे लेकिन किसी अन्य के मुँह से वे औरतें अपने पति की बुराई नहीं सुन सकती हैं। असीमा कहती है कि – ''इक्का–दुक्का औरत मैकेनिक बनने को तैयार होती तो दो–चार दिन बाद आकर माफी माँग लेती। कुछेक लड़कियाँ स्कूल आती तो सात–आठ दिन बाद घर बैठ जाती। असीमा उसे हरामी मर्दों की साजिश बतलाती थी। पर उन्हें लताड़ने में मामला सुधरता नहीं था, और बिगड़ जाता था। पति–निन्दा सुनकर औरतें खुद बागी हो जाती। अजीब गोरखधन्धा था। जो औरतें घंटो अपने मर्दों के अनाचार अत्याचार का रोना रोती थीं, वही असीमा के मुँह से उनके खिलाफ दो जुमले सुनते ही, परम पतिव्रता बन, उनका बचाव करने लगती थी। असफलता की आशंका से असीमा की रातों की नींद उड़ गयी थी। वह बात–बात पर झल्ला उठती थी, जिससे मसला और उलझता जा रहा था।''[10]

स्मिता गाँव की बूढ़ी औरतों को साथ लेकर नाली बनाकर पंप से बहते पानी को बंजर इलाके की तरफ मोड़कर वहाँ पेड़–पौधे लगाने की बात कहती है तथा पेड़–पौधों के बचाव के लिए मिट्टी की मेड़ बनाने का सुझाव देती है, तो बूढ़ी औरतें तैयार हो जाती हैं। स्मिता के प्रयास सफल होते हुए इस वक्तव्य में देखा जा सकता है –''बूढ़ियाँ तैयार हो गयी थीं। खुशकिस्मती या बढ़किस्मती से, वे बूढ़ी ही नहीं, बेवा भी थीं। इसलिए, किसी मर्द का डंडा उनके सिर पर नहीं तना था। बेटे जरूर थे, पर खुदा के फजल से वे परले सिरे की झगडालू औरते थीं, इसलिए उनके बेटे–बहु, पोते–पोतियाँ उनकी अनर्गल किट–किट से निजात पाकर खुश थे।....... कुछ ज्यादा दिलेर और उतावले किस्म के बच्चे मेंड़ के भीतर पाँव रखने की हिमाकत कर उठते। डंडे उठाकर, चुड़ैलों की तरह, बूढ़ियाँ उनके पीछे दौड़ पड़तीं। एक कुदक्के में बच्चे बाहर हो जाते और तांडव नृत्य करती बूढ़ियों को देख–देख, ताली बजाते भाग जाते। बूढ़ियों का भी मन लगा रहता, बच्चों का भी। समय के साथ, कुम्हड़े की बेल पर फूल आये, झड़े और कुम्हड़े फलने लगे। बूढ़ियों की रखवाली और सशंक और वाचाल हो गयी।......... औरतों की दिलचस्पी बढ़ती चली गयी। कैर के पौधों की बरसगाँठ मनने तक, रसिक औरतों की गिनती बीस पार कर गयी थी।''[11] उनके पेड़–पौधों को बचाने कि लिए औरतों की एक सहकारी संस्था बना दी गई जिसे 'कुटुम्ब' नाम दिया गया। वह अजनबी गाँव अपनत्व व संवेदनशीलता की भावना से युक्त होने के कारण स्मिता का कुटुम्ब बन गया।

ग्रामीण परिवेश में स्त्री–पुरुष के मध्य के भेद, पुरुष द्वारा औरत पर अत्याचार, दलितों का दमन, प्रकृति व बच्चों से मोह तथा पारस्परिक तौर पर स्त्री–पुरुष के बीच की विषमता को गोधड़ के परिवेष के माध्यम से चित्रित किया है, जो शहरी संस्कृति से विपरीत है। ग्रामीण तंत्र को लेखिका ने इस प्रकार चित्रित किया है –''सहकारी संस्था बनने से समस्याएँ सुलझी नहीं थी। एक तरह से वह संघर्ष की शुरूआत थी। आप जानते ही हैं, गाँव का तन्त्र कितना विषम,

असहिष्णु, विकट और प्रतिक्रियावादी होता है। दलित तबके को सिर उठाते कोई नहीं देख सकता। औरतें हो तो खुद उनके अपने मर्द भी नहीं। कुटुम्ब को हर तरह की ताड़ना, लांछन, अपमान, विरोध और तोड़–फोड़ सहन करनी पड़ी। पहले घर के मर्दों ने औरतों को पीटा, फिर बाहर के मर्दों ने उन्हें सहकारी जमीन से वंचित करने का अभियान शुरू कर दिया। पर वह आदिवासी इलाका था। औरतों का पेड़ों से उतना ही मोह था जितना अपने बच्चों से। फिर पारम्परिक तौर पर, स्त्री–पुरुष के बीच की विषमता उतनी विकट नहीं थी, जितनी शहरी संस्कृति से प्रभावित गाँवों में। गोधड़ में कुछ पेड़ क्या हरे हुए, लोगों को अपनी अधभूली, प्राचीन परंपरागत तकनीकें याद आने लगी। कुछ पुरुष भी स्त्रियों के साथ हो लिये।''[12]

गोधड़ गाँव में एक नैसर्गिक उत्साह के कारण स्मिता गाँव के मर्दों–औरतों के साथ घुलमिल जाती है तथा गाँव में उन्हें 'बा' कहना शुरू कर दिया जाता है। गाँव के मर्दों को देखकर उसे अपने बचपन के उस कोढ़ी माली की याद आ जाती है, जो खुद अपने हाथ के हुनर और मन के लगाव से अनजान था। पेड़–पौधों से लगाव व ग्रामवासियों के संसर्ग में उसका मुक्त उल्लास स्त्री–पुरुष मे भेद करना भूल चुका था। उसके मन की निष्पक्षता के कारण गाँव के मर्द उसके साथ मिलकर बेझिझक काम करते हैं। असीमा कहती है, कि इस देश में औरत या तो माँ है या पैर की जूती। माँ को यहाँ सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है जो आज भी ग्रामीण परिवशे में महत्त्व रखता है। ''औरतों को मैकेनिक की ट्रेनिंग देने की उसकी योजना, स्मिता को बा की पदवी मिलने के बाद ही सफल हो पाई थी। तभी जाकर गाँव के मर्दों ने अपनी आपत्ति वापस ली थी।''[13] गाँव के संस्कार व जटिल मानव स्वभावानुसार वहाँ के पुरुष, औरतों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते थे। इसीलिए उन्हें मैकेनिक की ट्रेनिंग नहीं लेने देना चाहते थे, लेकिन पैसे के लिए उन्होंने हाँ कर दी थी – ''सब पैसे का खेल है। एक बार इन काहिल मर्दों को भरोसा हो गया कि हम ट्रेनिग देंगे तो केवल औरतों को, वरना बाहर से मैकेनिक आएँगे और पैसा ले जाएँगे, तो पैसे के लालच में औरतों को आगे कर दिया।''[14]

ग्रामीण परिवेश की सहयोग की भावना व बुजुर्गों के महत्त्व को भी गोधड़ गाँव के माध्यम से ही चित्रित किया गया है। बारिश के पानी को बचाने, सूखे कुओं को पानीदार बनाने के लिए उनके चारों ओर पेड़ लगाने तथा उनके नीचे मवेशियों के चारे के लिए घास उगाने में बूढ़ी औरतों का सहयोग अधिक था। एकदम सादा, गाँव के ढंग की समाजवादी वितरण प्रणाली को लागू किया जाता है तथा वहाँ करीब पच्चीस स्थानीय प्रजातियों के अनेक पेड़ लगा दिये जाते हैं। गाँव के बच्चे–बूढ़े सभी स्मिता को 'बा' कहकर पुकारने लगे थे तथा असीमा भी अपने जीवन की पीड़ा–दुःखों को भूलकर गाँव में शांति का जीवन जीने लग जाती है। वह गाँव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पैसे की आमदनी होने वाली तथा कम पानी व काम लागत में टिकाऊ किस्म की फसल उगाने के लिए लहसुन उगा रही है, जो हर दृष्टि से गोधड़ के लिए उपयुक्त व लाभदायक पैदावार थी। वह गाँव की बदहाली को दूर करने के लिए प्रयास करती रहती है। विपिन का यह वक्तव्य इसी ओर संकेत करता है – ''सब कुछ होगा। पेड़–पौधे लहलहाएँगे। विपिन लहसुन की खेती करवाएगा। बाजार में लहसुन बिकेगा। गोधड़ के घर–परिवारों की आय बढ़ेगी। बच्चे स्कूल जाएँगे। औरतों को काम मिलेगा। बदहाली कम होगी। बहुत कुछ होगा।''[15]

'मिलजुल मन' में भी मृदुला जी ने ग्रामीण परिवेश को उजागर करने का प्रयास किया है। मोगरा जब डालमिया नगर पहुँचती है, तब कहती है कि कुदरती तौर पर डालमियानगर बुरी जगह नहीं थी। बेचारी कुदरत को क्या पाता था कि एक दिन उस अंचल का ऐसा अटपटा औद्योगीकरण होगा कि प्रदूषण फैलाने वाले दुनियाजहान के कारखाने लगाए जाएँगे। वहाँ की ग्रामीण संस्कृति व परिवेश का चित्रण करते हुए मोगरा कहती है, कि वहाँ शहर की अपेक्षा खूब खुला मैदान था – ''एक सीध में तीन छोटे–छोटे कमरे, संकरा बरामदा, अहाते के पार गुसलखाना और पाखना। पर पीछे काफी बड़ा, खुला उजाड़ था।''[16] ग्रामीण दिनचर्या व खान–पान का वर्णन मोगरा कुछ इस प्रकार करती है – ''पहली सुबह की शुरूआत, झाड़ू –

पोंचा, मिट्टी–तेल का स्टोव और दाल–चावल वगैरह खरीदने से हुई।.........सब्जी मे आलू, प्याज, मिर्च परवल और नेनुआ। डबलरोटी–बिस्कुट जैसी विलायती चीजें कतई नहीं।''[17] ग्रामीण परिवेश में आपसी प्रेमभाव व भाईचारे की भावना थी तथा सभी आपस में परिवार की तरह रहते थे। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''पूरी औद्योगिक बस्ती, विशाल संयुक्त परिवार की तरह जीती थी। जो किया जाता मिलकर। मर्द एक तरफ, औरतें एक तरफ। एक फटीचर पिक्चर हॉल भी था वहाँ ! पिक्चर देखने उसी अंदाज में जाते। मर्द एक कोने में, औरतें दूसरे कोने में। .... 'हम उनसे अलग बैठ रहे हैं न? ऐसा सकता छाया मानो बंदूक चल गई हो। उसने फुसफुसाकर कहा, 'यहाँ ऐसे नहीं बैठा जाता।' और भाग लिया मर्द बच्चों की पनाह में।''[18] महीने में एक बार पूरी बस्ती उसी संयुक्त परिवारी अंदाज में पिकनिक पर भी जरूर जाती थी। एक उदाहरण दृष्टव्य है –''औरतें सुबह चार बजे उठ पूरी–छोले, झोलदार आलू भाजी या चोखा, चटनी, दही–सोंठ की पकौड़ी, खीर–हलवा वगैरह पकातीं। दरी, थाली–कटोरी–गिलास बटोर, करीने से टोकरियों में समान पैक करतीं। पूरे सरंजाम के साथ बच्चों की रेल–पेल संभालती, दसेक मील पैदल चल, पिकनिकी मक़ाम पहुँचती। मर्द हँसते–बतियाते, पान चबाते आगे–आगे चलते। जगह दूर होती तो रेलगाड़ी से, जनाना–मर्दाना डिब्बों में सफ़र किया जाता। सभी मर्दों को ताश का चस्का था। रेलगाड़ी में होते तो डिब्बें में ही बाज़ी जमा लेते। वरना मंज़िल पर पहुँच दरी पर पसर खाना परोसे जाने की मांग करते, गड्डी खोलते। देवर जितने चटोरे, भाभियाँ उतनी उम्दा रसोईदारिन। खाने वाले पेटू तो खिलोने वाली पेटभरू। वाह जी, अन्नपूर्णा। अन्नपूर्णा से भला कोई पूछता है, उसने खाया कि नहीं।''[19] शहरों की अपेक्षा गाँवों में भारतीय संस्कृति के दर्शन अधिक होते हैं। रहन–सहन व खान–पान भी सीधा व सरल होता है तथा एकल परिवार की अपेक्षा संयुक्त परिवार को अधिक महत्त्व दिया जाता है। खुला मैदान व चारों ओर हरियाली छाई हुई रहती है। पेड़–पौधों के कारण ही उद्योगों द्वारा फैलने वाले प्रदूषण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ख) महानगरीय अवबोध :

आधुनिक भारतीय समाज व्यवस्था पर आज पाश्चात्य संस्कृति व बाजारवाद का प्रभाव बढ़ता जा रहा है तथा बाजारवाद की जंजीरों में जकड़ा हुआ आज का समाज सामाजिक और मानवीय मूल्यों से कटता जा रहा है, जिसके कारण प्राचीन भारतीय सामाजिक–साँस कृतिक ढाँचा चरमरा रहा है तथा पुराने आदर्श आज के संदर्भ में अपनी अर्थवत्ता को खोते हुए नजर आ रहे हैं। महानगरों में पनपने वाली जीवन–विधि पूरे समाज को प्रभावित कर रही है तथा जीवन के केंद में अर्थ की प्रतिष्ठा हो जाने के कारण समाज में स्पर्द्धा की भावना विकसित हुई है, जिससे मनुष्य की सोच संकीर्ण व छोटी हो गई है। आज सारी दुनिया बाजारवाद की गिरफ्त में जकड़ी हुई है तथा मनुष्य बेचने और खरीदने को ही अपना साध्य मान बैठा है, जिसके कारण वह रिश्तों से अधिक वस्तुओं को महत्त्व देने लगा है। पूँजीवाद से उत्पन्न हुआ अमानवीकरण अब भूमंडलीकरण के रूप में मानव समुदाय से मानवीयता को नष्ट कर रहा है। महानगरों की चकाचौंध में बाजार ने सभी को प्रभावित किया है, जो अब सीधे घरों में लोगों के जीवन में प्रवेश कर चुका है। महानगरीय समाज व्यवस्था में अर्थकेन्द्रित क्रूर मानसिकता दृष्टिगोचर होती है तथा भौतिक सुख–सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से अर्थ–प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा की कसौटी मानव–मूल्य न होकर केवल भौतिक समृद्धि होती जा रही है तथा सामाजिक संबंधों व रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी होता जा रहा है। महानगरीय जीवन की भागदौड़ ने समाज को बहुत हद तक संवेदनशून्य बना दिया है।

आधुनिक उपन्यास साहित्य में रचनाकारों ने सामाजिक यथार्थ को प्रामाणिक स्तर पर ग्रहण करते हुए महानगरीय जीवन की प्रामाणिक अभिव्यक्ति अपने उपन्यास साहित्य में की है। स्वतंत्र्योत्तर आधुनिक युग की प्रमुख उपन्यासकार के रूप में मृदुला गर्ग एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनके उपन्यास साहित्य में महानगरीय सामाजिक जीवन की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, जिसमें महानगरीय जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। मृदुला जी ने महानगरीय जीवन

को पास से देखा और भोगा है। इन्होंने महानगरीय समाज के समस्त वर्गों को अपने उपन्यास साहित्य का कथ्य बनाया है। इनके उपन्यास महानगरीय जीवन की जीती जागती तस्वीर कहे जा सकते हैं। अकेलेपन, अजनबीपन, मानवीय संबंधों की टूटन, पारिवारिक संबंधों में उदासीनता, बेरोजगारी, आर्थिक समस्या व सॉंस कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन आदि सामाजिक–सॉंस कृतिक समस्याओं को मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। महानगरीय जीवन की इन समस्याओं को मृदुला जी ने बखूबी चित्रित किया है तथा महानगरों में स्त्री–पुरुष संबंधों की शिथिलता, अर्थाभाव, आत्मकेंद्रित रिश्ते, अनमेल विवाह आदि समस्याओं के साथ ही महानगरीय जीवन–शैली से परिवर्तित मानसिकता, दृष्टिकोण में परिवर्तन, व्यक्तिवादी सोच, अवसरवादिता, आधुनिकतावादी व्यवहार, उत्पीड़ित नारी की पीड़ा व विद्रोह, आर्थिक व मानसिक शोषण व विद्रोह को अभिव्यक्त किया है।

स्वतंत्रता–पश्चात् देश के बदलते परिवेश में महानगरों और विविध चुनौतियों से युक्त महानगरीय जीवन का यथार्थ अंकन इनके उपन्यासों में किया गया है। इनके उपन्यासों में महानगरीय सभ्यता के दमघोंटू वातावरण, आधुनिकता के नाम पर बनते–बिगड़ते मानवीय संबंधों का वर्णन मिलता है। समकालीन महानगरीय युगबोध की अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में हुई है। व्यक्तिगत स्वार्थ, येन–केन प्रकारेण सफलता की ओर बढ़ना, चमक–दमक व दिखावा आदि उच्चवर्गीय संस्कृति के मूल हैं। उच्चवर्गीय संस्कृति का खोखलापन मध्यवर्गीय व्यक्ति देख नहीं पाता है, इसलिए उनकी बराबरी की कोशिश करता है तथा विद्रोह व संघर्ष करता है। मृदुला जी के उपन्यासों में इसका सफल चित्रण हुआ है। महानगरों की चकाचौध में बाजार ने सभी को प्रभावित किया है। इस महानगरीय मशीनी सभ्यता ने आज मनुष्य और सामाजिक जगत के बीच अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिससे निकलने के लिए मनुष्य छटपटाता हुआ नजर आ रहा है। महानगरीय परिवेश में सबके साथ होने के बावजूद व्यक्ति स्वयं को सबसे कटा हुआ महसूस कर रहा है। सभी रिश्ते–नातों के प्रति मन में एक अजनबीयत घर कर गई है तथा जिन रिश्तों का वह वर्षों से निर्वाह कर रहा था उन रिश्तों के प्रति गहरी उदासीनता उसके मन में व्याप्त हो गई है। महानगरों की घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का बोध गहराता जा रहा है। घुटन के कारण निराशा से घिरा हुआ व्यक्ति स्वयं को एक शून्य की स्थिति में पा रहा है, जिसके कारण वह संत्रास का शिकार हो रहा है। वर्तमान महानगरीय परिवेश में सामूहिक सामाजिक संस्थाओं का पारंपरिक महत्त्व बालू रेत की तरह मुट्ठी से फिसल रहा है। महानगरीय जीवन–शैली एकाकी हो गई है, जिसमें परिवार का मतलब है–पति–पत्नी और बच्चे। माता–पिता, भाई–बहन, चाचा–चाची, ताऊ–ताई जैसे रिश्ते तो बस नाम के रह गए हैं। मृदुला जी के सातों उपन्यासों में महानगरीय एकाकी परिवार ही दृष्टिगोचर होते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' में पति–पत्नी व पुनर्विवाह–पश्चात् भी पति–पत्नी ही हैं, 'अनित्य' में भी पति–पत्नी व उनके चार बच्चे, 'वंशज' में भी जज शुक्ला साहब व उनके दो बच्चे तथा सुधीर–सविता व उनकी बच्ची, 'मैं और मैं' में भी पति–पत्नी और दो बच्चे, 'चित्तकोबरा' में भी पति–पत्नी व दो बच्चियाँ, 'कठगुलाब' में सभी परिवारों में पति–पत्नी व बच्चे ही हैं, जो कि एकल परिवार का बोध करवाते हैं। इस सबके विपरीत मृदुला जी का सातवाँ उपन्यास 'मिलजुल मन' संयुक्त परिवार का पक्षधर दिखाई देता है, जिसमें एक भरापुरा संयुक्त परिवार है तथा रिश्तों में भी प्रेमभाव दिखाई दे रहा है।

महानगरों में व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता के चलते रिश्तों में टूटन व बिखराव आ रहा है। आज के रिश्ते एक सिली हुई जिल्दबंद किताब की तरह न होकर, पेपरवेट की नीचे दबे हुए खुले पन्नों के जैसे हो गए हैं, जो पेपरवेट के हटते ही, हवा के एक छोटे से, हल्के से झोंकें से फड़फड़ाकर बिखर जाते हैं। कुछ रिश्तों ने तो आज समझौतों की शक्ल ले ली है। महानगरीय संस्कृति में रिश्ते–नाते सब व्यर्थ और स्वार्थ के बलबूते पर टिके हुए हैं। पति–पत्नी का संबंध भी आज महज औपचारिक रूप में विवशतावश ढोया जा रहा है तथा पति–पत्नी में समझौतावादी व्यापारिक व्यवहार प्रचलित हो गया है। पति को परमेश्वर व नारी को देवी मानने वाली भारतीय संस्कृति की बातें आज हास्यास्पद लगती हैं। पत्नी की अपनी आधुनिक समस्याएँ हैं, तो वहीं पति भी अनेक अबूझ अन्तर्विरोधों और दुखड़ों से भरा जीवन जीने को अभिशप्त सा

दिखाई देता है। महानगरीय जीवन की भागदौड़ ने बहुत हद तक समाज को संवेदनशून्य बना दिया है। मजबूत होते स्वार्थवादी परिवर्तनों के कारण व्यक्ति धीरे–धीरे मानसिक विकलांगता का शिकार हो रहा है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में अमानवीय व संवेदनहीन होते समाज को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करते हुए महानगरों में हो रहे सामाजिक अपसंस्कृतीकरण को भी अपने उपन्यासों के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। महानगरीय जीवन में आज परंपरा, संस्कृति, आदर्श, मूल्य जैसे शब्द अपनी अर्थवत्ता खो रहे हैं। संस्कृति के संक्रमण के साथ–साथ आज सामाजिक नैतिकता के मानदंड भी बदल गए हैं। इस नई नैतिकता में श्लील–अश्लील के कोई मायने नहीं हैं। महानगरों में स्वतंत्रता अब स्वच्छंदता का रूप ले चुकी है। मृदुला जी के उपन्यासों में मनीषा, मनु, नमिता, नीरजा, संगीता, अविजित, विपिन, असीम आदि पात्र भारतीय संस्कृति व आदर्श–मूल्यों की अवहेलना करते हुए स्वच्छन्द वृत्ति को अपनाते हुए दिखाई देते हैं। विवाह के बिना ही स्त्री–पुरुष संबंधों को संगीता व अविजित, विपिन व नीरजा, असीम व नमिता, नर्मदा व मालिक का ड्राईवर, मनु व रिचर्ड आदि के शारीरिक संबंधों के माध्यम से चित्रित किया है, जो महानगरीय संस्कृति का ही कुपरिणाम है। पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष या पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री के साथ संबंध स्थापित करना नैतिक मूल्यों के पतन को ही दर्शाता है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में महानगरों में स्त्री–शिक्षा, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, अधिकारों के प्रति सजगता, समानता आदि के रूप में स्त्री–सशक्तीकरण को भी चित्रित किया है। इनके उपन्यासों की यह स्त्री घर तथा घर के बाहर दोनों जगह मोर्चा संभालती है तथा घर के बाहर भी अपनी महत्ता प्रमाणित करती है। महानगरीय स्त्री घर से बाहर आकर मकाम तो बना लेती है, किंतु इस बाहरी दुनिया के खतरे और चुनौतियाँ कम नहीं हैं। स्त्री के लिए बाहरी दुनिया के खतरों और चुनौतियों को मृदुला जी ने 'मैं और मैं' तथा 'कठगुलाब' उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। महानगरों में आधुनिक मनुष्य की संपूर्ण दृष्टि और विचार प्रक्रिया में अंतर आया है। वह 'सर्व' की भावना से सिमटकर 'स्व' की भावना तक केंद्रित हो गया है। सामान्यतः महानगरीय जीवन शैली में व्यक्तिवाद का प्राधान्य, स्वार्थवादी प्रवृत्ति, महानगरीय समस्याएँ व उनसे जूझते लोगों की मानसिकता, पल–पल परिवर्तित दौड़ती जिंदगी, अकेलापन, अजनबीपन, घुटन, संत्रास, अर्थ की महत्ता, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, अपसंस्कृतीकरण, जीवन–मूल्यों व आदर्शों का पतन, पारिवारिक विघटन, परिवर्तित रिश्ते–नाते आदि को मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में अत्यंत प्रभावी रूप में उकेरने का सफल प्रयास किया है।आधुनिक महानगरीय जीवन की अलगावपूर्ण स्थितियाँ मनुष्य को अकेलेपन की ओर धकेलती हैं। फलस्वरूप वह अंतर्मुखी हो जता है। वह अपने बारे में ही सोचता है। संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया जिसमें व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए रोजगार पाने की कोशिश करता है तथा रोजगार न मिलने पर अधिक धन के लालच में निम्न स्तरीय काम भी करता है।

मृदुला जी ने महानगरीय जीवन को जिया है, उसे बहुत ही करीब से देखा व महसूस किया है, इसलिए इनके उपन्यासों में स्वाभाविकता व वास्तविकता का आभास होता है। महानगरीय बोध की सूक्ष्म और तीव्र अभिव्यक्ति इनके लेखन में हुई है। इनके उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साँस कृतिक संदर्भों में बदलते व्यक्ति की मानसिकता, द्वंद्व, तनाव, ऊब, यातना एवं संघर्ष के विभिन्न आयामों की सार्थक खोजबीन तथा पड़ताल की गई है। पारिवारिक संबंधों में बदलाव, नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विघटन और व्यक्तिवादिता, अजनबीपन और अकेलेपन का अहसास, आधुनिक जीवन का खोखलापन, औद्योगीकरण का प्रभाव, रिश्तों का बिखराव, आर्थिक समस्याएँ, संत्रास, असुरक्षा बोध सर्वत्र व्याप्त है। सामाजिक व साँस कृतिक क्षेत्रों मे आने वाले परिवर्तन इनके उपन्यास साहित्य में चित्रित हुए हैं।

आधुनिक समाज के महानगरीय जीवन में मनोवैज्ञानिक विचारधारा का प्रभाव इनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। मानव मन की पीड़ाओं, यातनाओं, दशाओं का प्रकटीकरण

हुआ है। विवाह, स्त्री–पुरुष संबंध, प्रेम, यौनवासना, अहं के प्रति सबल संकेत दिए है। आधुनिक जीवन की चपेट में मनुष्य का व्यक्तित्व किस कदर परिचयहीन होता जा रहा है, इसका संकेत इनके उपन्यासों में किया गया है। पारिवारिक विघटन, मृत्युबोध, अन्तर्मन का अन्तर्द्वन्द्व आदि को अभिव्यक्त किया गया है। महानगरीय जीवन में मनुष्य की आस्थाओं, परंपराओं, धारणाओं में समय की रफ्तार के साथ आए बदलाव को, भीड़ में रहकर भी अकेलेपन व अजनबीपन को, ऊबभरी थकान को, टूटन को चित्रित किया है।

मृदुला जी ने आधुनिक महानगरीय जीवन पद्धति में संयुक्त परिवार का विघटन तथा पुरानी और नई पीढ़ी के संघर्ष की ओर संकेत किया है। माँ–बाप, पिता–पुत्र, भाई–बहन, पति–पत्नी के रिश्तों में छाए अलगावपन को चित्रित किया है। एक छत के नीचे रहकर भी लोग अजनबीयत का घूंघट ओढ़े हुए हैं तथा नई पीढ़ी किस तरह पुरानी पीढ़ी की भावनाओं को चकनाचूर कर देती है, इसका चित्रण इन्होंने अपने 'वंशज' उपन्यास में किया है। महानगरीय प्रभाव के कारण आज मानव का चित्त अव्यवस्थित–सा हो गया है। महानगरीय परिवेश तथा संस्कृति का वर्णन मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'कठगुलाब', 'मैं और मैं', 'वंशज' व 'मिलजुल मन' सभी में किया है।

महानगरीय आधुनिक जीवन में अतिव्यस्तता के कारण मानवीय रिश्ते बौने से हो गए हैं। इस पीड़ा को मृदुला जी ने 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा व जितेन के दांपत्य–संबंधों में आए बिखराव को चित्रित करके स्पष्ट किया है। कामकाज में व्यस्त रहने के कारण जितेन अपने वैवाहिक जीवन में मनीषा को अधिक समय नहीं दे पाता है और परिणामस्वरूप मनीषा अपने अकेलेपन को भरने के लिए कॉलेज में नौकरी करने लग जाती है। कॉलेज में वह अन्य पुरुष मधुकर नागपाल के संपर्क में आती है तथा उसके प्रेमजाल में फँस जाती है। वह अपने पति जितेन को तलाक देकर मधुकर के साथ पुनर्विवाह कर लेती है। आज पति–पत्नी संबंधों व अन्य संबंधों में जितना अधिक बिखराव व प्रेम का विघटन नगरों व महानगरों में हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं हुआ है। इन महानगरों के जीवन–मूल्यों में जितनी तेजी से परिवर्तन हुए हैं, उतने अन्यत्र नहीं हुए हैं। मनीषा व जितेन, मनु व महेश, नमिता व उसका पति, दर्जन बीबी व उसका पति, श्यामा व अविजित, काजल व मुकर्जी बाबू, संगीता व सुरेश मांडलिया, सविता व सुधीर, स्मिता व जिम जारविस, मारियान–इर्विंग–गैरी कपूर के माध्यम से महानगरीय जीवन में पारिवारिक दरारों व तनावों को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। आज के महानगरीय सुशिक्षित व्यक्ति की प्रधान समस्या उसका अहं है, जिसके कारण वह जीवन से निरंतर कटता जाता है तथा धीरे–धीरे नितांत एकरस व अकेला हो जाता है। स्त्री स्वतंत्रता की आड़ में स्वच्छंदता, वासना पूर्ति, संबंधों का खोखलापन – पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–बहन, जीजा–साली तथा गंदी भीड़ वाली कीचड़ से भरी गलियों में लोगों का कीड़े–मकोड़ों की तरह जीना, मजदूरों का आर्थिक व शारीरिक शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार, दिखावा, रिश्वतखोरी, सांप्रदायिकता आदि में महानगरीय जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है।

(ग) परंपरागत नैतिक मूल्यों व सामाजिक आदर्शों का ह्रास :

साहित्य समाज की गतिविधियों से प्रभावित होने के साथ ही समाज में नये विचार, नये आदर्श व नई प्रेरणा प्रस्तुत करते हुए युगानुरूप समाज में होने वाले परिवर्तन तथा समाज की मान्यताओं एवं धारणाओं में आने वाले बदलावों को चित्रित करता है। समयानुसार बदलने वाले रीति–नीति व व्यवहार का प्रभाव साहित्यकार पर पड़ता है, जो उसकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता–पश्चात् उपन्यास विधा को समृद्धि प्रदान करने वाली महिला उपन्यासकारों में मृदुला गर्ग का प्रमुख स्थान है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में नारी के अस्तित्व को अत्यंत गंभीरता के साथ उद्घाटित करते हुए समय की विषमताओं, मूल्यहीनताओं एवं अंतर्विरोधों को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। परिवर्तित होते हुए युगबोध के साथ–साथ नैतिक मूल्यों के बदलाव को भी अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

प्रत्येक रचनाकार अपनी साहित्यिक परंपराओं की उपज होने के कारण उन परंपराओं को आत्मसात् करता हुआ समाज की भीषण त्रासदियों और विद्रूपताओं को बड़े ही स्वाभाविक ढंग से अपने साहित्य में चित्रित करता है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद व उपभोक्ता संस्कृति के विकास के कारण परंपरागत मूल्यों व सामाजिक आदर्शों का ह्रास हुआ है। रिश्तों का व्यवसायीकरण होने लगा है तथा मशीनों की तरह मानवीय संबंधों की खरीद–फरोक्त हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप ईमानदारी, नैतिकता, मानवीयता आदि गुण समाप्त हो रहे हैं तथा स्त्री–पुरुष संबंधों का एक नया रूप सामने आ रहा है। परिवार में व्याप्त प्रेम, सौहार्द, अपनत्व, भाईचारा आदि सभी मनोभाव आज टूटन–घुटन एवं टकराहट में परिवर्तित होते जा रहे हैं। दांपत्य संबंधों व पारिवारिक–सामाजिक संबंधों में आई कड़वाहट के कारण पतित हो रहे सामाजिक मूल्यों को मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में बखूबी चित्रित किया है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में आधुनिक चिंतन से उपजी मूल्यवादी दृष्टि को अभिव्यक्त किया है, जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास में बाधक रूढ़ मान्यताओं को तोड़ देना चाहता है। व्यक्तित्व विघटन के कारण व्यक्ति घुटन, कुंठा, संत्रास, झुंझलाहट, सूनापन और अजनबियत में कैद व्यक्ति सामाजिक परिवेश से कट रहा है। मृदुला जी ने अपने अस्तित्व की तलाश में जूझते हुए स्त्री–पुरुष के आपसी रिश्तों, तनावों और स्थितियों को झेलते हुए सामाजिक परिवेश को निकट से देखा और महसूस किया है। आज मानव के आपसी रिश्तों में एक अजनबियत पसर रही है तथा पुरुष का आदिम अहं अपनी श्रेष्ठता कायम करना चाहता है, किंतु नारी उसे बराबर के स्तर पर उतारना चाहती है और कभी–कभी आत्मनिर्भरता की स्थिति में उसे अपने से नीचे रखकर अपने व्यक्तित्व को स्थापित करना चाहती है। ऐसी स्थिति में उत्पन्न टकराव को मृदुला जी ने अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया है। इनके उपन्यासों की नारी व्यक्तित्व की समझौतावादी प्रवृत्ति श्रद्धा, ममत्व और नारी–भावना के मूल्यों को तिलांजलि दे चुकी है और वह अपनी जिंदगी बिना किसी बंधन के स्वच्छंद तरीके से जीना चाहती है।

मृदुला जी के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य', 'कठगुलाब' व 'चित्तकोबरा' में यौन–स्वच्छंदता को चित्रित किया गया है, जो परंपरागत नैतिक मूल्यों व सामाजिक आदर्शों के ह्रास की ओर इंगित करता है। दांपत्य–जीवन की ऊब, घुटन, एकरसता में तीसरे का प्रवेश हुआ है, जो स्त्री भी है और पुरुष भी, जिसका आगमन जीवन और देह दोनों की आवश्यकता–पूर्ति के लिए हुआ है। कहीं उसकी उपस्थिति सूखे जीवन को हराभरा बनाती है, तो कहीं पारिवारिक टूटन का कारण भी बनी है। विवाहपूर्ण एवं विवाहोपरान्त यौन–संबंधों का चित्रण इनके उपन्यासों में व्यापक रूप से हुआ है, जो स्त्री–पुरुष के उन्मुक्त साहचर्य को अभिव्यक्त करता है। इनके उपन्यासों में सामाजिक व राजनीतिक मूल्यों के ह्रास की ओर भी इंगित किया गया है, जिसमें राजनीति में फैले भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, छल–छद्म, भाई–भतीजावाद, नेताओं के दोगले भ्रष्ट चरित्र, राजनीतिक मोहभंग, सांप्रदायिकता आदि विषयों को बड़ी–ही सजगता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इनमें आजादी के पश्चात् के मोहभंग, भारतीय राजनीति की कुत्साओं, विसंगतियों, निम्न–मध्यम वर्ग की आर्थिक विवशता में किए गए समझौते, आर्थिक असंतुलन से उत्पन्न आत्महंता पीड़ाएँ, निम्न वर्ग की जटिल जीवन–स्थिति, नगरीय व महानगरीय जीवन में आर्थिक विषमता के कारण समाज में नैतिक मूल्यों में आई गिरावट को चित्रित किया गया है। सामाजिक नैतिक मूल्यों के आधार पर व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियाँ बनाता है तथा जब व्यक्ति की इन मनोवृत्तियों और सामाजिक मूल्यों में संघर्ष होता है, तो सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। भारतीय संस्कृति में विवाह संस्था को अटूट बंधन और दैवीय समझा जाता रहा है, किंतु वर्तमान में व्यक्ति की मनोवृत्तियों में परिवर्तन होने के कारण तलाक और अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या बढती जा रही है तथा विवाह संस्था के प्रति पुरानी आस्था, निष्ठा व समर्पण का भाव नहीं रहा है। सामाजिक आदर्शों के ह्रास के कारण ही सामाजिक मूल्यों और व्यक्तिगत मनोवृत्तियों में एकरूपता व सामंजस्य समाप्त हो रहा है तथा सामाजिक विघटन आरम्भ होने लगा है।

सामाजिक परिवर्तन के कारण स्थितियाँ बदल रही हैं तथा उसके अनुरूप मूल्यों मे भी परिवर्तन व संशोधन होता रहता है। मूल्य–संक्रमण की स्थिति को मृदुला गर्ग के उपन्यासों में बखूबी चित्रित किया गया है। मूल्य–संक्रमण का प्रथम परिदृश्य पीढ़ी संघर्ष प्रायः हर युग की समस्या रही है, जिसे मृदुला गर्ग के 'वंशज' उपन्यास में देखा जा सकता है। शुक्ला जी व सुधीर दो पीढ़ियों के बीच बढ़ती खाई की कहानी को हमारे समक्ष उजागर करते हैं। आपसी समझ व भावात्मक संवाद के अभाव में यह दूरी और भी बढ़ती चली जाती है। नारी–शिक्षा, नारी–चेतना और नारी के बदलते परिवेश के कारण प्राचीन सामाजिक संरचना और मूल्यों में बहुत गहरा बदलाव आया है। सदियों से परिवार के बीच चले आ रहे पुरुष के प्रभुत्व को आज की नारी ने जबरदस्त चुनौती दी है। सामान्य जीवन में नारी–चेतना और आधुनिकता ने नारी–जीवन व उसकी सोच को नई दिशा प्रदान की है। इनके उपन्यासों में आज की नारी पतिव्रत का पारंपरिक मिथक तोड़ती हुई नजर आ रही है, जिससे पति के प्रति उसकी प्राचीन काल से चली आ रही देवत्व की भावना खंडित हो रही है तथा पुरानी आस्था डगमगा रही है। आधुनिकता के प्रभावस्वरूप आज की नारी पति और पारिवारिक संबंधों के प्रति पुरानी आस्था, समर्पण, त्याग आदि की भावना से दूर होती दिखाई दे रही है। आज नारी अपने पति को देवता न मानकर एक पूर्ण पुरुष के रूप में निरखती–परखती है और जब पति उस साँचे में फिट नहीं बैठता है, तो वह सारे संबंधों को एक–झटके में तोड़ने में भी विलंब नहीं करती है। आज समाज में उसकी प्राचीन मान्यताएँ और मूल्य बदल रहे हैं तथा वह वैयक्तिक स्तर पर अपनी स्वच्छंद जिंदगी जीना चाहती है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की मनीषा भी एक ऐसी ही नारी का प्रतिनिधित्व करते हुए दृष्टिगोचर होती है।

सामाजिक मूल्य–विघटन का सबसे अधिक प्रभाव परिवार में वैवाहिक–संबंधों पर पड़ा है। यौन शुचिता के प्रति पुरानी आस्था न होने के कारण समाज में विवाहेतर यौन–संबंधों का प्रचलन व्यापक रूप में दिखाई पड़ता है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, 'चित्तकोबरा' की मनु, 'कठगुलाब' की नमिता, नीरजा, विपिन, स्मिता का जीजा, नर्मदा का जीजा, 'अनित्य' का अविजित, काजल, संगीता आदि ऐसे ही पात्र हैं। मनीषा विवाहित है तथा उसमें यौन तृप्ति से अधिक एक ऐसे पुरुष की चाहत है, जो उसे प्यार कर सके। जो उसे अपने पति जितेन से नहीं मिला, उसे वह प्राप्त करना चाहती है। भारतीय समाज में गहरी जड़ें जमा चुके शारीरिक पवित्रता के संस्कार को मनीषा बार–बार तोड़ती है। ऐसा करके वह सेक्स की स्वतंत्रता तो पा लेती है, लेकिन उसकी अस्मिता की खोज फिर भी अधूरी रह जाती है। उसके जीवन में पात्र बदल जाते हैं, जितेन की जगह मधुकर आ जाता है, परंतु मनीषा फिर भी वैसी की वैसी है, जहाँ की तहाँ।

'चित्तकोबरा' की मुन भी विवाहित नारी है, जो अपने पति महेश के होते हुए अन्य पुरुष रिचर्ड से प्रेम करती है। मनु एक विवाहित स्त्री है और रिचर्ड एक विवाहित पुरुष है, लेकिन दोनों में विवाहेतर संबंध हैं। 'चित्तकोबरा' की मनु रिचर्ड से मिलते वक्त परिवार, विवाह, नैतिकता के सारे बंधन तोड़कर अपनी उन्मुक्तता का परिचय देती है, जो इस बात को अभिव्यक्त करता है कि आज के युग में पुराने भारतीय सामाजिक जीवन–मूल्य दम तोड़ रहे हैं।

'वंशज' उपन्यास में सुधीर एक ऐसा पात्र है, जो अपने मन की अतल गहराइयों मे छिपी भावनाओं के कारण उभरी कुंठा, संत्रास, अकेलापन व अजनबीपन का सामना करता है। अपने पिता के कठोर अनुषासनात्मक व्यवहार के कारण उसकी अतृप्त इच्छाएँ ग्रंथियों के रूप में मस्तिष्क में बैठ जाती हैं, जिनका प्रभाव उसके बाह्य व्यवहार में परिलक्षित होता है। पिता के यांत्रिक अनुशासन से उसके अंदर विद्रोह के भाव का जन्म होता है और वह उग्र एवं विस्फोटक प्रकृति का हो जाता है। वह आदर्श बालक की तरह पेश नहीं आता है। वह अपने पिता को 'डैडी' के बजाय 'साहब' कहकर पुकारता है, जो उसके मन में उठे आक्रोश का ही परिणाम है। यहाँ सुधीर के माध्यम से समाज द्वारा स्थापित मूल्यों के विघटन को अभिव्यक्त किया गया है।

(घ) प्राचीन व नवीन विचारधाराओं का पारस्परिक संघर्ष :

परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत नियम है। सृष्टि में समय की गति के साथ–साथ प्रतिक्षण भौतिक और अभौतिक सभी पदार्थों में परिवर्तन होते रहते हैं। समाज में भी परंपरागत सामाजिक, साँस कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक व्यवस्था में नित्य नये परिवर्तन होते रहते हैं। समाज की इन व्यवस्थाओं को नई परिस्थितियाँ चुनौती देती रहती हैं। पुरानी बँधी–बँधाई रूढ़िगत मान्यताएँ और परंपराएँ नवीन परिस्थितियों से मेल नहीं खा पाती हैं परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में बदलते सामाजिक परिवेश को चित्रित किया है, जिसमें बदलते दांपत्य–संबंधों, तनाव, ऊब, संत्रास, कुंठा, खोखलेपन के साथ–साथ पारिवारिक जीवन में माता–पिता के साथ उनकी संतान के बदलते व्यवहार को भी अभिव्यक्त किया है।

आधुनिक युग की विसंगति का एक पक्ष प्राचीन व नवीन विचारधाराओं की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक संघर्ष भी है। पुरानी व नई पीढ़ी के विचारों के न मिलने के कारण आज दो पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष व टकराव की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है, जिसने पारिवारिक संरचना को प्रभावित किया है। प्राचीन व नवीन विचारधाराओं के पारस्परिक संघर्ष की अभिव्यक्ति मृदुला जी ने अपने उपन्यास 'वंशज' में बखूबी की है। इन्होंने अपने इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय परिवारों में पनप रही व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। माता–पिता और संतान के बीच वैचारिक मतभेद की खाई हर घर में बढ़ती जा रही है। पिता द्वारा संतान पर अपने विचारों को जबरन लादने की परंपरा के कारण पिता–पुत्र में संघर्ष होता है और संतान अलग रहना पसंद करती है। 'वंशज' उपन्यास में भी शुक्ला साहब द्वारा थोपी गई मान्यताओं और नौकरी को ठोकर मारकर बेटा सुधीर धनबाद और रानीगंज के कोयला खान में माइनिंग इंजीनियर का कार्य करने चला जाता है तथा वहीं अपना घर बसाना चाहता है। इनके बीच मतभेद का कारण नई व पुरानी पीढ़ी के विचारों के साथ–साथ पाष्चात्य व भारतीय संस्कृति के बीच की खाई है, क्योंकि पिता–पुत्र के उसूल अलग–अलग होने के कारण एक–दूसरे से टकराते हैं।

मृदुला जी ने शुक्ला जी व सुधीर के माध्यम से आधुनिक समाज में पिता–पुत्र के बीच चलने वाले द्वंद्व युद्ध को अभिव्यक्त किया है। पिता शुक्ला जी अपने पुत्र सुधीर को कुछ बनाने की आशा में कठोर अनुशासन अपनाते हैं, परंतु उनका यह व्यवहार सुधीर के मन मे अपने पिता के प्रति नफरत की भावना भर देता है। बचपन में पिता व गुरु के पीटने पर और समय–समय पर प्रताड़ना पाकर उसके व्यवहार में उद्दंडता आ जाती है। पिता के यांत्रिक अनुशासन से उसके अंदर विद्रोह का भाव उत्पन्न हो जाता है तथा अपने पिता को 'डैडी' न कहकर 'साहब' कहकर पुकारता है। सुधीर का अपने पिता के प्रति ऐसा व्यवहार, आधुनिक काल में माता–पिता और उनकी संतानों के बीच में बढ़ती अंतराल की स्थिति को अभिव्यक्त करता है। एक–दूसरे की भावनाओं व विचारों को समझने में असमर्थता के कारण दोनों में वैचारिक संघर्ष व द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न हो रही है। मृदुला जी ने इस वैचारिक संघर्ष व द्वंद्व की स्थिति को तटस्थ भाव से बखूबी चित्रित किया है।

मृदुला जी का 'वंशज' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें शुक्ला साहब भारतीय रस्मों को चाहते हुए, उन भारतीय संस्कारों पर भरोसा करते हुए भी अंग्रेजी विचारों को अपनाते हैं। शुक्ला साहब अंग्रेजी विचाधारा से प्रभावित हैं, लेकिन उनका पुत्र सुधीर भारतीय विचारधारा से प्रभावित है। पिता–पुत्र में पारस्परिक भाव–संवाद का अभाव होने के कारण उनमें वैचारिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। पिता का अपने पुत्र से दूर रहना तथा उसे अपने प्यार–दुलार से दूर रखना ही दोनों की दूरी को और अधिक बढ़ाता जाता है तथा सुधीर में अपने पिता के प्रति आक्रोश व विद्रोह का भाव और भी अधिक बलवती होता जाता है। सुधीर के जीवन में माँ का अभाव है, जिससे उसका जीवन असंतुलित रूप से चलता है तथा पिता के प्रति एक विद्रोह की भावना का निर्माण हो जाता है। पुत्र के प्रति शुक्ला साहब की

अनुशासनात्मक कठोरता के कारण भी सुधीर के मन में पितृभक्ति का अभाव है, क्योंकि उन्होंने अपने पुत्र को कभी प्यार से पुचकारा तक नहीं। पिता–पुत्र के मध्य वैचारिक संघर्ष का कारण दोनों में ही अहंकार की भावना का होना है। दोनों में ही पुरुष की अहंकार भावना है, जिससे दोनों एक–दूसरे के प्रति समर्पित होने को तैयार नहीं हैं।

स्वतंत्रता–पश्चात् जिस नौकरशाही को अंग्रेज अपनी विरासत के तौर पर भारत में छोड़ गए थे, सुधीर के माध्यम से उसके प्रति विद्रोह करती नई पीढ़ी की अभिव्यक्ति 'वंशज' उपन्यास में हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में पिता–पुत्र के बीच वैचारिक संघर्ष को चित्रित करके, लेखिका ने प्राचीन व नवीन विचारधाराओं के मध्य संघर्ष को चित्रित किया है। इसमें दो पीढ़ियों के बीच का अंतराल व वैचारिक संघर्ष को अभिव्यक्त किया गया है। आधुनिक काल में माता–पिता और उनकी संतानों के बीच में एक अंतराल की स्थिति उत्पन्न हो गई है और दोनों ही एक–दूसरे की भावनाओं व विचारों को समझने में असमर्थ होते जा रहे हैं, जिसके कारण उनके विचारों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। उनमें वैचारिक द्वंद्व की स्थिति बढ़ रही है। नौकरी के मुद्दे को लेकर भी दोनों पिता–पुत्र में विवाद हो जाता है। शुक्ला साहब चाहते थे, कि सुधीर कानपुर में रहकर ही नौकरी करे परंतु सुधीर को पहचान व सिफारिश के आधार पर नौकरी पाना पसंद नही हैं। और वह धनबाद और रानीगंज की कोयले की खदानों में नौकरी के लिए अर्जियाँ भेज देता है। पिता–पुत्र के बीच खाने की मेज पर भी वही घीसी–पीटी बातें होती हैं, वही उपदेश, जो सुधीर को कष्टदायक लगते हैं। विमला के प्रसंग को लेकर भी दोनों में मतभेद दिखाई देते हैं। संवेदनशील सुधीर विमला की त्रासदी से विचलित होकर उसे अपने घर नौकरी पर रख लेता है, लेकिन शुक्ला साहब उसे, उसके पिता फिलिप के हवाले कर देते हैं, जिससे सुधीर व्यथित हो जाता है।

उपन्यास के अंत में पिता–पुत्र के विचारों के संघर्ष में कुछ शिथिलता दिखाई देती है। शुक्ला साहब अपने पुत्र के विचारों से सहमत होते हुए दिखाई देते हैं। सुधीर की अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रवृत्ति, सवेंदनशीलता की प्रशंसा करते हुए वे कहते है – ''लगता है कि नौकरी छूटने का उसे गहरा धक्का लगा है। मैंने उतना नहीं सोचा था। पर देखा जाए तो सैन्सिटीव आदमी ही जिंदगी मे वाकई कुछ कर सकता है, वैसे ही जैसे सैन्सिटीव मशीन। मशीन सैन्सिटीव होती है तो उसके टूटने–फूटने का डर भी ज्यादा रहता है पर उम्दा काम भी वही कर सकती है।''[20] और अपने पुत्र को बिजनेस के लिए एक लाख रुपया देने को तैयार हो जाते हैं। अंत में अपने वसीयतनामे में सारी जायदाद अपने पुत्र के नाम कर देते हैं, लेकिन सुधीर को इसमें भी शुक्ला साहब की चालबाजी ही लगती है, पुत्र–प्रेम नहीं। वह कहता है – ''जायदाद बर्बाद करनेवाले अयोग्य वारिस की बर्बादी किसी योग्य स्नेह पात्र के हाथों जैसे सविता।''[21] पिता–पुत्र के संघर्ष का त्रासदी के रूप में अंत होता है, न तो शुक्ला साहब अपने पुत्र के प्रति अपना दायित्व निर्वहन कर पाते हैं और न ही सुधीर अपने पुत्र–धर्म का निर्वहन कर पाता है। दोनों का संघर्ष चरमसीमा पर पहुँच जाता है तथा अंत में पिता को दिल का दौरा पड़ता है, तो पुत्र को पागलपन का, दोनों के संघर्ष का त्रासदी के रूप में अंत होता है।

(ड.) विवाह बंधन का खोखलापन :

भारतीय संस्कृति में विवाह को जन्म–जन्मांतर का संबंध माना गया है, जो एक सामाजिक बंधन और दायित्व है। विवाह केवल दो देह वाले स्त्री–पुरुष का परस्पर मिलन ही नहीं बल्कि दो परिवारों, संस्कारों, मान्यताओं व भिन्न–भिन्न चरित्रों का पावन मिलन माना जाता है। विवाह एक ऐसी सामजिक व साँस कृतिक संस्था है, जो समाज व कानून द्वारा मान्यता प्राप्त होती है तथा व्यक्ति अपने धार्मिक व सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति करता है। पाश्चात्य सभ्यता के फलस्वरूप आज विवाह एक समझौता मात्र बनता जा रहा है, जिसके कारण पुरानी परंपराएँ व मूल्य विघटित हो रहे हैं। स्वच्छंद उन्माद आज की युवा पीढ़ी में स्त्री–पुरुष संबंधों की स्वच्छंदता को बढ़ावा दे रहा है, जिसके कारण दांपत्य–संबंधों की नींव कमजोर होती जा रही है। आधुनिक भारतीय सामाजिक परिवेश में पाश्चात्य प्रभावस्वरूप जीवन–मूल्यों में सर्वाधिक

परिवर्तन–प्रेम व विवाह–संबंधों में दृष्टिगोचर होता है। व्यक्ति–स्वातंत्र्य की भावना व चयन की स्वतंत्रता की आकांक्षाएँ बलवती हो रही हैं, जिसके कारण वैवाहिक–संबंधों की महत्ता और व्याख्या नवीन दृष्टि से हो रही हैं तथा सामाजिक परंपराओं का पूर्णतः निषेध हो रहा है। आधुनिक बुद्धिवादी नारी में विवाह को व्यक्तित्व विकास व स्वतंत्रता में बाधक समझने की भावना बढ़ती जा रही है। आज की नई पीढ़ी, विशेषकर बुद्धिवादी स्त्री–पुरुष, वैवाहिक संबंधों के विषय में परंमपराओं का पूर्ण निषेध और स्वतंत्र दृष्टिकोण लेकर चल रही है।

सामाजिक संबंधों की टूटन और कड़वाहट को आज उपन्यास साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा रहा है। मृदुला गर्ग ने नारी–जीवन के विविध आयामों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा, समझा, परखा और अपनी रचनाओं मे अभिव्यक्त किया है। इनके सृजन का केंद बिन्दु नारी समस्याओं का चित्रण तथा परंपरागत मूल्यों को चुनौती देकर, स्त्री को मुक्त करना, उसकी नवीन छवि को प्रस्तुत करना है। मध्यमवर्गीय जीवन शैली को जिस तरह मृदुला जी ने बेपर्दा किया है, वह यह अभिव्यक्त करता है, कि नारी का व्यक्तित्व आज परिस्थितियों के कारण कितना जटिल एवं कष्टमय बनता जा रहा है। इनके उपन्यासों की नारी परंपरा और दांपत्य की घुटन से मुक्त होकर स्व–व्यक्तित्व को पाना चाहती है। इनके सातों उपन्यासों की नारियाँ नारी की बदलती मानसिकता का सशक्त प्रतीक हैं। लेखिका ने अपने उपन्यासों में पति के होने पर भी अन्य पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर उसके साथ घूमने–फिरने की, यौन शुचिता के तर्क को तिलांजलि देने वाली विवाह और प्रेम–संबंधी नई मूल्य दृष्टि को चित्रित किया है। पति–पत्नी के संबंधों मे स्वार्थ के निर्मित हो जाने के कारण दांपत्य–संबंधों में उदासीनता और भावनाहीनता कैसे निर्मित हो जाती है, इसकी झलक मिलती है। नारी शादीशुदा भी हो, अन्य पुरुष से प्रेम भी खुलेआम कर रही हो, दांपत्य में इसे ही तो व्यभीचार माना जाता रहा है। समाज के ऐसे मुद्दों पर केंद्रित विषयों पर मृदुला जी ने अपनी लेखनी बखूबी चलाई है। आज हमारे समाज में जो घटित होते हुए दिखाई दे रहा है, उसे मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में चार दशक पूर्व ही अभिव्यकत कर दिया था। आज के समाज को आईना दिखाते हुए उपन्यास हैं 'उसके हिस्से की धूप', व 'चित्तकोबरा' , जिनमें मन–मस्तिष्क–देह की माँग और समरसता के प्रश्नों को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

वैवाहिक संबंधों की टूटन और कड़वाहट को मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से चित्रित किया है। नारी पति को परमेश्वर का रूप मानती थी, लेकिन स्वतंत्रता–पश्चात् की नारी जागरूक होकर जीवन जीते हुए पति के अत्याचारों को सहन नहीं कर पाती तथा उसका विद्रोह करती है। इन उपन्यासों में कुछ ऐसी नारियों का चित्रण हुआ है, जो विवाह प्रथा का विरोध करते हुए तथा स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करते हुए दृष्टिगोचर होती हैं। विवाह संबंधी परंपरागत नैतिक मानदंड शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं, क्योंकि आधुनिक समाज में नई युवा पीढ़ी, नई नैतिकता को अपना रही है, जिससे काम भावना व सैक्स को प्रधानता मिली है। पतिव्रता नारी की पारंपरिक धारणा आज समाप्त होती हुई नजर आती है। यौन–पवित्रता और नैतिकता का महल चरमराकर ढहता हुआ नजर आता है। स्त्री के स्वावलंबन की चेतना और आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना के परिणामस्वरूप विवाह–संबंधी नये सामाजिक प्रतिमान विकसित हुए हैं।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में वैवाहिक संबंध, वैवाहिक समस्याएँ एवं आधुनिक वैवाहिक संबंधों के खोखलेपन को उजागर किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में पुराने नैतिक व मानव–मूल्यों का विरोध स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। स्त्री–पुरुष संबंध में बिखराव, टूटन तथा विसंगति दृष्टिगोचर होती है। जितेन–मनीषा–मधुकर में आपसी संबंधों के माध्यम से विवाह संबंधों के खोखलेपन को चित्रित किया गया है। प्रेम के त्रिकोणात्मक संघर्ष में विवाह–तलाक–पुनर्विवाह से गुजरती नायिका के माध्यम से प्रेम के बदलते संबंधों और विवाह संस्था विषयक नवीन धारणा को अभिव्यक्त किया गया है, जो नारी की विवाह संबंधी बदलती मनासिकता पर प्रकाश डालती हैं। विवाह से स्त्री–पुरुष एक संबंध में बंध जाते हैं, जिसमें पति–पत्नी की भूमिका एक–दूसरे के सहयोग से निभाई जाती है। उपन्यास में मनीषा–जितेन

और मनीषा–मधुकर के वैवाहिक जीवन का चित्रण किया गया है। मनीषा अकेलेपन से बचने के लिए पति जितेन से विवाह–विच्छेद कर मधुकर से पुनर्विवाह करती है, लेकिन उसकी रिक्तता फिर भी पूर्ण नहीं होती है। वह वैवाहिक जीवन के बारे में सोचती है –''नहीं,'' मनीषा ने कहा, ''तेरी समझ में नहीं आयेगा। एक–दूसरे को सचमुच चहकर विवाह करो तो दूसरी बात होती है। प्रेम साधारण–से–साधारण मनुष्य को भी महान बना देता है। एक–दूसरे को पाने की सच्ची ललक हमसे कठोर–से–कठोर साधना करा देती है, बड़े–से–बड़ा आत्मत्याग।''

''बाप रे,'' सुधा ने बीच में बाधा दी, पर मनीषा ने उस पर ध्यान नहीं दिया। वह बोलती गयी, ''इसमें क्या है, माँ–बाप, पण्डित–पुरोहित ने मिल–जुलकर मंगल नक्षत्रों के तले, अग्नि की साक्षी दे, दो इन्सानों के दुपट्टे बाँध दिये और वह चल दिये एक शय्या पर जीवन–पर्यन्त प्रेम का नाटक करने।''[22] मनीषा का यह कथन –''मेरा नूतन जन्म हुआ है, जितेन। तुमसे विवाहित इन दो वर्षों में भी मैंने अपने को तुम्हारे इतने निकट महसूस नहीं किया जितना इन चार महिनों में मधुकर ने किया है, चार महीने क्या, चार दिन में ही कर लिया था। जितेन, मैंने जीवन में पहली बार प्यार किया और पाया है। उसके आग्रह को मैं नहीं ठुकरा सकती। उसको मिटाना खुद को मिटाना होगा। मैं जा रही हूँ, मधुकर के साथ, मुझे जाना ही है। मुझे अफसोस सिर्फ इस बात का है कि मैं मधुकर से दो साल पहले क्यों नहीं मिली। मिलती तो तुम और मैं, दोनों इस व्यवस्थित विवाह के हादसे से बच जाते।''[23] विवाह–संबंधों के खोखलेपन को ही दर्शाता है। भावनाओं की रौ में बहने वाली मनीषा जब चार साल बाद जितेन से नैनीताल में मिलती है, तो वह पुनः उससे संबंध स्थापित कर लेती है, जिसमें उपन्यास की नायिका मनीषा में यौन–स्वतंत्रता व स्वच्छंदता की ललक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी टूटते मूल्यों, विघटित मर्यादा से बदलती मनःस्थिति का चित्रण करते हुए, मानव मन की खोज की गई है। इन्होंने अभिव्यक्त किया है, कि आधुनिक युग में मनुष्य बाह्य जीवन की अपेक्षा आंतरिक जीवन में अधिक संघर्षशील है। मनीषा व मनु का आंतरिक जीवन संघर्षशील रहा है। दोनों ही उपन्यासों की नायिकाएँ मानसिक तुष्टि व काम–भावना की तृप्ति के लिए भारतीय संस्कृति की पारंपरिक मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए चित्रित की गई हैं। 'चित्तकोबरा' की मनु अपने पति महेश से विवाह–विच्छेद न कर ऐसी व्यवस्था बना लेती है, जहाँ प्रेमी रिचर्ड से भी मिलती रहती है और महेश के साथ वैवाहिक संबंध भी बनाए रखती है। मनु रिचर्ड से मिलते वक्त परिवार, विवाह, नैतिकता के सारे बंधन तोड़कर अपनी उन्मुक्तता का परिचय देती है। इन उपन्यासों में सेक्स की समस्या उभरकर आई है तथा पति–पत्नी के आपसी संबंधों में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास में सेक्स का खुला चित्रण मिलता है। मनु व रिचर्ड दोनों ही विवाहित हैं तथा एक–दूसरे को प्रेम करते हैं, जो विवाह संस्था की अप्रासंगिकता को दर्शाते है। मनु व महेश का विवाह–बंधन खोखला है। महेश के साथ वह तन से जुड़ी हुई है तथा रिचर्ड के साथ मन से। रिचर्ड और महेश दोनों के बीच द्वंद्वग्रस्त स्थिति में मनु यह तय नहीं कर पाती है, कि रिचर्ड से शादी कर ले या महेश को तलाक दिए बिना ही उसके साथ रहे। द्वंद्व की स्थिति में वह सोचती है – ''महेश को रोशनी से लगाव है। रोशनी उसका स्वभाव है। अँधेरे से उसका साबका नहीं पड़ा और पड़ा भी तो उसने रोशनी को चुना।

''अँधेरे में क्यों बैठी हो? तबीयत तो ठीक है?'' उसने फिर कहा

''दिन है।'' मैंने कहा।

''पर रात–सा अँधेरा है। कितनी मूसलाधार बारिश है।

रास्ता चलना मुश्किल हो गया। पेड़ के नीचे पनाह लेनी पड़ी।''

मैंने आँखे बन्द कर लीं। सामने बरगद का पेड़ उग गया। रिचर्ड मेरी आगोश में लौट आया। अँधेरा अपना निजी होता है, बाहर चाहे कितनी भी रोशनी क्यों न हो।''[24]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में मृदुला जी ने नर–नारी संबंधों में स्वतंत्रता और स्वच्छंदता को स्वीकारते हुए तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित पात्रों द्वारा भारतीय विवाह संस्था को नकारते हुए चित्रित किया है। इसमें नारी की काम–पीपासा, नारी के विवाहेतर संबंध तथा नारी की भटकन को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। 'चित्तकोबरा' की नायिका मनु भी अपने पति तथा प्रेमी दोनों के साथ अपनी जिजीविषा और काम संवेदनाओं की तुष्टि करती है। इस उपन्यास में लेखिका ने भारतीय संस्कृति में विवाह के पवित्र रिश्ते को टूटते व बिखरते हुए दिखाया है, जिसमें मलीनता व उच्छृंखलता ही दृष्टिगोचर होती है।

मृदुला जी के 'वंशज' उपन्यास में भी प्रारम्भ में तो सुधीर और सविता के बीच वैवाहिक–संबंधों में मधुरता दिखाई देती है, परंतु आगे चलकर सुधीर और सविता के बीच का रागात्मक, भावानात्मक व मधुर वैवाहिक संबंध शिथिल होने लगता है। विवाह के दो तीन वर्षों के उपरांत पुत्री का जन्म होने के बाद दोनों का शारीरिक आकर्षण फीका पड़ने लगता है। विचार–विभिन्नता के कारण दोनों के वैवाहिक जीवन में तनाव, नीरसता और कटुता उत्पन्न होने लगती है। दोनों की विचारधारा भिन्न होने के कारण तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सुधीर मानवीयता–युक्त, संवेदनशील, स्वतंत्र विचारोंवाला व संकट के समय दूसरों की मदद करने वाला व्यक्ति है। इसके विपरीत सविता दकियानुस, कंजूस तथा प्रेम से अधिक पैसों को महत्त्व देने वाली नारी है। अपने पति सुधीर की धनबाद में हुई हालत को खत में पढ़कर वह बिल्कुल भी विचलित नहीं होती है तथा अपने ससुर के पास रहने के निर्णय पर अडिग रहती है। पति से अधिक चिंता उसे शुक्ला साहब की धन–दौलत की रहती है। अंत में अपने पति को पागल घोषित कर आगरा भेज देती है। इसमें लेखिका ने स्वातंत्र्योत्तर युग में भौतिकवादी नजरिए के कारण पति–पत्नी के रिश्तों में आई दरार को चित्रित किया है। युगीन विसंगतियों में अपनी जड़ों को खोखली करते हुए विवाह के नाजुक बंधन को अभिव्यक्त किया है।

मृदुला गर्ग के 'अनित्य' उपन्यास में भी वैवाहिक–संबंधों में असंतुलन का भाव दृष्टिगोचर होता है। मनु व मनीषा की तरह अनित्य में भी पत्नी रूप में नायिकाएँ अपने पति से असंतुष्ट रहती हैं। 'अनित्य' का नायक अविजित भी अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट है। वह विवाह से पूर्व भी और पश्चात् भी अपने जीवन में अन्य स्त्रियों से प्रेम–संबंध रखता है। अविजित की पत्नी श्यामा अतिरिक्त सौंदर्य की स्वामिनी है, परंतु अपने सौंदर्यपाश में अपने पति को बाँध नहीं पाती है और अक्सर बीमार रहती है। बीमारी की हालत में वह अपने पति का अधिकाधिक साथ चाहती है। पति के स्पर्श मात्र से उसे दवा का अहसास होता है – ''सिर दर्द का तो बहाना है–स्पर्श को महसूस करने के लिए। देर तक रहे तो स्पर्श दवा बन जाता है।''[25] अविजित अपनी बीमार पत्नी को समय नहीं देता है और शुक्ला जी को उसकी देखरेख के लिए छोड़ देता है। अविजित के जीवन में काजल, संगीता बारी–बारी से आती हैं। अविजित और काजल की कॉलेज के समय से ही जान–पहचान है। वह काजल से प्यार तो करता था, पर उससे विवाह नहीं करता है, परंतु विवाहोपरान्त भी अविजित उसके प्रेमाकर्षण में बँधा रहता है तथा बार–बार काजल से मिलने जाता है।

संगीता व सुरेश मांडलिया भी पति–पत्नी है, परंतु संगीता अपने पति सुरेश मांडलिया से प्रेम नहीं करती है। वह अविजित से प्रेम करती है। विवाह से पूर्व अनित्य संगीता को डॉक्टरी पढ़ने के लिए अविजित के पास छोड़ जाता है। संगीता अविजित को चाहने लगती है और अविजित से कहती है – ''मुझसे ब्याह करेंगे, अविजित जी।''[26] अविजित भी चाहता है, परंतु विवाहित होने के कारण वह नैतिक–अनैतिक के द्वंद्व में झूलता रहता है और वह संगीता से कहता है – ''मैं शादीशुदा हूं।''[27] संगीता पैसे की भावना से प्रेरित होकर सुरेश मांडलिया से विवाह तो कर लेती है, परंतु प्यार वह अविजित से ही करती है। इसी प्रेम के कारण ही वह अपने पति का खून तक कर देती है। वह प्रयास करके भी अपने पति से प्यार नहीं कर पाती है। सुरेश जब संगीता से पूछता है, कि –''तुम मुझसे प्यार करती हो? उत्कंठित आवाज में फुसफुसा कर उसने पुछा। बहुत चाहने पर भी संगीता 'हाँ' न कह सकी। साँस भीतर खींचकर किसी तरह उसने कहा, ''नहीं'' सुरेश जिस मुद्रा में था, उसी में जड़ हो

गया।''[28] सुरेश बदसूरत होने के कारण संगीता उससे प्यार नहीं करती है तथा अविजित का साथ वह पा नहीं सकती है, परंतु जीवन के अन्तिम क्षणों तक वह अविजित का साथ चाहती रहती है। अपने पति का खून करने के बाद वह सबसे पहले अविजित को फोन करती है और कहती है, कि – ''पुलिस के आने से पहले तुम यहाँ आ जाओ। मैं तुम्हे अपना वकील चुन लूंगी। वे लोग सिर्फ किसी वकील को ही मुझसे मिलने की इजाजत देंगे। इस तरह मैं आखिरी दिनों तक तुमसे मिल सकूंगी।''[29]

काजल व मुकर्जी बाबू भी पति–पत्नी हैं। काजल भी अविजित से प्रेम करती है, परंतु अविजित काजल से विवाह नहीं करता है। काजल का विवाह मुकर्जी बाबू से होता है, लेकिन उनका वैवाहिक जीवन असफल रहता है। उनके एक बेटा पार्थ भी होता है ,लेकिन मुकर्जी बाबू को काजल के चरित्र पर संदेह रहता है। वह एक स्वाभिमानी व क्रांतिकारी नारी होने के कारण पति से विवाह–विच्छेद कर लेती है। अतः 'अनित्य' उपन्यास में भी लेखिका ने परंपरागत सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों के विघटन की ओर संकेत किया है तथा विवाह–संबंधों के खोखलेपन को उजागर किया है।

मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' उपन्यास में भी पति–पत्नी के वैवाहिक जीवन में असंतोष व उच्छृंखलता दृष्टिगोचर होती है। स्त्री–पुरुष दोनों ही अपने वैवाहिक–संबंधों को लेकर धीर–गंभीर नहीं दिखायी देते हैं। नमिता व उसके पति के मध्य वैवाहिक जीवन संतोषप्रद नहीं है। गंगा व नमिता दोनों की ही उनके पति द्वारा पिटाई की जाती है तथा भला–बुरा कहा जाता है। स्मिता व जिम जारविस पति–पत्नी हैं, परंतु जारविस एक मनोचिकित्सक है, जो अपने आत्मरतिग्रस्त और गैरसंजीदा प्रेम–प्रदर्शन के कारण, स्वस्थ होती स्मिता की कोख पर लात मारकर बंजर बना देता है। मारियान व इर्विंग भी पति–पत्नी हैं, परंतु इर्विंग अपनी पेशेवर सूझबूझ का दुरुपयोग कर, धूर्त और मक्कार के रूप में उभरकर सामने आता है। वह अपनी मानसिक–भावानात्मक शोषण की सतत कोशिशों के जरिए मारियान के मानस पुत्र अर्थात उपन्यास 'वुमेन ऑफ द अर्थ' को हड़पकर अपना नाजायज कब्जा कर लेता है। इर्विंग से तलाक के पश्चात् वह गैरी कपूर से विवाह करती है। गैरी कपूर, जो कि बच्चों से चिढ़ता है, मारियान को पाँच साल में तीन बच्चे पैदा करके जीवन का अर्थ और सुकून खोजने का स्वप्न दिखाकर विवाह करता है। वह मारियान के माँ न बन पाने पर एक बच्चा गोद लेने की अनुमति तक नहीं देता है तथा उपहारस्वरूप चिर अतृप्ति और निरर्थकता बोध ही देता है। नर्मदा का विवाह भी उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके जीजा गणपत से करवा दिया जाता है। अपने अधपगले भाई के लिए वह अपने जीजा द्वारा किए गए शोषण का प्रतिरोध नहीं कर पाती है, लेकिन जब उसका भाई विवाह करके अलग चला जाता है, तो वह भी जीजा अर्थात अपने पति को छोड़कर अलग चली जाती है।

दर्जन बीबी के पति ने भी वैवाहिक संबंधों की अनन्यता को तोड़कर उसे ठेस पहुँचाई है, परंतु वह एक स्वाभिमानिनी व साहसी नारी है। वह न तो दूसरा विवाह ही करती है और न ही भारतीय वैवाहिक संबंधों के मूल्यों की अवहेलना ही करती है। उसे समाज, धर्म, अदालत के द्वार खटखटाकर दया, सहानुभूति और आर्थिक सहायता पाना मंजूर नहीं है। वह स्पष्ट कहती है, कि – '' जिसने मेरे स्वाभिमान को ठेस पहुँचाई उससे पैसा क्यों लूँ।''[30] आगे वह कहती है, कि – ''मेरे सिद्धांत मुझे ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाजत नहीं देते, जो किसी और का पति बन चुका हो।''[31] इसी आत्मसम्मान के कारण वह पति से अलग रहकर अपने बच्चों का आर्थिक भार स्वयं उठाने का साहस रखती है।

'कठगुलाब' उपन्यास में पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते संबंधों द्वारा प्रेमविहीन वैवाहिक संबधों की असफलता को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास के सभी नारी पात्रों के संघर्ष में, नारी को पुरुषों से प्रताड़ित होकर स्वतंत्र रूप में जीवनयापन करते हुए चित्रित किया है। तलाक व पुनर्विवाह की स्थिति को अभिव्यक्त करके लेखिका ने स्त्री–पुरुष के बदलते

प्रेम–संबंधों का चित्रण करके नारी की जागरूकता व विवाह के प्रति नवीन मानसिकता का परिचय दिया है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला गर्ग ने परिवर्तित हो रहे समाज के साथ–साथ परिवर्तित व संक्रमित हो रहे साँस कृतिक मूल्यों को भी अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है। संचार क्रांति में जी रहे उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित आज के वैश्विक गाँव में बदलते समाज के साँस कृतिक मूल्यों में आई विसंगतियों को साकार किया है। शहरी जीवन की कृत्रिमता के साथ–साथ ग्रामीण जीवन की संवेदनशीलता व अपनेपन को भी चित्रित किया है। नगरीकरण के कारण सामाजिक–साँस कृतिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण में आए बदलाव का सजीव चित्रण किया गया है। महानगरीय परिवेश की आंतरिक व बाहृय सच्चाइयों को व्यक्त करते हुए पूँजीवादी सभ्यता से प्रभावित संस्कृति व अपसंस्कृति और मध्यमवर्ग की विडंबना को चित्रित किया है।

नगरीय संस्कृति के साथ ही ग्रामीण परिवेश में स्त्री–पुरुष के मध्य के भेद, पुरुष द्वारा औरत पर अत्याचार, दलितों का दमन, प्रकृति व बच्चों से मोह तथा स्त्री–पुरुष के बीच की विषमता को भी गोधड़ के परिवेश के माध्यम से चित्रित किया है। सहयोग की भावना व बुजुर्गों के महत्त्व के साथ ही पर्यावरण संरक्षण की भावना को भी चित्रित किया है। बारिश के पानी को बचाने, सूखे कुओं को पानीदार बनाने के लिए उनके चारों ओर पेड़ लगाने आदि के माध्यम से प्रकृति संरक्षण के लिए प्रेरित करने का सशक्त प्रयास किया है।

महानगरीय जीवन शैली से परिवर्तित मानसिकता, दृष्टिकोण में परिवर्तन, अवसरवादिता, उत्पीड़न नारी की पीड़ा व विद्रोह, आर्थिक व मानसिक शोषण को उजागर करते हुए मशीनी सभ्यता में उत्पन्न अलगाव की स्थिति में छटपटाते हुए मानव–जीवन की घुटन व संत्रास को अभिव्यक्त किया गया है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में आधुनिक चिंतन से उपजी मूल्यवादी दृष्टि को साकार किया है। सामाजिक आदर्शों के ह्रास के कारण सामाजिक मूल्यों व व्यक्तिगत मनोवृत्तियों में समाप्त होते एकरूपता व सामंजस्य के भाव ने सामाजिक मूल्यों के विघटन को जन्म दिया है। मूल्य संक्रमण की स्थिति ने पीढ़ी–संघर्ष को जन्म दिया है तथा परिवार, विवाह, नैतिकता संबंधित जीवन–मूल्यों के पतन को चित्रित किया है। दो पीढ़ियों के विचारों में साम्य नहीं होने के कारण वैचारिक संघर्ष की स्थिति के माध्यम से पीढ़ियों की टकराहट व उसके दुष्परिणामों को 'वंशज' उपन्यास के द्वारा चित्रित किया है।

वैवाहिक संबंधों की टूटन व कड़वाहट को भी मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से पाठक वर्ग के समक्ष उजागर किया है। विवाह संबंधी परंपरागत नैतिक मानदंड शिथिल हो रहे हैं, जिससे पतिव्रता नारी की पारंपरिक धारणा, यौन–पवित्रता व नैतिकता का महल चरमराकर ढहता हुआ नजर आता है। तलाक व पुनर्विवाह की समस्या को अभिव्यक्त करके लेखिका ने विवाह के प्रति नवीन मानसिकता को उजागर किया है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 239–240.
2. वही, पृ. सं. – 240.
3. वही, पृ. सं. – 240.
4. वही, पृ. सं. – 241.
5. वही, पृ. सं. – 241.
6. वही, पृ. सं. – 241–242.
7. वही, पृ. सं. – 252 .
8. वही, पृ. सं. – 252–253.
9. वही, पृ. सं. – 253.
10. वही, पृ. सं. – 253.
11. वही, पृ. सं. – 254.
12. वही, पृ. सं. – 255.
13. वही, पृ. सं. – 256.
14. वही, पृ. सं. – 256.
15. वही, पृ. सं. – 264–265.
16. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 311.
17. वही, पृ. सं. – 312.
18. वही, पृ. सं. – 312.
19. वही, पृ. सं. – 313.
20. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 140.
21. वही, पृ. सं. – 118–119.
22. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. –88.
23. वही, पृ. सं. – 57 .
24. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 152.
25. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 12–13.
26. वही, पृ. सं. – 158.
27. वही, पृ. सं. – 158.
28. वही, पृ. सं. – 216.
29. वही, पृ. सं. – 229.
30. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 164.
31. वही, पृ. सं. – 167.

—:: अष्टम अध्याय ::—

कथ्य के विकास में सहायक रूप सौष्ठव

साहित्य वह दर्पण है, जिसमें समाज का चित्र प्रतिबिंबित होता है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं का चित्रण साहित्य में चित्रित होता है अर्थात साहित्य द्वारा सामाजिक जीवन का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। साहित्य हमें वही दिखाता है, जो हमारे आस–पास व हमारे मन–मस्तिष्क में घटित होता है। मानव समाज परिवर्तनशील है तथा समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों से मनुष्य प्रभावित होता है। एक कुशल उपन्यासकार समाज की इन बदलती गतिविधियों पर बराबर नजर रखता है तथा अपने अनुभवों के आधार पर अपनी रचना के रूप में उन्हें साकार करते हुए कथ्य के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार की अनुभूतियाँ व भाव उसकी रचना का मूल स्वर होते हैं, जिनको व्यक्त करने की कला में वह निपुण होता है। वह जीवन की सूक्ष्मता को अपनी कला द्वारा एक कृति का रूप देकर पाठकों के समक्ष रखता है। वह उसी विषय को अपने कथ्य का आधार बनाता है, जो मानव–जीवन से जुड़ा हुआ होता है। अपनी रचना को प्रभावी बनाने के लिए वह रचना में रोचक व मनोरंजक सामग्री का समावेश करते हुए कथ्य का विस्तार करता है। रचनाकार पाठक को आकर्षित व प्रभावित करने के लिए अपनी रचना में ऐसी घटनाओं का समावेश करता है, जो मानव–समाज से संबंधित होती हैं तथा जीवन की सच्चाइयों का अहसास कराती हैं। मृदुला गर्ग स्वयं सृजन के लिए तीन चीजें आवश्यक मानती हैं – अनुभव, कल्पना व वाँछा। उनका कहना है, कि – ''जो कुछ मैंने लिखा, मेरे अपने अनुभव में से आया। पर यह अनुभव घटित तक सीमित नहीं होता। ....। पर जो घटा, उसे हम वैसे का वैसा याद नहीं रखते। सृजन की प्रक्रिया में उसका रूप बदलकर कल्पना से उत्प्रेरित होकर वह हो जाता है, 'जो घट सकता था'। और उसके बाद 'वाँछा' अपनी भूमिका अदा करने लगती है, और अनुभव का तीसरा रूप जो घटना चाहिए था, सर्जक के मन में जगह बना लेता है। सर्जित कृति में मैं पाती हूँ 'जो घटा', 'जो घट सकता था', 'जो घटना चाहिए', इनके ताने–बानों से बुना एक वाँछित संसार जन्म लेता है। इस तरह कह सकते हैं कि मेरी हर रचना मेरा आत्मकथ्य है।''[1]

उपन्यास में जिस घटना का वर्णन किया जाता है, वही उसकी कथावस्तु अर्थात कथ्य कहलाता है। कथ्य ही उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके आधार पर उपन्यास का संपूर्ण ढाँचा स्थिर होता है। कथावस्तु में स्वाभाविकता लाने के लिए कथ्य का ठोस व श्रृंखलाबद्ध होना आवश्यक होता है। उपन्यास की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है, कि कथानक कितना स्वाभाविक है तथा सामाजिक जीवन की समस्याओं का निरूपण कितनी विशदता एवं सूक्ष्मता के साथ किया गया है। उपन्यासकार कथ्य के विकास के लिए कई प्रकार की विधियाँ अपनाता है तथा वह पात्रों द्वारा किए गए कार्यों के द्वारा, पात्रों के मन में उठने वाले विचारों के द्वारा, उनके मन में उभरने वाली भावनाओं द्वारा तथा कभी–कभी लेखक स्वयं भी पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करते हुए कथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

उपन्यास के कथ्य के विकास में उसके रूप–सौष्ठव अर्थात संरचना–शिल्प का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संरचना–शिल्प से तात्पर्य–उपन्यास की भाषा शैली से होता है। उपन्यासकार अपने विषयों को संप्रेषित व उद्घाटित करने के लिए भाषा व शिल्प का ही सहारा लेता है। पाठक को रचना से आद्यंत बाँधे रखने में प्रभावपूर्ण भाषा व शिल्प ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक उपन्यासकार चाहे वह किसी भी विषयवस्तु पर अपने उपन्यास की रचना कर रहा हो, उसके लिए अपनी एक विशिष्ट रीति को अपनाता है। उसका लिखने का अपना एक अलग ढंग होता है तथा अपनी भावानुभूतियों को शिल्प के माध्यम से ही अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वह सामाजिक जीवन के विविध प्रसंगों को अपने निजी दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है तथा अपने कथ्य में नये प्रतिमानों का निर्माण करते हुए अपनी सीमाओं व शक्तियों के आधार पर स्वतंत्र भाषा व शिल्प का सृजन करता है। वह अपनी रचना में भाषा का प्रयोग व उसे अभिव्यक्त करने का एक अलग ही तरीका अपनाता है, जिससे ज्ञात होता है, कि

उसके उपन्यास की भाषा किस प्रकार की है, उसकी शैली किस प्रकार की है तथा किस प्रकार की संवाद–योजना का प्रस्तुतीकरण हुआ है। रचनाकार अपने संरचना–शिल्प के प्रभावी प्रस्तुतीकरण द्वारा ही अपने उद्देश्य को पाठक वर्ग तक संप्रेषित करने में सफलता प्राप्त करता है।

कृति की रचना में उसके कथ्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कथ्य के प्रस्तुतीकरण में उसके आंतरिक स्वरूप अर्थात भावाभिव्यक्ति के साथ–साथ उसका बाह्य स्वरूप अर्थात शिल्प भी मेल खाने वाला, सहायक व लचीला होना चाहिए। वर्तमान समय में उपन्यास के स्वरूप में परिवर्तन के कारण आज शिल्प को भी कथ्य के समान ही महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि वर्तमान में उपन्यास केवल मानव–समाज का चित्र ही नहीं है, बल्कि एक कला के रूप में भी पहचाना जाता है। लेखक के लिए 'क्या कहना है' के साथ–साथ 'किस ढंग से कहना है, भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है अर्थात किसी भी रचना में कथ्य के समान ही शिल्प का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। शिल्प पक्ष में भी भाषा का स्थान सर्वोपरि होता है। भाषा किसी भी रचना की प्राणवत्ती शक्ति होती है, जिसके द्वारा एक रचनाकार अपनी अनुभूतियों व विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। भाषा रचना की सौंदर्यवृद्धि में सहायक होती है। किसी भी रचना की आत्मा उसका कथ्य होता है, तो शरीर उसका शिल्प होता है। कथ्य के सौंदर्य को बढ़ाने का कार्य भाषा के द्वारा ही किया जाता है, क्योंकि किसी भी कथ्य को सशक्त व प्रभावशाली रूप से रखने के लिए प्रभावशाली भाषा का प्रयोग आवश्यक होता है। वर्ण्य विषय व शिल्प विधान के सुंदर समन्वय द्वारा ही एक प्रभावी व सुंदर रचना की निर्मिती होती है। अतः एक उपन्यासकार अपने उपन्यास को एक कलाकृति के रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसमें विविध रचना–शैलियों, भाषिक उपकरणों–बिंब, प्रतीक, संकेत आदि को ध्यान में रखते हुए रचना करता है।

मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य कथ्य व शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है। आधुनिक उपन्यास लेखिका के रूप में भाषा और शैली के प्रति जागरूकता दिखाकर अपने उपन्यासों को दोनों स्तरों पर उच्च आयाम प्रदान करने की सफल कोशिश की है। अपने औपन्यासिक कथ्य के अनुरूप ही भाषा–शैली का चयन करके लेखिका ने अपने अभिव्यक्ति सामर्थ्य को प्रकट किया है। मृदुला जी ने एक अलग दृष्टि से प्रत्येक संदर्भ को एक नया आयाम प्रदान किया है। अपनी सक्षम भाषा के द्वारा जीवन की वास्तविकता एवं विविध पहलुओं की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में निहित भाषा–शैली एवं शिल्प संबंधी प्रयोगात्मक पहलुओं को अग्रांकित अनुच्छेदों द्वारा विवेचित व विश्लेषित किया जा सकता है –

(क) समाज के निकट भाषा और शिल्प का सामाजिक आधार :

'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है – 'बोलना' या 'कहना' अर्थात भाषा वह है जिसे बोला जाए। प्लेटो ने भी 'सोफिस्ट' में विचार और भाषा के संबंध कहा है, कि – "विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"[2] तथा वेन्द्रिए कहते हैं– "भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत से आशय उन प्रतीकों से है, जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।"[3] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार– "language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate."भाषा एक व्यवस्था होती है, जो वक्ता के विचारों को श्रोता तक पहुँचाती है। । उसके अपने नियम होते हैं, जिनसे उस भाषा को बोलने वाले सभी परिचित होते हैं। इसलिए वक्ता जो कुछ कहता है, श्रोता वही समझता है। एक दृष्टि से भाषा में व्यवस्था दो प्रकार की होती है – आंतरिक और बाह्य। भाषा की आंतरिक व्यवस्था में ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ आदि आते हैं, जो भाषिक संरचना का निर्माण करते हैं तथा बाह्य व्यवस्था में किसी

भाषाभाषी समुदाय के एक सदस्य के लिए किसी वस्तु–प्रत्यय–प्रतीक का जो संबंध होता है, दूसरों के लिए भी वही संबंध होता है । भाषा की बाह्य व्यवस्था ही भाषा को समाज में बोधगम्य बनाती है। भाषा का प्रयोग समाज–विशेष में होता है और उसी में वह बोली और समझी जाती है। अर्थात भाषा मानव उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि–प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार–विनिमय करते हैं, लेखक, कवि या वक्ता के रूप में अपने अनुभवों एवं भावों आदि को व्यक्त करते हैं तथा अपने वैयक्तिक और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता के संबंध में जाने–अनजाने जानकारी देते हैं। भाषा ही वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को बोलकर या लिखकर दूसरे व्यक्ति तक पहुँचा सकता है और दूसरों के विचारों को समझ सकता है।

भाषा के मौखिक रूप को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए भाषा के लिखित रूप का विकास हुआ। लिखित भाषा के माध्यम से ही ज्ञान के भंडार को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य संभव हो पाया है। इसी के द्वारा हम अपने पूर्वजों, प्राचीन वैज्ञानिकों व विद्वानों के ज्ञान को ग्रहण करते हैं तथा अपने द्वारा संचित ज्ञान को भावी पीढ़ी तक संप्रेषित करने के लिए संरक्षित करते हैं। मनुष्य की भाषा का भावना से गहन संबंध होता है तथा भाषा ही भावों की वाहिका व विचार–संप्रेषण का माध्यम होती है। भाषा में ही वह शक्ति निहित है, जिसके द्वारा किसी राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र के भावोत्कर्ष व विचारों की सार्थकता व समर्थता उसकी भाषा से स्पष्ट होती है। राष्ट्र को सक्षम बनाने के लिए भाषा और साहित्य की सम्पन्नता व उसका विकास परमावश्यक है। समय के साथ–साथ भाषा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहे हैं तथा भाषा एक नया रूप धारण करती गई है। भाषा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा साहित्यकार अपनी अमूर्त और अरूप भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। भाषा के अभाव में साहित्य–रचना करना असंभव है। भाषा ही वह शक्ति है जिसके द्वारा साहित्यकार अपनी कल्पना को शब्दों के माध्यम से सृजनात्मक रूप देकर अपनी भावाभिव्यक्ति पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी बात को रखने के लिए किसी–न–किसी भाषा का सहारा लेता है। सामान्य व्यक्ति की बोलचाल की भाषा व साहित्यकार की साहित्यिक भाषा में अंतर होता है। अपनी कृति की रचना करते समय एक रचनाकार इस बात का ध्यान रखता है, कि किसी गाँव या प्रदेश की बोली व भाषा में स्थित कहावतें, मुहावरे, गीत, गालियाँ आदि प्रसंगानुकूल होने चाहिएँ। रचनाकार की भावनाएँ उसके पात्रों के साथ जुड़ी हुई होती हैं, जिसके कारण पात्रों में सजीवता आती है। वह विभिन्न पात्रों की भाषा उनके व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्त करते हुए अपने समय का यथार्थ व ऐतिहासिक तथ्यों को चित्रित करता है।

उपन्यास के कथ्य, उद्देश्य, देशकाल व वातावरणानुसार भाषा का रूप बदलता रहता है। प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी एक अलग भाषा होती है, उसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने भावों व अनुभवों को संप्रेषित करना होता है। भाषा रूपी शरीर के बिना उपन्यासकार अपनी अमूर्त व अरूप भावना रूपी आत्मा को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं होता है। प्रारंभ में उपन्यासकार ने अपने उपन्यास लिखते समय उनमें सीधी, सरल, वर्णनात्मक भाषा का प्रयोग किया क्योंकि पाठक कहानी या चरित्र के लिए ही उपन्यास पढ़ता था, न कि भाषिकीय वैशिष्ट्य के लिए। उपन्यास की समीक्षा भी कहानी व चरित्र को ध्यान में रखकर ही की जाती थी तथा भाषा पर विचार बहुत कम होता था। आज का उपन्यासकार अपनी भाषा के प्रति विशेष रूप से सजग दिखाई देता है। वह अपने अनुभवों को संप्रेषित करने के लिए एक प्रभावशाली, मूर्त व पारदर्शी भाषा की तलाश करता है। अपनी अनुभूति को प्रभावी रूप से संप्रेषित करने के लिए उपन्यासकार गद्य की भाषा में भी काव्य–भाषा के उपकरण–प्रतीक, बिंब, संकेत व प्रतिमानों का प्रयोग करता है तथा भाषा में सूक्ष्मता, कसावट, तराश व संवेदनक्षमता लाने के लिए प्रयत्नरत रहता है, जिसके फलस्वरूप आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य की भाषा वर्णन के स्तर से ऊपर उठकर व्यंजना क्षमता से परिपूर्ण हो रही है।

एक उपन्यासकार अपने जीवनानुभवों व विचारों को विशिष्ट भाषा में अभिव्यक्त करके ही एक सार्थक कलाकृति को जन्म देता है। उसका भाषा–शिल्प ही साहित्य जगत में उसकी पहचान का माध्यम बनता है। उपन्यासकार अपनी अमूर्त अनुभूतियों को शिल्प के द्‌वारा ही मूर्त रूप प्रदान करता है तथा वह जिस पद्धति से अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है, वही उसका शिल्प–विधान कहलाता है। शब्द प्रयोग, वाक्य–रचना, भाषा–शैली, सांकेतिकता, अलंकार, बिंब, प्रतीक, चित्रात्मकता आदि सभी शिल्प के अंतर्गत समाहित रहते हैं। उपन्यास के शिल्प में भाषा व शैली दोनों तत्त्व आते हैं, जिनके आधार पर उपन्यासकार विभिन्न भाषिक विधानों के माध्यम से मूर्त, पारदर्शी एवं संप्रेषणीय भाषा के साथ–साथ विविध शैलियों का प्रयोग कर अपने शिल्पगत सामर्थ्य का परिचय देता है। बिना भाषा व शिल्प के रचना में अनुभूति की कोई सार्थकता नहीं होती है। उपन्यास का अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष, वस्तु पक्ष और कलापक्ष दोनों ही उपन्यास के कथ्य का निर्माण करने में सहायक होते हैं। उसमें कथ्य और शिल्प, वस्तु व रूप का उचित सामंजस्य होना आवश्यक है। उसके आंतरिक व बाह्‌य स्वरूप में तारतम्य होना ही कथ्य या विषय के प्रस्तुतीकरण को प्रभावशाली बनाता है। उपन्यासकार अपने संरचना–शिल्प के प्रभावी प्रस्तुतीकरण द्‌वारा अपने उद्‌देश्य को पाठक वर्ग तक संप्रेषित करने में सफलता प्राप्त करता है। वह अपने जीवनानुभवों व विचारों को विशिष्ट भाषा में अभिव्यक्त करके ही एक सार्थक कलाकृति को निर्मित करता है। उसकी भाषा व शैली ही साहित्य जगत में उसकी पहचान का माध्यम बनती हैं।

आधुनिक उपन्यास लेखिका मृदुला गर्ग के उपन्यास भी अपनी रचना–शैली की विशिष्टता के कारण अपनी अलग ही पहचान लिए हुए हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में भाषा व शिल्प के प्रति जागरूक रहकर अपने कथ्य को दोनों स्तरों पर उच्च आयाम प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। अपने अभिव्यक्ति–सामर्थ्य को व्यक्त करने के लिए कथ्यानुरूप ही भाषा व शैली का चयन किया है। इनके सभी उपन्यासों में भाषा व शिल्प की नवीनता है तथा भाषा में काव्य भाषा के उपकरणों – बिंब, प्रतीक, संकेत, अलंकार, सामासिकता व औपन्यासिक कृतियों में भाषा की कसावट, सूक्ष्मता व संप्रेषणीयता परिलक्षित होती है। भाषा व शिल्प के प्रति सजगता के फलस्वरूप इनके उपन्यासों में शिल्पगत चमत्कार भी दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में वर्णनात्मक शिल्प प्रविधि के अनुसार अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। अपने उपन्यासों में जीवन की विविधताओं, मार्मिक प्रसंगों व सूक्ष्म समस्याओं को कथ्य का विषय बनाया है तथा उसे विविध संरचनात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। इनके कथ्य में संरचनात्मक पक्ष के नीवन पहलुओं और प्रयोगों का समीकरण दर्ज है। जीवन के प्रत्येक खंड, मार्मिक क्षण, अर्थपूर्ण घटना को कथ्य के सूत्र में बाँधने के कारण इनके उपन्यास साहित्य का कथ्य, चरित्र, भाषा व शिल्प आदि उच्चस्तरीय हैं। इनके पात्रों की भाषा उनकी मानसिक अवधारणा के सूक्ष्म बिंदुओं को अभिव्यंजित करती है। इनके उपन्यासों का शिल्प उनके कथ्य का सहगामी बनकर प्रस्तुत हुआ है। भाषा व शैली के प्रति इनकी सजगता के कारण इनके उपन्यासों में शिल्पगत चमत्कार का अनुभव होता है। भाषा की उत्कृष्टता, संप्रेषणीयता व अभिव्यक्ति सामर्थ्य के कारण ही इनका कथ्य, इनके उपन्यासों की भाषा में बोल पड़ा है।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों की भाषा शब्द भंडार से सम्पन्न, सूक्तियों से युक्त, बिंबात्मकता व आलंकारिकता से परिपूर्ण है। इनके उपन्यासों की भाषा अपने भावों को पाठकों तक प्रभावी रूप में संप्रेषित करने में सक्षम है। इनके कथ्य की भाषा प्रसंगानुकूल, पात्रानुकूल, चित्रात्मक, गंभीर व चिंतनप्रधान, चलती–फिरती व भदेस इत्यादि रूप में प्रयुक्त हुई है। इनकी लेखन शैली पाठक की चेतना पर दस्तक देते हुए सड़ी–गली अनुपयोगी परंपराओं पर आघात करती है। इनका 'चित्तकोबरा' व 'अनित्य' उपन्यास इनकी भाषा–शैली के प्रति सजगता को अभिव्यक्त करते हैं। इनके 'उसके हिस्से की धूप', 'कठगुलाब' और 'मिलजुल मन' उपन्यासों में भावपक्ष काफी प्रभावी रहा है। इनके उपन्यासों की भाषा विशेष साहित्य–वर्ग की भाषा न होकर जन सामान्य की भाषा है। इन्होंने वातावरण व कथावस्तु के अनुरूप भाषा प्रयोग किया है। उपन्यास की प्रभाव क्षमता में वृद्‌धि के लिए पात्रों की शिक्षा, जीवन–स्तर और परिवेश के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा का प्रवाह सरल, सुबोध व सामान्य जीवन

में प्रयुक्त होने वाले शब्दों पर अधिक टिका है। महानगरीय जीवन को अपने कथ्य में अभिव्यक्ति देनेवाली मृदुला जी ने आम बोलचाल की भाषा के साथ–साथ दूसरी भाषाओं के शब्दों, वाक्यों, आंचलिक बोलियों, विदेशी भाषाओं के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों व सूक्तियों को भी अपने लेखन में स्थान दिया है। कथ्य की विविधतानुरूप ही भाषा व शैली को अपनाया है। इनके उपन्यासों की भाषा पात्रों की मानसिक अवधारणा के सूक्ष्म बिंदुओं को अभिव्यंजित करती है।

1. पात्रानुकूल भाषा :

भाषा परिवर्तनशील होती है। भाषा समाज के साथ–साथ चलती है, इसलिए समाज में परिवर्तन के साथ–साथ भाषा में भी परिवर्तन होता रहा है। भाषा का लिखित रूप मौखिक भाषा पर आधारित होता है और उसी के अनुसार चलता है। मौखिक भाषा अनुकरण पर आधारित होती है, जिसके कारण दो व्यक्तियों की भाषा बिल्कुल एक–सी नहीं होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक व भौगोलिक सीमा होती है। उस सीमा के बाहर उसका स्वरूप थोड़ा या अधिक परिवर्तित होता जाता है। भाषा परिवर्तनषील होने के कारण दो स्थानों व दो पीढ़ियों की भाषा में उनके वर्गानुसार भाषायी अंतर पाया जाता है। देश, काल, संस्कृति, परिवेश, लिंग तथा आयु आदि की भिन्नता के कारण विविध प्रकार के पात्र होते हैं। रचनाकार की भाषा पर भी उसके परिवेश की भाषा का प्रभाव होता है। वह अपने पात्रों को सजीव रूप से चित्रित करने के लिए पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग करता है। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग में मृदुला गर्ग सिद्धहस्त हैं। इनके उपन्यासों की भाषा पात्रों के स्तर व उनके संस्कारों के अनुकूल प्रयोग की गई है। पात्रानुकूल व प्रसंगानुकूल भाषा–प्रयोग के कारण ही इनके उपन्यासों में जीवंतता व स्वाभाविकता आयी है। नारी पात्रों की मानसिकता को प्रकट करने में लेखिका की भाषा सक्षम साबित होती है। इनके मनोगत भावों को अपने उपन्यासों में प्रकट करते वक्त स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है। इनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा की जब अपने पूर्व पति जितेन से भेंट होती है, तब वह उससे दुबारा मिलने के लिए बेचैन हो जाती है। उसकी बेचैन अवस्था का चित्रण लेखिका द्वारा इन शब्दों में किया गया है – ''सच सिर्फ यह हो कि आज वह तरह–तरह की कल्पनाएँ कर रही है क्योंकि उसका मन अशान्त है। अशान्त है क्योंकि वह अभी जितेन से मिलकर चुकी है और कल फिर मिलने वाली है। कितनी बेवकूफ औरत है वह। जितेन क्या कोई अपरिचित है? यह क्या उससे प्रथम भेंट है, जो वह इस तरह तरोताजा अनुभव कर रही है, जैसे सफर ने नया मोड़ ले लिया हो? यह तो वही जितेन है।''[4]

'कठगुलाब' उपन्यास में भी न केवल स्मिता, मारियान, असीमा आदि के लिए अपितु नर्मदा, गणपत व गोधड़ के ग्रामीणों की भाषा में भी पात्रानुकूल भाषा–प्रयोग का ध्यान रखा गया है। इन सभी पात्रों की भाषा से ही इनके व्यक्तित्व की पहचान बन पायी है। इनकी सहनशीलता, समझदारी, स्टाइल व स्तर की पहचान का मुख्य आधार इनकी भाषा ही है। नर्मदा, असीमा आदि सभी के लिए पात्रानुकूल भाषा प्रयुक्त की गई है। उपन्यास की नारी पात्र असीमा को मर्दों से नफरत है, उनके प्रति मन में आक्रोश व विद्रोह का भाव है। जब उसका भाई असीम उसको कहता है कि वह भी अपने पिता के पास चले, तब वह अपने पिता की दूसरी पत्नी को 'डायन' कहकर संबोधित करती है। उसका आक्रोश इस प्रकार व्यक्त होता है –''दूँगी। तुम क्या करोगे? वह डायन और तुम्हारे डैडी, हरामी ....मेरी जुबान बन्द हो गयी पर मन–ही–मन मैं दुहराती रही। हरामी–हरामी–हरामी......... मैंने तय कर लिया था कि उन दोनों के लिए, हमेशा इसी लफज का इस्तेमाल करूँगी। हरामी नम्बर एक, मेरा बाप। हरामी नम्बर दो, मेरा भाई। माँ चाहे तो पूजा करे उनकी। मैं किसी साले मर्द से वास्ता नहीं रखना चाहती।''[5] 'कठगुलाब' उपन्यास के पात्र नर्मदा व गणपत की भाषा को अशिक्षित तथा गंवार के रूप में प्रयुक्त किया गया है। नर्मदा की भाषा उसकी स्थिति व स्तर के अनुकूल होने के कारण नर्मदा का प्रकरण विशिष्टता प्रदान करता है। नर्मदा स्मिता से कहती है – ''क्या हुआ? तबीयत बिगड़ गयी क्या? इत्ता पसीना...कूलर चला दूँ...ना–ना, जाओगी कहाँ ऐसे में? लेटो, आराम करो। गरमी सिर चढ गयी, मालिस कर दूँ। साहब के करा करूँ थी ना। बिचारा, मुँह से तो कुछ कह ना सके था, बन्द आँखों से टप–टप आँसू गिरा करे थे। टुकुर–टुकुर ताका

करे था। मुझे पता है, मेमबीवी, तुम्हारा बदन छूके कहूँ अब भी साहब का गूँगा प्रेत घूमे है इस घर में। न रोये, न चीखे, न आवाज करे एक भी, बस टकटकी लगाये देखे जाए है। कुछ बोले तो मैं समझूँ...।''[6]

'कठगुलाब' के समान ही अन्य उपन्यासों में भी भाषा की पात्रानुकूलता का ध्यान रखा गया है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी भाषा प्रयोग करते समय पात्रानुकूलता का ध्यान रखा गया है। मनु की भाषा उसके चरित्रानुरूप है। कवि चरित्र के अनुरूप उसकी भाषा में काव्यात्मकता और मार्मिकता दिखाई देती है। 'मैं और मैं' में माधवी व कौशल कुमार की भाषा उनके लेखकीय अंदाज के अनुरूप दिखाई है। कौशल कुमार का यह कथन – ''अपराध तुम खूब करो, माधवी, बस प्रायश्चित जरूर करती रहना। ऐसे ही मेरे कन्धे पर सिर रखकर, चौड़ी हो रही मेरी छाती से चिपककर बार–बार रोना। बार–बार मुझसे सान्त्वना की माँग करना और बार–बार कहना, नाइनसाफी के खिलाफ लड़ो। तुम मेरे साथ हो तो मैं लड़ सकूँगा। सच कहता हूँ, मुझे पल–भर को चैन नहीं है। सोते–जागते अखबारों की सुर्खियाँ मेरी आँखों के सामने नंगा नाच करती है।''[7] उसके चरित्र व प्रसंग के अनुरूप है। 'वंशज' उपन्यास में सुधीर की भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''देखा इन अंग्रेज के पिट्ठू को ? संघियों को दोष दे रहे हैं। और खुद धर्मराज बने बैठे हैं। गीता पढ़ रहे हैं। चार साल पहले तक जिसे जेल में ठूंस रहे थे, कड़ी–से–कड़ी सजा सुनाने के दांवपेंच लगा रहे थे, उसी के लिए किस भलमनसाहत से फरमा रहे हैं, रिसपैक्ट द डैड। जैसे इनका बाप मर गया हो।''[8] सुधीर के स्वभावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

2. चित्रात्मक भाषा :

उपन्यास साहित्य में भाषा को जीवंत बनाने के लिए चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है। पाठक का अपनी रचना के साथ रागात्मक अनुभूतिजन्य संबंध स्थापित करने व आनंद में वृद्धि के लिए ही रचनाकार चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करता है। वह एक प्रकार का शब्दचित्र निर्मित करता है, जिससे पाठक को पढ़ने के साथ–साथ यह महसूस होता है, कि वह पढ़ नहीं रहा है, बल्कि देख रहा है। वह शब्दचित्र के माध्यम से कथ्य के वातावरण को पूर्णतः अनुभूत कर सकता है। मृदुला गर्ग की रचनाओं को पढ़कर पाठक उनके द्वारा प्रस्तुत दृश्यों के शब्दबद्ध रूप को महसूस करते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में जितेन का होटल में प्रवेश के समय का दृश्यचित्र शब्दों के माध्यम से इस प्रकार उकेरा है – ''एक ही नजर में उसने उसका भूरा सूट, सफेद कमीज और भूरी–नीली टाई तो देखी ही, साथ ही अंधेरे में इधर–उधर खोजती उसकी आंखें भी देखीं। उस विकल दृष्टि की दिपादिपाती लौ से वह बासी कमरा यूं जगमगा उठा जैसे वहाँ, सहसा एक साथ सैंकडों न्योन टयूबलाइटें जल उठी हो।''[9] 'वंशज' उपन्यास में सुधीर का अपने पिता के प्रति नफरत का भाव व उसकी बेचैनी का चित्र इस प्रकार उभरता है – ''उनके बर्फीले स्वर का स्पर्श पा सुधीर का जलता मन भभक उठा था। अब तक जिन्हें वह दिलोजान से धिक्कार रहा था, उन्हीं के लिए जज साहब के मुँह से हिकारत का ताना सुन, वह ऐसे बेचैन हो उठा। जैसे तेज ज्वर से प्रताड़ित आदमी, बर्फ की सिल्ली पर लेटकर हो जाता है।''[10] 'अनित्य' उपन्यास में क्रांतिकारियों को जेल में दी जाने वाली यातनाओं का एक शब्द–चित्र इस प्रकार उकेरा गया है – ''सिर पर लाठी बरसती हो और दौड़ने के लिए सिर्फ एक दीवार से दूसरी दीवार तक का फासला हो.........कैसा लगता है? दस कदम आगे...दस कदम पीछे...बीच मे लाठियाँ...पीछे लाठियाँ...फिर भी बचाव के लिए आदमी दौड़ पड़ता है। दस कदम आगे...दस कदम पीछे...सिर को हाथो की ओट किये...जिंदा बचे रहने की कितनी दर्दनाक चाहत आदमी के अंदर कौली मारे पड़ी रहती है। .... एक आवाज थी जो गूंजती रही थी – वंदे मातरम!''[11]

'मिलजुल मन' उपन्यास की भाषा के शब्द–चित्र का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''वह सिर्फ बच्चों का नहीं, सब का पाइड पाइपर था। बिला बांसुरी, कृष्ण–कन्हैया। जवान–बूढे, औरत–मर्द सब उसकी टेक सुन, मोहल्ले के हर घर से निकल, बहंगी घेर लेते और अपनी पसंद मुताबिक,

टिक्की सिंकवाने लगते। कोई ज्यादा करारी चाहता, कोई जीभ जलाती गरम। ....कुछ देर बाद, दो पत्तलों में खट्टी–मीठी चटनी समेत भांप उड़ाती, दो–दो टिक्की ले, पारबती के बजाय, गुल आई।''[12] यहाँ शब्दों के माध्यम से दृश्य–श्रव्य–घ्राण बिंब का सुंदर चित्रण किया गया है।'मैं और मैं' उपन्यास में आज के यथार्थ बोध को शब्द–चित्र के माध्यम से उकेरा गया है। उदाहरणार्थ – ''उसके अपने जीवन में कहीं कुछ सुंदर नहीं है। चेचक के दागों से गुदे बीवी के चेहरे से लेकर घर से सटे उस पोखर तक, जिसके किनारे बूचड़खाने के कसाई, जानवरों की खाल उतारते हैं। उसके खून–घुले पानी से उठते बदबू के भभकों जैसी हो रही है, हमेशा से उसकी जिन्दगी। ....दाँतों के नीचे प्याज और सूखी रोटी की किचल–किचल, उफ।''[13] यहाँ पर दृश्य–श्रव्य–घ्राण बिंब का संतुलित चित्रण हुआ है। बिंबात्मकता की जबरदस्त शक्ति मृदुला जी के उपन्यास साहित्य मे दृष्टिगोचर होती है, जिससे भाषा में चित्रात्मकता साकार होती है।

3. संकेतात्मक भाषा :

कथा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए रचनाकार सांकेतिक भाषा का प्रयोग करता है। किसी भी घटना को पूरे विस्तार से बयान न करके उसे संकेत के माध्यम से कहता है, ताकि उसके आगे का अर्थ पाठक स्वयं ही समझ जाए। अर्थवत्ता से युक्त भाषा होने के कारण रचना–चेतना और अनुभूति को गहरे स्तरों पर स्पर्श करती है। 'वंशज' उपन्यास में डॉक्टर जैन का यह कथन – ''आगरा का अस्पताल काफी बढ़िया माना जाता है।''[14] इस बात की ओर संकेत करता है, कि सुधीर की मानसिक स्थिति इतनी ज्यादा बिगड़ चुकी है, कि उसे अब और अधिक घर में रखना ठीक नहीं है। उसे इलाज के लिए पागलखाने भेज देना चाहिए। 'मिलजुल मन' में संकेतात्मक भाषा का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ प्रभावी ढंग से किया गया है। ''संयुक्त परिवार में हिफाजत रहती है, उसने कहा था, ''बड़ों की रहनुमाई में मिलजुल कर करो, तो हर काम आसान हो जाता है।''[15] यहाँ उक्त कथन के माध्यम से लेखिका ने संयुक्त परिवार के महत्त्व की ओर संकेत किया है। तथा ''अब वैश्वीकरण के लाजिमी दौर में, बाजार बन रह जाने पर, रोने–कलपने से क्या फायदा।''[16] इस कथन के माध्यम से वैश्वीकरण व भूमंडलीकरण के कारण बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते हुए खतरों की ओर संकेत किया है तथा मोगरा का यह कथन – 'जिंदगी में सिर्फ एक बार सास के पैर छुए, शादी के बाद पहली बार ससुराल जाने पर। वह भी नामचारे को।''[17] कथन के माध्यम से लेखिका ने पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप समाज में हो रहे साँस कृतिक मूल्य–ह्रास की ओर संकेत किया है।

'मैं और मैं' उपन्यास में सामाजिक विसंगतियों व वर्ग–भेद की गहरी खाई व शोषण के प्रति आक्रोश को अभिव्यक्त करने के लिए लेखिका ने सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हुए भाषा को प्रभावपूर्ण व संप्रेषणीय बनाया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''हमारी आधुनिकता देखो, हमारा पूरा घर एक डबल–बेड है जिस पर हम एक–दूसरे को गरम रखते हैं।''[18] इस कथन के माध्यम से निम्न वर्ग की कमजोर आर्थिक स्थिति की ओर संकेत किया गया है। इस वर्ग के पास न तो रहने के लिए ढंग का घर होता है और न ही ठंड से बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र ही होते हैं। इस बात की ओर संकेत करते हुए कौशल का यह कथन दृष्टव्य है – ''कौशल बीमार पड़ता है तो धूप निकलते ही, किसी तरह घिसटता हुआ, म्युनिसिपेलिटी के पार्क में पहुँच जाता है। और शाम तक वहीं पड़ा कँपकँपाता–कराहता रहता है।..........दिन में कपड़े देह पर टंगे रहते हैं, जिस रात धुले, रसोई में रस्सी पर लटक जाते है।''[19] निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए उच्च वर्ग के प्रति आक्रोश का भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो उठता है।

'कठगुलाब' उपन्यास में नारी की संघर्षमयी व शोषित–पीड़ित जिंदगी की ओर संकेत करते हुए लेखिका कहती हैं – ''बीमार–थकान, क्यों नहीं, आखिर औरत है।''[20] तथा ''जहाँ औरत होगी, विडम्बना जन्म लेगी। औरत तेरा नाम विडम्बना है।''[21] उक्त कथन के माध्यम से नारी–जीवन के विभिन्न आयामों की ओर संकेत करते हुए नारी के दमन–शोषण–संघर्ष को

उजागर करने का सफल प्रयास किया गया है। 'अनित्य' उपन्यास में बड़े घर की बेटी श्यामा सिर्फ प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह जाती है। इसके संदर्भ में भाषा–प्रयोग का एक उदाहरण – ''अंधेरे में भी उसकी गोरी काया काले कुहासे में लिप्त नहीं हुई। सफेद भाप से बने रेखाचित्र की तरह हवा में खिंची है। बादल से बनी औरत–स्पर्श से परे, अविजित सोच रहा है, इतनी खूबसूरत औरत और कभी नहीं देखी......... कम औरतें नहीं देखी उसने। शायद खूबसूरती औरत को औरत नहीं रहने देती.......... मिकदार में बढ जाए तो दवा जहर हो जाती है।''[22] उक्त वक्तव्य से श्यामा की नाजुकता व सुंदरता के साथ–साथ अविजित के चरित्र की ओर संकेत किया गया है, कि वह अपनी पत्नी के इस ठंडेपन के कारण अन्य औरतों के साथ शारीरिक संबंध रखता है।

4. चिंतनप्रधान भाषा :

उपन्यासकार द्वारा अपनी रचना में कथ्य के मर्म को बढ़ाने के लिए चिंतन प्रधान भाषा का प्रयोग किया जाता है, जो पाठक को संबंधित विषय पर चिंतन के लिए विवश कर देती है। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यास साहित्य में चिंतन प्रधान भाषा का प्रयोग किया है। 'अनित्य' उपन्यास में अनित्य का यह कथन– ''हमारे यहाँ व्यक्ति पहले आता है, फिर संगठन, और सबसे बाद में सिद्धान्त। बुद्ध के जमाने से यही पद्धति चली आ रही है। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि का मंत्र यही सिखलाता है; पहले व्यक्ति, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धांत । बहुत ही खतरनाक पद्धति है। व्यक्ति–पूजा का जहर आम आदमी को नपुंसक बना डालता है।''[23] यहाँ पर अनित्य के इस कथन से पाठक देश की तात्कालिक कांग्रेस सत्ता व गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत तथा वाइसराय की स्पेशल पर बम फेंकने की निंदा का प्रस्ताव पारित जैसी तात्कालिक स्थिति पर चिंतन–मनन करने को बाध्य हो जाता है।

'मैं और मैं' उपन्यास का कौशल कुमार अपने वाग्जाल में माधवी को अंत तक फँसाये रखता है, परंतु जब माधवी सच्चाई जान जाती है तब मृदुला जी झूठ की दुनिया का सच व वर्तमान दुनिया में झूठ की रंगीन दुनिया को इस प्रकार व्यक्त करती हैं – ''अपने बिछाए जाल में खुद फँसा आदमी कितनी मनोरंजक चेष्टाएँ करता है। चिकनी रोटी का ललचाता टुकड़ा लगाकर चूहेदान तैयार करें और चूहे के बजाय खुद उसमें कैद हो जाएँ तो बाहर खड़े चूहे को देखकर, कैसे–कैसे भाव आएँगे हमारे चेहरे पर । ....वाह, मेरे दोस्त, अब तुम और मैं एक ही दायरे के अंदर कैद हैं। क्या झूठ है और क्या सच? क्या यथार्थ है और क्या नाटक? क्या है वास्तविकता और क्या कल्पना और फरेब के बल पर खड़ा फंतासी का संसार?''[24] माधवी का यह कथन विचारणीय है।

'कठगुलाब' उपन्यास में स्त्री–जीवन की सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डालने वाला यह कथन विचारणीय है – ''स्मिता पढ़ाई करने में जुट गयी थी। शादी के बाजार में भाव बढ़ाने के विचार से नहीं, आगे पढ़ाई करके नौकरी करने के इरादे से।...................जो भी मोटा, अधेड़ या गावदी लड़का बिना दहेज शादी करने को तैयार दीखता, वे उसे घर आने का न्यौता दे देते और स्मिता को उसे फँसाने के नुस्खे समझाते। ''[25] 'मिलजुल मन' में देश की कमजोर आर्थिक स्थिति व विदेशी कंपनियों की व्यापार व दोस्ती के नाम पर घुसपैठ के साथ कमजोर शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाला यह वक्तव्य विचारणीय है, जो सहृदय को चिंतन–मनन के लिए विवश कर देता है – ''नए बने लोकतंत्रों को, नए तंत्र में लोक की बराबरी के नाम पर भरमाकर, मीठी नींद सुलाने की खातिर दूसरे विश्वयुद्ध के खत्म होने के फौरन बाद, चचा सैम ने अपनी चचाजानी सरपरस्ती का झंडा फहराया। तमाम छोटे–छोटे गणतंत्र, उसे अपनी आजादी का पहरेदार और रहनुमा मान बैठे। रकबे और आबादी की बिना पर, हिंदुस्तान, किसी हिसाब से छोटा नहीं माना जा सकता था। पर जिस मुल्क और कौम को बुतपरस्ती से आगे बढ़, व्यक्ति पूजा की आदत पड़ चुकी हो, उसकी सारी आबादी सिमटकर एक हो जाए तो मुनासिब माना जाएगा। ''[26]

5. वातावरण प्रधान भाषा :

मृदुला गर्ग अपने उपन्यासों में प्रयुक्त प्रवाहमयी व शक्तिशाली भाषा के द्वारा प्रस्तुत बाह्य परिवेश का चित्रण करते हुए कथ्य को प्राणवान बनाने में कामयाब रही हैं। अपने पात्रों की मनःस्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए वातावरण को चित्रित किया है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में नैनीताल की प्राकृतिक छटा का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है, कि मनीषा की मनःस्थिति व वहाँ के वातावरण का प्राकृतिक सौंदर्य दोनों का बोध सहजता से हो जाता है – ''आंखों में जैसे दृष्टिमयता की स्पष्ट लहरें दौड़ जातीं। बाहर धूप छंटने लगी थी। क्षितिज तक उठती हरी घास से ढकी पहाड़ियाँ हवा में हल्के–हल्के काँपने लगी थी। कोई खास बात नहीं थी, बस शाम हो रही थी। और जो कांप रही थी, वह वास्तव में सामने ताल के तरंगित पानी में पड़ रही पहाड़ियों की प्रतिच्छाया थी।................हवा का जोर बढ़ चला था। आसमान के नीचे धुंध लहराने लगी थी। उसके पीछे हरी पहाड़ियाँ रस्सियों की तरह झूलने लगी थी। ....लगता था, दिन का उजाला तय नहीं कर पा रहा कि आगे बढ़ते अंधेरे के लिए रास्ता छोड़े या नहीं। इस कशमकश में वह धीरे–धीरे और ठहर–ठहर कर पीछे हट रहा था। अंधेरा भी फूँक–फूँककर कदम आगे बढ़ा रहा था। ....कभी–कभी भरी दुपहरी में ही यह भ्रम पैदा कर देता है कि शाम हो रही है। फिर यहाँ तो पत्थर और पानी का ऐसा अद्भूत समन्वय है कि बोध ही नहीं रहता, क्या यथार्थ है और क्या प्रतिच्छाया।''[27] इस प्राकृतिक वातावरण के शब्द–चित्र के माध्यम से मनीषा व जितेन के मिलन की स्थिति के भूत व वर्तमान को चित्रित किया गया है।

'वंशज' उपन्यास में कोयले की खदानों के वातावरण का वर्णन करके लेखिका ने श्रमिकों के शोषण व उनके कुपोषित शरीर का चित्र पाठक के सामने उभारा है। खदानों का वर्णन करते हुए लेखिका ने सुधीर की मनःस्थिति पर भी प्रकाश डाला है – ''अजीब जगह है यह। रात के अंधेरे में खोएँ हम और दिन में जमीन के गर्भ में अंधेरे में समाएँ हम। रात में अंधेरा और दिन में भी। रात से भी गहरा। पर उतना भयावह नहीं। क्योंकि वहाँ सैकड़ों लोग रहते हैं। कुदालें चलती रहती हैं।''[28] 'चित्तकोबरा' उपन्यास में गंदी–बस्तियों के वातावरण का, वहाँ पर रहने वाले लोगों के जन–जीवन का चित्रण कुछ इस प्रकार से किया गया है – ''अनजान राह के अज्ञात डर! गरीबी, बीमारी, भूख का घिनौना माहौल.......और कुछ न कर पाने का कचोटता अहसास। छिप–छिपकर जीना। कीचड़ में रेंगना। दलदल में अटकर लेटे रहना। गंदगी में दुबककर सोना। जो हाथ लग जाए, मुँह में डालकर निगल लेना–सड़ा भात, जंगली फल, पेड़ की छाल या जड़। गलीज सिर और बदन में जुएँ पालकर उतने ही गलीज मरीजों की असमर्थ सेवा करना। सूनी लाचार आँखों से भूखे, फूले पेट, मासूम बच्चों को दम तोड़ते देखना..........।''[29] बंगलादेश के भूखे व बीमार लोगों की बदहाल स्थिति को साकार करते हुए समाजसेवा के भाव को अभिव्यक्त किया गया है।

'अनित्य' उपन्यास में कथ्य का ताना–बाना लखनऊ व कलकत्ता शहर के आस–पास के वातावरण को लेकर बुना गया है। बंगाल के अकाल का, जेल–जीवन की यातनाओं का, भगतसिंह की क्रांतिकारिता और गांधी जी के अहिंसा मार्ग व समझौतावादी नीति का उल्लेख तात्कालिक वातावरण का सजीव वर्णन प्रस्तुत करते हैं। सरकारी अस्पतालों की दयनीय–दशा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है – ''मरे हुए इनसानोंको अस्पताल लाया जाता है; चाहें भी तो हम कैसे बचा सकते हैं और चाहने देता कौन है हमें? सरकारी अस्पताल है। सरकार के ताबेदार हैं हम। हमारी क्या ताब! जितने लोग बेइलाज अस्पताल के भीतर मरते हैं उतने तो शायद बाहर भी न मरते हों। सरकार ने अस्पताल नहीं, लाशघर खोल रखा है। लाशें जमा करो और ....बड़े लोगों की सरकार है......।''[30] अवसरवादी वृत्तियों व सरकारी अस्पतालों की वास्तविकता का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'कठगुलाब' उपन्यास में उपन्यास की कथावस्तु अलग–अलग शहरों के परिवेश को उजागर करने वाली है। इसमें नारी–जीवन के विविध संदर्भों को विविध रूपों में प्रस्तुत करने

का प्रयास लेखिका ने किया है – ''वहाँ चारों तरफ फैली हरियाली तक अजनबी थी। मन बहलाव के लिए मेरे पास उसके सिवा दूसरा साथी कभी नहीं रहा था।......................वह बर्फ का सतत फैला कब्रिस्तान था, जिसने मुझे साइक्याट्रिस्ट जिम जारविस के पास पहुँचा दिया था।..... ......बर्फ गिरने से पहले मैंने न्यू इंग्लैंड का फॉल देखा था। क्या उसे पतझड़ कहेंगे? वहाँ का याद रखने लायक कुछ था तो वही फॉल का महीना। पर बरबस जो याद आ जाता था, वह था बर्फ का अटूट विस्तार। दोनों अनुभव दो ध्रुवों पर थे और दोनों ने मेरे जीवन में अपनी भूमिका निभाई थी।................फॉल की स्मृति ने ही मुझमें जीवन के प्रति वह ललक पैदा की थी, कि मैं खुद को बचाने के लिए हाथ–पाँव मार सकी।''[31] इंग्लैंड के फॉल व न्यूयार्क के बर्फ गिरने के वातावरण का चित्रण करते हुए अपने जीवन में घटित घटनाओं को अभिव्यक्त किया है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में बाग–बगीचों का वर्णन करते हुए नर्गिस फूल की खुशबू की कशिश द्वारा उसकी प्राकृतिक विशेषता को उभारा गया है – ''एक कशिश थी जो खींचे लिए जाती थी। मॉल रोड पर हवेलीनुमा कोठी, तरतीब से संवरा बड़ा बगीचा, मखमली घास और सैकड़ों नर्गिस के फूल। नर्गिस का पौधा भी क्या बिंदास शै है। नहीं खिलाएगा तो बरसों एक फूल नहीं। खिलाएगा तो सैकडों इक्ट्ठा।''[32] यहाँ नर्गिस की कशिश व मोगरा का शमित के प्रति आकर्षण एक साथ वर्णित करके उसकी मनःस्थिति का सांकेतिक उल्लेख किया गया है। गुजरात के वंथाल गाँव का वर्णन करते हुए वहाँ की सामाजिक–साँस कृतिक स्थिति व प्राकृतिक वर्णन के माध्यम सें बालिका–शिक्षा, अभावग्रस्त बच्चों की स्थिति आदि को 'कठगुलाब' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''वंथाल और उसके आसपास का इलाका सूखा–पीड़ित प्रदेश कहलाता है यानी वंथाल भी इस महान देश के अन्य आम गाँवों की तरह है। नुचा–खुसटा जंगल, भेड़–बकरी पालने पर विवश खेतिहर, सूखा–राहत के नाम पर हर साल बनती–ढहती, नाकारा, कच्ची सड़क।''[33] वंथाल गाँव के वातावरण को साकार करने वाला वर्णन है।

6. व्यंग्यात्मक भाषा :

साहित्य में यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता रहा है। यथार्थ सदैव कटु सत्य होता है तथा इस कटु सत्य को व्यंग्यात्मक भाषा में कहना सर्वथा उपयुक्त होता है। व्यंग्यात्मक रूप में कही गई बात पाठकों के हृदय को सीधा प्रभावित करती है तथा जीवन और उसकी न्यूनताओं के प्रति जाग्रत करते हुए सक्रिय बनाती है। व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग सामाजिक विसंगतियों व विद्रूपताओं को उजागर करने के लिए किया जाता है। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यासों में आवश्यक स्थानों पर व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

'उसके हिस्से की धूप' में मधुकर के माध्यम से लेखिका ने भारतीय अर्थव्यवस्था व बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया है। वह कहता है –''अरे, वह अकेला आदमी है जिसने भारत–जैसे पिछड़े देशों की अर्थव्यवस्था को सचमुच समझा है, धनाढ्य अमरीका के नहीं, एक पिछड़े देश के नजरिये से। और फिर वह अर्थशास्त्र की दलीलों को हमारे खूसट बुद्धिजीवियों की तरह, हवाई पतंगों में बांधकर नहीं उड़ाता, ठोस बात करता है।''[34] 'अनित्य' उपन्यास में स्वतंत्र्योत्तर भारतीय समाज की गुलाम मानसिकता को अभिव्यक्त किया गया है। इसमें गांधीजी की समझौतावादी नीतियों व राजनीतिक विसंगतियों के यथार्थ को उजागर करने हेतु व्यंग्यात्मक भाषा प्रयुक्त की गई है। गांधी जी पर व्यंग्य करते हुए एक क्रांतिकारी का कथन – ''गांधीजी के अर्थ लगाने से क्या होता है। बाकि लोग अंधे–बहरे हैं क्या? अगर कल को गांधी जी कहने लगे कि भारत की स्वतंत्रता का अर्थ है अंग्रेजी शासन का और तीस बरस टिके रहना, तो तुम लोग उसे भी मानकर बैठ जाओगे,''................''भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का जिक्र तक करना गांधीजी ने जरूरी नहीं समझा।...............अब कुछ दिन बाद भगतसिंह और उनके साथियों को भी फांसी हो जायेगी। यही सब तब भी होगा। लोग उनका नाम लेकर रोयें–पीटेंगे, फूल मालाएं चढाएंगे और ....सत्याग्रही छूट जायेंगे.................गांधीजी लंदन जायेंगे ....हम

लोग हाथ–पर–हाथ धरे इंतजार करेंगे कि वे एक और समझौता ब्रिटिश सरकार से हमारे लिये करें................बस! बलिदान का ऋण ऐसे ही चुकाया जाता है?''[35]

'मैं और मैं' उपन्यास में एक प्रतिभावन लेखक की उपेक्षा व संपादन एवं प्रकाशन के दोहरेपन को उजागर किया है। लेखन की दुनिया के आदर्शों में छिपे खेल का चित्रण करने के साथ–साथ वर्ग–भेद का चित्रण करते हुए पूँजीवादी व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है। कौशल का यह वक्तव्य दृष्टव्य है – ''मान लो पुस्तक की बिक्री घिसट–घिसटकर आगे बढ़ी और पैसा वापस मिलने में पाँच–छः बरस लग गए? प्रकाशक ने अपना हिस्सा काटा, पुस्तक विक्रेता ने अपना और अंत में उसके हाथ आई पुस्तक की कुल दस–बीस प्रतियाँ? राजेश्वर मिश्र कहता तो है, उन बेचारों के पास कमाई का और साधन भी क्या है? साला! ठीक है, ले जाकर दे देगा एक प्रति माधवी जी को और कहेगा, किसी ने आपको बेवकूफ नहीं बनाया, आप हैं ही बेवकूफ। पूँजीपति व्यवस्था में रहती हैं और यहाँ इतना नहीं जानती कि यहाँ बिना बिचौलियों के कोई काम सिद्ध नहीं होता।''[36] 'कठगुलाब' उपन्यास में भी बाल मजदूरी, स्त्री–शोषण, शोषण के प्रति विद्रोह व समाज में व्याप्त कुरीतियों पर व्यंग्य किया गया है। देश में बाल श्रम पर बने कानूनों पर व्यंग्य करता हुआ तथा वर्ग–भेद की ओर संकेत करता हुआ नर्मदा का यह कथन दृष्टव्य है – ''तभी कमर पर जोर का दुहत्थड़ पड़ा। 'हराम की औलाद। लग काम पे। सोने के पैसे नहीं मिलते, हरामी, कामचोर।'' ....बस हो गया मेरा बचपन खत्म। वो खेल नहीं, बीबी, काम था।''[37] निम्न वर्ग में दम तौड़ रहे बचपन के चित्रण के साथ–साथ पुरुषप्रधान समाज में नारी–जीवन की ओर भी लेखिका ने ध्यानाकृष्ट करते हुए उसके दमन–शोषण–संघर्षरत जीवन पर प्रकाश डालने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है – ''हर औरत में जुल्म उठाने की ऐसी महारत देखी जा सकती है कि सोफिस्टिकेटेड–से–सोफिस्टिकेटेड औरत भी, कहीं–न–कहीं, एक मामूली किसान औरत की तरह कलपती पायी जाती है।''[38] 'मिलजुल मन' उपन्यास में लेखिका ने देश की पूँजीवाद और साम्यवाद के उसूलों के बीच झूलती हुई स्थिति, जिसमें से वह एक को भी छोड़ने को तैयार नहीं है, का यथार्थ, व्यंग्यात्मक भाषा में चित्रित किया है – ''पवन का हाल बीच डगर झूलते मुल्क की तरह हो रहा है।''[39] तथा मर्दों के स्वभाव को चित्रित करने वाला यह कथन – ''मैं हिंदुस्तानी मर्द की पसंद की बात कर रही थी। माँसलता में मातृत्व देखता है, तभी बेचारा सुकून से रह पाता है। छरहरी काया मानी फुर्तीली और मुस्तैद, यानी मर्द के लिए खतरनाक।''[40] गुल के सौंदर्य वर्णन के साथ–साथ मर्दों के स्वभाव पर व्यंग्य किया गया है।

7. डॉट्स भाषा :

उपन्यासकार अपनी रचना में पात्रों के चिंतन व तनाव को अभिव्यक्त करने के लिए डॉट्स भाषा का प्रयोग करता है। इसके अन्तर्गत लेखक पूरी बात न कहकर कुछ बातें कहकर डॉट्स के रूप में अधूरी छोड़ देता है तथा पाठक अपनी समझ के अनुसार उन डॉट्स का अर्थ निकालते हैं। अपने विविध भावों को पाठकों के मन की अथाह गहराइयों तक पहुँचाने के लिए लेखक एक विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है, जिनमें से तनावपूर्ण एवं अमूर्त भावों की पकड़ के लिए तथा कभी–कभी मर्यादा की रक्षा व अप्रिय कथन से बचाव के लिए डॉट्स भाषा का प्रयोग किया जाता है। मानव मन के विविध भावों, निराशा, द्वंद्व, अवसाद, खीझ, झुंझलाहट, संघर्ष, विद्रोह व भटकाव की स्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए डॉट्स भाषा का प्रयोग महत्त्वपूर्ण रूप से आकर्षक व सार्थक सिद्ध होता है। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यासों में पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए, जिज्ञासा व रोचकता को बढ़ाने के लिए, पाठक की चिंतन–शक्ति को उजागर करने के लिए तथा द्वंद्व, कुंठा, आक्रोश, अवसाद, संघर्ष की स्थिति में पात्रों के भावों को स्पष्ट करने हेतु डॉट्स भाषा का प्रयोग किया है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में कई स्थानों पर आधी–अधूरी बात कहकर डॉट्स के माध्यम से अपनी बात को पूरा किया है। 'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा के ये अधूरे कथन उसकी मनःस्थिति को व्यक्त कर देते हैं और पाठक अपने–आप इनका पूरा अर्थ ग्रहण कर

लेता है – ''किससे? ''बैरे से और किससे?'' ''पर ...'' जब वह आया तुम सो रही थी, जितेन ने बात साफ करते हुए कहा।''[41] 'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु ने अपने मन की उलझनों व अकेलेपन की पीड़ा के भावों को इस प्रकार से जंगल की घनी–उलझी व काँटों से घिरी वनस्पतियों के माध्यम से व्यक्त किया है – ''मेरे सामने घना जंगल है...गुत्थमगुत्था बेलों का अनन्त झंखाड...पेड़ों का घटाटोप लदी लहरियाँ लतरें...झाड़ियाँ और काँटे...बेपनाह भीड़... आदमी सूने रेगिस्तान में खोता है और भरे–पूरे जंगल में भी...किनकी भीड़ है यह...इनसानों की या पौधों की...स्थितप्रज्ञ पेड़, दूसरों पर लदी लहलहाती लताएँ, काँटे काढ़े झाडियाँ, पैरों तले की घास जो रौंदे जाने पर भी नहीं मरती....झुक–झुककर, मुड़–तुड़कर जीती चली जाती है...।''[42] 'अनित्य' उपन्यास में जब क्रांतिकारी भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरु को समय से पूर्व ही फाँसी दिए जाने की बात अन्य क्रांतिकारी साथी सुनते हैं, तब उनकी मनःस्थिति व गहरे आघात को चड्ढा का यह कथन व्यक्त करता है – ''सब कुछ खत्म हो गया'', चड्ढा बुदबुदा कर कहता गया, ''पहले रामप्रसाद बिस्मिल...अशफाकउल्ला खां, फिर आजाद ...अब भगतसिंह ...सुखदेव...सब खत्म....अब बस कांग्रेस बची है।''[43] 'मिलजुल मन' उपन्यास में मोगरा द्वारा गुल के बारे मे कहा गया कथन – ''कहां ...गुल तो...हरदम अकेली...बंटी–बंटी रहती...होता है बच्चों के बाद...ऐसा ही होता है।''[44] उसके जीवन में बच्चों के जन्म–पश्चात् आये बदलाव तथा पति व बच्चों के बीच दो हिस्सों में बंटी जिंदगी को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। पुरुष व नारी के मध्य तुलनात्मक वर्णन कुछ इस प्रकार करती है – ''सुना नहीं, औरत जमीन है, जज्बात है, दिल की मारी दिलदार है। मर्द ...छोड़ परे। लोग जो कहते हैं कहा करें।''[45] यहाँ गुल की मानसिक स्थिति व औरत–मर्द के बारे में मानसिकता को पाठक स्वतः समझ लेता है।

'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल का यह वक्तव्य उसकी मनःस्थिति को समझने के लिए पर्याप्त है – ''क्यों रखा हाथ....हो सकता है.....उस दिन कहा, 'आप बदसूरत नहीं है, बिल्कुल नहीं' और अब ...''[46] तथा ''एक स्त्री पहले कहे, तुम बदसूरत नहीं हो फिर.........।''[47] 'कठगुलाब' उपन्यास में जिम जारविस जब महसूस करता है व देखता है कि स्मिता में न तो आत्म–प्रशंसा की मुग्धता है और न हीनभावना, तब उसका यह कथन पाठक तक पूर्ण भाव–संप्रेषित करने वाला है – ''वाकई आप अद्भुत हैं,'' उसके मुँह से निकला था। ''आपका मतलब असामान्य ... पागल?''[48] नर्मदा के बचपन के कष्टदायी दिनों की पीड़ा को इस कथन से समझा जा सकता है – ''बस एक–एक चूड़ी वो पहले दिन ...तब की याद मैं करना भी ना चाहूँ थी।''[49] नर्मदा के वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है, कि हमारे समाज में निम्नवर्गीय औरतें होश संभालते ही पैसा कमाने का साधन बन जाती हैं।

8. काव्यात्मक–आलंकारिक भाषा :

मानव का संबंध काव्य के साथ अनादिकाल से ही रहा है। मानव–स्वभाव उत्सवप्रिय होने के कारण वह अपनी भावनाएँ कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करता रहा है।यद्यपि काव्यात्मकता, कविता का गुण माना जाता है, क्योंकि कविता की भाषा को कथा साहित्य की अपेक्षा सरल, सुंदर, कोमल व लावण्ययुक्त माना गया है, तथापि मानव स्वाभाव की काव्यप्रियता के कारण कथा साहित्य अर्थात उपन्यास रचना में भी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग लेखकों ने किया है। मृदुला गर्ग ने कथ्य को और अधिक आकर्षक तथा चमत्कारी बनाने, भावाभिव्यक्ति को संप्रेषणीय बनाने व सहृदय की आनंदानुभूति में वृद्धि के लिए अपनी भाषा को काव्यात्मक–आलंकारिकता से परिपुष्ट किया है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त काव्यात्मक भाषा के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मनीषा का यह कथन – ''वह हँसता है तो वे नीली झील में तैरती बतखों–सी दिखायी पड़ती हैं; प्यार करता है तो तूफानी नदी पर खेलती सफल नाविकों की नावों–सी प्रतीत होती हैं; क्रोध करता है तो ताजे टूटे कोयलों–सी चमक उठती हैं।''[50] तथा ''उसकी आँखें यूँ चमक उठीं जैसे....जैसे रेगिस्तान में जल पाने पर खोये पथिक की।''[51] 'चित्तकोबरा' उपन्यास में रिचर्ड के चले जाने पर मनु अपने मन की भावनाओं को

कविता द्वारा व्यक्त करती है। प्रेम की वियोगावस्था की वेदना को कविता व आलंकारिक भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया है। मनु का यह कथन –''चुप रहती हूँ तो टीले–सा वक्त छाती पर बैठ जाता है। और...बहुत .... धीरे–धीरे...आगे...सरकता है।''[52] तथा ''रोज धूप का नन्हा खरगोश डरा–सिमटा उसी बरामदे के कोने में दुबका रहता है और सूरज डूबने से बहुत पहले, निश्चित मृत्यु के डर से काँपकर, अपनी खोह में जा घुसता है। रोज रात का अँधेरा उसी कमरे के कोनों में कालिख पोतता है। और रोज उसी बिस्तर पर सिसकियाँ पैदा होने से पहले दम तोड़ दिया करती है।''[53]

'कठगुलाब' उपन्यास मे भी काव्यमयी भाषा का प्रयोग किया गया है। स्मिता का यह कथन दृष्टव्य है – ''मिट्टी के कितने रूप–आकार–रंग हैं। पुरवाई चलती है तो महीन कती धूल अंदर आती है। गेरू रंग की। हाथ मे आते ही फिसल जाती है, बारीक नमक की तरह। एक जगह से हटाओ तो उड़कर दूसरी जगह जा जमती है। पछवा चलती है तो पावर हाउस की दरदरी राख भीतर आती है। सलेटी–ऊदी। धूल नीचे से ऊपर को उठती है, राख ऊपर से नीचे गिरती है। झाड़ो तो धम से फर्श पर उतर जाती है। बुहारो तो कोनों में जा सिमटती है। बाहर फेंक दो, परवाह नहीं, दुबारा भीतर दाखिल होने में कितनी देर लगती है। महीन धूल के साथ मिलकर, अबकी बार, नीचे से रेंगकर लौट आएगी।''[54] विपिन अपनी माँ व स्मिता के जीवन में आये दुःखपूर्ण पलों के बारे में सोचता हुआ कहता है –

''मैंने नहीं चुना यह जीवन, यह अभिशाप मिला मुझे अगम्य से।

किस बूते पर सिद्ध बने हो, परमगुरु? देखो, मैंने सिद्ध कर ली दुःख–पिपासा।''[55]

'अनित्य' उपन्यास में भी लेखिका ने काव्यमयी–आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है, जिसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं– ''लाल जरी की लकदक साड़ी के बीच जड़ा एक सफेद चेहरा और उस पर दहकती दो काली आँखें। कोयला, शोला और राख! ...दो काली गुफाओं के अंदर जल रही दो बेरहम मशालें...कितनी देर लगती है आदमी को जला कर राख कर देने में।''[56] शुभा द्वारा अपनी भावाभिव्यक्ति भी काव्य–पंक्तियों के माध्यम से की गई है–

''बहुत धीमे–धीमे गिरा करते हैं देवदार के दरख़्त

हवा हैरान–सी चुप रहती है।''[57]

'वंशज' उपन्यास में प्रयुक्त काव्यात्मक–आलंकारिक भाषा का उदाहरण दृष्टव्य है– ''कुदालें उठाये दुबले–पतले पर तने हाथ। केंचुओं–सी सिहरती नीली नसें...।''[58]

'मैं और मैं' उपन्यास की काव्यात्मक व आलंकारिक भाषा का उदाहरण दृष्टव्य हैं – ''फरफराते नोटों का संसार कहीं ज्यादा सजीव है, ऐसा यथार्थ जो सत्य है, शिव है और सुंदर है। नोट आकाश में उड़ान भरते, फरफराते पक्षी हैं; नोट सागर की छाती पर प्रवहमान पानी में बगूले उठाते जहाज हैं; नोट बारसात से धुले पीपल के नए हरे पत्ते हैं। लहरा–लहराकर हर पल नई तस्वीर बनाते हैं नोट। तस्वीर बनती है, नोट क्षण–भर थिर रहते हैं, फिर नाच उठते हैं, पैरों में घुँघरू बँधे हों जैसे।''[59]

'मिलजुल मन' उपन्यास लेखिका का एक विशिष्ट शैली में लिखा गया उपन्यास है, जिसमें काव्यात्मक–आलंकारिक भाषा का प्रयोग बड़ी सहजता से किया गया है – ''बेचारा विदेशी, बीच सुरमई बादल, बिजली की गर्जना सुन, 'मैं कोई नहीं हूँ,' कहता भाग लिया।''[60] तथा – ''वह नित नए प्रोजेक्ट के जरिए नया प्रोडक्ट बाजार में लाने का इरादा बनाता। इरादा कोख में आता, नौ महीने पूरे करने से पहले जन्म ले लेता, घुटलियों चलने से पहले खड़ा हो जाता, खड़े होने से पेशतर भागने लगता और किशोर हुए बिना जवान हो लेता। लंबा–चौड़ा–ऊँचा जवान।''[61] तथा – ''धुआं उठ रहा है; धुआं झर रहा है; कुंड में धुआं भर रहा है। पानी में पांव

डाल खड़े हो तो ऊपर–नीचे धुंध–धुएं में नहा लो। सेमल रूई के फाहे से उड़ता बदन पा जमीन से उठो और देह से छूटकर भी जिंदा रह लो।''[62]

मृदुला जी ने गद्य–भाषा में भी पद्य–भाषा के समान प्रतीकों, बिंबों, संकेतों व अलंकारों का प्रयोग किया है, जिसके कारण भाषा–सौंदर्य में वृद्धि हुई है तथा भावों में प्रभावोत्पादकता आई है। अप्रस्तुत विधानों के द्वारा लेखिका ने अपने निजी अनुभवों व कल्पना–संसार को वाणी प्रदान की है।

9. सामाजिक जीवन–संदर्भों से संपृक्त भाषा :

उपन्यास साहित्य की रचना के लिए व्यक्ति व समाज दोनों ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक होते हैं, इसलिए व्यक्ति और समाज को एक–दूसरे से काटकर उपन्यास की रचना करना संभव नहीं है। लेखक स्वयं भी समाज का ही एक हिस्सा होने के कारण वह अपनी रचना में युगों से संचित, पर निरंतर परिवर्तित होते मूल्यों, भावनाओं और संस्कृति के निचोड़ को व्यक्त करता है, जो उसकी वैयक्तिक व सामाजिक अस्मिता को अभिव्यक्त करती है। वह अपने उपन्यासों की रचना एक क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखकर करता है, जिसमें उस क्षेत्र की सामाजिक–साँस कृतिक विशेषताएँ, जन–जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों का कथ्य मध्यमवर्गीय सामाजिक जीवन को लेकर बुना है, जिसका प्रभाव उनकी भाषा पर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने अपने सामाजिक परिवेश को, संस्कृति को अपने पात्रों में जीवंत किया है तथा उसे अपनी भाषायी शक्ति द्वारा अभिव्यक्त किया है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक होने के कारण स्त्री की स्थिति पुरुष की अपेक्षा हीन है। हमेशा से ही स्त्री की नियति पुरुष तय करता आया है। मृदुला जी के उपन्यासों में पुरुष के इस रूप को हम देख सकते हैं, जहाँ नारी–जीवन के निर्णय पुरुष स्वयं लेता है, उसकी इच्छा–अनिच्छा कोई महत्त्व नहीं रखती है। 'वंशज' उपन्यास में शुक्ला साहब का यह कथन स्पष्ट करता है – ''लड़की क्या बनेगी, इसका दारोमदार काफी हद तक उस आदमी पर होता है, जो उसका संरक्षक हो। वह चाहे उसे देवी बना ले, चाहे चुड़ैल.................पर लड़के को अपना खयाल खुद रखना पड़ता है, अपने पर डिसिप्लिन रखना सीखना होता है।''[63] इससे स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक रूढ़ियों से जकड़े वर्तमान समाज में भी स्त्री के प्रति पुरुष का नजरिया पिछड़ा हुआ है। आज भी समाज में स्त्री मात्र एक जिस्म है, जिसकी बाहरी सुंदरता व आकर्षण को उसके गुणों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। पुरुषों की इसी दकियानुसी सोच पर प्रहार करता है, अनित्य का यह कथन – ''औरत कोई कालीन है या मूर्ति या फूलों का गुलदस्ता कि उसकी खूबसूरती देखकर आप उसे हासिल करने को बेचैन हो जायें?''[64]

'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल के इस कथन से व्यक्त किया गया है कि सदियों से स्त्री की खूबसूरती को उसकी बेवकूफी समझकर पुरुष द्वारा उसका शारीरिक व मानसिक शोषण किया जाता रहा है तथा आज भी स्त्री को मात्र वस्तु ही समझता है। कौशल कुमार का यह कथन – ''खूब औरत है। बेवकूफ और खूबसूरत। बेहद प्यारी चीज। बेवकूफ और खूबसूरत औरत तिस पर पैसे वाली और पैसे के मामले में भी बेवकूफ। इस प्यारे मिश्रण में संभावनाएँ ही संभावनाएँ हैं।''[65] लेखिका ने अपनी भाषायी क्षमता से अभिव्यक्त किया है कि समाज में आज भी पुरुष वर्चस्ववादी ढाँचा ही कायम है। 'कठगुलाब' उपन्यास में भी लेखिका ने अभिव्यक्त किया है, कि स्त्री की स्थिति प्रत्येक प्रदेश, क्षेत्र व देश में एक जैसी ही है। सभी जगह पर वह हर मोड़ पर पुरुषों द्वारा ठगी व छली जाती है, शोषित व प्रताड़ित होती है। लेखिका का यह कथन –''यह मेरी साली है स्मिता। क्या चीज है।... साली आधी घरवाली...हा–हा–हा...पर अपनी बीबी, कयामत की नजर रखती है।''[66] समाज में फैलायी गई भ्रांति कि 'साली है तो आधी घरवाली है' पर प्रहार करता है। भारतीय समाज में ही नहीं अपितु विदेशों में भी नारी का शोषण होता है। अमेरिका जैसे विकासशील देशों में भी पुरुष का वर्चस्व है तथा स्त्री को एक

इस्तेमाल की वस्तु समझा जाता है – ''स्कॉटलैंड से भागकर सूजन अमरीका पहुँची तो उसने बाकायदा पति के साथ, जमीन हथियाने के लिए रेड इंडियन नेटिव्स से लड़ाई की। उसकी बन्दूक ने, पति की बनिस्बत, ज्यादा लोगों हो हलाक किया था। .... वक्त की चोटों से आहत, उम्र से पहले बुढ़ाई सूजन को छोड़कर वह अपना ज्यादातर वक्त, जवान और वक्त की खरोंचों से महफूज औरतों के साथ गुजारने लगा। सूजन ने प्रतिवाद नहीं किया। परिवार के मर्दों से लड़ने की उसे आदत नहीं थी।''[67] सूजन के माध्यम से लेखिका ने हमारे समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है। आज भी अन्तिम निर्णय पुरुष का ही माना जाता है, औरत को न चाहने पर भी उनका फैसला ही मानना पड़ता है। तथा ''कहा नहीं था, यह हमारी साँझी चेतना से जन्मा रचना शिशु है? फिर मेरा नाम................'' ''शिशु बाप के नाम से ही जाना जाता है,''[68] लेखिका ने अभिव्यक्त किया है कि मेहनत स्त्री करती है, लेकिन श्रेय पुरुष ले जाता है। स्त्री की भावुकता का फायदा उठाकर पुरुष ने हमेशा से उसे ठगा है।

'मिलजुल मन' उपन्यास में लेखिका ने बैजनाथ के माध्यम से एक पिता की अपनी बेटियों के प्रति सोच को चित्रित किया है। पीटरसन दंपति जब गुल को इत्र भेंट करते हैं, तब बैजनाथ क्रोधित हो जाते हैं और कहते हैं – ''मुझे नहीं लगता, हम साथ काम कर पाएँगे............ हिन्दुस्तानी आदमी के लिए इज्जत से बड़ी कोई चीज नहीं होती। बेटी की छोटी से छोटी बेइज्जती हमें मंजूर नहीं। मुझे माफ कीजिएगा। चलो गुल, मोगरा।''[69] अपनी बेटियों के अपमान को भारतीय पुरुष बर्दास्त नहीं कर सकता है। यहाँ लेखिका ने भारतीय पुरुष के स्वाभिमान को चित्रित किया है। हमारे समाज में विवाहित स्त्री की स्थिति पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए 'अनित्य' उपन्यास में संगीता कहती है – ''शादीशुदा औरत और तवायफ में फर्क क्या है, दोनों जिस्म बेचती हैं, दोनों प्यार का सौदा करती हैं; बस तवायफ एकमुश्त दाम लेकर आजाद हो जाती है और बीवी पेंशन की उम्मीद में जिंदगी–भर का सौदा कर लेती है।''[70] समाज में पुरुषों के आधिपत्य से कुचली गई औरतों की आवाज को उठाने का प्रयास किया गया है।

समाज में बढ़ते पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारतीय साँस कृतिक मूल्य चरमरा रहे हैं। लेखिका ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक–सामाजिक मूल्यों के पतन की ओर हमारा ध्यानाकृष्ट करने के लिए समाज के यथार्थ को चित्रित किया है। पिता–पुत्र व माँ–बेटी के मध्य वैचारिक वैमनस्य हम अपने आस–पास के परिवेश में स्पष्ट देख सकते हैं। 'कठगुलाब' व 'वंशज' उपन्यास में लेखिका ने इसे प्रभावी रूप से व्यक्त किया है। 'वंशज' में सुधीर व जज शुक्ला साहब के विचारों में मतभेद स्पष्ट दिखाई देता है – ''कोठी के बाहर या उसके बारह कमरों के भीतर, अलग–अलग जीवन जीते, जज साहब और सुधीर। शुक्ला साहब कचहरी, क्लब, साहित्य और दोस्त–अहबाब लेकर व्यस्त रहने लगे। सुधीर कॉलेज से लौटकर, अकेले कमरे में, किसी न किसी को गाली देकर समय बिताने लगा।''[71] पीढ़ी अंतराल में जब आपसी तालमेल में कमी आ जाती है, तब नतीजा द्वंद्व, टकराहट व अकेलेपन के रूप में सामने आता है तथा मानसिक तनाव बढ़ता है। दर्जन बीबी स्वाभिमानयुक्त कर्मठ नारी है, जो अपने पति के लिए देह बनकर जीना स्वीकार नहीं करती है तथा पति के दूसरी शादी कर लेने पर अपने बच्चों के साथ अलग रहकर उनका पालन–पौषण करती है। वह कहती है – ''मैं अपनी सीमा नहीं लाँघूँगी। न घर को बाजार बनाऊँगी, न बाजार को ख्वाबगाह।''[72] लेखिका ने अपनी वाणी से समाज में पति द्वारा सताई गई नारियों को अपने पैरों पर खड़े होकर, आत्मनिर्भर जीवन जीने की प्रेरणा देने का कार्य किया है।

'मिलजुल मन' में मृदुला जी ने समाज का आईना दिखाया है। समाज में किया जाने वाला स्त्री के प्रति भेदभाव चित्रित किया गया है। हमारे समाज की सोच को उजागर करते हुए लेखिका कहती हैं – ''यही रिवाज है अपने यहाँ। बच्चा पैदा करे औरत, तसल्ली दी जाए मर्द को, बेचारा बीबी की मसरूफ़ियत के दौरान खाने–पीने को तरस न जाए। लता चाची ने जितना खयाल गुल का रखा, उससे ज्यादा शमित का।''[73] यहाँ समाज में किए जाने वाले दोहरे बर्ताव को अभिव्यक्त किया है। वर्तमान समाज में अपने शोषण का विरोध करने वाली, मुँहतोड़ जवाब देने वाली तथा अपनी पहचान के लिए संघर्ष करनेवाली नारी का आह्वान करते हुए लेखिका

का यह कथन दृष्टव्य है – ''फिर बैल्ट से उस पर वार करते–करते उसका गाउन खींचकर अलग किया और उसका भोग करने की कोशिश की। पर इस बार वह बंधनमुक्त थी। उसने जिम को पटकनी देकर जमीन पर गिरा दिया। उसकी बैल्ट छीन ली। और अच्छी तरह उसकी धुनाई करके रख दी।''[74]

पूँजीवादी सभ्यता के बढ़ते वर्चस्व के कारण निम्न वर्ग के पास रोजगार व खाने का संकट निरंतर कायम रहता है। उद्योगपति उनकी मजबूरी का फायदा उठाते हुए उनका आर्थिक व शारीरिक शोषण करते हैं। लेखिका ने इसे बखूबी चित्रित किया है – ''कंपनी को एक की जगह दो मजदूर मिल जाएँगे। आप जानते नहीं, कोल्यरीज के आसपास, नौकरी की तलाश में भूखे–नंगे जवानों का हुजूम मंडराता रहता है। जब चाहो जितने ठेके पर लगा लो।''[75] अर्थ की असमानता व बेरोजगारी की समस्या को चित्रित करते हुए मजदूरों के शोषण की ओर ध्यानाकृष्ट करने में सक्षम भाषायी प्रयोग किया है। समाज में व्याप्त असमानता को चित्रित करते हुए कौशल का यह कथन – ''वाह, साब, वाह! क्या तर्क है। दिल की बीमारी उसके पड़ोस में रहने वाले चटर्जी को भी है। जब दर्द उठता है, सड़क के किनारे बैठ जाता है, जेब से बोतल निकालकर गोली लेता है और जबान के नीचे दबा देता है। बीस–पच्चीस मिनट सुस्ता लेता है और चल देता है दोबारा काम पर।''[76] गरीब की जिंदगी तो दो रोटी के जुगाड़ में ही गुजर जाती है। इसी प्रकार लेखिका ने समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता की भावना को भी उजागर किया है – ''1947–48 के बाद मुल्क में हर शहर में हिन्दू–मुस्लिम दंगे होते रहते थे। आमतौर पर निहायत मामूली वाकया वजह बनता था। हिंदू मंदिर के आगे से मुहर्रम का ताजिया ठीक आरती के वक्त निकल गया। बीच बाजार पसरी गाय के ऊपर से जो साइकिल सवार निकला, मुसलमान था। अजान के वक्त मुसलमान के सामने शंख बजा दिया।''[77] धर्म के नाम पर इस प्रकार की नफरत आज भी हमारे समाज में फैलायी जाती है, जिससे दंगे होते हैं तथा कई बेगुनाह उनका शिकार हो जाते हैं। आज समाज में आर्थिक असमानता व भ्रष्टाचार की समस्या बढ़ रही है, जिसके कारण अमीरी–गरीबी के बीच की खाई और अधिक गहरी होती जा रही है। समाज में अव्यवस्था व भ्रष्टाचार बढ़ने पर उसका विरोध होना स्वाभाविक है। इसी विद्रोह व संघर्ष को लेखिका ने वाणी दी है – ''पर हमारी लड़ाई संपूर्ण व्यवस्था से है। इसका असर होकर रहेगा।''[78] नौकरी पाने के लिए आज भी समाज में सिफारिश करनी पड़ती है। इसी का एक उदाहरण – ''ऐसे जूते घिसने से नौकरी मिलती है क्या? जान–पहचान निकाले बगैर कहीं काम हुआ करते हैं?''[79]

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य की भाषा में प्रयुक्त शब्द हमारी सामाजिक–साँस कृतिक स्थिति को दर्शाते हैं तथा तात्कालिक वातावरण को चित्रित करते हुए पाठक तक सफलतापूर्वक संप्रेषित करते हैं। इनके उपन्यासों की भाषा मध्यमवर्गीय सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है।

भाषा की शब्द संपदा–समृद्धि एवं संभावनाएँ :

उपन्यासकार द्वारा अपने कथ्य में सजीवता लाने के लिए कथावस्तु की मांग के अनुसार भाषा का प्रयोग किया जाता है। मृदुला जी के उपन्यासों में महानगरीय परिवेश को अधिक रूप में अभिव्यक्त किया गया है तथा ग्रामीण परिवेश का बहुत ही कम चित्रण किया गया है। परिवेश के अनुसार ग्रामीण व नगरीय, शिक्षित व अशिक्षित, बुद्धिजीवी व श्रमिक वर्ग की भाषा का प्रयोग लेखिका ने किया है। कथावस्तु की मांग के अनुसार इनके उपन्यासों में स्थानीय बोली, तत्सम–तद्भव व देशज–शब्द, अंग्रेजी शब्द व वाक्य, मुहावरे व लोकोक्तियाँ, पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, भदेस भाषा, स्वच्छंद भाषा व ध्वनि शब्दों का प्रयोग यथास्थान प्रयुक्त हुआ है। मृदुलाा जी ने अपनी भाषा को सशक्त एवं प्रभावी बनाने के लिए उसे बंधनमुक्त रखकर उसमें विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। इनके पात्र अपने स्तर, परिवेश, मानसिक व्यापार, उद्वेग–आवेश के कारण भदेस भाषा का प्रयोग करते हुए भी दृष्टिगोचर होते हैं।

स्थानीय बोली का प्रयोग :

मनुष्य अपने चारों ओर के वातावरण व समाज से ही भाषा को सीखता है। सामाजिक व्यवस्थाओं और परंपराओं का भाषा पर प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है, जिसके भीतर उस भाषा का विकास होता है तथा उसका अपना वास्तविक क्षेत्र होता है। अपनी सीमा के बाहर उसका स्वरूप थोड़ा या अधिक परिवर्तित हो जाता है। स्थानीय बोली किसी छोटे क्षेत्र की ऐसी व्यक्ति–बोलियों का सामूहिक रूप होती है, जिसमें आपस में कोई स्पष्ट अंतर नहीं होता है। भाषा का यह स्थानीय रूप कथानक में प्रादेशिकता की पहचान दिलाता है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में भी स्थानीय बोली का रूप देखा जा सकता है।

'अनित्य' उपन्यास में स्वर्णा की बोली पर प्रादेशिकता का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है – ''हमको बोला, बंगाली है। हम ब्याह कर लिया। गाँव पहुँचा तो देखा, शरप–शरप सब लोग उड़िया बोलता है।''[80]

'कठगुलाब' में नर्मदा का यह कथन – ''हाँ, मैं पिऊँगी जरूर। दिन में छह–सात टेम चाय न सुड़कूँ तो इत्ता बोलूँ कैसे? ना, खाँसी बोलने के कारन ना उठती, ये तो बुढ़ापे का नेग है।''[81]

'मिलजुल मन' में – ''अरे हट रे ऊतनी के। उसके पिछाड़ी काहे पड़ा है? वो नाही कर सकत डट के पोचारा। ओ का पांव भारी है।''[82]

अन्य भाषाओं का प्रयोग :

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में अंग्रेजी, बंगाली, उूर्द भाषा का प्रयोग भी किया है। 'अनित्य' में स्वर्णा की बंगाली हिंदी, काजल और मुकर्जी बाबू के बेटे की अंग्रेजी, 'उसके हिस्से की धूप' में जितेन की अंग्रेजी, 'मिलजुल मन' में अंग्रेजी, उर्दू, 'वंशज' में अंग्रेजी शब्दों व वाक्यों का प्रयोग किया गया है –

1. 'अनित्य' की स्वर्णा की बंगाली–हिंदी का उदाहरण – ''अच्छा साहब, आप लोग तो कहता है, देश आजाद हो गया। अंग्रेज लोग सब इधर से चला गया पर हमारा जमीन तो वापस नहीं मिला। अंग्रेज लोग उसको भी छोड़ा होगा न? मिलेगा नहीं, हम जानता हैं।...दो ठो गाय है...तीन ठो भैंस...।''[83]
2. 'अनित्य' में काजल व मुकर्जी बाबू के पुत्र पार्थ द्वारा अंग्रेजी शब्द व वाक्य दोनों का प्रयोग है –''डोन्ट टॉक ऑफ हर बिफोर मी! माइ मदर इज इनसाइड।''[84] तथा ''हाऊ वाज स्कूल?'' ''ऑल राइट'', फिफ्थ स्टैंडर्ड,'' फाइन, येस, इलेवन, श्योर, ''शैल आइ आस्क हर'' ।''[85]
3. 'उसके हिस्से की धूप' में – ''ट्रंक कॉल फ्रॉम बंगलूर। स्पीक प्लीज।''[86]
4. 'वंशज' में – ''गेट आउट ऑल ऑफ यू', 'रिस्पैक्ट द डैड' ।''[87]
5. 'कठगुलाब' में – ''वी नीड टु टॉक', ए वुमेंस वर्क इज नेवर डन'।''[88]
6. 'मिलजुल मन' में –''एंड द नंबर इज...माइनस थ्री!''[89] तथा ''ब्वायज डोंट मेक पासेस एट गर्ल्स हू वियर ग्लासेस।''[90]
7. ''मिस्टर एंड मिसेज सक्सेना कॉरडियली इन्वाइट यू टू कॉक्टेल्स एंड डिनर।''[91]
8. ''फार गॉड्स सेक शटअप एंड लेट मी लव।''[92]

6. अंगेजी हिंदी भाषा का मिश्रित रूप – ''मेरा नख–शिख परीक्षण करने के बाद उसने अपना डाइगनॉसिस सुनाया था।''[93]

''त्रिया चरित्र माई डियर, इस्तेमाल करके तो देखो,..एस.ए. जानती हो न, सैक्स अपील, बेबी,...'' और वह थियोरी से प्रैक्टिकल पर उतर आते।''[94]

''हमारा आउट–ऑफ–कोर्ट सेटलमेंट हो गया था।''[95]

''तुम! लोग हैं कि ऑनर्स की भीख मांगते दर–बदर भटकते फिरते हैं और तुम हो कि ....तुम! यू आर एन इडियट।''[96]

7. उर्दू–हिंदी भाषा का मिश्रित रूप – ''फिर, इस डर से कि कहीं उसके वजूद के अहसास से, एक आला अदीब की नाजुकखयाली में खलल न पड़ जाए, वह साँस भी धीमें–धीमें और रुक–रुककर भरने लगी।''[97]

''सूजन से भी मारियान की वाकफियत कम नहीं थी। वह जानती थी कि सूजन ने रोने के लिए साँझढले का ऐसा वक्त मुकर्रर कर रखा था, जिससे उसके काम में खास नुकसान न हो।''[98]

''अजनबी से जिस्मानी मिलन करवाने को तयशुदा ब्याह का वसीला ढूंढ़ना वाकई कारगर सूझ थी। है कोई और तरीका, आशिकी की तरद्दुद उठाए बिला, इतना खूबसूरत और मुहब्बत से लबरेज नतीजा पाने का?''[99]

सूक्ति सौंदर्य :

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में सूक्तियों का प्रयोग भी किया है, जो इनके चिंतन–मनन को अभिव्यक्त करने के साथ–साथ भाषिक सामर्थ्य को भी प्रकट करती हैं। कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं –

1. ''कोढ़ी का करम! राजा से भी भीख मँगवा देता है।''[100]
2. ''पवन का हाल बीच डगर झूलते मुल्क की तरह हो रहा।''[101]
3. ''शहादत का नशा बहुत भयानक होता है।''[102]
4. ''रेतीले भंवर में आदमी एक बार फंस जाए तो धंसता चला जाता है, उबरकर बाहर आना नामुमकिन है।''[103]
5. ''बिल्ली चूहे को खाये तो स्वधर्म और कहीं चूहा घात लगा कर बिल्ली को खत्म कर दे तो अपराध है।''[104]
6. ''सूईं की नोक से ऊँट भले ही निकल जाए, स्वर्ग के दरवाजे में अमीर नहीं घुस सकता।''[105]
7. ''लिफाफा देखकर खत का मजमून भाँप लेते हैं।''[106]

मुहावरे व लोकोक्तियाँ :

मुहावरे :

मृदुला गर्ग ने अपने अनुभवों को अनुभूतिगम्य और भाषा को सशक्त बनाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे – हवाई किले बनाना, सिर पे सवार होना, टस–से–मस न होना, लोहा मानना, काम तमाम करना, जमीन आसमान एक करना, साँस–में–साँस आना, किनारा करना, दाँतो तले जीभ दबाना, पल्ला छुड़ाना, टेढ़ी खीर, बहती गंगा में हाथ धोना, भानुमति का पिटारा, हथियार डालना, तीर मारना, दिल बाग–बाग हो जाना, काठ का उल्लू, उँगलियाँ चाटू भोजन, छाती पर मूंग दलना, मोटी अक्ल होना, आँखे चमक उठी, जी–तोड़ मेहनत, नथुने फड़क उठते, तलवार सिर पर लटकना, हथियार डालना, किताबी कीड़ा, मुँह खुला का खुला रह गया, आँखे फट गयी, चोर–चोर मौसेरे भाई, कानोकान खबर न होने दी, पहाड़ टूट पड़ेगा, जबान का सीसा घोला।

लोकोक्तियाँ :

न इधर का न उधर का, बीच डगर झूलते मुल्क की तरह, औरत तेरा नाम विडंबना, शैतान का नाम लिया नहीं शैतान हाजिर, मक्खन में गरम चाकू गिराना, माँ के दूध जैसी नेमत दूसरी नहीं, काठ को नग्नता की क्या लज्जा, शैतान का नाम लिया नहीं शैतान हाजिर, शेर बूढ़ा हो गया फिर भी शेर है, औरत का काम कभी खत्म नहीं होता, खोदा पहाड़ निकला चूहा, अक्लमद को इशारा काफी है, ईंट का जवाब पत्थर से देना इत्यादि।

शब्द प्रयोग :

अंग्रेजी शब्द : पार्टनर, रिकॉर्ड, पर्स, नॉनसेन्स, रिहर्सल, ऑपरेशन, हैंग–ओवर, हैडक्लर्क, बाथरूम, फैक्टरी, सूट, रिसर्च, प्रोग्राम, क्वार्टर, होटल, कार्टून, रिपोर्ट, इन्फॉरमर्स, केमिस्ट, एडवांस, हैल्पर, वर्ल्डबैंक, स्ट्रोक, नावेल, डाइबिटीज, मल्टीनेशनल, मेंबर, लेस्बियन, सोशलिज्म, प्रोजक्ट, डॉक्टर, ट्यूटर, गेम्स, टीचर, असेंबली, नॉनसेंस, रूम, कॉलेज, प्रिंसिपल, स्टूडेंट, स्पेशल, यूनिफार्म इत्यादि।

उर्दू शब्द : महफूज, इसरार, निहायत, इंतजार, फाहश, गुस्ताखी, खौफ, मुरव्वत, मेहरबान, तआल्लुक, तहकीकात, नामुराद, मुआयना, तवज्जह, अल्फाज, मुस्तैदी, तजवीज, वाकिफ, जुमलेबाजी, तब्दील, वजीफा, फेहरिस्त, कयास, बरकरार, फारिग, जाया, मजलूम, आशिक, मिसाल, ईजाद, हैबतनाक, शगूफा, बुतपरस्ती, खलल, याददाश्त, मिराक, फनकार, रक्कासा, बेशुमार, मिल्कियत, महरूम, नफासत, लताफत, नेस्तनाबूद, नामाकूल, इंतकाल, नाजनीन, मुखतलिफ, जद्दोजहद, तसव्वुर, मुस्तकिल, शिद्दत, मशक्कत, जरखरीद गुलाम, दानिशमंद, गुफ्तगु, हुक्मरान, लिबास, निस्बत इत्यादि।

तत्सम शब्द : संध्या, कुटुम्ब, अग्नि, क्षितिज, अभद्र, क्रोध, नक्षत्र, दर्शन, नृत्य, पितृ, मातृ, निर्जल, क्षण, सत्य, धर्म, मुख, कर्तव्य, छाया, जन्म, जीर्ण, दुर्बल, धैर्य इत्यादि।

तद्भव शब्द : गाँव, आँख, रात, आँसू, जीभ, पत्थर, दूध, आग, घर, दाँत, बहू, सूरज, काम, काठ, पीठ, आज, इतवार, उठ, उड़, पूंछ, बहन, भीख, पसीना, भैंस, रोना, सूखा, साली, अचरज, उछाह, जीभ, नींद, ब्याह, लोहा, सपना, साँवला, कान, कोढ़, छाँह, बन्दुक, रोगी, छाता, आधा, ओंठ, कोख, दुपट्टा, देवर इत्यादि।

देशज शब्द : फड़फड़ाएगा, छटपटाएगा, कुलच्छनि, किरच–किरच, ही–ही, खिल–खिल–खों–खों, ढ़म–ढ़म, तक–धिन–तक–धिन, करमजली, सर्र–सर्र, झटक–झटक, गड्डमड्ड, पियक्कड़, लड़का, खिड़की इत्यादि।

संकर शब्द : स्थायी डिवोशन, शुक्राणु टेस्ट, ताजातरीन नॉवेल, लिबरल मर्द, फेमिनिन कौशल, बिलाशर्म, सिलेक्टिव बधिर, हैबिचुअल गर्भपात, रोमांटिक प्रेम, इंटेस उन्माद, पैशनेट विरह इत्यादि।

युग्म शब्द : तुड़ी–मुड़ी, शक्ल–सूरत, सुलझी–तराशी, दवा–दारू, घर–गृहस्थी, साफ–स्वस्थ, सुंदर–सुचारु, चकमक–जगमग, बौराए–बौखलाए, हिलना–डुलना, सेवा–सुश्रूषा, काम–धाम, टोका–टाकी, लस्टम–पस्टम, ठोक–पीट, कभी–कभार, कद–बुत, बर्तन–भांडे, घबराए–चकराए, इधर–उधर, वक्तन–फक्तन, सीधी–सपाट, हिसाब–किताब, कद–कामत, मंत्री–संत्री, बच्चे–बूढ़ें, मर्द–औरत, सवाल–जवाब, चाकू–छुरी, चीखने–चिल्लाने, मौकाए–माहौल, दवा–पट्टी, अला–बला, जब–तब, चहल–पहल, धूल–मिट्टी, आराम–तसल्ली, खाने–पीने, समझ–बूझ, साफ–शफ्फाक, दर–बदर, क्षण–भर, दुआ–सलाम इत्यादि।

विकृत शब्द : सराब, डराइंग, इत्ती सुंदर, खुस, डिसीपिलिन, टैट, पार्ट–टेम, किरकिट–टीम, डुपलीट चाबी, परकट, जिंदगानी, मसीन की नाई, धडाम देनी सी इत्यादि।

भेदस भाषा : भदेस भाषा से तात्पर्य है – गाली–गलौज, वीभत्स शब्दों का प्रयोग से है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

1. ''हरामजादी, कुत्ती, मैं पूछूँ हूँ तुमसे, तूने कित्ते मरद किये, कित्ते छोड़े, जो सवाल–पे–सवाल किये जावे है मुझसे? लौंडी हूँ तेरी या तेरे खसम की?''[107]

2. ''और हमारे बच्चे? सिर्फ खाना मांगते हैं। साले, हर वक्त खाना मांगते है, हरामजादे............. ।''[108]

स्वच्छंद भाषा : जहाँ भाषा के वाक्य छोटे और एक ही वाक्य को तोड़कर बनाए हुए होते हैं, जिनका क्रियापद टूटा–उल्टा–पुल्टा व वाक्यों की संरचना भी व्याकरणानुसार नहीं होती है, वहाँ भाषा में स्वच्छंदता पाई जाती है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास से एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''बगीचा–आँगन–बरामदा।घास–क्यारियाँ–गाड़ी–गमले–मेज–कुर्सियाँ।ड्राइवर–नौकर–मेहमान–

दफ्तर। नाश्ता–खाना–चाय–प्रतीक्षा। प्रतीक्षा और प्रतीक्षा। समय–समय–समय। खोखले खण्डों में विभक्त।''[109]

चित्तकोबरा में – ''मैं मुस्करा उठी........ओंठ कँपकँपाकर........दाँत चमकाकर............आँखे लड़खड़ाकर...........भँवे छितराकर...........मैं हँस दी।''[110]

''आसान काम नहीं था। हाथ को ठीक भँवों तक ले जाना...कितना दुरूह है....धुंध का आरपार नहीं...भँवें दिख नही रहीं...जंगल में....जंगल में धुन्ध....भँवों के बीच फँसी है...उलझी–उलझी...सीधी होती नहीं....कितनी भी शराब उड़ा लो....जंगल ....मैं...शायद.....उसकी गोद में लुढ़क गई.... ।''[111]

'वंशज' उपन्यास में – ''ठक–ठक–ठर्राक। ठक–ठक–ठर्राक। कुदालें चलाते मजदूर, टूटते कोचले के ढेर, ढेरों से भरती टोकनियाँ, टोकनियों से लदी हॉलिंग मशीने। कोयला–कोयला–कोयला। और–और–और।''[112]

(ख) शैलीगत वैविध्य :

भाषा–शैली परस्पर एक–दूसरे के पूरक हैं, जिनके उचित गठबंधन द्वारा ही उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण संभव होता है। शैली किसी रचना का बाह्य परिधान है, जिसका निर्धारण भाषा व शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा ही होता है। उपन्यास की रचना–प्रक्रिया में

भाषा के समान ही शैली–तत्त्व का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। तमाम शैल्पिक तत्त्वों के निर्वाह का माध्यम शैली ही होती है। शैली उपन्यास की समूची काया में व्याप्त रहती है अर्थात शैली उपन्यासकार के व्यक्तित्व का दूसरा नाम है। शैली अपने आप में स्वतंत्र न होकर सभी तत्त्वों को अर्थपूर्ण ढंग से उद्घाटित करने का एकमेव साधन है। उपन्यास के कथानक के अनुरूप शैली का प्रयोग करके आधुनिक उपन्यासकार शैली के प्रति सजगता का परिचय दे रहे हैं। प्रत्येक उपन्यासकार अपने सामर्थ्य व अनुभव के आधार पर स्वतंत्र भाषा–शैली की रचना करता है तथा उसी के आधार पर साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है।

शैली से तात्पर्य है, रचना करने का ढंग। रचनाकार अपने भावों तथा विचारों को जिस भाषा के माध्यम से, जिस रूप व विशिष्ट ढंग से पाठकों के समक्ष अभिव्यक्ति प्रदान करता है, वही उस रचनाकार की शैली होती है। लेखक के यही भाव व विचार जब उसकी रचनाओं में कई बार प्रयुक्त होते हैं, तब उसकी शैली विशेष का रूप धारण कर लेते हैं, जो किसी लेखक की वैयक्तिक विशेषता होती है। लेखक की व्यक्तिगत रुचि व विषयवस्तु के कारण शैली में परिवर्तन होता है। कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण के अनुसार ही शैली भी परिवर्तित होती रहती है। अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार कुछ लेखक मानव–जीवन के बाह्य पक्ष पर बल देते हैं, तो कुछ मनुष्य के मनोभावों पर बल देते हैं। बाह्य पक्ष पर बल देने वाले लेखक समाज का यथार्थ चित्रण करते समय यद्यपि कभी–कभी पात्रों की मनोदशा का भी सुंदर चित्रण कर देते हैं, लेकिन जीवन में घट रही घटनाएँ ही उनकी कथावस्तु का मुख्य आधार होती हैं। मनुष्य के मनोभावों का वर्णन करने वाले लेखक बाह्य घटनाओं का वर्णन कम करते हैं, अपितु मानव–मन अर्थात पात्रों के मन में उठने वाले भावों को विस्तार से प्रस्तुत करते हैं। अतः लेखक की व्यक्तिगत रुचि में भिन्नता के कारण उपन्यास की शैली में भी भिन्नता आती है। मानव–जीवन के बाह्य पक्ष पर बल देने वाला लेखक वर्णनात्मक शैली को अपनाता है तथा मनोभावों का वर्णन करने वाला लेखक अंतद्र्वंद्वात्मक व मनोविश्लेषणात्मक शैली को अपनाता है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में भाषा–शैली का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। इनकी उत्तम भाषा और विचारों की अपूर्व संगति से ही उत्तम शैली का निर्माण होता है। इनकी लेखन शैली प्रवाहमयी है तथा स्वाभाविकता से परिपूर्ण होने के कारण आदर्श शैली है। इनके उपन्यासों को पढ़ने पर काल्पनिकता का आभास न होकर वास्तविकता का आभास होता है। इन्होंने एक उपन्यास के लिए केवल एक शैली का प्रयोग न करके आवश्यकतानुसार अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। यथाप्रसंग अलग–अलग शैलियों को अपनाकर अपने विचारों व भावों को अभिव्यक्त किया गया है। इन्होंने प्रचलित शैलियाँ जैसे – वर्णनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, अन्य पुरुष शैली, विश्लेषणात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली आदि के साथ ही कथानक को खंडों में विभक्त करके खंड विभाजन शैली नामक नई शैली का प्रयोग भी अपने 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य' तथा 'कठगुलाब' उपन्यासों में किया है। इनकी कथा–वर्णन की शैली इतनी अद्भुत है कि कथ्य अपनी संपूर्ण संवेदनशक्ति के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो उठता है। मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में कथ्य निरूपण व भाषिक अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त विविध शैलियों का विवेचन निम्नानुसार है –

1. वर्णनात्मक शैली :

उपन्यास लेखन में सर्वाधिक प्रचलित, प्राचीन और पारंपरिक शैली वर्णनात्मक ही है। इस शैली के उपन्यासों की कथावस्तु, पात्र तथा स्थितियों का वर्णन उपन्यासकार तृतीय पुरुष के रूप में करता है। सामाजिक व ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिकतर इस शैली को अपनाया गया है। भूत, वर्तमान व भविष्य से संबंधित घटनाओं का वर्णन इस शैली के द्वारा ही होता है। प्रत्येक उपन्यास में कम–अधिक मात्रा में वर्णनों की उपस्थिति रहती ही है। इसमें उपन्यासकार पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किसी घटना तथा विचारों की वर्णनात्मकता के सहारे करता है। इस शैली में विवरणात्मकता ज्यादा होती है, जो पाठक के लिए उबाऊ हो सकती है, परंतु एक

कुशल रचनाकार वर्णन के माध्यम से स्थिति का साक्षात चित्र प्रस्तुत कर पाठक को आनंदानुभूति प्रदान कर सकता है। वह इस शैली के द्वारा माहोल में सजीवता भरता है। उपन्यासकार जीवन के किसी भी क्षेत्र से विस्तृत कथानक का निर्माण करते हुए पात्रों की संख्या अपनी मर्जी से रख सकता है। विविध समस्याओं की अभिव्यक्ति के साथ परिवेश का वातावरण चित्रित कर सकता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में प्रायः वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मनीषा द्वारा वर्णनात्मक शैली में जितेन और मधुकर की कथा प्रस्तुत की गई है। मनीषा की मनःस्थिति का वर्णन दृष्टव्य है –''जिद्द करके वह उठी नहीं कलम थामें बैठी रही। फोन की घंटी बजती रही। मनीषा बैठी तो रही पर लिख आगे एक शब्द भी नहीं पायी। फोन की घंटी धैर्य के साथ ऐसे बजती रही जैसे करनेवाला जन्मजात बेकार हो। आखिर असहिष्णु हुई तो मनीषा ही, फोन करने वाला नहीं। कॉपी को जोर से मेज पर पटककर उसने कुर्सी पीछे खिसकाई और लेखन के दायरे से बाहर निकल आयी। कसम से गलत नंबर हुआ तो वह सुनायेगी कम्बख्त को कि हमेशा याद रखेगा।''[113] इसमें मनीषा कहानी लिखने बैठी ही थी कि फोन की घंटी बज उठती है और वह चिढ़ते हुए सोचती है कि जब भी कोई काम हाथ में लेती हूँ, तो यह फोन जरूर चीखना शुरू कर देता है। 'वंशज' उपन्यास में शुक्ला साहब की दिनचर्या का वर्णन भी दृष्टव्य है – ''कमरे में पहुँचकर शुक्ला साहब ने तिपाई पर रखी किताब 'वार एंड पीस' उठा ली और आराम कुर्सी पर पढ़ने लगे। स्थान खोजना नहीं पड़ा। कल रात पढ़ चुकने के बाद आखिरी पन्ने पर पुस्तक संकेतिका रख छोड़ी थी। सोने से पहले कुछ देर पढ़ना उनका प्रतिदिन का नियम है। वैसे ही जैसे अदालत जाना, घूमने जाना, टेनिस खेलना, खाना या सोना। उनका हर काम नियमित समय पर होता है।''[114]

'कठगुलाब' उपन्यास का एक उदाहरण इस प्रकार है – ''पर हमने कोई फिल्मी किस्म का अभाव नहीं झेला। न माँ ने हमें ताजी, खुद बासी खाकर पाला; न हमें सूखे में सुलाकर खुद गीले में सोयी और न बड़ी होने पर मुझे किसी साहूकार–लेनदार की बुरी नजर का शिकार होना पड़ा। माँ का काम चला और खूब चला। मेहनत से समझिए या किस्मत से। अब किस्मत भी क्या करे। जिद्दी लोगों के सामने कभी–कभी भगवान की भी नहीं चलती। वह बेचारा भी उसकी जिद्द की हदों के बीच फँसकर रह जाता है। तो आम निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की तरह हमने भरपेट खाया, बढ़िया सिला पहना (माँ की कारीगरी की बदौलत), और सरकारी वाहनों के सफर में व्यायाम की सहूलियत का इस्तेमाल करते हुए, दो कमरों में घर–दूकान बसाये, आराम से स्कूल पास कर गए।''[115]

'अनित्य' उपन्यास का कथानक तृतीय पुरुष शैली में प्रस्तुत किया गया है, जो वर्णनात्मक शैली की ही विशेषता है। अविजित के संबंध में लेखिका ने कथा–वर्णन शैली अपनाई है। लेखिका कहती है कि – ''फिर भी अविजित ने आई.सी.एस. की परीक्षा दी थी। सफल भी हुआ था। हाँ, इंटरव्यू देने विलायत जाने का वक्त आया तो सरकार की मनाही आ गयी थी। पिता, सरकारी कारिंदे की हैसियत से गिड़गिड़ाये थे और कलक्टर साब की तरफ से उदार ऑफर आया था – लिखकर दो कि सरकार के विरुद्ध कार्रवाइयों में हिस्सा नहीं लोगे तो इजाजत मिल जाएगी। अविजित ने कागज फाड़कर फेंक दिया था और पिता को तसल्ली दी थी – आपको पता तो चल गया, आपका बेटा आई.सी.एस. में आने लायक है, और क्या चाहिए। पिताजी खुश नहीं हो सके थे। हाँ, उसका अपना अहं जरूर संतुष्ट हुआ था। देश की सबसे कठिन परीक्षा पास की है उसने...बाद में सुनाने के लिए बढ़िया कहानी मिल गई थी।''[116]

'मैं और मैं' उपन्यास में भी मृदुला जी ने माधवी, राकेश और कौशल इन तीनों के जीवनानुभवों को तटस्थ द्रष्टा के रूप में वर्णनात्मकता के सहारे प्रस्तुत किया है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में भी गुल, मोगरा, बैजनाथ, कनकलता आदि के चरित्र को वर्णनात्मकता के सहारे ही चित्रित किया है। गुल की अंगुलियों व नाखूनों की सुंदरता का वर्णन लेखिका ने इस प्रकार से किया है – ''लो, पहली बात पहले। गुल के हाथ बहुत सुंदर थे। लंबी–स्तूपाकार उंगलियां,

उभरे, अंडाकार नाखून, जिन्हें जरा–सा लंबा कर, गोलाई से तराश कर रखा करती थी। जब तक स्कूल में थी, मिस हुक्कू के डर से नेल पॉलिश लगाने का सवाल पैदा नहीं हुआ बल्कि लंबे नाखूनों की वजह से, जब–तब पकड़ ली जाती। मिस हुक्कू थीं मादा कैप्टन हुक, वही पीटर जैन वाला समुद्री डाकू। कैंची से गुल के खूबसूरत नाखूनों का सिर कलम करने में दिली मसर्रत महसूस करतीं।''[117] इस उद्धरण द्वारा लेखिका ने गुल के नाखूनों की सुंदरता व उसका अपने नाखूनों की सुंदरता से मोह का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में अधिकांशतः इस शैली का प्रयोग किया है। इनके उपन्यासों के भीतर व्यापक जीवनानुभव समाए हुए हैं, जिससे उनकी भाषा वर्णनात्मक हो गई है। उपन्यासों में आने वाली घटनाओं और समस्याओं के अतिरिक्त पात्रों के हाव–भाव का अंकन करते समय लेखिका ने वर्णनात्मक शैली को अपनाया है।

2. आत्मकथात्मक शैली :

आत्मकथात्मक शैली के अंतर्गत उपन्यासकार एक द्रष्टा के रूप में कथावस्तु को संगठित करता है। इसमें कोई पात्र कथा को इस रूप में कहता है, जैसे वह स्वयं की अनुभूति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत कर रहा हो। इस शैली में रचनाकार ही निवेदक होता है, आत्मकथा की भाँति रचनाकार प्रथम पुरुष के रूप में कथा का वर्णन करता है। रचना का कोई पात्र भी लेखक का स्थान ग्रहण कर लेता है और वह पाठकों को प्रत्यक्ष रूप से संबोधित करता हुआ उनसे सीधे संपर्क स्थापित करता है। आत्मकथात्मक शैली अधिक विश्वसनीयता पैदा करने तथा मानवीय आंतरिक भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होती है। इस शैली के अंतर्गत 'मैं' चरित्र का आत्मविश्लेषण उत्कृष्ट ढंग से होता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग विशेष रूप से 'चित्तकोबरा', 'कठगुलाब' व 'मिलजुल मन' में हुआ है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास की नायिका मनु अपने मानस में उमड़ते विचारों को प्रथम पुरुष में प्रस्तुत करती है। उपन्यास में मनु की चेतना–संबद्ध कई चित्र उभरकर आते हैं, जिन्हें मनु ने संयोजित व संचालित करते हुए पाठक वर्ग को अपने सफर का साथी बनाया है। उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''तुम्हे अचरज हो रहा है, मैं दौड़कर उसे उठा क्यों नहीं लेती? ऊपर का खोल–चीरकर खत को आँखों से चूम क्यों नहीं लेती?''

जाहिर है, तुमने कभी किसी का इंतजार नहीं किया।

चार महीनों के हर पल इंतजार के बाद यह खत आया है। जिन्दगी से लबरेज ये चन्द लम्हे इतनी जल्दी जीकर खत्म हर दूँ?

नहीं मैं धीमे–धीमे आगे बढ़ूँगी। धीरे से झुककर लिफाफा उठाऊँगी। पहले नजरों से चूमूंगी, फिर हाथ से सहलाऊँगी। फिर ...अनेक घड़ियों बाद ...बहुत संभालकर लिफाफे का चिपका किनारा फाड़ूँगी।...लिफाफा खुल गया। मजमून मेरे सामने है। करारे पतले नीले कागज पर नीली स्याही से खिंची लकीरें।''[118]

'कठगुलाब' उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। उपन्यास के पाँचों कथावाचक स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा और विपिन अपनी–अपनी कहानी कहते हैं। उपन्यास की पहली कथावाचक स्मिता अपनी जीवन–कहानी अपनी जुबानी इस रूप में कहती है – ''मेरा नाम स्मिता है। कोई बीस साल बाद मैं अपने घर लौटी हूँ। वही मिट्टी से भरा घर। कुछ याददाश्त में धुंधलाया, कुछ एकाएक सामने पड़ जाने पर अनचीन्हा। ...ऊल–जलूल। सोचने मे माहिर हूँ, मैं। बीस साल तक, एकदम पोथी बाँचकर अपने पर हँसना सीखा था। यहाँ की मिट्टी ने आँख की किरकिरी बन, फिर रुला दिया। पर हँसना मैं भूल तो गयी। हँसने के लिए अपने से बढ़िया विषय और कोई नहीं है, यकीन मानिए। और ऊल–जलूल सोचने के लिए मुझे बस जरा–सा अंधेरा चाहिए। उसका जुगाड़ बहुत आसान है यहाँ।''[119] उपन्यास की दूसरी

कथावाचक मारियान है, जो रिलीफ फॉर एब्यूज्ड वुमेन, रॉ में काम किया करती थी। वह कहती है – ''ऐसा नहीं था कि मैंने कभी किसी मर्द के हाथों चोट नहीं खाई थी। पर मैं तमाम मर्दों को एक खाँचे में डालने को तैयार नहीं थी। कोशिश करती तो जॉर्ज का चेहरा सामने आ जाता। जॉर्ज रिचर्डसन, यानि मेरी माँ, वरजिनया का दूसरा पति पर मेरा सौतेला बाप नहीं। उसने मुझे घर की सुरक्षा अैर बाप का स्नेह तो दिया पर कानूनन गोद लेकर अपना नाम नहीं। मेरा पूरा नाम रहा, मारियान ब्रुक, स्वर्गीय रॉल्फ ब्रुक की बेटी। जॉर्ज रिचर्डसन ने मुझे अपने नाम और जायदाद में हिस्सेदारी के सिवा वह सब दिया था, जो एक उदार और स्नेहिल बाप अपनी इकलौती, लाड़ली बेटी को दे सकता है। प्यार और विश्वास के साथ उम्दा रहन–सहन, खान–पान और जीवन–मूल्य।''[120] उपन्यास की तीसरी कथावाचक नर्मदा भी कुछ इस प्रकार से अपना परिचय देती है – ''तो बीस बरस से मैं यहाँ काम करूँ हूँ। उससे पहले एक और घर में करूँ थी। उससे पहले घर–घर जाकर पाट टैम काम करूँ थी। उससे पहले चूड़ी कारखाने में काम किया करूँ थी। उससे पहले ....ही–ही...खी–खी...पैदा हुई हूँगी, और क्या।''[121] इसी प्रकार असीमा भी अपना परिचय देते हुए कहती है – ''मेरा नाम असीमा है। कभी सुना है किसी लड़की का नाम असीमा? नहीं न? लड़कों का अलबत्ता, सुना होगा असीम। सारा खेल मेल शॉविनिज्म का है। सीमा में बँधे रहने का ठेका लड़कियों ने जो ले रखा है। मेरे माँ–बाप ने कौन–सा मेरा नाम असीमा रखा था। वही घिसा–पिटा, सीमा। मेरे पिद्दी भाई को जरूर असीम नाम दिया था। वह तो मैंने खुद बदलकर असीमा कर लिया।''[122] इसी उपन्यास का पाँचवा कथावाचक पात्र विपिन मजूमदार है। वह कहता है – ''मैं एक लाचार दर्शक से ज्यादा कुछ नहीं था। करने के नाम पर महज इतना कर सकता था कि पहले दिन का अपना कहा, जब–तब दुहराता जाऊँ। वही हुआ। कई महीनों तक, हमारे बीच वह संवाद दुहराया जाता रहा। भिन्न–भिन्न शब्दों में, अलग–अलग प्रस्तावना के साथ। ''[123]

'मिलजुल मन' उपन्यास भी आत्मकथात्मक व पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है। इसमें लेखिका ने आपबीती व जगबीती दोनों को चित्रित किया है। मोगरा का अपने तयशुदा विवाह के बारे में यह कथन दृष्टव्य है – ''मेरी शादी एक अमेरिका पलट तीससाला नौजवान से तय हुई। आम तयशुदा ब्याह से वह फर्क था तो इस मायने में कि, तय करने वालों मे, एक तरफ़ पिताजी थे तो दूसरी तरफ़ ख़ुद लड़का, सॉरी, तीस साला जवान। उसके माँ–बाप का दख़ल बाद में शुरू हुआ। वह पिताजी के पास कारोबारी गुर सीखने के सिलसिले मे आया था।''[124] मृदुला जी ने एक नाजुक और नजदीकी रिश्ते और एक सशक्त कहानीकार के बीच साफगोई और संवेदनशीला से उपन्यास का ताना–बाना बुना है। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसमें लेख्किा ने स्वयं जो देखा, जिया, भोगा, अनुभव किया, वही लिखा है। स्मृतियों को याद करके उनकी तहों मे जाकर उन्हें उभारा है।

3. विश्लेषणात्मक शैली :

विश्लेषणात्मक शैली में लिखी गई रचना के केंद्र में कोई न कोई एक विचार होता है, जिसका विवेचन और विश्लेषण कृति में किया जाता है। यह शैली तर्कप्रधान होती है तथा अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त की जाती है। भीतरी आवाज को प्रस्तुत करने और उसका चित्र खींचने में यह शैली सर्वाधिक उपयुक्त है। द्वंद्वग्रस्तता व ऊहापोह की स्थिति में उपन्यासकार मन की अवस्था का विश्लेषण करता है। इस शैली का प्रयोग अधिकतर व्यक्तिवादी उपन्यासों में होता है। इसमें लेखक कथासूत्र को अग्रसर करने में कम तथा घटनाओं, चरित्रों आदि के विश्लेषण में अधिक रुचि लेता है।

मृदुला गर्ग द्वारा लिखित रचनाओं में बौद्धिक या शिक्षित पात्र अधिक होने के कारण इनका लेखन अत्यंत तार्किक एवं बौद्धिक माना गया है। इन्होंने यथार्थवाद के विभिन्न पक्षों को विश्लेषित करने के लिए यह शैली अपनायी है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''एक दिन जितेन ने कहा था –प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। जितेन के लिए यह सत्य है, मनीषा पहले से जानती थी, आज उसने समझा कि यह केवल

जितेन के लिए ही नहीं, सभी के लिए सत्य है। यह भी समझा कि उसके अपने जीवन का खालीपन इसलिए बराबर बना रहा है, क्योंकि वह उसे किसी–न–किसी पुरुष के प्रेम से भरने का प्रयत्न करती रही है। इतना घनत्व प्रेम में नही होता कि वह अंतरिक्ष–जैसे फैले जीवन के शून्य को सदैव के लिए भर सके। कुछ थोड़े से क्षण ऐसे अवश्य आते हैं जब वह इतना फैल जाता है कि उसका ओर–छोर ढूँढे नहीं मिलता पर देखते–ही–देखते फिर सिकुड़ कर यूं सिमट जाता है कि पता नहीं चलता, वह कहाँ समा गया है।''[125]

'कठगुलाब' उपन्यास में डॉ. जिम जारविस स्मिता का विश्लेषण करते हुए कहता है – ''उसके भीतर डर था, क्रोध था, अशांति थी, संशय था, संवेदना थी, बुद्धिजीवी दम्भ भी था पर अपराधबोध कतई नहीं था। एक औरत में यह अचम्भे में डालने वाली बात थी। यूँ तो हर औरत–मर्द मे किसी–न–किसी बात को लेकर अपराधबोध होता है पर औरतें इस मामले में ज्यादा ही सिद्धहस्त होती हैं। अपराधबोध पैदा करने में उनकी कल्पना–शक्ति, साइंस–फिक्शन लिखनेवालों को मात देती है।...सच कहूँ तो, अपराधबोध का पूर्ण अभाव केवल साइकोपाथ (पागल) में होता है। पर अचरज की बात यह है कि उसकी जो वजह रहती है, आत्ममुग्धता, उसका भी आपमें पूर्णतया अभाव है।...आपका अन्तस उससे बिल्कुल अछूता है। आप में न आत्मप्रशंसा की मुग्धता है, न हीनभावाना की। आप कैसी दिखती हैं, कैसी नहीं, उसमें आपकी दिलचस्पी नहीं है। लोग आपको प्रशंसा की नजर से देखते हैं या नहीं, इससे भी आपकों फर्क नहीं पड़ता। आत्ममुग्धता से मुक्त स्त्री; ऊपर से अपराधबोध से भी अछूती। चमत्कार! करिश्मा! किसी भी मनोविश्लेषज्ञ के लिए चुनौती।''[126]

'मिलजुल मन' उपन्यास में भी लेखिका ने डालमियानगर कस्बे में औद्योगीकरण के कारण बढ़ते प्रदूषण को इस प्रकार से विश्लेषित किया है – ''कुदरती तौर पर डालमियानगर बुरी जगह नहीं थी। बेचारी कुदरत को क्या पता था, एक दिन उस अंचल का ऐसा अटपटा औद्योगीकरण होगा कि प्रदूषण फैलाने वाले दुनिया जहान के कारखाने लगाए जाएँगे। सफाई, सेहत और खूबसूरती से परहेज़ कर ठठ के ठठ कुनबे, उनके इतने करीब बसाए जाएँगे कि दिन–रात फेफड़ों में हर मुमकिन बू, कसैला धुआँ, जहरीली गैस रिसे–बसे। जितने मुख़्तलिफ़ कारखाने, उतनी रंगारंग सड़ांघ।''[127]

4. **<u>पूर्वदीप्ति शैली</u> :**

समकालीन उपन्यास साहित्य में यह शैली अधिक प्रचलित हुई है। इस शैली का संबंध पात्रों की मानसिक स्थिति से अधिक होता है। इसमें बीती हुई बातों को पुनः आलोकित किया जाता है। इस शैली में रचनाकार वर्तमान कथा के सूत्र को किसी बीती हुई घटना से अकस्मात् ही प्रासंगिक रूप से जोड़ देता है तथा कथानक को गतिशील बनाता है। वर्तमान जिंदगी जीते हुए पात्र अपने विगत जीवन की घटना का उल्लेख जब करते हैं, तब उसे पूर्वदीप्ति या फ्लैशबैक शैली कहा जाता है। मनुष्य अपना जीवन केवल वर्तमान का होकर नहीं जीता है, अपितु उसमें अतीत जड़ की तरह चिपका होता है तो भविष्य फलाकांक्षा बनकर। वर्तमान की हताशा उसे भविष्योन्मुख नहीं बना पाती है, परंतु अतीत की स्मृतियों से उसको काट पाना संभव नहीं है। व्यक्ति की इसी प्रवृत्ति के कारण मृदुला गर्ग के उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग दिखाई देता है। इनके उपन्यासों के कई पात्र अतीतजीवी हैं तथा उनका वर्तमान अतीत से घिरा दिखाई देता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास 'अनित्य' का अविजित, 'चित्तकोबरा' की मनु, 'कठगुलाब' के पाँचों कथावाचक, 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, 'मिलजुल मन' की मोगरा आदि सभी पात्रों की मनोदशा या मन:स्थितियों का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण पूर्वदीप्ति शैली के द्वारा ही संभव हो सका है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा अपने विगत जीवन को याद करते हुए अपने और जितेन के संबंध के बारे में सोचती है, मधुकर से प्रेम के बारे में सोचती है। वह सोच रही है – ''तब चार वर्ष पहले ऐसा क्या हुआ था कि वह जितेन को छोड़, मधुकर के साथ चली आयी थी? क्या कहा था तब उसने? मेरा नूतन जन्म हुआ है, जितेन। तुमसे विवाहित इन दो वर्षों में

भी मैंने अपने को तुम्हारे इतने निकट महसूस नहीं किया जितना इन चार महीनों में मधुकर ने किया है, चार महीने क्या, चार दिन में ही कर लिया था। जितेन, मैंने जीवन में पहली बार प्यार किया और पाया है।...कितनी निर्ममता के साथ उसने जितेन को अलग झटक दिया था, जैसे वह उसके और मधुकर के बीच खड़ी गारे की पतली–कच्ची दीवार हो, और कुछ नहीं।...उसने बिना शोर मचाये उसका निर्णय स्वीकार कर लिया था और उसने निष्कृति की श्वास छोड़, घर त्याग दिया था। चली गयी थी मधुकर के पास।''[128]

'अनित्य' उपन्यास में स्वतंत्रता–पश्चात् की और अविजित के वर्तमान की कथा है। जब–जब वर्तमान में भूतकाल का समावेश होता है, तब–तब अविजित की सोच अतीत तथा इतिहास की घटनाओं का फ्लैशबैक पाठकों के समक्ष उपस्थित करती है। अविजित बार–बार अपने अतीत में पहुँच जाता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''ग्यारह बरस पहले की संगीता!

''तुम डॉक्टरी करना चाहती हो?'' अविजित ने उससे पूछा था।

''जी'', उसने सिर झुकाए रखा था।

''कर सकोगी?''

झटके से संगीता ने सिर उपर उठाया था। आँखें अविजित की आँखों से मिली थीं। इतनी काली आँखें। उसने सोचा ही था कि स्याह पुतलियों से उठी लपट उसे झुलसा गयी थी।''[129]

अविजित के मन में 1947 का समय चल रहा है – ''तभी न ठीक उन्हीं दिनों जब गांधीजी अहिंसा के प्रयोग सिखला रहे थे, देश में जहाँ–तहाँ हिन्दू–मुस्लिम दंगे होते रहते थे, जिनमें हिन्दुस्तानियों के दिलों में छिपी हिंसा अपने जघन्य रूप में प्रकट होती थी। एक तरफ कराची में कांग्रेस अधिवेशन में गांधी–इर्विन समझौते को पास किया जा रहा था, दूसरी तरफ कानपुर में भयानक हिन्दू–मुस्लिम दंगा हो रहा था, जिसमें गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे नेता को कत्ल किया गया था।

और आखिर में उन्नीस सौ सैंतालिस की वह नाक़ाबिले बयान मारकाट...दिलों में जमी हिंसा का नंगा नाच...किन्हीं अंग्रेज सार्जेंटों की ठोकरों से शुरू हुआ सिलसिला... आज भी अगर कहीं वह अंग्रेज सार्जेंट अविजित को मिल जाये...!''[130]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग यथास्थान हुआ है। मनु ने रिचर्ड से अपनी पहली प्यार भरी मुलाकात का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है – ''उस दिन अपने क्लब में नाटक की रिहर्सल शाम के बजाय सुबह रखी गई थी। दस बजे। दिसम्बर की सुबह। धूप से लबरेज। ...मैं दस बजे से पहले ही रिहर्सल के लिए हॉल में पहुँच गई। इस नाटक के रिहर्सल मे शामिल होना मेरे लिए काम नहीं है। आराम, सुकून और धुमक्कड़ी का हिस्सा है। .... मैं दो कदम आगे बढ़ी और ठीक उसके सामने आ गई। सबसे पहले मुझे वह दीखा – औरों से अलग जैसे सायों से घिरा निपट अकेला इन्सान हो। आज पहली बार मैंने उसे धूप में देखा। रोज देखती आयी हूँ शाम के झुटपुटे में, या रात के घिरते अंधेरे में।...मैंनें देखा, उसके चेहरे का रंग मोतिया नहीं, सुनहला है।''[131] अपने अतीत की स्मृतियों में खोकर मनु वर्णन करती है कि वह रिचर्ड के रूप से उस दिन सुबह की रिहर्सल के समय प्रभावित हुई थी।

'कठगुलाब' उपन्यास में भी मृदुला जी ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। पाँचों कथावाचक अपने अतीत की स्मृतियों में खोए हुए दिखाई देते हैं तथा अपने अतीत को समय–समय पर पाठकों के समक्ष उजागर करते रहते हैं। स्मिता अपने अतीत का वर्णन करते हुए कहती है – ''बीस साल पहले नमिता ने कहा था, ''स्मिता तू तो पागल है। वह कोई बड़ा–बड़ा घर नहीं था और जिसे तू बगीचा कहती है, वह घर के सामने का

सार्वजनिक मैदान था। माँ ने उसमें ढेरों नीम और कुछेक अमलतास, कनेर, नागचम्पा, जामुन, आम, करौंदे के पेड़ लगवा दिये थे।'' उनका कहना था,''पेड़ों से छनकर आये तो हवा साफ रहती है।'' साफ हवा की हमें जरूरत भी बहुत थी।...पर माँ कोढ़ियों के अस्पताल में काम करती थी।...बेवकूफ, नमिता कहती थी, वहाँ से निकलकर शहर न आते तो हमेशा कि लिए अनपढ़, गँवार रह जाते। बन्दारों की तरह तीर–कमान और गुल्ली–डंडे से खेलते...'', ...।''[132]

'मिलजुल मन' उपन्यास भी आत्मकथात्मक व पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है। लेखिका ने मोगरा के माध्यम से अपने अतीत का वर्णन करते हुए अपने बचपन व कौमार्य का सजीव चित्रण किया है। इसी क्रम में वह उस समय को याद करती है, जब उसके नाना जी उनके घर पर आते थे तथा कभी भी घर का कार्य न करने वाली उसकी माँ कनकलता किस प्रकार से मठरियाँ बनाती थी। वह याद करके कहती है – ''उस बरस, हमारे घर डॉक्टर नाना का आना–जाना काफी रहा। वे जब आते, पूरा घर मुस्तैद, चहल–पहल से गुलजार हो जाता। तमाम जन अटैंशन पर आ जाते और बखुशी, अनुशासन में कदमताल करने लगते। खाना ज्यादा लज़ीज़, नफीस और सेहतमंद बनता। सब–जन इस्त्री किए सलीकेदार कपड़े पहने नजर आते। माँ तक बिस्तर और किताब छोड़, गर्मी के मौसम में कसीदा की हुई टाइगर वॉयल की सूफ़ियानी साड़ी पहन, पारबती की मदद से, आटे की छोटी–नरम–पतली मठरियाँ बनाती नजर आतीं।...याद करूँ तो अपनी माँ के हाथ का बना, मैंने कुछ खाया तो वही मठरियाँ। सिर्फ मैंने नहीं, घर पर किसी ने भी। क्या कमाल स्वाद होता था। ऊपर से कुरकुरी, अंदर से पोली नरम। एक मठरी, एक गस्से के बराबर।''[133]

'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार के मन में अपनी ममत्वहीन व प्यारविहीन जिंदगी के प्रति दुःख व आक्रोश का भाव व्याप्त है, जिससे व्यथित वह अपनी बीती जिंदगी का वर्णन अतीत में जाकर करता है – ''मैं सबसे कहता फिरता हूं, मेरी माँ बहुत बदसूरत थी। काले आबनूसी चेहरे पर गुदे चेचक से गहरे दाग। इसी से मैं उसे प्यार नहीं कर सका। सच यह है कि प्यार उसने कभी मुझसे नहीं किया। तेरह साल का था तभी दगा दे गई वरना...पर तेरह साल काफी हैं, उस ममत्वहीन माँ की कर्तव्य–परायणता की चोट याद रखने के लिए। काश, मेरे पैदा होते ही वह मर गई होती!

जिसे मां ने प्यार नहीं दिया, उसे और साली कोई औरत क्या देती! वह बदकिस्मत सलमा...खूब काँइयाँ निकली। ...कुछ दिन बाद वह उससे मिला था। सोचा था, जान बचाने की खातिर वह उसकी इस कदर एहसानमन्द होगी कि ...पर वाकई वह बहुत काँइयाँ निकली।''[134] इस तरह से अपनी माँ के प्रेमहीन व्यवहार व 1947 के दंगों का दृश्य कौशल कुमार की आँखों के समक्ष साकार हो उठता है और सलमा द्वारा उसके प्यार को ठुकराया जाना भी उसे याद आता है। मृदुला गर्ग के सभी उपन्यासों में प्रायः पूर्वदीप्ति शैली प्रयुक्त हुई है। इनके पात्र अपने अतीत की घटनाओं को स्मरण करते हुए दिखाई देते हैं।

5. वार्तालाप एवं संवादात्मक शैली :

वार्तालाप या संवाद कथासूत्रों को गति प्रदान करते हैं तथा प्राणवान बनाते हैं। पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप से कथा में प्रवाह बना रहता है तथा पात्रों के विचारों भावनाओं व चरित्र से पाठक परिचित होता है। इसे नाटकीय शैली भी कहते हैं। उपन्यासकार चमत्कार एवं कलात्मकता लाने के लिए इसका प्रयोग करता है। इसके द्वारा लेखक पात्रों के चरित्रों को पाठकों के सम्मुख सहजता से विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत करता है। परस्पर वार्तालाप से उपन्यास की कथा मुखर हो उठती है। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यासों में प्रसंगानुकूल वार्तालाप का इस्तेमाल किया है। 'कठगुलाब' उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''सुबह कित्ते बजे आती है?

''दस बजे'', कोई बोला।

''मैं क्यों सुनूँ उसकी बात।

''सूरज निकलने पे,'' मैंने कहा।

''वापस कब जाती है?''

''जीजा लेने आवे है, दफ्तर से लौटने पे।''

..........''सूरज छुप जाता है तब तक?''

''और क्या।'' [135]

उपन्यास के ये संवाद बाल मजदूरी का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। इसी उपन्यास में स्मिता शुगर मेपल के पेड़ से वार्तालाप करती है –

''क्या बतलाऊँ, शुगर, कितना हँसे थे सब लोग। बहुत समझ, चिड़िया अंडे नहीं दे गई, तेरे इस घोंसलें में,'' नमिता ने कहा था। ''कौन नमिता? कोई नहीं। यूँ ही नाम फिसल गया जुबान से।

''बहस मत करो, शुगर। मैंने स्मिता कहा होगा, तुमने गलत सुन लिया। यहाँ सब मुझे समिता कहते हैं न, स्मिता कहा नहीं जाता। तुम कहकर देखो।

''नहीं कहा गया न? अरे, इतना सिर मत हिलाओ और पत्ते झड़वाओगी? ''हाँ शुगर, तुम्हारी समिता के बाल कभी खूब घुँघराले थे। अब तो बिल्कुल सीधे हैं। बतलाया तो था, कैसे हुए सीधे।''[136]

'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल के फरेब का भेद खोलने वाला बहुत ही रोमांचक संवाद इस प्रकार है –

''मणि कौल से मिलकर आ रहा हूँ। वह शाम को पाँच बजे आपके घर ...'' चपल फुदकी की तरह कौशल का स्वर कूज रहा था कि माधवी ने बात काट दी।

''मेरी बात हो गई उनसे,'' उसने कहा।

''क्या?'' काले गिरगिटमार ने फुदकी झपट ली। आसमान छूती चिल्लाहट मची और मौत का सन्नाटा छा गया।''[137]

'मिलजुल मन' उपन्यास में भी मृदुला जी ने संवादात्मक शैली का कहीं–कहीं प्रयोग किया है। प्रसंगानुकूल संवादात्मक अर्थात वार्तालाप शैली को अपनाया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

'' 'मेरे साथ काम करना चाहेंगे? मैं रिहांड बांध पर प्रोजेक्ट तैयार करवा रहा हूं।'

'आपकी कंपनी...'

'अमेरिकन है। मुझे लिएज़ां के लिए रखा है।'

'ज़ाहिर है।'

'किस तरह?'

'एक, मैं पहले से जानता था, यह बांध अमेरिका के हिस्से आएगा। दूसरे, हिंदुस्तान में लिएज़ां, कहना, सॉरी, करना, अमेरिकनों के बस का नहीं है। तीसरे, आपकी ज़ुबान से लगता है, आप हिंदुस्तान की रग–रग से वाकिफ़ है।''[138] आर्मस्ट्रांग व बैजनाथ के संवाद से हिन्दुस्तान व अमेरिकी कंपनियों के कहीं–न–कहीं संबंधों में आए स्वार्थ व बैजनाथ की कूटनीतिज्ञता का

पता चलता है। इस प्रकार से मृदुला जी के कथानक के संवाद कथ्य को आकर्षक, गतिशील व मर्मस्पर्शी बना देते हैं।

6. परस्मैपदीय या तृतीय पुरुष शैली :

तृतीय पुरुष शैली को 'अन्य पुरुष शैली' भी कहा जाता है, जिसमें रचनाकार तटस्थ रहकर समस्त कथा की संवेदना को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में प्रथम पुरुष शैली व अन्य पुरुष शैली दोनों का ही प्रयोग किया है। अन्य पुरुष में वह प्रायः सर्वत्र और सर्वदर्शी रहती हैं, जिससे स्थान–काल की सीमा के परे घटनाओं और पात्रों के अन्तर्जगत में प्रविष्ट होकर कथानक को गति प्रदान करती हैं। एक तटस्थ द्रष्टा के रूप में उपस्थित रहकर पात्रों की संवेदना हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। मृदुला जी के उपन्यास 'मैं और मैं', 'वंशज', 'अनित्य', 'कठगुलाब', 'उसके हिस्से की धूप', 'मिलजुल मन' आदि सभी में तृतीय पुरुष शैली का प्रयोग हुआ है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की कहानी पात्र स्वयं नहीं कहता है, अपितु तृतीय पुरुष शैली में मनीषा कथा–को प्रस्तुत कर रही है। उपन्यास के तीनों खंडों – जितेन, मुधकर व मनीषा की कथा को मनीषा ही कहती है। अपना स्वयं का, जितेन व मधुकर का संपूर्ण वर्णन स्वयं मनीषा ही करती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''फैक्टरी में नुकसान की संभावना का समाचार पाकर वह और कोई निर्णय ले ही नहीं सकता था। यही नहीं, बाद में ठण्डे दिल से सोचने पर भी अन्य कोई निर्णय उसे उतना ही असंभव लगेगा जितना आशंका के उन क्षणों मे। एक दिन जितेन ने कहा था – प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। जितेन के लिए यह सत्य है, मनीषा पहले से जानती थी, आज उसने समझा कि यह केवल जितेन के लिए ही नहीं, सभी के लिए सत्य है।''[139] 'मैं और मैं' उपन्यास में भी तृतीय पुरुष शैली का प्रयोग हुआ है। उपन्यास की नायिका माधवी कौशल कुमार की बदसूरती का वर्णन कुछ इस प्रकार करती है – ''यह आदमी किस कदर बदशक्ल है। कुदरत की बख्शी बदसूरती से इत्मीनान नहीं हुआ, अपनी तरफ से काफी मदद की है। पान इतना खाता है कि जबान और दाँतों का रंग कीचड़ जैसा हो गया है। ''[140]'अनित्य' उपन्यास में अविजित के संबंध में लेखिका कहती है – ''अविजित ने बरामदे की दीवार से लगी अपनी निजी अलमारी खोली। अलमारी क्या है, भानुमती का पिटारा। सूई–धागे–कैंची से लेकर प्याला–प्लेट–गिलास, सब इसमें मिल सकते हैं। करीने से लगे। कवायद करते कैदियों की तरह।''[141]

'कठगुलाब' उपन्यास में लेखिका ने मारियान द्वारा सृजित औरतों का वर्णन अन्य पुरुष शैली में किया है – ''समाजशास्त्री मारियान जानती थी कि हर औरत एक पूरे समय और समाज का प्रतिनिधित्व करती है। पर हाड़–माँस के शरीरवाली मारियान नाम की औरत यह भी जानती थी कि उसकी तरह हर औरत, औरों से कुछ अलग, एक विशिष्ट प्राणी है, चाहे वह कितनी अपूर्ण और मामूली क्यों न हो। अपूर्ण है तभी तो इनसान है, अलग है, विशिष्ट है। उन औरतों की जिन्दगी का जायजा लेते हुए, मारियान को अनायास तर्कों, तथ्यों और तारीखों में छुपे जीवन के वे संगत–असंगत तत्त्व मिलने लगे, जो कभी व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़कर और कभी तोड़कर, एक सतत गतिशील समाज को जन्म देते हैं।''[142] 'मिलजुल मन' उपन्यास में भी तृतीय पुरुष शैली का प्रयोग करते हुए कथा की संवेदना को प्रस्तुत किया गया है– ''पीटरसन एंड पीटरसन के साथ मसूरी के सफ़र के बाद से, बैजनाथ हर दूसरी–तीसरी शाम, सज–संवर कर, मजलिस–महफ़िलों में जाने लगे थे। उनके लिए वह तफ़रीह कम, पेशेवरी ज्यादा थी। दरअसल बाहर के मुल्कों से आए दिन आने वाले उद्योगपतियों ने, बैजनाथ को अपना गाइड ही नहीं, गुरु तजवीज कर लिया था। दिल्ली शहर में किसको कहाँ, क्या देखना चाहिए, उनसे राय लिए बग़ैर तय नहीं होता था।''[143]

'वंशज' उपन्यास में शुक्ला साहब द्वारा दिये गए दंड को लेखिका कुछ इस प्रकार चित्रित करती है – ''जब सुधीर को दण्डित करते हैं तो उनके हृदय में पिता की जगह, जज का रूप आ जाता है और विचलित हुए बगैर उसे पाँच बेंत मारते हैं। काष्ठ समान तना चेहरा,

यांत्रिक अनुशासन से दबंग आवाज और प्रहार करते उदासीन हाथ, इन्हें वह क्रूर सियासत की निशानी मान, बरसों माफ नहीं कर सका।''[144] इस प्रकार मृदुला जी ने अपने सभी उपन्यासों में प्रायः तटस्थ रहकर संपूर्ण कथा का सार हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यासों में तृतीय पुरुष शैली का प्रयोग करते हुए तटस्थ द्रष्टा बनकर कथा की संवेदना को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

7. व्यंग्यात्मक शैली :

व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग धार्मिक रूढ़िवादिता, समाज की भेड़चाल, राजनीति की भ्रष्टता व दावपेंच को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाता है। जहाँ व्यंग्य हो वहाँ विसंगति होती है। रचनाकार के शब्द इस तरह प्रहार करते हैं कि पाठक तिलमिला जाता है। व्यंग्य के प्रयोग से सामाजिक और राजनीतिक समस्या को प्रकट करने में मृदुला गर्ग सफल रही हैं। मृदुला जी द्वारा रचित उपन्यास 'कठगुलाब' में व्यंग्यात्मक शैली इस प्रकार व्यक्त हुई है – ''औरत होना एक विडंबना है। नहीं औरत खुद एक विडंबना है। जहाँ औरत होगी, विडंबना जन्म लेगी। औरत तेरा नाम विडंबना है।''[145] उच्चवर्गीय धनिकों पर व्यंग्य करते हुए नर्मदा कहती है – ''अजीब बात है कि नहीं, चौराहे पर खड़ा बालक खुद अपनी तकलीफ का रोना रोये तो कोई सुनने को तैयार ना हो। लाल बत्ती पर गाड़ी रोकनी पड़े तो शीशे ऊपर चढ़ा लें हैं। यों सामने देखे हैं जैसे अनदेखा करे से कान से सुनना भी बन्द हो जावेगा। पर वो ही सब सुन–सुना के ये दुहराएँगी तो वही अंधे–बहरे लोग, पैसा खरचा करके, दुःख खरीदेंगे। हाय–हाय करके आँसू काढ़ेंगे। उनें एक पैसा न देंगे, इनकी तरफ सौ–सौ के नोट फेंकेंगे।''[146]

'अनित्य' उपन्यास में अविजित के अहसान से पढ़ने वाली संगीता जब स्वयं डॉक्टर बन जाती है तथा उसे पैसा व सम्मान सब मिलता है, तब कहती है – ''चंदे से पढ़ी लड़कियाँ अपने प्रेमी के नाम के आगे भी 'जी' लगाती हैं।''[147] समाज में पुरुष द्वारा किए जाने वाले स्त्री–शोषण पर व्यंग्य करते हुए कहती है – ''शादीशुदा औरत और तवायफ में फर्क क्या है, दोनों जिस्म बेचती हैं, दोनों प्यार का सौदा करती हैं, बस तवायफ एकमुश्त दाम लेकर आजाद हो जाती है और बीवी पेंशन की उम्मीद में जिंदगी भर का सौदा कर लेती है।''[148] उपन्यास की पात्र काजल भी गांधी जी की समझौतावादी नीति पर व्यंग्य करते हुए कहती है – ''शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है स्वाभिमान का ह्रास और नपुंसकता का उदय।''[149] इसी क्रम में भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य करते हुए प्रभा कहती है – ''जितना पैसा हमारे नेता लोग विदेश यात्राओं और विदेशी वी.आई.पीज की चकाचौंध करने में लगाते हैं, उतने में न जाने कितने गाँवों का भला हो सकता है।''[150] वर्तमान युग में सत्ता के कमजोर पक्ष पर लेखिका ने प्रभा के माध्यम से संकेत किया है। एक तरफ गैर जिम्मेदार सत्ता शासन है तो दूसरी तरफ घिसी–पिटी परिपाटी सत्ता में पनपती भ्रष्टता, निरंकुशता का बोझ समाज को ढोना पड़ता है, जिसके कारण आम जनता की तकलीफ और बढ़ती है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में भी लेखिका ने जितेन व मधुकर के वार्तालाप व बहस के माध्यम से तीखा प्रहार किया है। विदेशी तालीम व अवसरवादी राजीनतिज्ञों के साथ–साथ बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया गया है। मधुकर क्रुध होते हुए कहता है – ''किसी मैनेजर के पास चले जाइए, वह धड़ाधड़ बोलता चला जायेगा–मैनजमैन्ट बाई आब्जैक्टिव्स, ऑपरेशन रिसर्च, टाइम एण्ड मोशन स्टडी, और न जाने क्या–क्या। सब विदेशों से चुराई लफ़्फाजी! मैनेजर बनने के लिए उन अमीरजादों ने तालीम अमेरीका में जो पायी होती है।''[151] 'मैं और मैं' उपन्यास का पात्र कौशल कुमार जो कि एक अच्छा लेखक है, लेकिन धूर्त प्रवृत्ति का है। उसके मन में समाज में व्याप्त वर्गभेद के प्रति तीव्र आक्रोश का भाव है, जिसको वह इस प्रकार से व्यक्त करता है – ''रुपया हाथ का मैल है। जी हाँ, यह मैल सिर्फ बड़े आदमियों की हथेलियों पर जमता है। हमें मिल जाए तो हम साबुन की तरह उसका इस्तेमाल करें।''[152] तथा पूँजीपति व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए कहता है – ''पूँजीपति व्यवस्था में रहती हैं

और इतना नहीं जानतीं कि यहाँ बिना बिचौलियों के कोई काम सिद्ध नहीं होता। मैंने कह दिया और आपने मान लिया! ......ऊँची मंजिल के छज्जे पर खड़े होकर बाल सुखा लेने से ही आप सड़क के आदमी की हमसफर नहीं बन जातीं। ''[153]

'मिलजुल मन' उपन्यास में भी मृदुला जी ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग बखूबी किया है। लेखिका ने पूँजीवाद व साम्यवाद के उसूलों व सोवियत संघ और नाटो मुल्कों से दोस्ती व गुटनिरपेक्ष और मिली–जुली अर्थव्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है। सरकार की माली हालत पर व अमेरिका से मदद पर व्यंग्य करते हुए लेखिका कहती हैं, कि – ''हमारा वज़ीरे मालियात कटोरा लिए, इस मुल्क से उस मुल्क घूमता है कि दो, मदद के नाम पर कर्ज़ दो। इंगलिस्तान ठहरा कर्जदार, सो स्टरलिंग खाते के एवज में, जरूरी माल मुहैया करवा रहा है। जहाँ तक अमेरिका का सवाल है, उसे अपना दौयम दर्जे का फ़ालतू गेहूं ठिकाने लगाना है, सो पी.एल. 480 के नाम पर, हमें बरामद करवा रहा है। मुफ़्त तो अमेरिका किसी को जहर भी नहीं देता सो बदले में, हम बेचारे जो दे सकते हैं, दे रहे हैं। एक ही चीज बहुतायत में थी हमारे पास, पुरानी तहजीब।''[154] देश की माली विडंबनाओ पर बैजनाथ के कटाक्ष द्वारा सरकारी कारोबार में विदेशी मुल्कों की कंपनियों की हिस्सेदारी की ओर संकेत किया गया है।

8. मनोविश्लेषणात्मक शैली :

मनोविश्लेषणात्मक शैली में रचनाकार पात्रों की सूक्ष्म भावनाओं का उद्घाटन करते हुए कथा का विकास करता है। इस शैली में कथानक का सूत्र पात्रों की विविध मनःस्थितियों पर आधारित होता है। पात्रों के अतंर्द्वन्द्व व मानसिक दशा अर्थात मन की भाव–तरंगों, ऊहापोहों आदि का चित्रण करके मन की परतों को उभारा जाता है। इसके माध्यम से, पात्रों के मन में परिस्थितिवश कौन–कौनसी भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, उनका स्वाभाविक चित्रण लेखक करता है। मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में भी मनोविश्लेषणात्मक शैली का निर्वाह हुआ हैं। 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'कठगुलाब', 'मैं और मैं', 'वंशज', 'उसके हिस्से कि धूप' व 'मिलजुल मन' आदि सभी उपन्यासों में यथास्थान आवश्यकतानुसार मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास की मनु अपने मन की आवाज सुनकर कहती है – ''वह जिन्दा है और उसके आने तक हर पल जिन्दा रहेगी। नहीं...झूठ बोल रही है वह। कुछ दिन जीकर वह फिर मरने लगेगी तब, जब बार–बार पढ़ चुकने पर वह पतला करारा नीला कागज चिरकर चार टुकडों में बंट जाएगा। सँभाल–सँभालकर रखने पर भी चारों टुकड़े सिरों से कटने लगेंगे। फिर इंतजार दुबारा उसके खत आने का। फिर वही टुकड़ा–टुकड़ा मौत और वही जिन्दा रहने की मजबूरी।''[155] 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा की मनःस्थिति को भी लेखिका ने विश्लेषित किया है। मधुकर के साथ गुजारे हुए आरंभिक क्षणों को याद करके मनीषा सोचती है कि मधुकर के साथ जीवन आरंभ करके उसने अपने जीवन में एक नया अध्याय भर खोला था। वह सोचती है – ''ऐसा क्यों हुआ? क्या जो जितेन ने चार वर्ष पहले कहा था, वही सच था? प्रेम चुक जाता है, यही उसकी त्रासदी है, यही उसकी नियति । क्या मधुकर के लिए उसका प्रेम चुक गया है? या चुका नहीं, सिर्फ रोजमर्रा की वस्तु बन गया है। क्या अपने खाली दिनों को ऊब से बचाने के लिए ही वह दुबारा जितेन के पीछे नहीं दौड़ गयी थी?''[156] मनीषा अपनी आत्मछलना के बारे में विचार करते हुए स्वयं अपनी मनःस्थिति का विश्लेषण करती है।

'कठगुलाब' उपन्यास में भी मृदुला जी ने मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। अपने जीजा की अमानुषिक हवस का शिकार हुई स्मिता के मन मे तेज रोशनी व आईनों से एक खोफ बैठ गया था। अमेरिका में न्यूयार्क हवाई अड्डे पर हुई अपनी मनःस्थिति को इस प्रकार से विश्लेषित करती है – ''चारों ओर आदमकद आईने जो लगे थे। मेरी चीख भी रोशनी की बाढ़ ने मेरे गले में घोंट दी। .....तों बंद आँखों, घुटी साँसों और धकियाते बदन के साथ में जे.एफ.के. से लोगन हवाई अड्डे पहुँची थी और उसी तरह लौट न सकने की मजबूरी में, यूनिवर्सिटी पहुँचकर अपने कमरे में ढह गयी थी।''[157] नर्मदा के कष्टदायक व ममत्वहीन बचपन

की दुःख–तकलीफ आज भी जब उसे याद आती हैं तो उसके मन को कचोटती हैं – ''हाँ, दरद से तड़पा करूँ थी मैं, बिलखा करूँ थी, बिलबिलाया करूँ थी। चाय की बची पड़ी गीली पत्ती लगा के छोड़ दें थे फफोले। लगा देवें थे फिर काम पर । सिर धुन के कलपा करूँ थी मैं। हाँ , रोऊँ थी, सिसकूँ थी, तुमसे मतलब। क्यों याद दिलाओ हो वो दिन? मैं याद ना करना चाहती।''[158] उपन्यास के सभी पात्रों में मातृत्व की बलवती इच्छा को भी लेखिका ने विश्लेषित किया है। सभी पात्र माँ न बन पाने की पीड़ा से ग्रस्त हैं। मारियान की माँ न बन पाने की पीड़ा को लेखिका ने इस प्रकार से विश्लेषित किया है – ''हाँ, मैं एकदम पारम्परिक, जाहिल, गँवार, प्राकृत औरत हूँ। औरत हूँ मैं। औरत हूँ तो? क्यों न हूँ औरत? मैं चिल्ला–चिल्लाकर कहती हूँ, मैं एक बच्चा पालना चाहती हूँ।..........मैं सर्जक होना चाहती हूँ।............बस एक बच्चा मिल जाए तो मैं सब कुछ माफ कर दूँ?''[159] इसी प्रकार माँ न बन पाने की पीड़ा असीमा में दिखाई देती है – ''माँ की ढेरों स्मृतियाँ हैं मेरे पास। ढेरों काम। फिर भी, बार–बार, मन में एक खयाल आता है, कितना अच्छा होता अगर हर माँ अपनी बेटी की बेटी बनकर पुनर्जन्म ले पाती। तब बुद्धि से ही नहीं, मन से भी मुझे अहसास हो सकता कि हाँ, आत्मा नित्य होती है। पर कैसे? मेरे तो बच्चा हो नहीं सकता। समय निकल चुका।''[160] असीमा में मातृत्व की बलवती इच्छा है, परंतु पचास की उम्र होने पर और डॉक्टरी निरीक्षण पर वह असफल सिद्ध होती है। अपनी इसी कुंठा का शिकार होकर ही वह अपने मन की पीड़ा अभिव्यक्त करती है। 'कठगुलाब' उपन्यास का पुरुष पात्र विपिन भी अपनी माँ की पीड़ादायक जिंदगी को बहुत निकट से देखता है । नारी की यातनाओं और व्यथाओं में जूझती अपनी माँ को जब विपिन देखता है तो चालीस वर्ष की उम्र तक अविवाहित रहता है। इसलिए जीवन संगिनी के रूप में दुख, भावुकता और कातरता की दूसरी मूर्ति स्थापित करने की सोच भी नहीं सकता। वह प्रेम की महत्ता को जानता है। वह बच्चा पैदा न कर पाने को लेकर भी मन में दुखी है। वह अपनी इसी मानसिक पीड़ा को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है – ''नहीं, असीमा, ऐसा नहीं है। मैं कब से महसूस कर रहा हूँ कि ऐसे जीवन का कोई मूल्य नहीं है, जिसमें निःस्वार्थ, निष्कलुष प्रेम का एक क्षण भी न रहा हो। और ऐसा महत् प्रेम केवल शिशु से ही किया जा सकता है।.........पर मैं कर क्या सकता था? मैं तो परवश था। किसी स्त्री का सहारा पाकर ही पिता बन सकता था।''[161]

'अनित्य' उपन्यास के पात्र अविजित के मानसिक द्वंद्व का विश्लेषण मृदुला जी ने बखूबी किया है। अविजित न तो उस संस्कृति को पूरी तरह समर्पित है और न उससे पूरी तरह भ्रांतिमुक्त। वह उपयोगिता के आधार पर संबंध बनाता है पर संबंधहीनता को स्वीकार नहीं कर पाता है। वह उससे उद्वेलित–व्यथित है और हर समय एक अपराधबोध से ग्रस्त रहता है। वह अपने अतीत को लेकर मानसिक रूप से विचलित रहता है। वह सोचता है – ''क्यों नहीं समझ पाया वह कि कोई औरत ऐसी भी हो सकती है जिसके मन में खूबसूरत न होने पर कोई हीनभावना न हो, जो सच का सामना करने में कतराती न हो, जिसे करूणा की जरूरत न हो।. ..उम्र भर उसका कसैलापन साँस के साथ फेफड़ों में घुलता रहता है। ...अगर तभी मैं काजल से शादी कर लेता...कितने अभिशापों से बचा रहता...श्यामा...अकर्मण्यता...संगीता....यह अपराध–भावना...बचा रहता? वाकई? मेरे शरीर का अदम्य उत्ताप मुझे इस तपते मरुस्थल पर न ला पटकता?''[162]

'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार के मन में अपने व्यतीत को लेकर अपराध बोध है। वह आज भी अपने अतीत में घटी घटनाओं से विचलित हो उठता है – ''हाथ उसका उठा हो या हरभजन का, गुप्ती के वार से वह खूबसूरत मुसलमान लड़का सड़क पर औंधा गिरकर ढेर हो गया था। खून से लथपथ शरीर सिर्फ एक बार छटपटाया था, पर वह छटपटाहट हमेशा के लिए कौशल की साथिन बन गई थी। मैं अपराधी हूँ, कौशल ने हजारवीं, बार खुद से कहा। हाथ भले ही हरभजन का उठा हो, इच्छा–शक्ति मेरी थी, अपराध मेरा था, अपराध–बोध भी मेरा है।''[163]

मृदुला गर्ग के सभी उपन्यासों में पात्रों के चरित्र की मनःस्थितियों व कुछ विशेष परिस्थितियों, कुंठाओं और वैचारिक मतभेद के कारण मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग दिखाई देता है। पात्रों के मनोजगत का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उनके मन की भावतरंगों, ऊहापोहों आदि का चित्रण करके मन की परतों को उभारा है।

9. संकेतात्मक शैली :

इस शैली के अन्तर्गत कथा या घटना का पूरा ब्यौरा न देकर ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जाता है, जो सांकेतिक है तथा पाठकों की कल्पनाशक्ति पर उसे छोड़ देना ही इस शैली के अंग हैं। कुछ संबंध ऐसे होते हैं, जिन्हें मुख से बयान करना उचित नहीं लगता है, इसलिए मौन से ही एक–दूसरे की घनिष्ठता प्राप्त की जाती है। स्त्री–पुरुष के मिलन में जितनी सांकेतिक भाषा का प्रयोग होगा उतना ही उनके लिए फायदेमंद होगा, समाज की नजरों से वे आसानी से बच सकते हैं। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यासों में सांकेतिक भाषा–शैली का प्रयोग करते हुए स्त्री–पुरुष संबंधों, बाजारीकरण, औद्योगीकरण व भूमंडलीकरण के खतरों की ओर संकेत किया है। 'वंशज' उपन्यास में सुधीर व उसकी पत्नी सविता में विचार वैमनस्य होते हुए भी दोनो अपनी जैविक आवश्यकताएँ पूरी करते हैं, जिसका संकेत मृदुला जी ने इस प्रकार किया है – ''सुधीर और सविता शयनकक्ष में एकान्त में मिलते रहे, पति–पत्नी का व्यापार निभाते रहे। आश्चर्य, केवल कर्तव्य समझकर नहीं, प्रकृति के नियमों से अभिभूत होकर भी। शरीर की आपनी माँगें होती हैं और अपने ही नियम।...दिन में अपने–अपने क्षेत्र में एक–दूसरे से जूझते और सूरज छिपने पर हथियार डालकर रातभर के लिए संधि कर लेते।''[164]

'कठगुलाब' उपन्यास में भी जिम जारविस के मन की अदम्य भावनाओं व कामनाओं की ओर संकेत करते हुए लेखिका कहती है – ''उससे वह सब कहलवा लेगा, उन सब अवगुंठनों को खुलवा लेगा जो उसे 'मैं' बनाते थे। उसकी देह ही नहीं, उसका मन, स्मृति, चेतना, अर्द्धचेतना सब निर्वसन पड़े होंगे उसके सामने, और वह उन्हें रेशा–रेशा भोगेगा। वह उससे एक अनूठा, अद्‌भुत 'आरगैस्म' चाहता था।''[165] तथा स्मिता का यह कथन भी जिम की काम पिपासा की ओर संकेत करता है – ''उसने अपने व्यवहार के लिए खेद जतलाया और बेतरह मुझे चूमने लगा...फिर तो तेज बारिश की पर्दे के पीछे, उसने मुझे भोगकर ही दम लिया।''[166] असीमा का यह कथन समाज में लड़की–लड़के के बीच किये जाने वाले भेद की ओर संकेत करता है – ''और ये साले मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री कहते फिरते है कि स्त्रियों को गणित में दिलचस्पी नहीं होती। अवसर मिले, तब न दिलचस्पी सकारात्मक हो पाये।''[167] यहाँ असीमा का संकेत है कि समाज में किया जानेवाला भेदभाव ही है, जिसके कारण लड़कियाँ पिछड़ जाती हैं। इस कथन से लेखिका अवसर की समानता की ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए दृष्टिगोचर होती है।

'मैं और मैं' उपन्यास में कौशल कुमार के ये कथन वर्ग भेद की गहरी खाई व आर्थिक विषमता के साथ–साथ गरीब व्यक्ति की दयनीय स्थिति की ओर संकेत करते है – ''जानता हूँ। जितने पैसों में मेरा पूरा परिवार महीने–भर की रोटी खाएगा, उतने का तो आपकी गाड़ी में पेट्रोल डलेगा। ....हजारों जानवर रोज मरते हैं। इस देश में इनसान की कीमत क्या है।''[168] इसी प्रकार श्रमिकों के शोषण की ओर संकेत करते हुए कौशल कहता है –''जब श्रमिक के हाथ इनसानी बदन के हिस्से नहीं कल–पुर्जे बना जाते हैं, तभी तो उद्‌योगपति सफलता की सीढ़ी पर पैर रखता है। ......जितने ज्यादा हाथ, उतने कम दाम। ......दाम और गिरेंगे। पहले से कम दाम पर हाथ चुन सकोगे। ''[169] पूँजीपति वर्ग द्‌वारा किए जाने वाले श्रमिक वर्ग के शोषण की ओर संकेत किया गया है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास में भी मृदुला जी ने संकेतात्मक शैली का प्रयोग करते हुए मनु व महेश के शारीरिक संबंधों का चित्रण किया है। मनु का यह कथन उनके शारीरिक मिलन की स्थिति की ओर इंगित करता है – ''पर मेरा शरीर उस खेल के एक–एक दाँव–पेच से वाकिफ है, जो उस पर खेला जा रहा है।''[170] 'उसके हिस्से की धूप' में भी सांकेतिकता का प्रयोग किया

गया है। जितेन व मनीषा के शारीरिक मिलन का भी लेखिका ने सांकेतिक चित्रण किया है – ''बस, कभी–कभी ऐसे क्षण आते हैं, जब वह अलसाया शरीर, सहसा, बिजली के तार के समान खिंचकर तन जाता है, भीतर कहीं खदबदाता लावा खौलकर फूट पड़ता है और लगता है, विध्वंस के बाद सृष्टि का यही रूप रहा होगा। ऐसा एक क्षण अभी गुजर कर चुका है।''[171]

'अनित्य' उपन्यास में भी अविजित व संगीता के मिलन का सांकेतिक वर्णन लेखिका ने किया है, जिससे अविजित का अपनी पत्नी श्यामा के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ शारीरिक संबंध का पता चलता है। उसकी कामुकवृत्ति की ओर एक संकेत इस प्रकार किया गया है – ''अविजित का सर्वांग काँप उठा था; देह का जानवर भूख से बिलबिला गया था। मन हुआ था, वहीं हॉस्टल के कॉमन–रूम में, बांहों में दबोचकर उसका अस्तित्व मिटा डाले।''[172] पाश्चात्य की बिना सोचे–समझे की गई नकल, देश की आर्थिक अव्यवस्था व असफल शासन–व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए प्रभा कहती है – ''उनकी नकल करके ही तो हमने अपनी शासन–व्यवस्था बनाई है। आजादी मिल गई पर वही पुलिस रही, वही सेना, वही नौकरशाही, वही शिक्षा–प्रणाली जो पहले थी।''[173] अविजित का यह कथन – ''बिल्ली चूहे को खाये तो स्वधर्म और कहीं चूहा घात लगाकर बिल्ली को खत्म कर दे तो अपराध है। आखिर न्याय धर्म के खिलाफ तो जा नहीं सकता।''[174] यहाँ पर शक्तिशाली पूँजीपति वर्ग द्वारा किए जाने वाले शोषण व कमजोर–शोषित निम्न वर्ग के शोषण व विद्रोहात्मक स्वर की ओर संकेत किया गया है। न्याय हमेशा शक्तिशाली के पक्ष में होता है कमजोर के पक्ष में नहीं।

'मिलजुल मन' उपन्यास में भी मृदुला जी ने तात्कालिक सामाजिक स्थितियों व नारी की स्थिति को संकेतात्मक शैली में चित्रित किया है। देश की कमजोर आर्थिक स्थिति व शासकों की गलत व गैर–दूरंदेशी नजर की ओर संकेत करते हुए लेखिका कहती हैं – ''अब वैश्वीकरण के लाजिमी दौर में, बाजार बन रह जाने पर, रोने–कलपने का क्या फायदा?''[175] मोगरा का यह कथन – ''बेचारी कुदरत को क्या पता था, एक दिन उस अंचल का ऐसा अटपटा औद्योगीकरण होगा कि प्रदूषण फैलाने वाले दुनिया जहान के कारखाने लगाए जाएँगे। सफाई, सेहत और खूबसूरती से परहेज कर ठठ के ठठ कुनबे, उनके इतने करीब बसाए जाएँगे कि दिन–रात फेंफडों में हर मुमकिन बू, कसैला धुआं, जहरीली गैस रिसे–बसे। ....देश तरक्की करेगा तो कीमत चुकानी होगी न। यह उम्मीद रखना कि मिल मालिक रोजगार दे और आपकों सौंदर्यबोध, तालीम और सेहत का ठेका भी ले, ज्यादती है कि नहीं?''[176] इसमें लेखिका ने पर्यावरण को केंद्र में रखकर बाजारीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण व औद्योगीकरण के बढ़ते खतरों की ओर संकेत किया है।

10. खंड–विभाजन शैली :

खंड विभाजन नामक यह नई लेखन शैली मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों मे अपनाई है। इसमें खंडों के नाम देकर विभाजित किया गया है तथा कथानक खंडों में विभाजित होने पर भी सुसंगत व एकसूत्र में बँधा हुआ रहता है। मृदुला जी के 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य' तथा 'कठगुलाब' उपन्यास में खंड–विभाजन शैली को अपनाया गया है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास तीन खंडों में विभाजित है – जितेन, मधुकर व मनीषा। इन खंडों के नाम पात्रों के नाम के आधार पर किए गए हैं। उपन्यास का कथानक सुसंगत व एकसूत्र में बंधा हुआ है, जिसकी पूरी कथा मनीषा, जितेन और मधुकर के इर्द–गिर्द घूमती है। पात्र बदल जाते हैं, जितेन की जगह मधुकर आ जाता है, परंतु मनीषा वैसी की वैसी है, जहाँ–की–तहाँ। अपने जीवन की सार्थकता को खोजती हुई, कभी जितेन में, तो कभी मधुकर में। वह अपने जीवन की सार्थकता को खोजती हुई, गेंद की तरह जितेन और मधुकर के बीच लुढ़कते हुए दिखाई देती है। अंत में वह अपने भीतर ही सुख और सार्थकता को खोज लेती है और लेखन में आत्मपरितोष का अनुभव करती है, जो उसकी अपनी वस्तु है, जिसके लिए वह किसी की मोहताज नहीं है।

'अनित्य' उपन्यास दो खंडों–दुविधा व प्रतिबोध में विभक्त किया गया है। 'दुविधा' खंड में स्वतंत्रता–आंदोलन में निभाई गई भूमिका से उत्पन्न दुविधा को तथा 'प्रतिबोध' खंड में पूर्वाग्रह से सर्वथा मुक्त, तटस्थ विश्लेषण–पश्चात् प्राप्त सत्य की प्रतीति को व्यक्त किया गया है। स्वतंत्रता–आंदोलन के स्वरूप और उसकी परिणति से उत्पन्न असंतोष के भाव को, आजादी–पश्चात् के मोहभंग को तथा पतनशील समाज की कहानी को अविजित के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

'कठगुलाब' उपन्यास को पाँच खंडों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक खंड स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा व विपिन नाम से विभाजित है। प्रत्येक खंड में अलग–अलग पात्र अपनी कथा को अपनी जुबान से बोलता है। उपन्यास के सभी पात्रों का जीवन त्रासद है तथा उनकी यही त्रासदी उन्हें एक–दूसरे से जोड़ती है। सभी पात्रों में सृजन की पीड़ा है तथा माँ बनने की व्याकुलता दिखाई देती है। उपन्यास की ये पीड़ित पात्र माँ नहीं बन पाती हैं तथा एकमात्र पीड़ित पुरुष पात्र विपिन भी इसी बंजर का अनुभव करता है। उपन्यास में चित्रित औरतों की जिंदगी भी 'कठगुलाब' की तरह ही नीरस है जिसमें रस का संचार करने के लिए स्नेह रूपी तरल बौछारों की आवश्यकता है। सभी औरतें अलग–अलग सोच–विचार और सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक स्थितियों की हैं। इन्हीं अलग–अलग औरतों की कहानी को ही एक कहानी में गूंथकर , एक माला में पिरोकर कथानक का ताना–बाना बुना व रचा गया है।मृदुला गर्ग द्वारा अलग–अलग शीर्षक द्वारा कथानक का खंडों में विभाजन करने का यह प्रयोग हिंदी उपन्यास साहित्य का परिष्कृत व विकसित प्रयोग है, जो लेखन शैली में नवीनता प्रदान करता है।

(ग) संवाद–योजना :

उपन्यास में प्रसंग, आवश्यकता व पद के अनुरूप भाषा में दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा की जानेवाली परस्पर बातचीत को संवाद कहा जाता है। उपन्यासकार अपने विचारों की प्रस्तुति के लिए पात्रों का सहारा लेते हुए संवादों के माध्यम से कथावस्तु को गति–प्रदान करता है। संवाद उपन्यास की भाषा ही होते हैं तथा भाषा से ही संवादों का अस्तित्व होता है। भाषा संवादों की मात्र वाहिका न होकर आधार वस्तु भी होती है। संवादों की रचना करते समय एक उपन्यासकार की दृष्टि सदैव पात्र, संदर्भ, परिवेश एवं परिप्रेक्ष्य सभी पर रहती है। संवाद ही विभिन्न चरित्रों की पृथक–पृथक विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं, जिससे कथावस्तु को गति मिलती है। संवाद–योजना द्वारा ही जीवन–दर्शन की अभिव्यक्ति होती है तथा देशकाल का ज्ञान प्राप्त होता है, रचना–शैली का आभास होता है। कथानक को गतिशीलता प्रदान करने, उसमें नाटकीयता का अंतर्भाव करने तथा पात्रों को जीवंत रूप में पाठक के समक्ष साकार करने का कार्य संवाद ही करते हैं। पात्रों की मानसिक स्थिति को समझने में व गुण–दोष की अभिव्यक्ति में संवाद ही सहायक होते हैं। संवादों के द्वारा ही कथा प्रसंगों को रोचक बनाया जाता है तथा वर्तमान, भूत और भविष्य की जानकारी प्राप्त होती है। संवाद ही हैं, जिनके द्वारा उपन्यासकार पाठकों को अपने पात्रों के विषय में विविध जटिल परिस्थितियों तथा अंतर्द्वंद्व संबंधी प्रत्यक्ष बोध कराता है। उपन्यास को अधिक स्वाभाविक एवं यथार्थ बनाने में संवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वह अपने उद्देश्य की परिपूर्ति के लिए पात्रों द्वारा बोले गए संवादों का सहारा लेता है। संवाद कथावस्तु के स्वाभाविक विकास तथा घटनाओं में गतिशीलता लाने के साथ–साथ पात्रों के चरित्र की अधिकांश विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं तथा भाषा–शैली में स्वाभाविकता लाते हैं। संवादों को वास्तविकता के सन्निकट लाने के लिए उपन्यासकार अपनी रचना में स्थान विशेष की बोली के शब्दों और मुहावरों–लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। कथावस्तु और चरित्र–चित्रण की तरह ही संवाद–योजना की भी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिनका उपन्यासकार को विशेष रूप से ध्यान रखना होता है। संवाद–योजना में स्वाभाविकता, मार्मिकता, अनुकूलता, जीवंतता, संक्षिप्तता, पात्रानुकूलता, संबद्धता, सरसता, प्रसंगानुकूलता व सोद्देश्यता आदि विशेषताएँ ध्यान में रखी

जाती हैं। ये विशेषताएँ परस्परावलंबित रहती हैं तथा इनके संतुलित सहभाग पर ही उपन्यास की सफलता निर्भर करती है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में पात्रों की प्रकृति के अनुरूप संवादों को अलग–अलग रूप प्रदान किया है। इनके उपन्यास साहित्य में संवाद वैविध्यपूर्ण होने के साथ–साथ विभिन्न विशेषताओं से युक्त भी हैं। वर्तालाप का संबंध वर्तमान जगत से होने के कारण पात्र काम चलाऊ वार्तालाप का प्रयोग करते हैं। पूर्व स्मृतियों, स्वप्नों में खोए पात्र पूर्व संवादों को याद करते हैं तथा वर्तमान जगत में क्षणभर के लिए चेतन होकर अधूरे वाक्य कहते हुए रुक जाते हैं। तर्क–वितर्क, सांकेतिक, व्यंग्यपरक, दूरभाषीय, लिखित, भावात्मक, एकपक्षीय, अंतर्विवाद और सामूहिक संवाद मृदुला गर्ग के उपन्यासों की विशेषता हैं। इनके औपन्यासिक संवाद नाटकीय, चुस्त, प्रसंगानुकूल, स्वाभाविक, पात्रानुकूल व जीवंत हैं। इन्होंने संवादों द्वारा चरित्र–चित्रण, परिवेश–चित्रण, हास्य–प्रस्तुति आदि बातों को स्पष्ट किया है। आवश्यकतानुरूप वर्णनात्मक एवं छोटे संवाद प्रयुक्त किए हैं। सवालों के साथ–साथ संवादों में हर बात की बारीकी तक जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। कहीं–कहीं संवाद तीखे व प्रभावशाली हैं। इनके उपन्यासों के संवाद कहीं काव्य समान सुंदर हैं तो कहीं बोझिल और कहीं द्वयर्थक। विशेष पात्रीय मानसिकता में मौन को भी संवाद का रूप दे दिया गया है।

बौद्धिक लेखन के संवाद भी लेखिका द्वारा सृजित पात्रों की पैनी बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं। संवादों द्वारा पात्रों की मानसिकता का प्रकटीकरण, घटनासूत्रों की क्रमबद्धता आदि बातों का ध्यान रखा गया है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में संवादों के द्वारा ही सभी पात्रों का चारित्रिक विकास हुआ है। सुधा व मनीषा के संवादों द्वारा मधुकर का चरित्र–चित्रण हुआ है –

''बहस करनी है तो उस अर्थशास्त्र के प्रोफेसर से कर। काफी रुचिकर मनुष्य है।''

''अर्थशास्त्र का प्रोफेसर और रुचिकर!''

''बिल्कुल!''

''हो ही नहीं सकता। बोरियत में अर्थशास्त्रीय लोग व्यावसायिक लोगों से भी दो डिग्री आगे होते हैं।''

''ये नहीं हैं। मुख से नहीं लगता?''

''मुख तो सुंदर है।''

''बस फिर। मिस्टर नागपाल!''[177]

तथा मनीषा व मधुकर के संवाद द्वारा उसकी क्रांतिकारी व विद्रोही प्रवृत्ति उजागर होती है –

''क्यों, क्या कर रहे हो आजकल? नयी दुनिया की स्थापना!''

''दुनिया की मुझे चिंता नहीं है। वह अपना खयाल बखूबी रख रही है। मैं अपने इस अभागे देश के लिए कुछ कर सकूं तो बहुत होगा।''[178]

इन संवादों से मधुकर के व्यक्तित्व के साथ–साथ उसके स्वभाव का भी चित्रण मिलता है। मनीषा और जितेन के मध्य हुई वार्ता को नाटकीय अंदाज में नपे–तुले शब्दों में प्रस्तुत किया है –

''आजकल हो कहाँ?'' उसके चुप रह जाने पर जितेन ने पूछा

''दिल्ली।''

''जाता रहता हूँ। कभी आऊँ तो मिलोगी?''

''हाँ, शायद, कोशिश करूंगी।''

''फोन है?''

''हाँ, 4587621 ''[179]

संवादों के माध्यम से पात्रों की मनःस्थिति, घटना प्रवाह आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। मनीषा व जितेन के संवाद द्वारा पता चलता है कि वह अपने पति को छोड़कर मधुकर के पास जाने का दृढ़ निश्चय कर चुकी है। वह सोचती है जिस आदमी को उससे दो बात करने तक की फुर्सत नहीं है उससे कैसा लगाव?

''जितेन,'' फोन के कटते ही उसने ऊँची आवाज में कहा।

''सॉरी, फैक्टरी से फोन था। वहाँ ....''

''जानती हूँ, तुम्हे फोरन जाना है, पर जाने से पहले मेरी बात सुन लो।''

''हूँ?'' उसका स्वर अनमना था।

''मैं तुमसे तलाक चाहती हूँ।''

''क्या,'' वह खड़े होते–होते बैठ गया, फिर हँस पड़ा।

''इतनी भी क्या नाराजगी?'' उसने कहा, ''मैं बस, गया और आया। रात तक जरूर लौट आऊँगा।''[180]

यहाँ मनीषा का अपने पति के कार्य में व्यस्त रहने के कारण, समय नहीं दे पाने के कारण मधुकर की ओर आकर्षित होना और उससे विवाह के लिए तलाक लेने की जिद तथा जितेन का उसे समझाना आदि घटनाओं की जानकारी मिलती है। संवाद कथासूत्रों को गति प्रदान करते हैं तथा पात्रों के पारस्परिक संवादों से ही पात्रों के विचारों, भावनाओं से पाठक परिचित हो जाता है। 'कठगुलाब' उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है –'' मुझे हॉस्टल भिजवा दो। बड़ौदा। एम.एस.सी. करूँगी।''

''तेरे जीजाजी नहीं मानेंगे। आगे पढ़ाई का खर्चा......................''

''सिर्फ एक बार दाखिले की फीस भर दो। फिर स्कॉलरशिप मिल जाएगी। मैं वापस कर दूँगी।'' [181]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्मिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तथा वह अपनी बहन व जीजा पर आश्रित है। इनके उपन्यासों के संवाद कहीं–कहीं अत्यधिक गतिशील हैं, जो पाठक को रचना से आद्यंत बाँधे रखते हैं, तो कहीं व्यंग्य के तीक्ष्ण बाणयुक्त हैं, जो पाठक का ध्यानाकृष्ट किए बगैर नहीं छोड़ते हैं। 'अनित्य' उपन्यास में संगीता द्वारा अविजित पर किए गए व्यंग्य को स्पष्ट देखा जा सकता है –

''मुझसे ब्याह करेंगे, अविजित जी?''

''मैं शादीशुदा हूँ।''

''पर उन्हें तो आप प्यार नहीं करते।''

''किसने कहा नहीं करता?''

''मैं कह रही हूँ। अपनी आश्रिता को ले जाकर गाना सुनवा देने से ही क्या प्यार का इजहार हो जाता है?''

''क्या मतलब? श्यामा को मैंने कभी किसी चीज की कमी नहीं होने दी।''

''उन्हें अगर मेरे बारे में पता चले?''[182]

अविजित और संगीता के संवाद से जाहिर होता है कि इनके मध्य अवैध संबंध हैं तथा अविजित संगीता से प्रेम नहीं करता है, बल्कि उसका शारीरिक शोषण करता है। उपर्युक्त संवाद से अविजित जैसे पुरुष की चरित्रहीनता उजागर होती है। इन्होंने तीखे, व्यंग्यात्मक संवादों का प्रयोग किया है। 'अनित्य' उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''एम.बी.बी.एस. की डिग्री मिल जायेगी तो सब पैसा धीरे–धीरे करके लौटा दूँगी।''

''इससे तो अच्छा रहेगा,''......................''तुम किसी और जरूरतमंद की मदद कर देना।''

''जरूरतमंद। मदद! नहीं, अविजितजी, बड़े लोगों का यह शोक मेरे बस का रोग नहीं है,'' संगीता ने तल्खी से कहा था।''[183]

इनके संवादों में पात्रानुकूलता है तथा कहीं–कहीं वाक्पटुता भी दिखाई देती है –

''आपकी शक्ल शर्मा जी से बहुत मिलती है। एक चित्र है उनका मेरे पास, देखेंगे?''

........स्नेह से कहा था उसने , ''मेरी कहाँ, तुम्हारी मिलती है।''

फौरन संगीता का व्यंग्य सान चढ़ गया था।

''लावारिसों की शक्लें किसी से नहीं मिला करतीं, अविजित जी,'' उसने कहा था।''[184]

मृदुला जी ने संवाद–रचना करते समय पात्रों की मनःस्थिति व व्यावसायिक स्तर को ध्यान में रखा है। परिस्थिति के अनुरूप छोटे, लंबे–चौड़े संवादों को आवश्यकतानुसार अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। इनके संवाद उबाऊ नहीं हैं, अपितु पाठक के मन में उत्सुकता का भाव निरंतर बनाये रखते हैं। 'मैं और मैं' उपन्यास के पात्र कौशल व माधवी के संवादों से कौशल की चालाकी व धूर्तता का पता चलता है। कौशल की धूर्तता को अभिव्यक्त करने वाला एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''अब तक आईं नहीं?'' कौशल ने साधिकार पूछा।

''नहीं,'' माधवी ने कहा।

''कब तक आयेंगी?''

''नहीं!''

''क्या? हल्लो–हल्लो–हल्लो...........।''

''नहीं आऊँगी।''

''क्यों?''

''.....................''

''रिश्तेदारों के बीच फँस गयी है क्या?''[185]

संवादों में विविधता मृदुला गर्ग के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता रही है। इनके उपन्यासों के संवाद कहीं–कहीं लंबे हैं तो कहीं अत्यंत सक्षिप्त हैं। 'वंशज' उपन्यास में रेवा और सुधीर का एक संवाद –

''तेरा ब्याह हो रहा है? किससे?''

''उस दिन वे लोग आए नहीं थे?''

''कौन लोग?''

''वही मिस्टर पांडे वगैरहा। तुम यहीं पर तो थे। मिले नहीं थे?''

''कौन पांडे? संदीप?''

''हाँ।''

''हाँ–हाँ, आए तो थे।''

''बस फिर''

''संदीप को तो मैं जानता हूँ।''

''सच? तुम्हारे दोस्त हैं ?''[186]

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मधुकर व मनीषा के संवाद भी संक्षिप्त हैं –

''बहुत देर कर दी।''

''हाँ।''

''चार बज गए।''

''हाँ।''

''कहाँ गई थी?''

''लाइब्रेरी।''

''इतनी देर तक?''

''हाँ।''[187]

'वंशज' उपन्यास में जज साहब शुक्ला जी और उनके बेटे सुधीर के बीच की मानसिक दूरी को भी लेखिका ने इन संक्षिप्त संवादों के माध्यम से स्पष्ट किया है –

''तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है?''

''ठीक है।''

''इम्तहान के कितने दिन हैं?''

''............महीने।''

''फर्स्ट क्लास आ जायेगी।''

''भगवान जाने।''[188]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु और रिचर्ड के प्रेम की भावानात्मक तरलता को इन संक्षिप्त संवादों के माध्यम से व्यक्त किया गया है –

''मनु!'' उसने कहा।

''क्या?''

''कुछ नहीं, बस मनु।''

समय ने हमारा साथ छोड़ दिया।

''मनु!'' उसने कहा।

''हाँ।''

''मनु!''[189]

इनके द्वारा प्रयुक्त छोटे–छोटे संवाद भी पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों की व्यंजना करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। ये संवाद बड़े सुगठित, प्रवाहपूर्ण और रोचक हैं। इनमें उत्सुकता व निरंतरता का भाव लगातार बना रहता है। इनके उपन्यासों के संवाद पात्रानुकूल हैं। 'अनित्य' उपन्यास का एक संवाद जिससे हमें बंगाल के वातावरण की झलक मिलती है –

''हमको बोला, बंगाली है। हम ब्याह कर लिया। गाँव पहुँचा तो देखा, शरप–शरप सब लोग उड़िया बोलता है।''

....

''हम बोला – इस उड़िया–शुड़िया के बीच हम नहीं रहेगा। हमारा संग रहना है तो चलो कलकत्ता नौकरी करो। वो बोला–हम गृहस्थ है, खेती करेगा। करो खेती। हम आ गया छोड़कर।''[190]

मृदुला जी ने अपने संवादों के माध्यम से विविध जगहों का भी चित्रण किया है। धनबाद और रानीगंज के कोयले के खदानों के भयंकार अंधकार के साथ सुधीर के मन के अंधकार को भी इन संवादों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। सुधीर अपनी पत्नी सविता को पत्र लिखकर अपनी मनःस्थिति को अभिव्यक्त करता है–''अजीब जगह है। यहाँ रात में जमीन के ऊपर अंधेरे में खोए हम और दिन में जमीन के गर्भ में अंधेरे में समाए हम। रात में अंधेरा और दिन में भी। रात से भी गहरा।.... पर रात होते ही या मैं बचा रहता हूँ या अँधकार में नाचती भयानक परछाइयाँ। लगता है, सो गया तो अँधकार में मिल जाऊँगा, खो–जाऊँगा परछाई बन भटक जाऊँगा। कितनी भी कौशिश करूँ, मैं सो नहीं पाता, सविता, चाहकर भी सो नहीं पाता। तुम फौरन लिखो, तुम विजया को लेकर कब तक पहुँच रही हो।''[191]

अतः स्पष्ट है कि मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में प्रयुक्त संवाद वैविध्यपूर्ण होने के कारण विविध विशेषताओं से युक्त है। इनके संवादों द्वारा पात्रों का चरित्र–चित्रण, परिवेश का चित्रण व पात्रों की मनःस्थिति आदि को स्पष्ट किया गया है। इनके द्वारा प्रयुक्त छोटे–छोटे संवाद भी पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों की व्यंजना करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। ये संवाद बड़े सुगठित, प्रवाहपूर्ण और रोचक हैं। इनमें उत्सुकता व निरंतरता का भाव लगातार बना रहता है।

(घ) प्रतीकात्मकता एवं संप्रेषणीयता :

साहित्य में भाषा–संरचना व भाव–संप्रेषण में प्रतीक विधान का महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है। भाषा में एक नई अर्थवत्ता व नवीन शक्ति लाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, जो सही अर्थ की प्रतीति कराने में सक्षम होते हैं। प्रस्तुत का प्रतिनिधित्व करने वाले अप्रस्तुत का नाम ही प्रतीक है, जो सहृदय के मन में किसी भावना को जाग्रत करने में सक्षम होता है। विषय की जटीलता तथा कथ्य को और अधिक प्रभावी व संप्रेषणीय बनाने के लिए ही एक रचनाकार प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीक एक ओर भावों को संप्रेषणीय बनाते हैं, तो दूसरी ओर भाषा में काव्यात्मकता लाने का कार्य करते हैं। प्रतीक भाषा की शक्ति के रूप में कार्य करते हैं तथा भाषा में सघनता, संश्लिष्टता व अर्थवत्ता लाने के साथ–साथ रचनाकार की अनुभूति व भावों को संप्रेषणीय बनाते हैं। अभिधात्मक शैली में कही गई बात की अपेक्षा लक्षणा व व्यंजना का प्रयोग करने पर भाषा प्रतीकों का बल पाकर काव्यात्मक सौंदर्य में अभिवृद्धि करती है। काव्यात्मक अनुभव व चिंतन का अंग, काव्यगत अर्थ तथा रूप का समुच्चय होने के नाते वह पाठक अर्थात सहृदय की संवेदना और बोधवृत्ति दोनों को प्रभावित करता है। प्रतीकात्मक भाषा एक ओर भाव–संप्रेषण करती है, तो दूसरी ओर संवेदना के धरातल पर गहन अर्थ सम्पृत्ति के द्वारा प्रस्तुत और अप्रस्तुत को एक रूप कर देती है। प्रतीक का प्रयोग रचनाकार किसी सूक्ष्म भाव, विचार या अगोचर तत्त्व को साकार करने के लिए करता है। प्रतीक–योजना द्वारा रचनाकार की कोरी अनुभूति सालंकृत होकर अमूर्त से मूर्त हो जाती है तथा वर्णन स्फीति से बचते हुए अपने अभिप्रेत को व्यंजित करने में सफलता प्राप्त करता है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी अनुभूति व भाव होते हैं। अनुभूति की भाषा सदैव व्यक्तिगत भाषा होती है। वह अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए व्यक्तिगत भाषा का निर्माण करता है, जिसके कारण व्यक्ति–व्यक्ति के लिए प्रतीक का महत्त्व भिन्न–भिन्न होता है। प्रतीक प्रायः प्रत्येक रचनाकार की रचना में व्यक्तित्व की भाँति स्वतंत्र महत्त्व रखते हैं, क्योंकि रचनाकार की अनुभूति ही प्रतीकों का भावन और सृजन करती है। रचनाकार के लिए प्रतीक एक कलात्मक उपकरण है, जिसके द्वारा वह अपनी शब्द–परंपरा, वस्तुगत परिप्रेक्ष्य में अपनी विशिष्टता, समता, संदर्भ आदि को संप्रेषित करने की क्षमता रखता है। रचनाकार के लिए प्रतीक वह है, जो अपने संबंध–सामंजस्य, रूढ़ि अथवा संयोग से किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करता है परंतु उसका उद्देश्य समानता या साम्यता करना नहीं होता, वरन् मुख्यतः अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत होता है।

साहित्य की रचना में दो प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया जाता रहा है – परंपरागत प्रतीक व व्यक्तिगत प्रतीक। परंपरागत प्रतीकों की रचनाकार स्वयं रचना नहीं करता है बल्कि वह उनका अर्जन और पुनर्विधान करता है। इन प्रतीकों का वर्णन समाज, धर्म, पौराणिक मान्यताओं और रीति–रिवाज की उन अन्य परंपराओं से होता है, जिन्हें जन–समुदाय शताब्दियों से उत्तराधिकार में प्राप्त करता रहा है। इन प्रतीकों की अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया सरल होती है। वैयक्तिक प्रतीकों का संबंध रचनाकार के अंतर्जगत से होता है। जब रचना के केंद्र में कवि की अंतरंग अनुभूति का संसार होता है, तब एक ओर तो वह संपूर्ण अंतर्दृश्य व उन अनुभूतियों का एकमात्र भोक्ता होता है तथा दूसरी ओर एक रचनाकार के रूप में उनका दर्शक और वाचक भी होता है। उसके अवचेतन की अनुगूँज निजी प्रतीकों के माध्यम से अपना रूप बदलकर संप्रेषित होती है।

उपन्यासकार भी अपने सूक्ष्म, अतींद्रिय, अमूर्त तथा जटिल अनुभवों को सहज संप्रेषणीय बनाने के लिए प्रतीकात्मक शैली का सहारा लेता है। प्रतीक ही मुख्यतः प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का साधन होते हैं, जो उन विचारों और अनुभूतियों को भी अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जो धुंधली और अस्पष्ट होने के कारण सहज–संप्रेषणीय नहीं होती हैं। अपना मूल अर्थ खोकर ये प्रतीक नये अर्थों से संपृक्त हो उठते हैं। वर्तमान समय में उपन्यासकार सामाजिक विसंगतियों तथा विडंबनाओं को अपनी वैज्ञानिक चेतना और मानवीय उष्मा के धरातल पर ग्रहण और अभिव्यक्त करनेवाले, एक नये बोध व विवेकयुक्त समकालीन प्रतीकों का प्रयोग कर रहे हैं। आधुनिक

बोधयुक्त उपन्यासों में कहीं वैयक्तिक तो कहीं पारिवारिक–सामाजिक विषमताओं और अन्यायों के प्रति विरोध प्रकट किया गया है। उपन्यासकार समाज और परिवेश से प्राप्त होनेवाली निजी अनुभूति को सामान्य और विस्तृत बनाकर संप्रेषित करता है। सामान्य कथन की स्थिति से ऊपर उठने के लिए तथा अनुभूति के सही संप्रेषण के लिए वह प्रतीकों और बिंबों का बहुस्तरीय प्रयोग करते हुए बहुआयामी भाषा का अनिवार्य रूप से प्रयोग करता है। प्रतीक पाठक को अर्थ की दिशा की ओर लेकर जाते हैं। एक ही प्रतीक का दो अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग अर्थ होना भी संभव है, क्योंकि प्रतीक स्वयं गौण होता है, मुख्य वह दिशा होती है जिसकी ओर संकेत किया जाता है। अतः भावनाओं, संस्कारों और वातावरण के अनुकूल ही उसमें निहित अर्थ व सांकेतिकता का अहसास होता है। प्रतीक का संप्रेषण सांकेतिक होता है तथा सांकेतिकता पाठकीय संबद्धता से जुड़ी हुई होती है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में भी वर्तमान सामाजिक जिंदगी में फैली सामाजिक–विसंगतियों व विडंबनाओं, सामाजिक विघटन, पारिवारिक व सामाजिक अवमूल्यन, स्त्री–पुरुष के प्रेम–संबंध और पारंपरिक नैतिकता से विद्रोह का भाव व्यक्त हुआ है। अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज–सापेक्ष बंधनों को चित्रित करते हुए शहरी मध्यमवर्ग को उसकी पूरी भाषा–चेतना में उतारा है। चेतना–प्रवाह प्रणाली में लिखे गए उपन्यासों में नैतिक मूल्यों पर प्रहार किया है। चेतना–प्रवाह, प्रतीकात्मकता, भाषा की आंतरिकता, अहम् केंद्रितता आदि के साथ कथ्य और शिल्प की दृष्टि से इनके उपन्यासों में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। अपनी अनुभूतियों को मूर्त रूप देने के लिए सुंदर व भावों को प्रेषणीय बनाने वाले प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये प्रतीक इनकी भावनाओं को पाठक के समक्ष प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। इन्होंने अपने उपन्यास–साहित्य के अर्थ–सौष्ठव की वृद्धि हेतु प्रतीकों का यथोचित प्रयोग किया है। इनके उपन्यासों में शीर्षक, पात्र तथा भाषा में प्रतीकात्मकता देखी जा सकती है। प्रतीकात्मकता में प्रतीकात्मक शीर्षक तथा प्रतीकात्मक चरित्रों की योजना द्वारा लेखिका ने किन्हीं विचार बिंदुओं को संकेतित करते हुए अपने अभिप्रेत को व्यंजित किया है। अपने भावों को तीव्रतम रूप में संप्रेषित करने की क्षमता इनकी भाषा की प्रतीकात्मकता में निहित है। इनके उपन्यास–साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक कथ्य की संप्रेषणीयता व अर्थ की गहराई को बढ़ाते हैं। मृदुला जी के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'कठगुलाब', चित्तकोबरा' व 'अनित्य' का शीर्षक स्वयं प्रतीकात्मक है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास के शीर्षक में 'धूप' का प्रतीकात्मक अर्थ 'प्यार' है। जिस प्रकार धूप नित्य रहती है, उसी प्रकार प्यार भी नित्य रहता है यद्यपि कुछ समय के लिए धूप की तरह दिखाई न दे। मनीषा, जितेन व मधुकर दोनों के हिस्से के प्यार की सहभागी बनती है अर्थात जितेन के प्यार की छाँव भी चाहती है तो साथ ही मधुकर के प्यार की धूप में भी सिकना चाहती है। वह इस धूप–छाँव अर्थात प्रेमी व पति के बीच समझौता करते हुए दोनों को उनके हिस्से का प्यार देकर संतुष्ट करते हुए अपने आपको संतुष्ट करना चाहती है, परंतु अपनी संतुष्टि उसे अंत में सृजन में ही मिलती है। वह एक के प्यार की छाया व दूसरे के प्यार की धूप में अपने जीवन की सार्थकता को तलाश करते हुए अपने सृजनात्मक लक्ष्य को प्राप्त करती है। अतः उपन्यास का शीर्षक कथावस्तु को पुष्ट करने वाला है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास का शीर्षक दो शब्दों के योग से बना हुआ तथा प्रतीकात्मक है। दो शब्दों से युक्त होने का अर्थ ही यह है कि दुनिया द्विपक्षीय है, एकपक्षीय नहीं है। 'चित्त' इसका पहला शब्द है तथा 'कोबरा' दूसरा। 'चित्त' का यहाँ अर्थ है 'मन' अर्थात मानस, हृदय और 'कोबरा' का अर्थ है कोबरा साँप। मृदुला जी स्वयं कहती हैं, कि – ''पूरे शब्द की व्याख्या 'चित्त का कोबरा' के रूप में होती है। यदि आप किसी कोबरा को जंगल की हरीतिमा में मदमस्त टहलते, सर्र–सर्र सरकते देखें तो वह अनेक रंगों में चमकता, रोशनी–सा दमकता, अंधेरे–सा लुप्त होता दीखेगा। निकलता–छुपता, सतत् बदलती छायाओं, रंगों, स्पंदनों–सिहरनों में। उसी प्रकार, मेरे विचार से, चित्त अथवा मन भी चपल, चंचल, बहुरंगा, अपने पर चकित होता है। अनेक प्रकार के स्पंदनों का अहसास करता है। वैसे ही इंसान के व्यक्तित्व की कई

प्रतिच्छवियाँ होती हैं, जिन्हें पूरी तरह सामने लाना मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन है, पर उसकी कोशिश बहुत रोमांचक है।''[192] अर्थात मनुष्य का मन भी उसी प्रकार अनेक रंग बदलता है, जिस प्रकार हरीतिमा में मदमस्त टहलता–सरकता कोबरा। मनु का चित्त रूपी कोबरा उसके अस्तित्व को सदैव डसता रहता है।

'अनित्य' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक अर्थ से युक्त है। उपन्यास के शीर्षक के रूप में 'अनित्य' एक पीड़ा, एक चुभन, एक व्यंग्य व गहरी कचोट है। 'अनित्य' शब्द का अर्थ है – जो नित्य नहीं होता है। उपन्यास में इसका प्रतीकात्मक अर्थ है – भगतसिंह बार–बार जन्म नहीं लेते हैं। अनित्य के माध्यम से भगतसिंह को ही पुनः प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया गया है, जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से परे है। 'कठगुलाब' उपन्यास में भी शीर्षक के अनेक प्रतीकार्थ व्यंजित होते हैं। 'कठगुलाब' प्रतीक है, स्त्री के उस जीवन का जो काठ के समान सख्त और बेजान होता जा रहा है। उपन्यास की प्रत्येक स्त्री शोषण से गुजरकर परिपक्व होती है और अपने कर्म–क्षेत्र का चयन करती है। इसका प्रतीकात्मतक अर्थ है कि जिंदगी की राहें आसान नहीं हैं, उसमें सफलता के लिए निरंतर संघर्ष करते रहना पड़ता है।

'कठगुलाब' प्रतीक है– बांझपन का। मातृत्व को इस उपन्यास का आधार बनाया गया है। इसके माध्यम से यही कहने की कोशिश की गई है कि आजकल जो मध्यमवर्गीय कामकाजी महिलाएँ हैं, उन्हें बच्चों के जन्म में बड़ी दिक्कत होती है। कहीं गर्भाशय कमजोर पड़ता जा रहा है तो एक उम्र के बाद गर्भ ठहरने में कठिनाई होती है। मातृत्व का मतलब पोषक तत्त्व होता है तथा पुरुष प्रजनन नहीं कर सकता लेकिन पोषण कर सकता है। प्रजनन में जो कठिनाइयाँ आ रही हैं, जो आज का सत्य है, इसमें अभिव्यक्त किया गया है। मातृत्वहीन जीवन काठ के समान रसहीन व शुष्क होता है। मातृत्व में ही निष्कलुष प्रेम का भाव होता है जो मानव–जीवन को सरस बनाता है। इसी कारण उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र मानो किसी 'कठगुलाब' को उगाने के लिए प्रयत्नशील हैं और उसके लिए अपने पूरे तन–मन से लग जाते हैं। 'कठगुलाब' एक सदाबहार फूल है जो बीज के माध्यम से पुनः लग जाता है। यह प्रतीक है उस जीवन का, जिसमें व्यक्ति को कठिनाइयों से हताश न होकर, नए माध्यम से जीवन व्यतीत करने की सुखद अनुभूति का, मरी हुई संवेदनाओं को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से जगाने का, अपने पोषक तत्व को पहचानने का, जिसे पर्यावरण और प्रकृति से सेवा करके प्राप्त किया जा सकता है। उपन्यास का यह वक्तव्य इस बात का प्रतीक है कि निरर्थक जीवन को अर्थ देने व चुनौतियों का सामना करने का प्रतीक है – 'कठगुलाब' उपन्यास का एक वक्तव्य – ''पेड़ सूखा पर सिकुड़ा नहीं। सूखी टहनियाँ ताने आसमान को चुनौती देता रहा। वृक्ष ने खुद अपने पुष्पों का आविष्कार कर लिया। शाखाओं को घुमाया–लचकाया और गुलाब का आकार दे दिया। हर शाख पर हजार–हजार कठगुलाब उग आये।''[193] इसका प्रतीकात्मक अर्थ है कि हरेक स्त्री शोषण का शिकार होती है तथा उस शोषण से गुजरकर परिपक्व होती है और अपने कर्म–क्षेत्र का चयन करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होती है। 'कठगुलाब' प्रतीक है – सदाबहार मन का। स्मिता का यह कथन व्यक्त करता है – ''मन तो कठगुलाब की तरह है, सदाबहार। पर ....कितना नष्टप्राय! सूखता नहीं, बुढ़ाता नहीं पर जरा हाथ लगने पर टूटकर बिखर जाने को तैयार रहता है।''[194] 'कठगुलाब' प्रतीक है – सहजता, सरलता और प्रकृति का। विपिन का यह कथन – ''सब कुछ होगा। पेड़–पौधे लहलहाएँगे। विपिन करेगा सब कुछ, बस पाएगा कुछ नहीं। बंजर जमीन पर कठगुलाब की झाड़ी उगेगी पर विपिन को उसके नीचे फैला बंजर ही दीखेगा।''[195] 'कठगुलाब' का प्रतीकात्मक अर्थ है – मन में चिरकाल से संचित साध, जिसके फलने–फूलने के लिए उपयुक्त जमीन अर्थात उचित वातावरण व स्नेह की आवश्यकता है। 'कठगुलाब' प्रतीक है समाज की उन सभी स्त्रियों का, जो लगातार परिस्थितियों से संघर्ष करते–करते 'काठ' के समान हो गई हैं, परंतु स्नेह रूपी तरल बौछारों के पड़ते ही भक्क से खिल उठती हैं तथा प्रस्फुटित होने की, खिलने की शक्ति उनमें संचित है। 'कठगुलाब' प्रतीक है – शोषित व प्रताड़ित स्त्री का, जिसकी दिली ख्वाइश अंदर ही अंदर दबी हुई है। जो अंत में बंजर हो जाने का त्रास झेल रही है। पुरुष की संवेदनहीनता के कारण उसकी जिंदगी मुर्झा सी गई है। अभ्यासवश वह कठगुलाब की तरह अंकुआ तो हो जाती है

परंतु हरियाने और खिलने का जज्बा अपने भीतर पैदा नहीं कर पाती है। उसे खिलने के लिए पुरुष की स्नेह रूपी तरल बौछारों की आवश्यकता है। इसी ओर संकेत करता हुआ स्मिता का यह कथन – ''हरे पत्ते के बीच कलियाँ आनी शुरू हुईं तो मैं खुशी से पागल। रोज गिनती करूँ। एक–एक करके सौ से ऊपर कलियाँ गिन ली मैंने। पर खिली उनमें से एक भी नहीं। जामुनी से भूरी पड़ने लगीं, नरम से सख्त, पर रही बन्द–की–बन्द।................धीरे–धीरे भूरी से काली पड़ने लगी थीं। फिर एक दिन, माली के कहे पर, सेम की क्यारी में पानी डाल रही थी कि अचानक मैंने पाइप उठाकर एक कली पर पानी की बौछार कर दी। फौरन वहीं, मेरी आँखों के सामने, हुम करके कली खिल गई। भूरे रंग का, काठ में से तराशा गुलाब। पँखुडियों के बीच से ताकती, काली पुतलीवाली आँख। एकदम मेरी आँख–मे–आँख डालकर बोली, पहले क्यों नहीं पिलाया पानी?''[196]

मृदुला जी के उपन्यासों में शीर्षक की प्रतीकात्मकता के साथ–साथ पात्रों व भाषा में भी प्रतीकात्मकता दिखाई देती है। लेखिका ने 'अनित्य' उपन्यास के पात्रों के नामकरण में प्रतीकात्मकता का प्रयोग किया है। अविजित एक गांधीवादी कॉंग्रेसी का प्रतीक है। अविजित का छोटा भाई अनित्य अविजित के मन का प्रतीक है। अनित्य क्रांतिकारी भगतसिंह का भी प्रतीक है। अविजित की पत्नी श्यामा भारत की गांधीवादी राजनीति का प्रतीक है तथा अविजित का मानसिक रूप से अविकसित पुत्र 'सुधांशु' भारत के संभावित अर्थहीन लुंजपुंज स्वराज्य व विक्षिप्त भविष्य का प्रतीक है। सुधांशु बैठकर कागज कैंची से कतर रहा है। ''खाली कमरे में एक कोने में बैठा सुधांशु कैंची से कागज काट रहा है। आजकल यही उसका काम है और यही खेल। छोटे–बड़े कागजों पर कच–कच कैंची चल रही है। कागज कट रहा है, टेढ़ा–मेढ़ा, बेतरतीब, बिला वजह। कट–कट कर नीचे गिर रहा है और फिर कट रहा है। कच–कच कैंची चल रही है ...।''[197] कागज का बेतरतीब कतरना, अनिश्चित तथा बेतरतीब भविष्य का प्रतीक है तथा कागज का आकृतिविहीन कटना, दिग्भ्रमित भारत की विक्षिप्त नई पीढ़ी का प्रतीक है। प्रभा और शुभा जैसे स्त्री पात्र भी प्रतीकात्मक रूप में आये हैं। प्रभा प्रतीक है एक ऐसी नारी का जो आक्रामक, मुक्त, बेलौस, विद्रोहजीवी, समझौताहीन तथा आँधी जैसी निर्बाध, अनियंत्रित व पूरी तरह से जुझारू व्यक्तित्व से पूर्ण है और अन्याय का विरोध करने का साहस रखती है। 'चित्तकोबरा' की मनु व 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा दोनों ही चरित्र तथा नाम में समानता रखती हैं – मन की चंचलता का प्रतीक हैं। 'वंशज' का सुधीर वास्तव में अधीरता का प्रतीक है, तो शुक्ला साहब एक निरंकुश तानाशाही शासक का प्रतीक हैं। 'मैं और मैं' के कौशल कुमार का नाम उसकी चरित्रगत कूटता और वक्रता का प्रतीक है।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों की भाषा में भी प्रतीकों की सुंदर योजना हुई है। उपन्यासों में प्रयुक्त शब्दों, वाक्यांशों व वाक्यों में प्रतीकात्मकता दृष्टव्य है। 'अनित्य' उपन्यास की भाषा में प्रतीक इस प्रकार हैं–

''बिल्ली चूहे को खाये तो स्वधर्म और कहीं चूहा घात लगातार बिल्ली को खत्म कर दे तो अपराध है। ... जो भगवान में विश्वास करते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि भगवान ने सिर्फ बिल्लियों को बनाया है। चूहे बेचारे तो जाने किस डार्विन की मार्फत पैदा हो गए, इसलिए जीत हमेशा भगवान की होती है।''[198] यहाँ 'बिल्ली' शब्द उच्च व पूँजीपति वर्ग अर्थात शोषक वर्ग का प्रतीक है तथा 'चूहा' निम्न वर्ग व सर्वहारा वर्ग का अर्थात शोषित वर्ग का प्रतीक है। 'भगवान' शब्द प्रतीक है शक्तिशाली प्रभुत्व प्राप्त वर्ग का जो शोषक वर्ग का पोषक है। ''अविजित के कानों में बाढ़ का शोर है। जमना नदी किनारे तोड़ रही है। आने दो पानी को! निगल जाने दो हेली रोड को! धाराशायी हो जायें यह चौड़े बंगले जिनके हर कोने में फफूंद लगी है। ... शहर और गाँव का फर्क मिट रहा है ... ऊँची इमारतें आसमान की मार सह नहीं पा रहीं। पानी की धार से पिघल–पिघल कर नीचे गिर सरक रही हैं।''[199] यहाँ 'बाढ़' शब्द सर्वहारा वर्ग का बुर्जुआ संस्कृति के विरोध में तीव्र आक्रोश के भाव का प्रतीक है, 'ऊँची इमारतें' यहाँ उच्च वर्ग अर्थात पूँजीपति वर्ग का प्रतीक हैं, जो कि श्रमिक वर्ग का शोषण करता है, 'पानी की धार' प्रतीक है –

विद्रोह का आक्रोशित व प्रचंड रूप, 'शहर और गाँव का फर्क' प्रतीक है – उच्च व निम्न वर्ग के मध्य का अन्तर।

'वंशज' उपन्यास में – ''काष्ठ के समान तना चेहरा, यांत्रिक अनुशासन से दबंग आवाज और प्रहार करते उदासीन हाथ इन्हें वह क्रूर रियाशत की निशानी मान, बरसों माफ नहीं कर सका।''[200] यहाँ यह वाक्य प्रतीक है प्रेमविहीन व्यवहार व निरंकुशता का। इसी प्रकार – ''पाक कला में निपूण, दुनियादारी में माहिर, रुपए पैसे से चौकस ... यह तो नहीं चाहता था वह? इसके अलावा भी और कुछ है इसमें या नहीं।''[201] यहाँ 'इसके अलावा और कुछ' का प्रतीकात्मक अर्थ है – मानवीय संवेदना, आर्द्रता, दया, परोपकार, प्रेम आदि है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु के लंबे बाल प्रतीक हैं – स्त्री की गुलाम मानसिकता और पुरानी रूढ़िगत परंपरा के तथा उसका बालों को काटना प्रतीक है – रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करना। 'कठगुलाब' की भाषा में प्रतीक इस रूप में पाये जाते हैं – ''महंगाई आसमान छूने लगी है, उसपे दो–दो निकलते जवानों का खाना। फिर लड़की। आप जानो यूं बढ़े है जैसे बेसरम बेल।''[202] यहाँ 'बेसरम बेल' शब्द का प्रतीकात्मक अर्थ है – युवा लड़की के शरीर का, जो युवावस्था में अधिक बढ़ता है। ''पड़ोसी कहते ना थकते, कोठी में रहके नखरा सीख गयी। चर्बी बढ़ गई बदन पर। रंग निखर आया, तो क्या, जवानी चढ़े तो गधी भी सुंदर दिखे। याद रखो जल्दी बोझा न डाला तो हाथ से निकल जावेगी।''[203] उक्त वाक्य का प्रतीकात्मक अर्थ है – युवावस्था में आने वाले परिवर्तनों का व उस पर लड़की को नियंत्रण में रखने का।

'मैं और मैं' उपन्यास में भाषा में प्रतीक का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''आए आँधी। सब–कुछ उड़ जाए, मिट जाए, ध्वंस हो जाए। काश, आँधी नहीं, जलजला आ जाए। आसमान से उतनी आशा बेकार है, पृथ्वी विद्रोह करेगी, खुद अपना पेट फाड़ लेगी तभी ध्वंस का लावा उठेगा, तभी ये भव्य अट्टालिकाएँ और सदियों से उन्हें छाँव देते पेड़ जड़ से उखड़कर गिरेंगे।''[204] उक्त वक्तव्य में 'आँधी' प्रतीक है – विद्रोह का, 'जलजला' प्रतीक है – क्रांति का, 'भव्य अट्टालिकाएँ' प्रतीक है – उच्च व धनिक वर्ग का, पूँजीपति व शोषक का, 'छाँव देते पेड़' प्रतीक है –पूँजीपति वर्ग को संरक्षण देने वाली सत्ता व औद्योगीकरण का, 'जड़ से उखड़ना' प्रतीक है – समूल नष्ट करके सर्वहारा वर्ग को शोषण से मुक्ति का। 'कठगुलाब' उपन्यास में शुगर मेपल के फाल का चित्र प्रस्तुत किया गया है, जो भाषा में प्रतीकात्मकता का सुंदर उदाहरण है – ''सुबह उठी तो मेरी चीख निकल गयी। शुगर एकदम नंगी खड़ी थी। क्या हुआ? कौन नोच ले गया उसका बाँधनी जोड़ा?''[205] फॉल के दिनों में नंगी, निचुड़ी, बलात्कृत शुगर मेपल यहाँ समूची स्त्री जाति की लज्जा, पीड़ा और अपमान को हर साँस के साथ महसूस करने का प्रतीक है।

भाषा की संप्रेषणीयता :

उपन्यास में लेखक की अनुभूति का संप्रेषण ही प्रधान होता है। वह अपनी भाषा के प्रति विशेष रूप से सजग रहते हुए, अनुभवों को संप्रेषित करनेवाली मूर्त, पारदर्शी भाषा की तलाश करता है। इसके लिए वह गद्य की भाषा में काव्य–भाषा के उपकरण प्रतीक, बिंब, संकेतों का प्रयोग करके भाषा में कसावट, सूक्ष्मता व संवेदनक्षमता लाने का प्रयास करता है। रचनाकार के मानस में अतीत की तथा अस्तित्वहीन, अकरणीय वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ स्थित रहती हैं, जिन्हें वह अपनी रचना में ध्वनियों व संकेतों द्वारा चित्रित करता है। मृदुला गर्ग ने अपने सभी उपन्यासों में काव्य–भाषा के उपकरणों – प्रतीक, बिंब, संकेत, अलंकार आदि का प्रयोग करके, भाषा को तराशकर उसे संप्रेषणीय बनाया है। इनके उपन्यासों में भाषा की उत्कृष्टता, संप्रेषणीयता, अभिव्यक्ति–सामर्थ्य के कारण उनका कथ्य बोल पड़ता है। शिल्प के स्तर पर मृदुला गर्ग के उपन्यासों की सबसे मुख्य विशेषता है – सार्थक संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग। कथ्य के वातावरण को निर्मित करने, जीवन की जटिलता का सम्यक् समावेश व संप्रेषण के लिए रचनाकार बिंब का सहारा लेता है। जिन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए विस्तृत वर्णन किया जाता था, उनको अब सांकेतिक रूप में बिंबों व प्रतीकों के सहारे कम

शब्दों में ही रोचक ढंग से व्यक्त किया जाता है। बिंब वह उपकरण है, जो बोलचाल की आम भाषा की जड़ता को तोड़ते हुए उसे अनुभूतिप्रवण बनाता है। वह शब्द चित्र है, जो विस्तृत संदर्भ, अमूर्त विचार व भावनाओं को चित्रोपम बनाकर सक्षम रूप से अभिव्यक्त करने में सफल बनाता है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी सार्थक संप्रेषणीय भाषा ही है। इनके उपन्यासों की भाषा प्रवाहमयी व प्रभावशाली है, जिसका प्रभाव पाठक पर पड़ता है तथा जिसका आनंद उनके कथन से सहमत न होते हुए भी पाठक महसूस करता है। यथार्थ और कल्पना के सुंदर सामंजस्य को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है – ''मैं जान गई थी कि एल्म, बीच, बर्च, पॉपलर, सिल्वर मेपल, विलो, माउंटेन ऐश और स्ट्राइप्ड मेपल के पत्तों ने बासन्ती–जाफरीन जोड़े पहने हुए हैं। ..... ब्लैक ओक ने बादामी–नारंगी–लाल रंगों की धूप–छाँही पोशाक पहनी हुई है, ऐश बैंजनी और पीले रंग के गंगा–जमुनी रेशम में सज्जित है। और इन सबसे अलग, शुगर मेपल इन्द्रधनुषी चूनर में दीवानावार अठखेलियाँ कर रही है। तबले और घँघरूओं पर थिरकती नर्तकी की तरह।''[206] इसी प्रकार विद्रूपता का भाव जाग्रत करने वाला यह वक्तव्य दृष्टव्य है – ''उसके अपने जीवन में कहीं कुछ सुंदर नहीं है। चेचक के दागों से गुदे बीवी के चेहरे से लेकर घर से सटे उस पोखर तक, ...। उसके खून–घुले पानी से उठते भभकों जैसी ही रही है, हमेशा से उसकी जिन्दगी।''[207] पाठक के मन में विद्रूपता का भाव जाग्रत करता है। 'वंशज' उपन्यास की भाषा में भी संप्रेषणीयता की क्षमता निहित है। भाषायी संप्रेषण की क्षमता का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''कुदालें उठाये दुबले–पतले पर तने हाथ। केंचुओं सी सिहरती नसें ....घर्र–घर्र करते गलों से खों–खों निकलती खाँसी।''[208] मजदूरों की स्थिति का एक दयनीय चित्र पाठक के मस्तिष्क में उपस्थित करने में सहायक है।

मृदुला जी ने बिंब की सर्जनात्मक शक्ति से अपनी रचनात्मक भाषा को वजनदार बनाया है। इनके उपन्यासों की बिंब–सर्जना सत्य को आत्मसात ही नहीं करती अपितु पूरी कलात्मकता में थीम को संप्रेषणीय भी बनाती है। 'मैं और मैं' उपन्यास का एक उदाहरण – ''वह आता है, गंधाते पसीने के भभकारे उड़ाता, धूप से झुलसा काला चेहरा लिए। ...काँख से पसीने की बू का एक जबर्दस्त भभक उठा और माधवी को बूरी तरह झिंझोड़ गया।''[209] ''सीलन–भरी बासी रजाई की दुर्गंध ने उसे झकझोर दिया और वह गुसलखाने की तरफ दौड़ गई। मल–मलकर साबुन से हाथ धोने और सूखने तक तौलिए से रगड़ती रही। फिर नाक के पास ले जाकर हाथों को सूंघा।''[210] ''सस्ते तम्बाकू की तीखी गंध और धुएँ की वजह से कमरा, कब्रगाह की–सी घुटन लिए हुए है।''[211] लेखिका ने यहाँ पर सहृदय के 'घ्राण' को जीवंत करने का सार्थक प्रयास किया है। ''पहियों की जबरदस्त खड़खड़ के ऊपर कौशल के शब्द टूटकर गिरने लगे।''[212] उक्त कथन सहृदय के 'श्रव्य' को जीवंत करता है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में भी भाषा की संप्रेषणीयता को बढ़ाने का कार्य भाषा में प्रयुक्त प्रतीक, बिंब व संकेतों ने बखूबी किया है। अंतरंग अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए स्पर्श बिंब का एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''इतना नन्हा–सा स्पर्श। और उसके अंतरतम तक वह पारूल बिखेर गया। प्रथम चुंबन।''[213] प्रथम चुंबन के कोमल–मधुर स्पर्श का रोमांचक चित्र उपस्थित करता है। इसी प्रकार नायिका की भावानात्मक एवं सूक्ष्म अनुभूति को लेखिका ने अभिव्यक्त करते हुए स्वाद बिंब को जीवंत करने का प्रयास किया है – ''बारीक सुनहला रंग, मासूम दुलराती गन्ध, आधा चम्मच चीनी और दूध के चन्द कतरे। ....चाय के साथ–साथ जितेन की याद ताजा हो गयी।''[214] 'अनित्य' उपन्यास में स्वर्णा के बालों को अलग–अलग उपमानों से सुशोभित करते हुए पाठक के समक्ष अलग–अलग दृश्य उपस्थित किया गया है – ''उसके भारी केश साँप की तरह लहरा कर दो हिस्सों में बंट गये। ...उसने जूड़े पर एक हाथ मारा और पहाड़ी प्रपात की तरह केश–राशि खुलकर पीठ पर छितर गयी। ...गर्दन पर लटका ढीला जूड़ा खुल आया था और लंबे–घने काले केश पीठ पर लहरा रहे थे। आंधी और बिजली, एक साथ!''[215] यहाँ स्वर्णा के बालों का साँप की तरह लहराना, पहाड़ी प्रपात की तरह पीठ पर छितराना, आँधी और बिजली, एक साथ आदि कथन सहृदय के मन में लहराते हुए काले साँपों का, पहाड़ की चोटी से नीचे की ओर गिरते हुए झरने के पानी का तथा घनी आँधी के बीच चमकती हुई बिजली का सुंदर प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करते हैं।

'चित्तकोबरा' उपन्यास का एक उदाहरण जो भाषा को संप्रेषणीय बनाने में सहायक है – ''मिर्च ज्यादा हुई तो देवर–सुनील–जोर से खाँसेगा। नाक–मुँह का पानी रोकता हुआ दो–एक बार भीतर तक खींचकर सुड़केगा, फिर रुमाल निकालकर चेहरा पोंछेगा। मुँह पर हाथ रखकर शालीनता का परिचय देगा और पानी का गिलास छलकाता, जल्दी–जल्दी, गट–गट, सटक जाएगा। तब जाकर जबान खोलेगा : ''क्या कर दिया आज भाभी! सारा मुँह जल गया। कोफ्तों में तो मिर्च–ही–मिर्च भरी पड़ी है।''[216] दृश्य बिंब के साथ–साथ स्वाद बिंब का चित्रण लेखिका की भाषिक–क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

'मिलजुल मन' उपन्यास का प्रारंभ ही किस्सागोई से होता है, जो कि पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है – ''आम होना चाहने वाला इंसान कब खास बनने पर मजबूर हो जाए, कौन कह सकता है। बहुत कुछ छूटा उससे पर छाता न छूटा। पर इससे यह कयास न लगा लेना कि वह जिंदगी से खुद को बचा कर चली। चेहरे की रंगत बचाना एक बात है, जिंदगी को आँधियों से बचाना, दूसरी। मेरे हिसाब से डर कर भागने की बजाय, ताप–लू–गर्दिश को अपने हक में कर ले, वह है गुलमोहर। शोख और लचीला एक साथ।''[217] यहाँ लेखिका ने सांकेतिक रूप में बिंबों व प्रतीकों का प्रयोग करते हुए भाषा की सामासिक शक्ति को बढ़ाते हुए अपनी रचनात्मक भाषा को वजनदार व संप्रेषणीय बनाया है। इनकी प्रवाहमयी, संप्रेषणीय व सारगर्भित भाषा–शैली के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं – ''याददाश्त बड़ी नामुराद चीज है। जब तक कपाट बंद हैं, ठीक। खोल दो तो यादें यूं लस्टम–पस्टम बाहर भागती हैं कि, सिरा पकड़ना मुश्किल हुआ जाता है।''[218] ''आधे से पौना बनने के लिए! आधे खिसक चुको तो पूरे की तरफ यूं खिसकते हो जैसे चुंबक की तरफ लोहा।''[219] उपर्युक्त वक्तव्यों से स्पष्ट होता है कि मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में विशिष्ट शैली का प्रयोग करते हुए भाषा को प्रतीकात्मक रूप दिया है, जिसके कारण भाषा मे अनुभूति की संप्रेषणीयता प्रभावशाली बन पड़ी है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि मृदुला जी ने अपने औपन्यासिक कथ्यानुरूप ही भाषा–शैली का चयन करके अपने अनुभवों को अभिव्यक्त किया है। अपनी सक्षम भाषा के द्वारा सामाजिक जीवन की वास्तविकता एवं समाज के विविध पहलुओं की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इनके सभी उपन्यासों की भाषा में काव्य भाषा के उपकरणों–बिंब, प्रतीक, संकेत, अलंकार, सामासिकता, सूक्ष्मता व संप्रेषणीयता के साथ ही शिल्पगत चमत्कार भी दृष्टिगोचर होते हैं। इनके उपन्यासों की भाषा शब्द भंडार से संपन्न, सूक्तियों से युक्त, बिंबात्मकता व आलंकारिकता से परिपूर्ण होने से अपने भावों को पाठक वर्ग तक प्रभावी रूप से संप्रेषित करने में सक्षम है। इनके कथ्य की भाषा पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल, गंभीर व चिंतनप्रधान है। इनकी लेखन शैली पाठक की चेतना पर दस्तक देते हुए समाज की सड़ी–गली व अनुपयोगी परंपराओं पर आघात करती है।

वातावरण व कथावस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए अपन्यास की प्रभाव क्षमता में वृद्धि के लिए पात्रों की शिक्षा, जीवन–स्तर और परिवेश के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। महानगरीय जीवन को अपने कथ्य में अभिव्यक्त देने वाली आम बोलचाल की भाषा के साथ–साथ दूसरी भाषाओं के शब्दों, वाक्यों, आंचलिक बोलियों, विदेशी भाषाओं के शब्दों, मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग करते हुए कथ्य की विविधतानुरूप ही भाषा–शैली को अपनाया है। इनके उपन्यासों की भाषा पात्रों की मानसिक अवधारणा के सूक्ष्म बिंदुओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

मृदुला जी की लेखन शैली प्रवाहमयी व स्वाभाविकता से परिपूर्ण होने के कारण इनके उपन्यासों को पढ़ने पर काल्पनिकता का आभास नहीं होता है। यथाप्रसंग अलग–अलग शैलियों–वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, विश्लेषणात्मक, पूर्वदीप्ति, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक शैली के साथ ही खंड विभाजन नामक नवीन शैली का प्रयोग करते हुए अपने विचारों व अनुभवों को संप्रेषणीय बनाया है। कथ्य को प्रभावी रूप से संप्रेषणीय बनाने के लिए प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। इनके उपन्यासों के शीर्षक की प्रतीकात्मकता के साथ–साथ पात्रों व भाषा में भी प्रतीकात्मकता दृष्टिगोचर होती है। भाषा की उत्कृष्टता, संप्रेषणीयता व अभिव्यक्ति सामर्थ्य के कारण इनका कथ्य बोल पडता है। यथार्थ व कल्पना का सुंदर सामंजस्य इनकी भाषा–शैली को प्रवाहमयी बनाता है। बिंब की सर्जनात्मक शक्ति ने इनकी रचनात्मक भाषा को वजनदार बनाया है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में विशिष्ट शैली का प्रयोग करते हुए भाषा को प्रतीकात्मक रूप दिया है, जिसके कारण भाषा में अनुभूति की संप्रेषणीयता प्रभावशाली बन पड़ी है।

–: संदर्भ ग्रंथ :–

1. गर्ग, मृदुला. (2012). मेरे साक्षात्कार. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन. पृ. सं. – 39–40.
2. तिवारी, भोलानाथ. (1998). भाषा विज्ञान. इलाहाबादः किताब महल प्रकाशन . पृ. सं. – 02.
3. वही, पृ. सं. – 02.
4. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 23.
5. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 169–170.
6. वही, पृ. सं. – 127–128.
7. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 137.
8. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 50.
9. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. –29.
10. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 50.
11. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 123–124.
12. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं.– 69–70.
13. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 13–14.
14. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. –
15. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 262.
16. वही, पृ. सं. – 276.
17. वही, पृ. सं. – 283.
18. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 46.
19. वही, पृ. सं. – 47.
20. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 91.
21. वही, पृ. सं. – 113.
22. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 13.
23. वही, पृ. सं. – 75.
24. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 235, 239.
25. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 14.
26. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 44.
27. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 12.
28. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 128.
29. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 58.
30. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 215.
31. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 27.
32. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 183.
33. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 239.
34. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 20.
35. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 71–72.
36. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 34–35.
37. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 130.
38. वही, पृ. सं. – 97.
39. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 309.
40. वही, पृ. सं. – 47.
41. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 40.
42. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 145.
43. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 83.
44. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. –
45. वही, पृ. सं. – 124.

46. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 45.
47. वही, पृ. सं. – 45.
48. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 33.
49. वही, पृ. सं. – 151.
50. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 22–23.
51. वही, पृ सं. – 29.
52. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 63.
53. वही, पृ. सं. – 113.
54. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 9–10.
55. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 219.
56. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 143.
57. वही, पृ. सं. – 262.
58. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 127.
59. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 45.
60. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 19.
61. वही, पृ. सं. – 309.
62. वही, पृ. सं. – 314.
63. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 06.
64. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 61.
65. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 34.
66. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 15.
67. वही, पृ. सं. – 85–86.
68. वही, पृ. सं. – 96.
69. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 196.
70. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 209.
71. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 57.
72. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 166.
73. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 269.
74. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 55.
75. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 135–136.
76. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 100.
77. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ.सं.– 85–86.
78. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 146.
79. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 118.
80. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 48.
81. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 124.
82. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 255.
83. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 108.
84. वही, पृ. सं. – 181.
85. वही, पृ. सं. – 180.
86. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं.– 54.
87. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 73.
88. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 49, 89.
89. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 201.
90. वही, पृ. सं. – 201.
91. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 14.

92. वही, पृ. सं. – 63.
93. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 106.
94. वही, पृ. सं. – 14.
95. वही, पृ. सं. – 98–99.
96. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 115.
97. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 80.
98. वही, पृ. सं. – 83.
99. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 318.
100. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 34.
101. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ.सं. – 307.
102. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 205.
103. वही, पृ. सं. – 106.
104. वही. पृ. सं. – 260.
105. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 71.
106. वही, पृ. सं. – 106.
107. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 154.
108. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 22.
109. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 54.
110. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 48.
111. वही, पृ. सं. – 52.
112. गर्ग, मृदुला. (2019) . वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 179.
113. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 35.
114. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज .गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स – पृ. सं. – 32.
115. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 167.
116. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 31.
117. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. 13.
118. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ.सं.–112.
119. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 09.
120. वही, पृ. सं. – 65.
121. वही, पृ. सं. – 123.
122. वही, पृ. सं. – 165.
123. वही, पृ. सं. – 246.
124. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 282.
125. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 137.
126. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 32–33.
127. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 310.
128. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 57–58.
129. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 36.
130. वही, पृ. सं. – 77–78.
131. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं.– 20–21.
132. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 11–13.
133. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं.– 94–95.
134. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 156.
135. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं.– 133–134.
136. वही, पृ. सं. – 30.

137. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं.— 233—235
138. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं.— 40—41.
139. गर्ग,मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. — 137.
140. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 08.
141. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 05.
142. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. — 81—82.
143. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. — 213.
144. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. — 04.
145. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. — 113.
146. वही, पृ. सं. — 131.
147. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 37.
148. वही, पृ. सं. — 209.
149. वही, पृ. सं. — 93.
150. वही, पृ. सं. — 169.
151. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. —100.
152. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 21—22.
153. वही, पृ. सं. — 34—35.
154. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. — 199.
155. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 114.
156. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. — 131—132
157. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. — 26.
158. वही, पृ. सं. — 131—132.
159. वही, पृ. सं. — 112.
160. वही, पृ. सं. — 202.
161. वही, पृ. सं. — 214—215.
162. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 60.
163. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 67.
164. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. — 118—119.
165. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. — 52.
166. वही, पृ. सं. — 48.
167. वही, पृ. सं. — 241.
168. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 39.
169. वही, पृ. सं. — 154—155.
170. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 98.
171. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 40.
172. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 157.
173. वही, पृ. सं. — 169.
174. वही, पृ. सं. — 260.
175. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. — 276.
176. वही, पृ. सं. — 310—311.
177. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. — 66.
178. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. — 49—50.
179. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. — 33
180. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं.— 124.

181. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं.
182. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 158.
183. वही, पृ. सं. – 154.
184. वही, पृ. सं. – 155.
185. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 221–222.
186. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 52.0
187. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 16–17.
188. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 59.
189. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. – 134.
190. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 48.
191. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 127.
192. गर्ग, मृदुला. (2012). मेरे साक्षात्कार. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन.पृ.सं.– 14– 15
193. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 264.
194. वही, पृ. सं. – 235.
195. वही, पृ. सं. – 264–265.
196. वही, पृ. सं. – 12.
197. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 262.
198. वही, पृ. सं. – 260.
199. वही, पृ. सं. – 170.
200. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज . गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स, पृ. सं. – 08.
201. वही, पृ. सं. – 17.
202. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 137.
203. वही, पृ. सं. – 149.
204. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 78.
205. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. सं. – 31.
206. वही, पृ. सं. – 28.
207. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं – 13–14.
208. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स. पृ. सं. – 125.
209. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 58, 60.
210. वही, पृ. सं. – 63.
211. वही, पृ. सं. – 12.
212. वही, पृ. सं. – 08.
213. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.पृ. सं. – 94.
214. वही, पृ. सं. – 44.
215. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 43, 46.
216. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. – 101
217. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन. पृ. सं. – 11.
218. वही, पृ. सं. – 13.
219. वही, पृ. सं. – 67.

—::उपसंहार ::—

साहित्य व समाज का संबंध मनुष्य के सामाजिक जगत से होता है। दोनों ही एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं, क्योंकि साहित्य का जन्म समाज के बीच ही होता है तथा समाज के साथ ही उसकी अन्तःक्रिया होती है। समाज शरीर है, तो साहित्य उस समाज में रहने वाली मानव जाति के आत्मस्पंदन से ध्वनित वह परिधान होता है, जिसमें मानव जाति के राग–विराग, सुख–दुःख, आकर्षण–विकर्षण निहित होते हैं। समाज में होने वाले परिवर्तनों के साथ ही साहित्य में भी काल–परिस्थित्यानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। एक साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होने के कारण सामाजिक परिवेश से प्राप्त अनुभवों के आधार पर ही साहित्य की रचना करता है। साहित्यकार अपनी वाणी के माध्यम से समाज के भावों को बल ही नहीं देता अपितु उन्हें नई दिशा भी देता है। वह समाज में नये विचार, नये आदर्श व नई प्रेरणा प्रस्तुत करता है। वृहत्तर समाज की कल्याणकारी कामना से ही साहित्य की रचना की जाती है, जिसमें साहित्यकार के जीवनानुभव, प्रेरणा व प्रयोजन निहित होते हैं।

साहित्यकार जिस समाज में रहता है, वहाँ की बहुत सी चीजों से उसकी चेतना निर्मित होती है। वह सामाजिक घटनाक्रम से प्रभावित व उद्वेलित होता है। बिना सामाजिक सरोकारों के, कोई साहित्यकार सर्जन करने के लिए प्रेरित नहीं होता है। साहित्यकार अपने सामाजिक–वैयक्तिक अनुभव से ही अपना रचना संसार निर्मित करता है। अपनी रचना के माध्यम से लेखक पाठक के समक्ष कुछ बिंब और चित्र उपस्थित करता है, जो उसको भीतर से अंत तक उद्वेलित कर देते हैं। साहित्य रचना के संबंध में स्वयं मृदुला गर्ग भी तीन चीजें आवश्यक मानती हैं – अनुभव, कल्पना व वाँछा। जो कुछ लेखक लिखता है, उसका अपना अनुभव होता है, जो घटित तक ही सीमित न होकर, अनेक अन्य अनुभवों की स्मृति को साथ लेकर चलता है। लेखक की हर रचना, उसका आत्मकथ्य होती है। हो सकता है कुछ अनुभव उसके जीवन में न घटित हुए हों। पर उसके आसपास जो भी घटता है, उसके भावबोध का हिस्सा बनता है। संवेदना जब तीव्र होती है, तो आसपास के घटित को वह ठीक अपने अनुभव की तरह महसूस करता है। संवेदना की यह तीव्रता ही रचना प्रक्रिया के मूल में निहित होती है। सृजन की प्रक्रिया, अनुभूत यथार्थ को स्मृति, कल्पना और वाँछा के संस्पर्श से 'फैंटेसी' में बदलती है और फिर 'फैंटेसी' एक नया रूप लेती है। यह नया रूप प्रतीकात्मक हो सकता है या यथार्थपरक। मगर जब तक साहित्य सृजन 'फैंटेसी' के इस दौर से नहीं गुजरता, वह साहित्य के कम, पत्रकारिता के अधिक निकट रहता है। वह किसी विचारधारा में बँधकर उच्चकोटि का साहित्य नहीं लिख सकता है, बल्कि अपने पात्रों के साथ स्वतंत्र जीवन जीते हुए एक उत्कृष्ट साहित्य की रचना करने में सफल होता है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में अपने वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों से गुजरकर, अपनी जीवनदृष्टि के आधार पर समाज के विभिन्न पहलुओं पर बेबाक होकर लेखनी चलाई है। इनके उपन्यास साहित्य के केंद्र में नारी है, किंतु इन्होंने नारी–अस्मिता, प्रेम–विवाह, दांपत्य– दांपत्येतर संबंधों को चित्रित करने के साथ–साथ सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक–साँस कृतिक परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक–सामाजिक स्थिति, सामाजिक–पारिवारिक मूल्य, राजनीतिक स्थितियाँ, स्वातंत्र्य–संघर्ष, अन्याय व शोषण, उपभोक्ता संस्कृति, वर्गीय चेतना आदि विषयों पर भी अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। नारी–शिक्षा व नारी–उन्नति तथा अन्याय व शोषण के प्रति विद्रोह की भावना भी इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त हुई है। इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी–शिक्षा व नारी–उन्नति विषयक भावानुभूति व समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति विद्रोह व आक्रोश की भावना के कारण ही मैं इनके उपन्यास साहित्य की ओर आकर्षित हुई तथा अपने शोधकार्य के लिए 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन' विषय का चयन किया।

शोध कार्य में विषय विवेचन की दृष्टि से मैंने शोध प्रबंध को आठ अध्यायों में विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय – 'समाजशास्त्रीय अध्ययन और साहित्य का समाजशास्त्र' में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की अवधारणा, पद्धति और इतिहास तथा साहित्य के समाजशास्त्र की विविध दृष्टियों व सिद्धांतों का विवेचन करते हुए उपन्यास का समाजशास्त्र व साहित्य, कला और समाज के अन्तःसंबंध को विवेचित–विश्लेषित किया गया है। साहित्य व समाजशास्त्र की भूमिका अलग–अलग होती है। समाज के मौजूदा हालात साहित्य में स्वतः ही आ जाते हैं तथा समाजशास्त्र उनका विश्लेषण करता है। साहित्य के समाजशास्त्र का उद्देश्य पाठक व साहित्य के संबंध का विवेचन करना होता है। साहित्य का समाजशास्त्र में साहित्य में अन्तर्निहित सामाजिक जीवन–सत्य को रेखांकित करके रचना और रचनाकार के उस परिवेश को समझा जाता है, जिसमें उनकी उपस्थिति होती है। उपन्यास के समाजशास्त्र में उपन्यासकार की वर्ग चेतना, विचारधारा या विश्वदृष्टि के सहारे उपन्यास के सामाजिक यथार्थ का लेखक के दृष्टिकोण के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। पाठक की चेतना से उपन्यास के संबंधों का विश्लेषण किया जाता है।

द्वितीय अध्याय – 'मृदुला गर्ग का व्यक्तित्व–कृतित्व' में मृदुला गर्ग के जन्म, परिवार, शिक्षा व जीवन संदर्भों पर प्रकाश डालते हुए उनके रचना–संसार व प्रेरक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। मृदुला गर्ग का जन्म 25 अक्टूबर 1938 को कलकत्ता के एक संभ्रांत, उदारचेता व संपन्न परिवार में वीरेंद्र प्रसाद जैन के घर हुआ। मृदुला जी जब तीन साल की थीं, तभी इनके पिता का तबादला कलकत्ता से दिल्ली हो गया तथा इनकी शिक्षा–दीक्षा दिल्ली में ही पूर्ण हुई। बचपन से ही इन्होंने हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में मौलिक व अनूदित रचनाएँ पढ़ीं, जिसके कारण साहित्य इनके भीतर समा गया। इनकी रचनात्मक जिंदगी को संवारने में इनके पिता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पिता के स्नेह व प्रोत्साहन ने इनको बारह साल की आयु में ही शेक्सपियर, दोस्तोएवस्की, ऑस्कर वाइल्ड व कामू से रू–ब–रू करवा दिया। मृदुला जी बहुत ही जिज्ञासु और अपने भीतर सिमटे रहने वाले लोगों में से थीं। समय के साथ–साथ जीवनानुभवों से इनकी जीवनदृष्टि स्वतंत्र, दृढ़ और बेबाक हो गई। इनका व्यक्तित्व सामाजिक चेतना, विद्रोह की प्रवृत्ति, घुमक्कड़ी वृत्ति, संवेदनशीलता, बागवानी का शौक, कलात्मकता व सौंदर्य प्रेम में बँट गया। अन्याय का विद्रोह करने की प्रवृत्ति इनमें सदैव हिचकौले खाती रहती है। इन्होंने स्त्री को भोग्या ही नहीं भोक्ता भी माना है।

मृदुला गर्ग ने अपने जीवनानुभवों व अध्ययन से निर्मित जीवन–दृष्टि के आधार पर ही उपन्यास साहित्य की रचना की है। इनका उपन्यास लेखन एक सहज प्रक्रिया है, सायास नहीं। इनकी रचनाओं में इनका क्रांतिकारी चिंतन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इनका मानना है कि साहित्य बेबाकी का पर्याय है अर्थात निर्भीक लेखन है, जो सामाजिक या राजनीतिक या अवसरवादी लाभ–हानि के डर से समझौते नहीं करता है। इन्होंने अपने उपन्यासों की रचना अपने आसपास घटित घटनाओं, चाहे वह भोपाल गैस त्रासदी हो या बंगाल का अकाल, चाहे निठारी कांड की घटना हो या असमानता व विषमता के कारण उत्पन्न सामाजिक समस्याएँ, चाहे स्वतंत्रता–संग्राम हो या चीन का आक्रमण के समय दिया गया नेहरू जी का असम के बारे में वक्तव्य हो, इन सभी ने इनको विचलित करके सोचने पर मजबूर कर दिया तथा इनके लेखन को प्रभावित किया।

समकालीन हिंदी उपन्यास लेखन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाली वरिष्ठ उपन्यासकार मृदुला गर्ग का नाम एक साहसी लेखिका के रूप में उभरा है। इनके उपन्यासों की कथा प्रायः स्त्री को विभिन्न परिवेशों और परिस्थितियों के मध्य रखकर घटित हुई है। इनकी रचनाओं में नारी–जीवन संदर्भों का बेलौस वर्णन पाया जाता है। स्त्री–पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति के साथ ही वर्तमान युगीन पहलुओं में सामाजिक विसंगतियों, राजनीतिक पतन व भ्रष्ट शासन व्यवस्था, आर्थिक विषमता के कारण उपजी समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है।

तृतीय अध्याय – 'मृदुला गर्ग की विश्वदृष्टि' में इनकी रचनाओं के अंतर्गत प्रयुक्त इनकी परिवार व समाज के प्रति दृष्टि, वर्ग–चेतना, लोकतांत्रिक परिवेश, मूल्य–बोध,

सामाजिक–आर्थिक चिंतन व मानवीय अस्मिता के प्रति इनकी दृष्टि व प्रतिबद्धता को विवेचित व विश्लेषित किया गया है। एक सजग साहित्यकार अपने समय का अंश साहित्य में प्रकट करता है। मृदुला जी ने अर्थशास्त्र में एम.ए. किया और बाद में इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली में पढ़ाया भी था। सामाजिक और आर्थिक शोषण का गहन अध्ययन करने के कारण इनके मन में समाज में होने वाले वाले शोषण के प्रति विद्रोहात्मक व आक्रोश की भावना हमेशा ही रही। भारतीय परिवेश में भारतीयों के साथ होने वाला अन्याय इनको उद्वेलित करता था। वह अन्याय केवल आर्थिक नहीं, सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, मानसिक सभी तरह का था। अर्थशास्त्र से संतुष्टि न मिलने पर एक बेपनाह छटपटाहट इनके मन में घर कर गई, जिसे सृजनात्मक लेखन में बाँधकर लोगों तक पहुँचाने की दृढ़ इच्छा ने इनको साहित्य लेखन की ओर दिशा प्रदान की। जीवन में जो अनुभव किया और अध्ययन किया, उस सबने इनकी मानवीय अंतरात्मा में जज़्ब होकर, इनको एक जीवन–दृष्टि प्रदान की। इनके आसपास जो भी घटित हुआ, इनके भावबोध का हिस्सा बन गया तथा संवेदना की तीव्रता ही इनकी रचना–प्रक्रिया की मूल प्रकृति है। इन्होंने परिवार, समाज, लोकतंत्र, पर्यावरण, जीवन–मूल्य, आर्थिक विषमता से उपजी वर्गभेद की भावना व वर्ग–चेतना से संबंधित भावानुभूति को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

मृदुला जी जिस समाज में रहती थीं, उस समय उस समाज में स्वाधीनता आंदोलन महत्त्वपूर्ण घटना थी। तात्कालिक समाज और संस्कृति ने इनकी विश्वदृष्टि को निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके उपन्यासों की रचना महानगरीय जीवन को केंद्र में रखकर की गई है। इन्होंने समाज के उच्च मध्यमवर्गीय परिवार, जो कि एकल परिवार की जिंदगी जीते हैं, का चित्रण किया है। समकालीन समाज के यथार्थ को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। वर्तमान समाज में पारिवारिक जीवन की विडंबनाओं और आडंबरों के मध्य झाँकती जीवन की सच्चाई को निरूपित किया है। रूढ़ियों व अप्रासंगिक मान्यताओं पर व्यंग्य करते हुए इनसे परे जीवन जीने की आशा की गई है। संपन्नता व विपन्नता की खाई के बीच उत्पन्न वर्गभेद व वर्ग–चेतना को अभिव्यक्त किया है। अर्थाभाव से उत्पन्न जटिलताओं व घुटन, छटपटाहट, जीवन–संघर्ष की ओर पाठक वर्ग का ध्यानाकृष्ट किया गया है। लोकतांत्रिक परिवेश में विशिष्ट वर्ग व आम जनता के बीच पाया जाने वाला फर्क सामाजिक असमानता को जन्म देता है, जो लोकतांत्रिक परिवेश के लिए बाधक है। मृदुला जी ने लोकतांत्रिक परिवेश के लिए अवसर की समानता पर बल दिया है। इनकी रचनाओं में चित्रित किया गया है कि आज मनुष्य परिवार व समाज में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। वह संघर्ष चाहे अर्थ के लिए हो, चाहे अस्मिता के लिए हो या अधिकारों की प्राप्ति के लिए हो। नारी–स्वतंत्रता में बाधक नैतिकता के प्रतिमानों का विरोध करते हुए नारी को पहचान देने का प्रयास किया है। समाज में निरंतर संक्रमित हो रहे जीवन–मूल्यों ने भी मृदुला जी को उद्वेलित किया है, जिसके कारण इनकी रचनाओं में मानवीय संबंधों के विकृत होते हुए रूप व रिश्तों में आनेवाली दरार तथा आधुनिकता व पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप टूटते हुए पुराने मूल्यों को चित्रित किया है। मानव–मूल्यों के परिवर्तन ने समाज तथा राष्ट्र के साथ–साथ इनके साहित्य को प्रभावित किया है।

चतुर्थ अध्याय – 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य' में मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक व सामाजिक स्थिति को विवेचित व विश्लेषित किया है। मृदुला जी ने महानगरीय सामाजिक परिवेश में एकल परिवार व अपने समाज की सूक्ष्मता को कृति का रूप देकर पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन्होंने पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित सामाजिक जीवन में आनेवाले बिखराव का चित्रण अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है। मानवीय संबंधों में आई दरार, दांपत्य संबंधों में आए परिवर्तन, नारी का बदलता हुआ स्वरूप, स्त्री–पुरुष संबंध व प्रेम–संबंध, नारी–शोषण व विद्रोह तथा महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ आदि सामाजिक पहलुओं का चित्रण किया है।

स्वातंत्र्योत्तर समाज में मध्यमवर्ग के जीवन में तथा उसके पारिवारिक–सामाजिक स्तर पर आने वाले बदलाव व बदलते हुए समय के साथ परिवर्तित होती हुई सोच के कारण उत्पन्न नवीन नैतिकता को अभिव्यक्त किया है। पारिवारिक जीवन का मूल आधार दांपत्य–जीवन भी मशीनी जिंदगी के कारण बिखरता हुआ नजर आ रहा है। दांपत्य–जीवन में मुधरता समाप्त होती जा रही है तथा बढ़ती संवादहीनता के कारण दांपत्य–संबंधों में अलगाव व शुष्कता का निर्माण होने से दांपत्य–जीवन टूटता हुआ नजर आता है। स्त्री–पुरुष के मध्य प्रेम–संबंधों में भी परिवर्तन आया है, जिसके कारण बरसों पुराना भारतीय पारिवारिक–सामाजिक ढाँचा टूटता हुआ नजर आता है। विवाहपूर्व व विवाहेतर प्रेम–संबंधों के साथ–साथ नारी–शोषण व नारी–विद्रोह को भी चित्रित किया है। इनके उपन्यासों की नारी अपनी सर्वांगीणता पर जोर देते हुए, पुरुषों की दासता को तोड़कर स्वतंत्र जीवन को अपनाते हुए, अपने हक के लिए लड़ना व बोलना सीख रही है। अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुषप्रधान समाज द्वारा हो रहे अत्याचार–शोषण का खुला विरोध करते हुए दिखाई देती है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में नारी के प्रेम, सेक्स, विवाहेतर संबंधों के प्रति नारी की बदलती सोच पर प्रकाश डाला गया है। इनके उपन्यासों के नारी पात्र स्त्री–पुरुष संबंधों व प्रेम–संबंधों की नैतिकता का उपहास उड़ाते हुए नजर आते हैं। आधुनिकीकरण के बढ़ते प्रभावस्वरूप सामाजिक संबंधों का पारंपरिक रूप विखंड़ित होकर नई पीढ़ी का एक स्वतंत्र अस्तित्वपूर्ण रूप सामने आ रहा है, जिसके कारण माता–पिता व उनकी संतानों के मध्य उत्पन्न टकराहट के साथ–साथ उनके मध्य द्वंद्वात्मक–संघर्षात्मक स्थिति को अंकित किया है।

पंचम अध्याय – 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य' में इनके उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त राजनीतिक असंगतियों का विवेचन–विश्लेषण किया गया है। स्वतंत्रता के समय की राजनीति व शासन–व्यवस्था पर विचार व्यक्त किए गए हैं। स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम–क्रांतिकारी देशभक्तों के स्वातंत्र्य प्रयास व जेल जीवन की अमानवीय यातनाओं को उजागर किया गया है। समाज में राजनीति के ह्रासोन्मुख रूप को चित्रित करते हुए भ्रष्टाचार व छल–कपट की नीति को चित्रित किया गया है। लोकतांत्रिक सरकार की लापरवाही व योजनाओं की असफलता के साथ ही गांधी नीतियों की आलोचना करते हुए स्पष्ट नजर आती हैं। मृदुला जी ने गांधी जी की अहिंसा व समझौतावादी नीति की अपेक्षा भगतसिंह की क्रांतिकारिता की भावना को अधिक महत्त्व दिया है। देश विभाजन की त्रासदी का चित्रण करते हुए इन्होंने अभिव्यक्त किया है, कि स्वतंत्रता–पश्चात् भी पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं बल्कि और भी गहरी हो गईं। राजनीतिक दृष्टि से उथल–पुथल हुए सामाजिक परिवेश में उत्पन्न आंतरिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता तथा सांप्रदायिकता को उजागर किया गया है। स्वाधीनता–संघर्ष का चित्रण करके चड्ढा, अनित्य, काजल, प्रभा जैसे क्रांतिकारी चरित्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के स्वर को अभिव्यक्त किया है। मुकर्जी बाबू, मि. सिंघानिया व सरण जैसे पात्रों के माध्यम से अपने हितों की पूर्ति करने वाले पूँजीपति वर्ग व अवसरवादी नेताओं की स्वार्थी प्रवृत्ति को उजागर किया है।

पूँजीपति वर्ग द्वारा अपनी पूँजी के बल पर मजदूर वर्ग को कम मजदूरी पर रखकर उससे अधिक काम लिया जाता है, जिससे उनका आर्थिक–शारीरिक शोषण होता है। मृदुला जी ने सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति व पूँजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश व विद्रोह का भाव अभिव्यक्त किया है। मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, कि अपनी पूँजी के बल पर कठोरता का तांडव नृत्य करनेवाले इन पूँजीपतियों का मुकाबला एवं विरोध करना मानवता के पक्ष को बनाये रखने हेतु अत्यन्त आवश्यक है। बदलती हुई राजनीतिक स्थितियों को नजरअंदाज न करते हुए बहुत ही निडरता के साथ उसके यथार्थ पहलुओं को रेखांकित किया है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीति राष्ट्र की राजनीति न होकर व्यक्ति की राजनीति हो गयी है, क्योंकि देश के कार्य संचालक व मंत्री ऐसे व्यक्ति बनते हैं, जो अवसरवादी होते हैं। वर्तमान समय में भी हमारे देश–समाज में ऐसी ही स्थिति है, जिसकी ओर पाठक वर्ग का ध्यानाकृष्ट करके, उसे सचेत करना चाहती हैं। देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति

व योजनाओं की असफलता की ओर भी पाठक वर्ग का ध्यानाकृष्ट किया है। आज के समय में देश को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले तत्त्व हैं – भ्रष्टाचार व हड़ताल। हड़ताल–पश्चात् होने वाले दंगे–फसाद की ओर भी अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से समाज की विसंगतियों को उजागर करते हुए पाठक वर्ग को जागरूक करने का प्रयास किया है। क्रांतिकारियों पर होनेवाले अत्याचार और दमन के लिए ब्रिटिश राज के बराबर ही गांधी जी की समझौतावादी नीतियों को भी जिम्मेदार बताया है। भारतीय राजनीति को साम्यवादी विचारधाराओं से प्रभावित बताया है, जिसमें विदेशी पूँजीवाद या साम्राज्यवाद से लड़ने के साथ ही साथ देश के पूँजीवादियों से भी मुकाबला करते हुए चित्रित किया है। लेखिका ने अभिव्यक्त किया है कि कहने को हमारा देश आजाद हो गया है पर बेइंसाफी के काले चोगों में लिपटे आजादी के पुराने दुश्मन अब भी इंसाफ के सरपरस्त बने अदालती–कुर्सियों पर विराजमान हैं। देश के पिछड़ेपन का कारण यहाँ की जनता के लक्ष्यहीन मार्ग को बताया है। राजनीतिक विचारधाराओं पर कटु व्यंग्य करते हुए आजादी–पश्चात् के गांधीवादी राह पर चलने वाले अनेक कामचोर, लक्ष्यहीन व्यक्तियों के असफल, पराजित जीवन पर भी प्रकाश डाला है।

षष्ठ अध्याय – 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का आर्थिक परिप्रेक्ष्य' में समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता के कारण उपजी वर्गभेद की समस्या व वर्गीय चेतना तथा अर्थाभाव के कारण समाज में निम्न वर्ग पर होनेवाले अत्याचार व शोषण, बालश्रम व शोषण तथा अन्याय व शोषण के प्रति विद्रोह के भावों को विवेचित–विश्लेषित किया गया है। वैश्विक बाजारवाद के कारण उत्पन्न उपभोक्ता संस्कृति पर विचार व्यक्त किए गए हैं। सम्पन्नता व अभाव की स्थिति से उत्पन्न वर्गगत विषमता के कारण बँटे समाज के प्रमुख दो वर्ग – सर्वहारा व पूँजीपति वर्ग अर्थात उच्च वर्ग व निम्न वर्ग की स्थिति के कारण उपजी समस्याओं को पाठक वर्ग के समक्ष उजागर किया है। पूँजीपति वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग का शोषण तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते हुए सर्वहारा वर्ग द्वारा शोषण की प्रतिक्रियास्वरूप सम्पन्न और बुर्जुआ अर्थात पूँजीपति वर्ग के खिलाफ विद्रोह को चित्रित किया है। सर्वहारा वर्ग का उच्च वर्ग पर अधिकार बोध, उच्च वर्ग के प्रति घृणा, नफरत और द्वेष की मानसिकता को अपने उपन्यास साहित्य में प्रकट किया है। उत्पादन में सक्रिय भूमिका निभानेवाले श्रमिक के खून–पसीने पर पलने वाले परजीवी जोंकनुमा पूँजीपति वर्ग के प्रति सर्वहारा वर्ग की क्रांतिचेतना लक्षित हुई है। आर्थिक परवशता के कारण इनके उपन्यासों के पात्र अनेक तरह की पीड़ाओं से गुजरते हुए दिखाई देते हैं। अर्थाभाव के कारण रोटी, कपड़ा व मकान जैसी आधारभूत सुविधाओं को तरसते तथा खेलने–कूदने की उम्र में नर्मदा जैसे अनेक बच्चे कारखानों में काम करते हुए अनेक पीड़ाओं से गुजरते हैं तथा बालश्रम व शोषण का शिकार होते हैं। स्मिता व संगीता जैसी कितनी ही लड़कियाँ आर्थिक परवशता के कारण शारीरिक–मानसिक शोषण का शिकार होती हैं तथा पुरुष द्वारा किया गया अत्याचार सहन करती हैं। मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से पाठक वर्ग के समक्ष अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं के साथ–साथ बालश्रम व शोषण को उजागर किया है। गरीबी व अभावों के कारण बालश्रम व शोषण की भेंट चढ़ते बच्चों के बचपन की ओर ध्यानाकृष्ट किया है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में मध्यमवर्गीय जीवन के विभिन्न पहलुओं – आशा–आकांक्षा, संत्रास व ऊब, निराशा, बेरोजगारी, परस्पर संबंध, कुंठाएँ, पीड़ा, घुटन के साथ–साथ निम्न वर्ग की भूख, गरीबी व अभावों को भी चित्रित किया है। मध्यमवर्गीय स्त्रियों की ऊब व आकांक्षाओं के साथ ही उनकी पीड़ा, शोषण व विद्रोह को भी अंकित किया है। स्त्री–पुरुष संबंधों का अंकन करने के साथ ही पुरुष द्वारा स्त्री का तिरस्कार, शोषण के परिणामस्वरूप स्त्री–पुरुष के अलगाव व संघर्ष की स्थिति का चित्रांकन किया है। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए इनके उपन्यासों की नारी पुरुष की प्रतिस्पर्धी बनकर चलती हुई व प्रतिरोध की भावना से परिपूर्ण दिखाई देती है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभावस्वरूप आम आदमी की मूल साँस कृतिक विचारधारा व जीवनशैली में आए परिवर्तनों का चित्रांकन किया है।

बाजारवाद की जंजीरों में जकड़े समाज में बदलती चिंतनप्रणाली के कारण प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यों, पारिवारिक–सामाजिक संबंधों, रूढ़िगत विचारों में आए परिवर्तन को चित्रित किया है। भौतिक सुख–सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण सामाजिक संबंधों पर हावी होते अर्थतंत्र की ओर पाठक वर्ग का ध्यानाकृष्ट करने का प्रयास किया गया है। उद्योगों व व्यापार को लेकर देश में अपनाई जा रही नीतियों विदेशी कंपनियों के साथ साझा व्यापार व विदेशी कंपनियों का भारत आकर व्यापार करने और कूटनीति अपनाने पर भी प्रकाश डाला है। व्यापार के बहाने आनेवाली विदेशी कंपनियों की सच्चाई को उजागर किया है। मृदुला जी ने चित्रित किया है कि ये विदेशी कंपनियाँ हमें पुनः गुलामी की ओर धकेल रही हैं तथा युवा पीढ़ी को परनिर्भर बनाकर पलायन के लिए प्रोत्साहित करती हैं। देश के अंदर भी उद्योगों व व्यापार व्यवस्था में दलालों व बिचालियों से सचेत रहने का भाव व्यक्त किया है।

सप्तम अध्याय – 'मृदुला गर्ग के उपन्यासों का साँस कृतिक परिप्रेक्ष्य' में ग्रामीण व महानगरीय परिवेश पर प्रकाश डालते हुए परंपरागत नैतिक मूल्यों व सामाजिक आदर्शों के ह्रास, प्राचीन व नवीन विचारधाराओं के पारस्परिक संघर्ष व विवाह बंधन के खोखलेपन पर विचार अभिव्यक्त किए गए हैं। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में एक कुशल व सजग साहित्यकार का परिचय देते हुए वर्तमान समाज में व्याप्त विदेशी मानसिकता व भूमंडलीकरण के प्रभावस्वरूप परिवर्तित व संक्रमित हो रहे साँस कृतिक मूल्यों का सूक्ष्म अंकन करते हुए वर्तमान सदी की संचार क्रांति में जी रहे उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित वैश्विक गाँव में बदलते समाज में आई विसंगतियों का चित्रांकन किया है। कस्बों और महानगरों में अर्थ के लिए संघर्ष करते मनुष्य की पीड़ा, विवाह संबंध, प्रेम संबंधों में परायापन, नैतिक मूल्यों का पतन, भ्रष्टाचार, अलगाव व अकेलेपन को चित्रित करने के साथ ही महानगरीय परिवेश में निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक असमानताओं, विवशताओं, कुंठाओं व संदेहवृत्ति को व्यक्त किया है। ग्रामीण परिवेश के अंतर्गत शिक्षा व चिकित्सा का अभाव, लड़के व लड़की के बीच किया जाने वाला भेदभाव, पर्यावरण संतुलन व खेतीबाड़ी का चित्रांकन करते हुए पर्यावरण रक्षा व लिंग भेद को समाप्त करने की प्रेरणा देते हुए लक्षित होती हैं। ग्रामीण परिवेश के माध्यम से संयुक्त परिवार व पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए प्रतीत होती हैं। परंपरागत नैतिक मूल्यों व सामाजिक आदर्शों के ह्रास की ओर हमारा ध्यानाकृष्ट करने व सचेत करने की दृष्टि से मृदुला जी ने अपने उपन्यास साहित्य में नगरीय–महानगरीय जीवन में आर्थिक विषमता के कारण समाज में नैतिक मूल्यों में आई गिरावट, राजनीति में फैले भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, छल–छद्म, भाई–भतीजावाद, क्षेत्रीयवाद, नेताओं के दोगले भ्रष्ट चरित्र, सांप्रदायिकता, सामाजिक विसंगतियों, विवाह संस्था के प्रति आस्था में कमी व उससे उठते हुए विश्वास, तलाक व अन्तर्जातीय विवाहों की बढ़ती संख्या, वैवाहिक–संबंधों में टूटन व बिखराव के कारण दम तोड़ते हुए जीवन–मूल्यों का चित्रांकन बखूबी किया है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में परंपरागत वैचारिक धारणाओं व नवीन विचारधारा के कारण दो पीढ़ियों के मध्य उत्पन्न वैचारिक संघर्ष व टकराहट के माध्यम से वर्तमान समाज में उत्पन्न पारिवारिक संबंधों में सहजता व आत्मीयता के अभाव का चित्रांकन किया है। समय के साथ परिवर्तित व पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारतीय समाज में विचारधाराओं, मान्यताओं व आचरण पद्धतियों में आये परिवर्तन के कारण उत्पन्न टकराव व तनाव की स्थिति को चित्रित किया है। जीवन–मूल्यों में आये परिवर्तन के कारण बदलते जीवन संदर्भों में पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते प्रेमविहीन वैवाहिक संबंधों व प्रेम में समाप्त होती हुई भावुकता का चित्रण किया है। स्वार्थ व वासना से युक्त प्रेमभावना को उजागर किया है। वैवाहिक संबंधों की उदासीनता व ऊब के फलस्वरूप उत्पन्न विवाहेतर संबंधों को उजागर किया है। इनके उपन्यास साहित्य में चित्रित किया गया है कि आज की नारी ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, शासन आदि सभी क्षेत्रों में पुरुष के समकक्ष सिद्ध हो रही है तथा विवाह संस्था में बँधकर पुरुष की दासी व अनुगामिनी न बनकर, उसके समकक्ष व प्रतिस्पर्धी बनकर जीना चाहती है। पति–पत्नी का वैवाहिक संबंध आज महज औपाचारिकता बनता जा रहा है तथा समझौतावादी व्यापारिक व्यवहार प्रचलित हो रहा है, जिसके कारण भारतीय संस्कृति का

अपसंस्कृतीकरण हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन के कारण बदलती साँस कृतिक स्थितियों व मूल्य–संक्रमण की स्थिति को अपने उपन्यासों में बखूबी चित्रित किया है।

अष्टम अध्याय – 'कथ्य के विकास में सहायक रूप सौष्ठव' में मृदुला गर्ग के उपन्यास साहित्य में प्रयुक्त भाषा–शैली का विवेचन–विश्लेषण किया गया है। आधुनिक उपन्यास लेखिका के रूप में भाषा–शैली के प्रति जागरूकता दिखाते हुए अपने उपन्यासों में कथ्यानुरूप ही भाषा व शैली का चयन किया है। मृदुला जी के उपन्यास साहित्य में कथ्य की विविधता के साथ–साथ शिल्प की दृष्टि से भी सजगता व उत्कृष्टता का परिचय मिलता है। वातावरण व कथावस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग मिलता है। शिल्प के विभिन्न रूपों व भाषा के वैविध्यपूर्ण प्रयोग – पात्रानुकूलता, प्रसंगानुकूलता, चित्रात्मकता, संकेतात्मकता, बिंबात्मकता, व्यंग्यात्मकता, काव्यात्मकता–आलंकारिकता आदि से इनकी भाषा सजी–सँवरी हुई है। डॉट्स के प्रयोग द्वारा लेखिका ने अपने भावों को पाठक वर्ग के मन की अथाह गहराई तक पहुँचाया है। अपने पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करने, जिज्ञासा व रोचकता को बढ़ाने के लिए तथा पाठक की चिंतन शक्ति को उजागर करने में सक्षम भाषा का प्रयोग किया है। कथावस्तु की मांग के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हुए अपने उपन्यासों में परिवेशानुसार ग्रामीण–नगरीय, शिक्षित–अशिक्षित, बुद्धिजीवी–श्रमिक वर्ग की भाषा का प्रयोग किया गया है। कथ्य की मांगानुसार इनके उपन्यासों में स्थानीय बोली, तत्सम–तद्भव, देशज–विदेशी शब्द, अंग्रेजी शब्द व वाक्य, पारिभाषिक शब्द, भदेस व स्वच्छंद भाषा का प्रयोग यथास्थान पाया जाता है।

मृदुला जी ने अपने उपन्यास लेखन के लिए आवश्यकतानुसार विविध शैलियों का प्रयोग किया है। हिंदी साहित्य की प्रचलित शैलियों–वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, पूर्वदीप्ति, चित्रात्मक, विश्लेषणात्मक, व्यंग्यात्मक शैली के अतिरिक्त खंड विभाजन शैली का भी प्रयोग किया है। इनके उपन्यासों में पात्रों की प्रकृति के अनुरूप संवाद–योजना की गई है। तर्क–वितर्क, सांकेतिक, व्यंग्यपरक, दूरभाषीय, लिखित, भावात्मक, एकपक्षीय, अंतर्विवाद व सामूहिक संवाद प्रयुक्त हुए हैं, जो प्रसंगानुकूल, स्वाभाविक, चुस्त व जीवंत हैं। अपने सूक्ष्म भावों, विचारों व अगोचर तत्त्व को पाठक वर्ग के समक्ष साकार करने के लिए प्रतीकों व बिंबों का प्रयोग करते हुए भाषा को संप्रेषणीय बनाया है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त प्रतीक कथ्य की संप्रेषणीयता व अर्थ की गहराई बढ़ाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके उपन्यास साहित्य की भाषा में प्रयुक्त शब्द हमारी सामाजिक–साँस कृतिक स्थिति को दर्शाते हुए तात्कालिक सामाजिक वातावरण का यथार्थ चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित करते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास साहित्य में वर्तमान समाज की संगतियों–विसंगतियों को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति व औद्योगीकरण के कारण बदलते सामाजिक जीवन–मूल्यों व मानवीय संबंधों में आए परिवर्तनों को उजागर किया है। इनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' तथा 'चित्तकोबरा' में ऐसी नारियों को चित्रित किया है, जो प्रेम और सेक्स में पाप–पुण्य के सम्मोहन से ऊपर उठ चुकी हैं तथा विवाह को मानसिक तुष्टि का साधन भर मानती हैं। मृदुला जी को जो सही नहीं है उसका विरोध करना है और जो सही है उसे आत्मसात करना है। नारी की स्थिति में परिवर्तन तभी आएगा जब उसे जीवन में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया जाएगा। नारी में बलिदान त्याग पीड़ा सहने की शक्ति है किंतु एक सीमा के पश्चात वह अपने आप को स्थापित भी करना जानती है। पाश्चात्य संस्कृति में पढ़ी–लिखी नारी उन मूल्यों को नकारती है, जिन्हें वहाँ मान्यता प्राप्त है। लंबे संघर्ष के पश्चात् अपनी अस्मिता की पहचान स्वयं करती हैं तथा अपने लेखन के माध्यम से स्थापित भी करती हैं। वह पूर्वाग्रहों को त्याग कर लेखन करने का साहस जुटाती है। 'वंशज' उपन्यास दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष व रिश्तों में आई अलगाव की स्थिति को उजागर करते हुए संयुक्त परिवारों के टूटने और नई पीढ़ी की स्वतंत्रता की तलाश की अभिव्यक्ति को हमारे सामने लेकर आता है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के मध्य जो निरंतर टकराहट की स्थितियाँ दिखाई देती हैं, वे आज भी हमारे जीवन में वैसी ही बनी हुई हैं। पुरानी पीढ़ी अपनी परंपराओं से अपने रीति–रिवाजों से जकड़ी हुई है। वह अपने जीवन में किसी भी

प्रकार का बदलाव नहीं चाहती है। इसके विपरीत नई पीढ़ी को यह लगता है कि पुरानी पीढ़ी की सभी चीजें अच्छी नहीं है। हमें उन्हें अपनाने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें कहीं ना कहीं परिवर्तन करना आवश्यक है, तभी हम समाज में आगे बढ़ सकते हैं।

'कठगुलाब' एक सशक्त नारीप्रधान उपन्यास है, जिसमें शोषण व अन्याय के खिलाफ संघर्षरत नारियाँ अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक दिखाई देती हैं। साथ ही इसमें लेखिका ने गाँवों की बेहतरी व रोजगार उपलब्ध करवाने की दृष्टि से लघु उद्योग शुरू करने, पर्यावरण–संतुलन हेतु खेती करने व पेड़–पौधे लगाने जैसे सामाजिक कार्यों से मानो देश की आबादी को गरीबी से ऊपर उठाने व पर्यावरण–संरक्षण की अपनी इच्छा को वाणी दी है। 'अनित्य', चित्तकोबरा', मैं और मैं' उपन्यासों की रचना करके लेखिका ने रेखांकित किया है कि जब तक हमारे समाज में अवसर की समानता नहीं होगी, आर्थिक समानता व सच्चे लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है। देश के अंदर की आर्थिक विषमता के कारण उत्पन्न वर्ग–भेद की समस्या को भूलकर हम विकसित देशों की उपभोक्ता संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इनके उपन्यास साहित्य में निम्न वर्ग के स्वतंत्रता बोध को वाणी दी गई है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में देश की राजनीतिक नीतियों का यथार्थ चित्रण करते हुए दूसरे देशों के सामने निरीह बनने की प्रवृत्ति, कानूनों को लागू करने और उनकी परिणति आदि को उजागर किया है। तात्कालिक समाज के सत्य का यथार्थ चित्रण लेखिका ने किया है। लेखिका कहती हैं कि स्वतंत्रता पूर्व सोचा गया था कि आजादी के बाद बहुत कुछ बदलकर बेहतर हो जाएगा, लेकिन बदला कुछ भी नहीं वैसा ही रहा। इन्होंने जो कुछ देखा, भोगा, जाना और समझा, वही लिखा। इनके उपन्यास पाठक वर्ग को सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं।

–: संदर्भ ग्रंथ सूची :–

(क) आधार ग्रंथ :

1. गर्ग, मृदुला. (2011). उसके हिस्से की धूप. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
2. गर्ग, मृदुला. (2019). वंशज. गुड़गाँवः हिंद पॉकेट बुक्स.
3. गर्ग, मृदुला. (2013). मैं और मैं. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
4. गर्ग, मृदुला. (2013). चित्तकोबरा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
5. गर्ग, मृदुला. (2013). अनित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
6. गर्ग, मृदुला. (2014). कठगुलाब. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ.
7. गर्ग, मृदुला. (2013). मिलजुल मन. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन.
8. गर्ग, मृदुला. (2012). मेरे साक्षात्कार. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन.

(ख) संदर्भ ग्रंथ :

1. अरोड़ा, अतुलदेव. (1974). आधुनिकता के संदर्भ में हिंदी उपन्यास. चण्डीगढ़ः पब्लिकेशन ब्यूरो.
2. ज्योति, डॉ. अमर. (1999). महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि. कानपुरः अन्नपूर्णा प्रकाशन.
3. जैन, अरविंद. (2001). औरत अस्तित्व और अस्मिता (महिला लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन). नई दिल्लीः सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड.
4. वाचुलकर, अशोक. (2006). हिंदी उपन्यासों में महानगरीय अवबोध. जयपुरः श्रुति पब्लिकेशन.
5. व्होरा, आशारानी. (2005). औरत : कल, आज और कल. नई दिल्लीः कल्याणी शिक्षा परिषद.
6. व्होरा, आशारानी. (1988). भारतीय नारी दशा दिशा. नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
7. व्होरा, आशारानी. (1986). भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार. नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
8. मदान, इन्द्रनाथ. (1973). आधुनिकता और हिंदी साहित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
9. सक्सेना, उषा. (1972). हिंदी उपन्यासों का शिल्पगत विकास. इलाहाबादः शोध साहित्य प्रकाशन.
10. यादव, उषा. (1999). हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन.
11. प्रकाश, उर्मिला. (1991). नारी नवजागरण और महिला उपन्यासकारों की स्त्री–पुरुष परिकल्पना. राजस्थानः चिंता प्रकाशन.
12. भटनागर, उर्मिला. (1991). हिंदी उपन्यास में दांपत्य–चरित्र. जयपुरः अर्चना प्रकाशन.
13. सिंह, ऋचा. (2005). नयी कहानी का समाजशास्त्र. नई वाराणसीः विजय प्रकाशन मन्दिर.
14. तिवारी, ए. एस.. (2010). समाजशास्त्र. दिल्लीः मिश्रा पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर.
15. परमार, एन.आर.. (2008). समकालीन हिंदी साहित्य : विविध परिप्रेक्ष्य. गुजरातः वल्लभ विद्यानगर दर्पण प्रकाशन.
16. वेंकटेश्वर, डॉ. एम.. (2002). हिंदी के समकालीन महिला उपन्यासकार. कानपुरः साकेत नगर, अन्नपूर्णा प्रकाशन.
17. लवानिया, एम.एम. व जैन, शषि के.. (2008). समाजशास्त्र के सिद्धान्त. जयपुरः रिसर्च पब्लिकेन्स.
18. दोषी, एस.एल.. (2007). आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक. जयपुरः रावत पब्लिकेशन.
19. शर्मा, डॉ. ओमप्रकाश. (2000). समकालीन महिला लेखन. नई दिल्लीः पूजा प्रकाशन एवं खार्मा पब्लिशर्स.
20. द्विवेदी, कपिलदेव. (2001). भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र. विश्वविद्यालय प्रकाशन.

21. काबरा, कमलनयन. (2005). भूमंडलीकरण विचार, नीतियाँ और विकल्प. नई दिल्लीः प्रकाशन संस्थान.
22. अरोड़ा, डॉ. किरण. (1990). साठोत्तर हिंदी उपन्यासों में नारी. कानपुरः अन्नपूर्णा प्रकाशन.
23. चोखोबा किर्ते, सविता. (2007). आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यास में व्यक्त स्त्री चरित्र. कानपुरः हंसपुरम विनय प्रकाशन.
24. चोखोबा किर्ते, सविता. (2013). हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन. कानपुरः विनय प्रकाशन.
25. शर्मा, कुसुम. (1990). साठोत्तर हिंदी उपन्यास : विविध प्रयोग. जयपुरः श्याम प्रकाशन.
26. मायावंशी, के.एम.. (2011). आधुनिक उपन्यास साहित्य में संस्कृति. कानपुरः ज्ञान प्रकाशन.
27. शर्मा, क्षमा. (1991). स्त्रीत्व विमर्शः समाज और साहित्य. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
28. शर्मा, क्षमा. (1998). स्त्री का समय. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
29. शर्मा, गजानन. (1971). प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी. इलाहबादः सराय खुल्दाबाद, रचना प्रकाशन.
30. गणेशन. (1962). हिंदी उपन्यास का अध्ययन. नई दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स.
31. सोलंकी, गिरीश . (2012). हिंदी साहित्य के विविध आयाम. जयपुरः पैराडाईज पब्लिशर्स.
32. राय, गोपाल. (2002). हिंदी उपन्यास का इतिहास. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
33. त्रिपाठी, घनश्यामधर. (2012). भारतीय सामाजिक व्यवस्था. जयपुरः आस्था प्रकाशन.
34. बांदिवडेकर, चन्द्रकान्ता. (1985). आधुनिक हिंदी उपन्यास सृजन और आलोचना. नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
35. बांदिवडेकर, चन्द्रकान्ता. (1993). उपन्यास स्थिति और गति. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.
36. चतुर्वेदी, जगदीष. (2006). स्त्रीवादी साहित्य विमर्ष. नई दिल्लीः अनामिका पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
37. पारख, जवरीमल. (2007). आधुनिक हिंदी साहित्य—मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन. नई दिल्लीः दरियागंज, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
38. सिंह, ज्योति. (2008). मृदुला गर्ग कृत अनित्य इतिहास और आख्यान का संबंध. बिजनौरः हिंदी साहित्य निकेतन.
39. सिंह, ज्योति. (2000). मृदुला गर्ग और नारी अस्मिता का प्रश्न. बिजनौरः हिंदी साहित्य निकेतन.
40. अग्रवाल, तारा. (2004). मृदुला गर्ग का कथा साहित्य. कानपुरः विद्या प्रकाशन.
41. राय, त्रिभुवन. (2012). साहित्यकारों के साथ संवाद. जयपुरः राज पब्लिशिंग हाउस.
42. सिंह, त्रिभुवन. (1965). हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद. वाराणसीः हिंदी प्रचारक पुस्तकालय.
43. सिंह, त्रिभुवन. (1973). हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग. वाराणसीः हिंदी प्रचारक संस्थान प्रकाशन.
44. झारटे, दंगल. (1986). नये उपन्यासों में नये प्रयोग. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन.
45. मेहरा, दिलीप. (2005). हिंदी उपन्यास के नये आयाम. कानपुरः ज्ञान प्रकाशन.
46. मानधने, धनराज. (1993). कामकाजी नारी : मानवीय संबंधों का विघटन. कानपुरः साकेत नगर, अन्नपूर्णा प्रकाशन.
47. वर्मा, धीरेन्द्र. (1985). हिंदी साहित्य कोष भाग—1. वाराणसीः ज्ञान मण्डल.
48. नवल, नन्दकिशोर. (2003). हिंदी साहित्यशास्त्र. नई दिल्लीः दरियागंज वाणी प्रकाशन.
49. वाजपेयी, नंददुलारे. (2013). आधुनिक साहित्य. इलाहाबादः भारतीय लीडर प्रेस.
50. नगेन्द्र. (1981). भारतीय साहित्य कोश. दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
51. मोहन, नरेन्द्र. (2003). आज की राजनीति और भ्रष्टाचार. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स.
52. जैन, निर्मला. (2009). साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन. दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन.
53. जैन, नीरज. (2001). आधुनिक हिंदी उपन्यास व्यक्तित्व विघटन के निकष. दिल्लीः निर्मल पब्लिकेशन.
54. देसााई, नीरा. (1982). भारतीय समाज में नारी. नई दिल्लीः मैकमिलन इंडिया.

55. गीते, नीहार. (1996). स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप. जयपुरः पंचशील प्रकाशन.
56. श्रीवास्तव, परमानन्द. (1995). उपन्यास का पुनर्जन्म. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.
57. देसाई, पारुकांत. (1994). आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास. कानपुरः चिन्तन प्रकाशन.
58. थॉमस, पी.एम.. (1995). भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास. मथुराः जवाहर पुस्तकालय.
59. जलील, पी.के. अब्दुल. (2010). समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
60. सिंह, पुष्पपाल. (1984). हिंदी साहित्य : आठवाँ दशक. दिल्लीः सूर्य प्रकाशन.
61. सिंह, पुष्पपाल. (2012). भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास. नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन.
62. जोशी, पूरनचन्द्र. (1999). परिवर्तन और विकास के साँस कृतिक आयाम. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
63. टंडन, प्रतापनारायण. (1964). हिंदी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास. लखनऊः हिंदी साहित्य भंडार.
64. शर्मा, प्रदीप. (1990). हिंदी उपन्यासों का शिल्प विधान . कानपुरः अभय प्रकाशन.
65. वर्मा, प्रभा. (1990). हिंदी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप. नई दिल्लीः क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी.
66. सिंह, बच्चन. (1996). हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास. दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन.
67. कोकाटे, बाबासाहेब. (2003). हिंदी साहित्य में महानगरीय नारी जीवन. कानपुरः समता प्रकाशन.
68. गुप्त, बालकृष्ण. (1978). हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ. कानपुरः राजपाल एण्ड सन्स.
69. भट्ट, बिंदु. (1993). अद्यतन हिंदी उपन्यास. अहमदाबादः पार्श्व प्रकाशन.
70. मिश्र, भगवतीशरण. (2010). हिंदी के चर्चित उपन्यासकार. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स.
71. साहनी, भीष्म व अन्य. (2010). आधुनिक हिंदी उपन्यास. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
72. तिवारी, भोलानाथ. (1998). भाषा विज्ञान. इलाहाबादः किताब महल प्रकाशन.
73. ममता. (1999). साठोत्तर हिंदी उपन्यास बदलता व्यक्ति. दिल्लीः पूर्वांचल प्रकाशन.
74. त्यागी, मुक्ता. (2012). समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी विमर्श. कानपुरः अमन प्रकाशन.
75. पाण्डेय, मैनेजर. (2006). साहित्य में समाजशास्त्र की भूमिका. हरियाणाः साहित्य अकादमी.
76. पाण्डे, मृणाल. (1987). स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक. नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन.
77. गर्ग, मृदुला. (2013). कृति और कृतिकार. नई दिल्लीः सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन.
78. गर्ग, मृदुला. (1999). चुकते नहीं सवाल. नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन.
79. पटेल, रमणभाई. (1999). सातवें दशक के हिंदी उपन्यास. हरियाणाः शांति प्रकाशन.
80. नवले, रमा. (2007). मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी. कानपुरः विकास प्रकाशन.
81. राजकिशोर. (1999). स्त्री परंपरा और आधुनिकता. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.
82. यादव, राजेन्द्र. (1968). उपन्यास स्वरूप एवं संवेदना. नई दिल्लीः दरियागंज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
83. मिश्र, राजेन्द्र. (2007). साहित्य की वैचारिक भूमिका. नई दिल्लीः तक्षशिला प्रकाशन.
84. चौहान, रामगोपाल सिंह. (1965). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास. आगराः विनोद पुस्तक मंदिर.
85. शुक्ल, रामचन्द्र. (2006). हिंदी साहित्य का इतिहास. जयपुरः देवनागर प्रकाशन.
86. राय, रामप्रकाश. (2007). फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन. दिल्लीः डी.पी.एस. पब्लिशिंग हाउस.
87. सिंह, रामविनोद. (1980). आठवे दशक के हिंदी उपन्यास. पटनाः अनुपम प्रकाशन.
88. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. (2000). समकालीन हिंदी साहित्य विविध परिदृश्य. नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन.

89. कस्तवार, रेखा. (2006). स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
90. अग्रवाल, रोहिणी. (2011). स्त्री लेखन : स्पप्न और लेखन. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
91. अग्रवाल, रोहिणी. (1992). हिंदी उपन्यास में कामकाजी महिला. नई दिल्लीः दिनमान प्रकाशन.
92. सिंह, लाल साहब. (2005). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में युगबोध. कानपुरः अभय प्रकाशन.
93. कुमारी, विभा. (2014). मृदुला गर्ग और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श. दिल्लीः पंकज बुक्स.
94. विमल. (1987). साहित्य सृजन और जनाकांक्षाएँ. बीकानेरः गंगाशहर धरती प्रकाशन.
95. आनंद, विमलेश. (1990). हिंदी के कुतूहलप्रधान उपन्यास. नई दिल्लीः महरौली, अनुराग प्रकाशन.
96. राय, विवेकी. (1983). हिंदी उपन्यास–उत्तरशती की उपलब्धियाँ. इलाहाबादः राजीव प्रकाशन.
97. राय, विवेक. (2000). समकालीन हिंदी उपन्यास. इलाहाबादः राजीव प्रकाशन.
98. मेंघनानी, विशु. (2005). आधुनिक हिंदी उपन्यास के विकास में लेखिकाओं की भूमिका. वाराणसीः विजय प्रकाशन मन्दिर.
99. प्रभाकर, विष्णु. (1986). जन, समाज और संस्कृति. दिल्लीः शब्दकार प्रकाशन.
100. यादव, वीना. (2006). हिंदी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति. नई दिल्लीः अकादमिक प्रतिभा प्रकाशन.
101. यादव, विरेन्द्र सिंह. (2012). सामयिक समस्याओं से हस्तक्षेप करता वर्तमान का साहित्य. नई दिल्लीः दरियागंज, ओमेगा पब्लिकेशन.
102. यादव, वीरेन्द्र सिंह. (2010). समकालीन परिवेश : मुद्दे, विकल्प और सुझाव. नई दिल्लीः दरियागंज, नमन प्रकाशन.
103. यादव, वीरेन्द्र सिंह. (2011). महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना (विशेष सन्दर्भ 21 वी. सदी का प्रथम दशक). दिल्लीः पैसिफिक पब्लिकेशन.
104. गुल्टू, सचीरानी. (1980). साहित्य दर्शन. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन.
105. खान, शमा. (2007). महिला लेखन में चेतना के बदलते स्वर. जयपुरः राज पब्लिशिंग हाउस.
106. त्रिपाठी, शशिकला. (2006). उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री. वाराणसीः विश्वविद्यालय प्रकाशन.
107. सिंहल, शशिभूषण. (1979). हिंदी उपन्यास : बदलते संदर्भ. दिल्लीः महरौली, प्रवीण प्रकाशन.
108. सिंघल, शशिभूषण. (1970). हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ. आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर.
109. वर्मा, शीलप्रभा. (1987). महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ. कानपुरः विद्या विहार.
110. वेरेकर, शोभा. (2001). साठोत्तर हिंदी उपन्यासों का शिल्प विकास. दिल्लीः पीयूष प्रकाशन.
111. दूबे, श्यामचरण. (2001). भारतीय समाज. नई दिल्लीः नेशनल बुक सेंटर. (अनुवादक–वंदना मिश्र)
112. त्रिपाठी, सत्यदेव. (2000). हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श. कानपुरः अमन प्रकाशन.
113. जैन, सत्या. (2010). जैनेन्द्र और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित नर–नारी संबंध. नई दिल्लीः महरौली, शारदा प्रकाशन.
114. सियाराम. (2012). नई सदी के साहित्यिक व सामाजिक विमर्श. नई दिल्लीः दरियागंज, ओमेगा पब्लिकेशन्स.
115. बत्रा, सुदेश. (2009). प्रतिरोध के स्वर (भारतीय लेखिकाओं के आत्मकथ्य). जयपुरः राज पब्लिशिंग हाउस.
116. बत्रा, सुदेश. (1998). नारी अस्मिता हिंदी उपन्यासों में. जयपुरः रचना प्रकाशन.
117. पचौरी, सुधीश. (2005). आधुनिक साहित्य विमर्श. नई दिल्लीः दरियागंज, वाणी प्रकाशन.
118. सिन्हा, सुरेश. (1972). हिंदी उपन्यास. इलाहाबादः लोक भारती प्रकाशन.

119. वर्मा, सुशील. (1998). आधुनिक समाज की नारी चेतना. आगराः आशा पब्लिशिंग कंपनी.
120. सेठी हरीश कुमार. (2008). जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्लीः संजय प्रकाशन.
121. भारद्वाज, हेतु व सुमनलता. (2005). हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास. जयपुरः पंचशील प्रकाशन.
122. भारद्वाज, हेतु. (2005). हिंदी कथा साहित्य का इतिहास. जयपुरः पंचशील प्रकाशन.

–: शोध पत्र :–

1. नेरे, अनिता. (मई 2010). मृदुला गर्ग की कहानियों में नारी. शोध समीक्षा और मूल्यांकन. I(16), 40–43.
2. मिश्रा, उजाला. (नवम्बर 2018). मृदुला गर्ग के कथा प्रसंगों में नारी चेतना के बदलते स्वरूप का अध्ययन. International journal of humanities and social science research. 4(6), 73–77.
3. श्री, गीतांजलि. (जनवरी–मार्च 2014). यादों का दरियाः कल–कल, छल–छल. समीक्षा. 4(46), 12–14.
4. जिलानी, दिलशाद. (अगस्त 2009). साठ पूर्व हिंदी उपन्यासों में सामाजिक तथा साँस कृतिक मूल्य–विश्लेषण. शोध समीक्षा और मूल्यांकन. II(7), 350–352.
5. रवि, पी. (जनवरी–मार्च 2011). सहजीवन के संदर्भ में समकालीन उपन्यास. पंचशील शोध समीक्षा. 3(11), 98–103.
6. अरोड़ा, प्रीति. (जनवरी–मार्च 2011). मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी–सशक्तिकरण. पंचशील शोध समीक्षा. 3(11), 73–75.
7. नावरिया, मंजू. (अक्टूबर 2012). भूमंडलीकरण एवं बदलते सामाजिक–साँस कृतिक प्रतिमान. शोध समीक्षा और मूल्यांकन. IV(45), 54–56.
8. कुलश्रेष्ठ, मनीषा. (जनवरी–मार्च 2014). मृदुला गर्गः अनवरत रचनात्मक सक्रियता का पर्याय. समीक्षा. 4(46), 6–7.
9. कुलश्रेष्ठ, मनीषा. (जनवरी–मार्च 2014). सच कहूं तो मेरा प्रिय उपन्यास 'मिलजुल मन' ही हैः मृदुला गर्ग. समीक्षा. 4(46), 8–11.
10. शर्मा, मनीषा. (मार्च 2011). समकालीन काव्य और मानवीय मूल्य. शोध समीक्षा और मूल्यांकन. II(26), 70–71.
11. साकेत, मीनू. (सितंबर 2018). स्त्री जीवन की त्रासदी और मृदुला गर्ग के उपन्यास का अध्ययन. international journal of advanced research and development. 3(5), 68–73.
12. साकेत, मीनू. (सितंबर 2018). मृदुला गर्ग उपन्यासों की दुनिया व स्त्री अस्मिता का सच. international journal of hindi research. 4(5), 44–47.
13. राम, विजयता कुमारी. (जुलाई 2018). स्त्री स्वतंत्रता की जिजीविषाः मृदुला गर्ग का साहित्य. remarking an analisation. 3(4), 228–231.
14. कौशिक, शिवशरण. (अप्रैल–जून 2013). बदलता भारतीय समाज और नई सदी के हिंदी उपन्यास. शोध समीक्षा और मूल्याकंन. 5(20), 111–120.
15. डोगरा, सुनिता. (नवंबर 2013). हिंदी साहित्यः द्वंद्वपूर्ण अनुभूतियों की अभिव्यक्ति. शोध समीक्षा और मूल्यांकन. V(58), 76–77.
16. सुप्रिया. (मार्च 2019). वंषज उपन्यास में सामाजिक चेतनाः मृदुला गर्ग. श्रृंखला. 6(7), 90–91.
17. समोता , सुमन. (मार्च 2017). मृदुला गर्ग के उपन्यास कठगुलाब में नारी संवेदना. International Journal of Hindi Research. 3(2), 09–12.
18. पंडित, सुरेष. (नवम्बर 2011). परिवार, विवाह और नैतिकता. वागर्थ. (196), 72–77.
19. शिंदे, सूर्यकांत. (अक्टूबर 2012). प्रतिरोध की संस्कृति और स्त्री. शोध समीक्षा और मूल्याकंन. IV(45), 66–67.

—: सहायक पत्रिकाएँ :—

1. श्रीवास्तव, एकांत, व खेमानी, कुसुम (सं.). (जुलाई 2014). वागर्थ. कोलकताः भारतीय भाषा परिषद.
2. सिंह, कृष्णवीर (सं.). (मार्च 2013). शोध समीक्षा और मूल्यांकन. जयपुरः ए—215, मोतीनगर.
3. राय, गोपाल (सं.). (2014, जनवरी—मार्च). समीक्षा. नई दिल्लीः जटवाड़ा, एन.एस. मार्ग, दरियागंज.
4. नंदवाना, नवीन.(सं.).(2016, जून). समवेत. उदयपुरः हिमांशु पब्लिकेशन्स
5. नंदवाना, नवीन.(सं.). (2017, जुलाई—दिसंबर). समवेत. उदयपुरः हिमांशु पब्लिकेशन्स.
6. नंदवाना, नवीन.(सं.).(2019, जनवरी—जून). . समवेत. उदयपुरः हिमांशु पब्लिकेशन्स.
7. शर्मा, ब्रजेश्वर (प्र.सं.). (2018, जुलाई—सितंबर). युनियन सृजन. (भाषा और बोली विशेषांक). मुंबईः यूनियन बैंक ऑफ इंडिया.
8. जैन, रमा (सं.). (अप्रैल 2013). नया ज्ञानोदय. भारतीय ज्ञानपीठ.
9. व्यास, वेद (सं.). (मार्च 2013). मधुमती. उदयपुरः राजस्थान साहित्य अकादमी.
10. भारद्वाज, हेतु (सं.). (अप्रैल—जून 2014). अक्सर. जयपुरः ए— 243, त्रिवेणी नगर.
11. भारद्वाज, हेतु (सं.). (जनवरी—मार्च 2012). पंचशील शोध समीक्षा. जयपुरः पंचशील प्रकाशन.
12. भारद्वाज, हेतु (सं.). (अप्रैल—जून 2014). अक्सर. जयपुरः ए— 243, त्रिवेणी नगर.

—: शब्द कोश :—

1. वर्मा, धीरेन्द्र. (2020). हिंदी साहित्य कोश. वाराणसीः ज्ञानमण्डल प्रकाशन.
2. वर्मा, धीरेन्द्र. (1993). हिंदी साहित्य कोश भाग—1. वाराणसीः ज्ञानमण्डल प्रकाशन.
3. श्री, नवल जी. (1988). नालंदा विशाल शब्द सागर. नई दिल्लीः करोल बाग, आदर्श बुक डिपो.
4. वर्मा, रामचंद्र. (संशोधन एवं परिवर्द्धन — बदरीनाथ कपूर) (1999). लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन.
5. दास, श्यामसुंदर. (1987). हिंदी शब्द सागर कोश. काशीः नागरी प्रचारिणी सभा.
6. बाहरी, हरदेव. (1985). वृहद अंग्रेजी—हिंदी कोश भाग—2. वाराणसीः ज्ञानमण्डल प्रकाशन.
7. बाहरी, हरदेव. (2011). हिंदी शब्दकोश. दिल्लीः राजपाल एंड सन्स.

वेबसाइट्स

www.hindisamay.com

www.sahityakunj.net

www.webdunia.com

ISSN - 2348-2397
APPROVED UGC CARE
SHODH SARITA
Vol. 7, Issue 28, October to December 2020
Page Nos. 220-224
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

अतीत के माध्यम से वर्तमान की कथा कहता – ''मिलजुल मन''

रामरती मांजू*
डॉ. मीता शर्मा**

ABSTRACT

हिन्दी साहित्य जगत में महत्तवपूर्ण स्थान रखने वाली बहुमुखी प्रतिभा की धनी मृदुला गर्ग का सातवां उपन्यास है, 'मिलजुल मन'। इन्होने सन् 2009 में 'मिलजुल मन' की रचना द्वारा हिन्दी साहित्य में अमूल्य योगदान दिया है। सन् 2013 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'मिलजुल मन' मृदुला जी के लेखन की तरोताजगी व जिंदादिली की मिसाल पेश करता है। इसका कथाकाल आजादी के तुरन्त बाद का है। उपन्यास का कथ्य गुल व मोगरा नामक दो बहनों को लेकर सृजित किया गया है, जिनमें से मोगरा ने अपने पिता बैजनाथ जैन के जीवन–व्यवहारों के पचास के दशक के बीच के वर्ग की जिन्दगी का जिक्र करते हुए धीरे–धीरे आ रहे सामाजिक बदलाव से स्वतंत्र भारत में उसकी छवि की बारीकि से पडताल की है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद की राजनीतिक और आर्थिक विषमता की नीति का, व्यक्ति की बदलती हुई सोच का परत–दर–परत उद्घाटन करता है, 'मिलजुल मन'। स्वतंत्रता पश्चात के भारत का, जनता द्वारा देखे गए सुखद स्वप्न व अपेक्षाओं के टूटकर बिखरने की कथा है 'मिलजुल मन'।

Keywords:– *मृदुला गर्ग, 'मिलजुल मन', कथ्य, अतीत, वर्तमान, सामाजिक–बदलाव, स्वतंत्रता–पश्चात, स्वप्न, अपेक्षा।*

25 अक्टूबर 1938 को कोलकता में एक संभ्रत, उदारचेता और सम्पन्न परिवार में जन्मी मृदुला गर्ग का हिन्दी साहित्य जगत में महत्तवपूर्ण स्थान है। बहुमुखी प्रतिभा की धनी मृदुला जी ने सृजनात्मकता को अपनी जिंदगी में अन्य चीजों से अधिक महत्तव दिया तथा अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम लेखन को बनाया। प्रारम्भ से ही लेखन को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम मानने वाली मृदुला जी के अध्ययन और अनुभव के समन्वय से साहित्य दृष्टि निर्मित हुई। इनका कहना है कि ये किसी विशेष विचारधारा से प्रेरित होकर नहीं लिखती हैं, बल्कि वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवन दृष्टि के आधार पर लिखती है। इनका कहना है कि, ''मैं किसी विचारधारा से प्रेरित होकर नहीं लिखती, बल्कि वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवन दृष्टि के आधार पर लिखती हूं। मानसिक स्वाधीनता एक ऐसा मूल्य है जो आधुनिक काल में ही अधिक विकसित हुआ है तथा मेरे साहित्य की विषय–वस्तु रहा है। 1 तथा ''जीवन में जो कुछ घटता है, जो गहरे छूता है, जो व्यथित होता है, नाकाबिले बर्दाश्त होता है सभी तो मन के गुप्त कोनों में छिपे होते है।.............फोडों की तरह अनुभव दुखते–टीसते हैं। धीरे–धीरे पकते हैं और आखिर एक दिन फूट ही जाते है, कहानी, उपन्यास के रूप में। जो कुछ सोचती हूं, महसूस करती हूं, जो व्यवस्था मुझमें वितृष्णा जगाती है, अन्याय जो क्रोध का उफान लाता है, वही उपन्यासों में कहानियों का कथ्य है। 2 इन्होने अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य को अनिवार्य माना है तथा इसके साथ ही सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत अन्याय के प्रति अपना आक्रोश भी प्रकट करते हुए दिखाई देती है।

मृदुला गर्ग ने लिखना बहुत देर से शुरू किया था। इन्होंने शादी के बाद 32 साल की उम्र में लिखना प्रारम्भ किया तथा आठवें दशक के सशक्त उपन्यास साहित्य में एक अच्छे साहित्यकार के रूप में अपनी

*वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)
**सह आचार्य, हिन्दी, राजस्थान विश्वविद्याल, जयपुर, शोध–निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

पहचान बनाते हुए कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, व्यंग्य–संग्रह, यात्रा–संस्मरण आदि गद्य विधाओं पर अपना पूर्ण अधिकार जामाया। इनकी पहली कहानी ''रूकावट'' सारिका पत्रिका में सन् 1971 में कमलेश्वर जी के संपादन में छपी। अपने लेखन का प्रारम्भ इन्होने कहानी द्वारा किया तथा सन् 1975 में इनका पहला उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' प्रकाशित हुआ इनके अब कुल 7 उपन्यास प्रकाशित हो चुके है, जिनमे 'उसके हिस्से की धूप' 1975 'वंशज' 1976, 'चित्तकोबरा' 1979, 'अनित्य' 1980, 'मैं और मैं' 1984, 'कठगुलाब' 1996, और 'मिलजुल मन' 2009 में प्रकाशित हुए। अपने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास को सर्वाधिक सशक्त माध्यम मानने वाली मृदुला जी मानती हैं कि यही वह माध्यम है, जिसमें वे अपनी अभिव्यक्ति को पूरे विस्तार के साथ रख पाती है। इन्होने कथा साहित्य में उपन्यास के क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी हैं। राजनीतिक परिवेश, आर्थिक असमानता, शोषण, दाम्पत्य–जीवन का तनाव, अंतछर्द्वद्व, वर्ग–संघर्ष जैसी अनेक समस्याओं को वास्तविक रूप में अभिव्यक्त किया है।

मृदुला गर्ग का नवीनतम उपन्यास है, 'मिलजुल मन' जो सन् 2009 में प्रकाशित हुआ। चित्त्कोबरा 1979 तथा कठगुलाब 1996 से ख्याति प्राप्त करने वाली मृदुला जी ने 'मिलजुल मन' सन् 2009 की रचना करके हिन्दी उपन्यास जगत को और अधिक समृद्ध किया है। सन 2013 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'मिलजुल मन' इनके लेखन की तरोताजगी वह जिंदादिली की मिसाल है। अतीत और वर्तमान के घटनाक्रम के बीच घुसपैठ करना उपन्यास की विशिष्टता हैं। उपन्यास का कथ्य गुल व मोगरा नामक दो बहनों को लेकर सृजित किया गया है। इन दों नायिकाओं में एक है मोगरा, जिसने अपने पिता बैजनाथ के जीवन व्यवहार से पचास के दशक के बीच के वर्ग की जिंदगी का जिक्र करते हुए धीरे–धीरे आ रहे सामाजिक बदलाव और स्वतंत्र भारत में उसकी छवि की बारीकी से पडताल की है। अतीत और वर्तमान घटनाचक्र के बीच घुसपैठ करते हुए इन्हीं हालातों के बीच मोगरा अपने बचपन के चरित्रों को भी देखती है। उपन्यास की दूसरी नायिका गुलमोहर की शख्सियत का विकास इन्हीं चरित्रों में कनकलता, बैजनाथ, मोगरा, डॉक्टर करणसिंह, मामाजी, जुग्गी चाचा, दादाजी आदि महत्वपूर्ण व अतिस्मरणीय खासियत रखते है। गुल एक लडकी, मनुष्य, प्रेमिका, पत्नी और कथाकार आदि भिन्न–भिन्न किरदारों में महत्तवपूर्ण भूमिका निभाते हुए नजर आती है। गुल की विशेषता मृदुला जी ने मोगरा के इस कथन के माध्यम से व्यक्त की है ''आम होना चाहने वाला इंसान कब खास बनने पर मजबूर हो जाए कौन कह सकता है। बहुत कुछ छूटा उससे पर छाता न छूटा। पर इससे यह कयास न लगा लेना कि वह जिंदगी से खुद को बचाकर चली। चेहरे की रंगत बचाना एक बात है, जिंदगी को आंधियों से बचाना दूसरी। मेरे हिसाब से जो डरकर भागने के बजाय, ताप–लू–गर्दिश को अपने हक में कर ले, वह है गुलमोहर। शोख और लचीला एक साथ। 3 गुल के जीवन और व्यक्तित्व की अनगिनत परतें लेखिका और मोगरा के संवादों के माध्यम से मुख्य कथ्य के रूप में अभरते हैं। उपन्यास के केंन्द्र में जो दर्द की अभिव्यक्ति है, वह गुल के लिए ही है। गुल का आकर्षक व्यक्तिव, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान ऐसा की पिता जिस मिस्टर और मिसेज पीटरसन के आगे–पीछे घूमते रहते थे, उन्हें ऑक्सफोर्ड में पेरसि मिलाकर उन्हीं की भाषा में जब डांटा तो उनकी हेकडी निकल गई तथा पिता बैजनाथ गर्व से फूल गए। गुल का विवाहित जीवन में त्रासदी से गुजरना भी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। शराबी–कबाबी पति की फितरन न बदलती थी, और न बदली। जुडवा बच्चों व गृहस्थी का बोझ अकेले ढोती गुल जीवट के साथ जीवन की प्रतिकूलताओं से जूझ रही है। ऊपर से खुश दिखने वाली गुल अंदर से त्रासद जिंदगी जी रही है। मोगरा के जीवन में भी कोई स्वच्छंदता दिखाई नहीं देती है। उपन्यास की इन दोनों बहनों के माध्यम से स्त्री की व्यथा को स्वतंत्र रूप से चित्रित किया गया है।

'मिलजुल मन' में जीवन और साहित्य की समानांतर यात्रा एक–दूसरे में गुंथकर, एक–दूसरे के वजूद की तह बन गई है। इसमें दो बहनों की कथा के माध्यम से प्रत्येक नारी के निजी जीवन की अंतरंग कथा को अभिव्यक्त किया गया है। दोनों बहनों के बचपन व कौमार्य के साथ–साथ वैवाहिक जीवन के माध्यम से भारतीय मध्यम वर्गीय महिला की समाज में स्थिति को चित्रित किया है। पिता के घर से पति के घर तक में स्त्री–जीवन के सफर का सफल चित्रण किया गया है। इनके माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है कि जिंदगी हमेशा सीधी रेखा में नहीं चलती तथा न ही कोई भावना स्थाई होती है। जीवन की तमाम विसंगतियों के बावजूद दोनों बहने अपने व्यक्तित्व का एक निजी क्षेत्र सुरक्षित रखती है, वह है लेखनकार्य अर्थात सृजनात्मकता।

मृदुला गर्ग ने 'मिलजुल मन' की कथा को कहने के लिए एक विशेष प्रविधि का इस्तेमाल किया है। इसमें

लेखिका अनेक विषयों को एक साथ लेकर चली है। यहां पर न तो सिद्धान्त छूट रहे हैं पूंजीवाद के और न साम्यवाद के। आजादी के तुरन्त बाद के होनेवाले घटनाचक्रों का उल्लेख करते हुए एक नवीन वर्ग की परिकल्पना की गई है। जिसकी आंखों में नवीन भारत का सपना है। उपन्यास में तीन कथावस्तुएं एक–दूसरे में घुल–मिलकर चलती है। प्रथम : गुल तथा मोगरा दो बहनों के बचपन व कौमार्य की कथा मुख्य है। जिसमें लेखिका ने मोगरा के रूप में मृदुला गर्ग तथा गुलमोहर के रूप में मंजुल भगत के प्रतिरूप को चित्रित किया है । मंजुल भगत की रचनाओं – 'अनारों' व 'बेगाने घर में' का उल्लेख गुल की रचनाओं के रूप में किया है। द्वितीय : कथा में समकालीन राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं को चित्रित किया है तथा तृतीय : कथा में स्वातंत्र्योत्तर भारत के उच्च वर्ग को चित्रित किया गया है। लेखिका ने यदि एक और गुल व मोगरा के बचपन के विविध परिदृश्यों व उस समय की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थितियों से परिचित कराया है, तो दूसरी ओर स्वतंत्रता पश्चात की भारतीय राजनीतिक व सामाजिक स्थिति को भी चित्रित किया है। पचास के दशक के मध्यम वर्गीय जीवन और पारिवारिक–सामाजिक स्तर पर आने वाले बदलाव और उसी के सामानान्तर स्वतंत्र भारत के मूल्यों की गहन अभिव्यक्ति विविध पात्रों के माध्यम से हुई है। उपन्यास के सभी पात्र अलग–अलग वजूद होते हुए भी कहीं न कहीं आपस में मिले हुए है। इनके मन रूपी मनके मिलजुल कर उपन्यास की कथा–संरचना का निर्माण करते है।

मृदुला गर्ग ने प्रचलित रूढियों के भंजन से लेकर स्त्री के बदलते तेवर को अपने कथानकों के केन्द्र में रखा है। प्रस्तुत उपन्यास में 'मन' का अर्थ बहुआयामी है। वह दिल भी है तो मस्तिष्क भी है। चेतना व कल्पना–संसार भी है। अपने अस्तित्व को सही अर्थ में पाने के लिए अपने मन के साथ मिलकर काम करना व अपने मन को पहचानना आवययक होता है। प्रस्तुत उपन्यास में भी आंतरिक जीवन में औरत और मर्द में भेद न करके दोनों को अभिव्यंजित किया गया है तथा देश के नवस्थापित स्वरूप की व्यंजना भी इसी रूप में की गई है कि वह अंततः मानवीय है। किसी एक गुट, वाद या लिंग का पक्षधर नहीं है। आजादी के तुरंत बाद का काल, जो मोहभंग का काल था, उसी को ध्यान में रखकर लेखिका ने उपन्यास के कथाकाल को गुना–बुना व रचा है। इसमें कई कथाएं मिलकर एक हो गई हैं और उन सभी को मिलाकर उपन्यास की रचना की गई है। लेखिका कहती है कि ''मेरे वक्त और मुल्क की, मेरे किरदारों की कहानियां एकमएक हुईं और बन गईं यह किस्सा, जिसका नाम है 'मिलजुल मन'। 4 लेखिका ने अपने मन की पीड़ा को उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 'मिलजुल मन' में लेखिका ने एक ओर तो दो बहनों के जीवन के अंतरंग प्रसंगों और जीवन के उतार–चढावों को अभिव्यक्त किया है, तो दूसरी तरफ इसमें देशकाल आजादी पूर्व से लेकर सत्तर के दशक तक के राजनीतिक और आर्थिक विश्लेषण से संबद्ध स्थिति को मोगरा व बैजनाथ के माध्यम से चित्रित किया है। 'अनित्य' उपन्यास की ही भांति द्वंद्वात्मक स्थितियों का वृहत भावबोध प्रस्तुत उपन्यास में भी बैजनाथ में दृष्टिगोचर होता है। लेखिका का यह कथन कि ''बैजनाथ जैन ने जुबान की लताफत ऐसी पाई थी कि मर्द और औरत को यकसां काबू कर लें। कूटनितिज्ञ रहे होते तो चोटी पर होते। कूटनीतिज्ञ आधा काम जबान के लचीलेपन से ही साधता है, देश का हो या निजी उनके साथ दिक्कत थी तो यह कि, ऊपर से पुख्ता नजर आते पर भीतर–भीतर दुविधा में हिचकोले खा रहे होते। दुविधा में रहना, आप जानों, जेहनी आदमी की पहली पहचान है।'' 5 तथा देश की दुविधायुक्त स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए लेखिका कहती हैं कि ''दुविधा कई मुद्दों को लेकर थीं। पूंजीवाद और साम्यवाद के उसूलों के बीच, जिनमें से एक को भी छोडने को, हम तैयार न हुए। सोवियत संघ और नाटो से दोस्ती के बीच जिन्हें हमने सम पर बनाए रखने का रास्ता चुना।'' 6

मृदुला जी ने 'मिलजुल मन' में आजादी के तुरंत बाद के मोहभंग के काल को कथाकाल के रूप में चुना है। इनका कहना है कि ''पहला सपना सौ बरस तक देखा गया था और टूटनें में एक पल नहीं लगा था। आजादी के बाद का मासूमियत और दुविधा के घालमेंल से बना सपना, कुल दस–बीस बरस देखा गया और देखने के दौरान टूटकर बिखर गया।'' 7 आजादी–पश्चात के भारत की जो कल्पना की गई थी, जो सपना देखा गया था, वह पूरा नहीं हो पाया था। देश के आजाद होने का सपना तो पूरा हुआ, लेकिन आजादी पश्चात भारत के जिस स्वरूप की कल्पना की गई थी, वह पूर्ण नहीं होता है। लेखिका कहती है कि '' सदी भर पहले देखा आजादी का सपना पूरा हुआ था। पर आजादी का जो सुंदर सजीला, अहिंसक चेहरा हमने खयालों मे तैयार किया था, मुल्क के तक्सीम होने के साथ, सपने की तरह तिड़ककर बिखर गया। सपने के टूटने पर हमने असलियत में जीना कबूल नहीं किया, नया सपना पाल लिया। दुविधा में आ

मिला मासूमियत भरा यकीन कि हम गुटनिरपेक्ष और मिली–जुली अर्थव्यवस्था का ऐसा संसार बसाएंगे कि दुनिया हमारा लोहा मानेगी। हम विश्वगुरू कहलाएंगे।'' 8 स्वतंत्रता–पश्चात के भारत में आर्थिक दैन्य, विदेशी पंजीवादीयों द्वारा निवेश, विभाजन से उपजी त्रासदी, सांप्रदायिकता आदि की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

मृदुला जी ने प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया है कि देश कि जो स्थिति आजादी–पूर्व थी, आज भी वहीं स्थिति दिखाई देती है, अंतर केवल इतना है कि उस समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था तथा एक विदेशी ताकत के हाथ में हमारे देश की सत्ता की बागडोर थी और आज सत्तारूढ राजनीतिक दलों के नेता हमारे अपने ही देश की उपज हैं। देश की वर्तमान स्थिति जैसे – राजनीतिक अस्थिरिता, भ्रष्टाचार व अराजकता को उपन्यास में बखूबी अभिव्यक्त किया गया है। आज भी सामान्य जनता की मूलभूत आवश्यकताएं पूर्ण नहीं हो पाती हैं तथा सत्ता की लड़ाई में आम जनता पिस रही है। स्वतंत्रता पश्चात निर्मित नवीन मध्यम वर्गीय भारत की कथा को चित्रित करते हुए प्रस्तुत उपन्यास भारत को विश्वगुरू के रूप में देखने का आकांक्षी है। लेखिका ने स्वतंत्र भारत में उच्च वर्ग की परिवर्तित होती हुई मानसिकता को चित्रित करने के साथ–साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक स्थितियों को अभिव्यक्त किया है। स्वतंत्रता पश्चात की अवसरवादी राजनीति व भ्रष्ट आर्थिक व्यवस्था की ओर ध्यानाकृष्ट किया है।

मृदुला जी ने उपन्यास के कथ्य में दो स्त्री पात्रों अर्थात गुल व मोगरा की मुख्य कथा के साथ–साथ समकालीन सामाजिक यथार्थ को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है तथा साथ ही वर्तमान जीवन की विसंगतियों और समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। लेखिका कहती है कि ''पाखण्ड हमारा कौमी जज्बा हमेशा से रहा है। पर इतनी धूमधाम से दुविधा को मूल्य बनाकर, पहले कायम नहीं किया गया था। तब भी नहीं, जब पूरा मुल्क, हिंसा–अहिंसा के उसूलों के बीच त्रिंशकु–सा झुल रहा था।'' 9 तथा ''उन दिनों पूरी दुनिया दो खेमों में बंटी हुई थी। साम्यवादी खेमा और धुर पूंजीवाद खेमा। .... नए आजाद हुए मुल्क के हमारे पहले वजिरेआजम ने मौलिक भारतीय फलसफे की राह अपनाई। न इधर के, न उधर के। सियासी जुबान में उसे एक तरफ, गैरमुतास्सिर हिकमत कहा गया तो दूसरी तरफ मिला–जुला आर्थिक कायदा।'' 10 तथा ''पचास की दहाई में शराफत से डॉलर कमाना आम आदमी के सोच से परे था। यूं काफी अर्से तक दिखावटी समाजवाद के तहत बने फेरा कानून के चलते, हाकिम और ऊँचे तबके के लोग, गैरशरीफ ढंग से ही डॉलर कमाते रहे।'' समाज में व्याप्त भ्रष्ट अर्थव्यवस्था व दलालों–बिचौलियों द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण की ओर भी लेखिका ने हमारा ध्यानाकृष्ट किया है। '' कोई खुद कातता–बुनता थोडा था। स्वदेशी के नाम पर बदहाल बुनकरों को, जमकर लूटा जा रहा था। वाजिब से बहुत कम कीमत पर खादी बुनवाई जाती और फैशनबुल छापे मार, महंगे दाम बेची जाती। तमाम फायदा दलालों–बिचौलियों का। कपड़ा मिल भी देसी, बुनकर भी, पर यूनियन बनाए मिल मजदूरों को उस तरह अंगूठे के नीचे नहीं किया जा सकता था, जैसे अलग–अलग पडे, खस्ताहाल बुनकरों को।'' 12 यहां लेखिका ने मजदूर वर्ग के शोषण की ओर हमारा ध्यानाकृष्ट किया है तथा यह अभिव्यक्त किया है कि पूंजीपति वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण स्वतंत्र भारत में भी उसी प्रकार जारी है जिस प्रकार अंग्रेजों के समय गुलाम भारत में किया जाता था।

मृदुला जी ने इस उपन्यास के कथ्य को आपबीती और जगबीती दोनों माना है। अतीत और वर्तमान घटनाचक्र के बीच घुसपेठ करना इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता है। यह आत्मकथात्मक व पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया उपन्यास हैं, परन्तु लेखिका ने इसे आत्मकथा नहीं माना है। मृदुला जी ने एक नजदीकी रिश्ते और सशक्त कथाकार के बीच किस्सागोई व संवेदनशीलता से आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास की कथावस्तु को गुना व बुना है। भाषा व शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो गुना व बुना है। भाषा व शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो 'मिलजुल मन' की भाषा खडी बोली हिन्दी है, जो उर्दू शब्दों को बहुतायत से ग्रहण करते हुए चली है। अपने जीवनानुभवों से युक्त, अपने अनुकूल अभिव्यक्ति की सार्थक व सशक्त भाषा शैली का प्रयोग किया है। भाषा में ऐसी किस्सागोई व रवानी तथा अतीत और वर्तमान की गहरी घुसपैठ इनके अन्य उपन्यासों में देखने को नहीं मिलती। यह एक अलग ढंग व विशिष्ट शैली में लिखा गया उपन्यास है, जो सामान्य पाठक वर्ग के लिए समझने व कथा से जुड़े रहने के लिए कुछ जटिल है। उर्दू शब्दों की बहुलता तथा अतीत–वर्तमान के बीच की अत्यधिक घुसपैठ ने उपन्यास की रोचकता में बाधा उत्पन्न की है। इसकी कथावस्तु वर्तमान को अभीव्यक्त करते हुए अतीत में तथा अतीत को अभिव्यक्त करते हुए वर्तमान में

पहुंच जाती है, जो पाठक की रोचकता व मुख्य कथा से तारतम्यता में बाधा उत्पन्न करती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'मिलजुल मन' में उर्दू शब्दों की बहुलता होने के कारण दुरूहता होने के बावजूद भी यह एक विशिष्ट उपन्यास है, जो वास्तव में वर्तमान दौर के हिन्दी साहित्य में बहुत कुछ नया जोड़ता है। जीवन के विविध क्षेत्रों से अनुभवों को बटोरते हुए, आजादी के मोहभंग से उत्पन्न राजनीतिक व आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए, वर्तमान समाज मे व्याप्त राजनीतिगत, अर्थगत व समाजगत परिस्थितियों को पाठक के समक्ष रखने का सफल प्रयास किया गया है। इसके माध्यम से लेखिका ने समकालीन समाज के यथार्थ को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। दो स्त्री पात्रों की मुख्य कथा के साथ ही वर्तमान जीवन की विसंगतियों, समस्याओं तथा सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। यह उपन्यास आंतरिक जीवन में औरत–मर्द मे भेद न करके दोनों को अभिव्यंजित करता है। तथा देश के नवस्वाधीन स्वरूप की व्यंजना भी मानवीय रूप में करता है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद की राजनीतिक और आर्थिक विषमता की नीति का, व्यक्ति की बदलती हुई सोच का, परत–दर–परत उद्घाटन करता है, 'मिलजुल मन'। स्वतंत्रता पश्चात के दशकों में समाज में आने वाले बदलावों की, बदली हुई सत्ता में राजनीति के रंग–ढंग की, आर्थिक प्रक्रिया के बदलते हुए स्वरूप की, नई चुनौतियों के साथ बदलते हुए सामाजिक–पारिवारिक ढांचे की, तात्कालिक तीव्र हलचलों, बंटवारा, विस्थापन, मोहभंग तथा आर्थिक व सामाजिक जद्दोजेहद की अभिव्यक्ति हैं 'मिलजुल मन'।

संदर्भ

1. यादव, वीरेन्द्र सिंह. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना. दिल्ली : पैसिफिक पब्लिकेशन. 2011. पृष्ठ सं. 46.
2. वही, पृष्ठ संख्या – 46.
3. गर्ग, मृदुला. मिलजुल मन. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. 2013. पृष्ठ संख्या – 11.
4. वही, पृष्ठ संख्या – 10.
5. वही, पृष्ठ संख्या –33.
6. वही, पृष्ठ संख्या – 09.
7. वही, पृष्ठ संख्या –10.
8. वही, पृष्ठ संख्या – 9–10.
9. वही, पृष्ठ संख्या – 38.
10. वही, पृष्ठ संख्या – 38.
11. वही, पृष्ठ संख्या – 130.
12. वही, पृष्ठ संख्या – 235.
13. समीक्षा. संपादक–सत्यकाम. नई दिल्ली : 3320–21 जटवाड़ा नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज. जनवरी–मार्च, 2014.

ISSN - 2229-3620
APPROVED UGC CARE
PIS
SHODH SANCHAR BULLETIN
Vol. 10, Issue 40, October - December, 2020
Page Nos. 268-272
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

नई सदी की महिला उपन्यासकार व नारी–अस्मिता (मृदुला गर्ग के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

❒ रामरती मांजू*
डॉ. मीता शर्मा**

ABSTRACT

नारी द्वारा अपने ''स्व'' की पहचान कराना, अपने विचारों में परिवर्तन लाना तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना ही नारी–अस्मिता है। नारी–अस्मिता का स्वर मुख्यतः नारी–शिक्षा व नारी की आर्थिक–आत्मनिर्भरता कीं मांग करता है। नारी में जागृत चेतना एवं संघर्ष को अभिव्यक्ति देने वाली बहुमुखी प्रतिभा की धनी महिला कथाकार मृदुला गर्ग की रचनाओं में नारी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता और परम्पराओं के बंधन सें मुक्ति के लिए नारी–शिक्षा, आत्मविश्वास, आर्थिक–आत्मनिर्भरता और अस्तित्व को महत्तव देते हुए तथा पुरानी विचारधाराओं और नारी–विकास में बाधक परम्पराओं का विरोध करते हुए दिखाई देती है। इनका नारी सशक्तीकरण से तात्पर्य मानस को सशक्त करने, चेतना, प्रज्ञा, अस्मिता को सशक्त करने से है। नारी–जीवन को दयनीय बना देने वाले परम्परागत मूल्यों का विरोध करते हुए दिखाई देती है। इनके उपन्यासों की नारी समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनानेवाली, सामाजिक नैतिकता के पुराने मूल्यों का विरोध करनेवाली तथा प्रतिरोध की भावना से युक्त नारी है। इनका प्रमुख ध्येय नारी–व्यक्तित्व के प्रति चेतना जागृत करना है।

Keywords:– अस्मिता, चेतना, अस्तित्व, शिक्षा, आर्थिक–आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, प्रतिरोध, नारी–स्वतंत्रता

नारी समस्त मानवीय सौंदर्य एवं चेतना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है, साथ ही सृष्टि का मूल भी नारी ही है। सृष्टि के उषाकाल से ही नारीत्व की चिरंतधारा पुरूष के आकर्षण और उपेक्षा के कगारों के बीच कभी द्रुत, कभी मंथर गति से प्रवाहमान रही है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति युगीन आदर्शो और जीवन–मूल्यों के साथ–साथ परिवर्रतित होती रही है। पुरूष के समान ही उसमें भी क्षमताएं और दुर्बलताएं है। वह भी समाज की सहज मानव प्राणी है। नारी–अस्मिता से तात्पर्य है – एक नारी की विशिष्टता अथवा पहचान। अपने 'स्व' की पहचान कराना, अपनी व्यक्ति–अस्मिता की पहचान कराना, अपने व्यक्तित्व की पहचान कराना, अपने विचारों में परिवर्तन लाना तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने से है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह पुरूष हो या नारी, अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग होता है क्योंकि उसका व्यक्तित्व ही समाज में उसकी पहचान कराता है। नारी भी पुरूष की ही भांति स्थूल सृष्टि का अविभाज्य अंग है। सदियों से पुरूषप्रधान समाज के अत्याचारों का शिकार रही नारी, कहने को तो आज स्वतंत्र है परन्तु बराबर की स्वतंत्रता न तो उसके पति को, न उसके परिवार को, और न ही समाज को स्वीकार्य है।

आज की नारी परिवार व समाज में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। वह संघर्ष चाहे अर्थ के लिए हो, चाहे अस्मिता के लिए हो या फिर अधिकारों की प्राप्ति के लिए हो। नारी–अस्मिता का स्वर मुख्यतः नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता की मांग करता है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबिनी नारी आत्मसम्मान से युक्त स्वाभिमानिनी होती है। नारी को कमजोर बनाने में समाज की आचार संहिताओं के साथ ही उसका पराश्रित होना भी जिम्मेदार होता है।युग परिवर्तन के साथ–साथ परिवर्तित मूल्यों ने नारी की चेतना को विभिन्न स्तरों पर आंदोलित किया है। आज का युग संघर्ष का युग है जिसमें समाज में सभी को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड रहा है तथा आज की नारी भी इसका अपवाद नहीं है। वह मात्र भावनाओं के सहारे अपना जीवन व्यतीत नहीं करना

*शोधार्थी (पीएच डी) हिंदी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
**सह आचार्य, हिन्दी, राजस्थान विश्वविद्याल, जयपुर, शोध–निर्देशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

चाहती है, अपितु उसका भी व्यावहारिक दृष्टिकोण है, वह भी पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है, न कि उसकी अधीनता में जीवन व्यतीत करना।

नई सदी की मलिा उपन्यासकारों के उपन्यासों में अनेक ऐसे नारी पात्रों को चित्रित किया गया है, जो नारीवादी चेतना को वहन करते हैं। इन्होंने पुरानी जीर्ण–शीर्ण और नारी–स्वातंत्र्य में बाधक मान्यताओं का विरोध किया है। इन चिर्चित महिला उपन्यासकारों में चित्रा मुदगल, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, अलका सरावगी, राजी सेठ, नमिता सिंह, नासिरा शर्मा, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, कृष्णा अग्निहोत्री, सूर्यबाला, पदमा सचदेव, क्षमा कॉल आदि प्रमुख स्थान रखती हैं। ये सभी लेखिकाएं नारी की स्वतंत्रता व अस्तित्व के महत्तव पर बल देती है। इनके उपन्यासों में नारी पुरूष विरोधी न होकर पुरूषप्रधान संस्कृति के अत्याचारों के विरोध में दिखायी देती है। इनका मानना है कि नारी तब तक मुक्त नहीं हो पाएगी, जब तक पुरूषप्रधान समाज के अत्याचारों से मुक्त नहीं जो जाएगी। नारी–मुक्ति या स्वतंत्रता के लिए ये सभी लेखिकाएं समाज की सोच में परिवर्तन आवश्यक मानती हैं तथा इनका मानना है कि नारी मुक्ति समाज की व्यवस्था के भ्रष्ट स्वरूप और रूढ अंधविश्वासों से मुक्त होने पर ही संभव है।

नई सदी की महिला लेखिका नारी को जीवन से भागने के लिए प्रेरित नहीं करती अपितु उसका साहसपूर्वक सामना करने के लिए प्रेरित करती हैं। इनकी रचनाओं में नारी को गरिमामय जीवन प्रदान करेन की चेष्टा की गई है तथा उसे केवल भोग्या के रूप में ही नहीं देखा गया है अपितु उसे मानवी के रूप में स्थापित किया गया है। उनके उपन्यासों में चित्रित नारी अपनी सर्वांगीणता पर जोर दे रही है, पुरूषों की दासता को तोडकर स्वतंत्र जीवन को अपनाना तथा अपने हक के लिए लड़ना–बोलना सीख रही है।

आज हम नई सदी के उपन्यास साहित्य पर विचार करते हैं तो पाते है कि यह शनैःशनैः समृद्ध और सशक्त होता जा रहा है, जिसमें महिला उपन्यासकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इनकी नारी विविध संवेदनाओं को जीते हुए पुरूष–वर्चस्व एवं सामाजिक अव्यवस्था के खिलाफ संघर्ष भी करती है और उनका हिस्सा भी बन जाती है।

महिला उपन्यासकारों ने नारी चेतना को जाग्रत कर उसमें नई उर्जा भरने का कार्य किया है। परम्परागत निर्जीव हो रही रूढियों से घिरे पारिवारिक संबंधों की सारहीनता को प्रस्तुत किया है। नारी को चूल्हे–चौके तक सीमित न रखकर उसके व्यक्तित्व के हर कौण का विकास करना तथा से अपनी अस्मिता के प्रति सजग करना ही इनके उपन्यासों में चित्रित नारी का प्रमुख ध्येय है।

नई सदी के कथा साहित्य के क्षेत्र में मृदुला गर्ग का नाम भी एक साहसी लेखिका के रूप में अभरा है। उनके उपन्यास साहित्य का ताना–बाना नारी की विभिन्न परिस्थितियों का मध्य में रखकर बुना गया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखनेवाली मृदुला गर्ग बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभा की धनी है। इनकी पहचान अभिजात्य वर्ग की नारी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से उभरती है। इन्होंने अभिजातवर्गीय नारी के स्वातंत्र्य, प्रेम–विवाह, वैवाहिक जीवन की एकरसता, ऊब, आदि विभिन्न मनःस्थितियों को अच्छी तरह से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। मृदुला गर्ग समसामयिक विषयों की गहरी पड़ताल करती है। उन्होंने अपने जीवनानुभवों की तर्ज पर उपन्यास साहित्य की नींव रखी है। इन्होंने रचनाकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण माना हैं। मृदुला गर्ग अपने उपन्यासों में पुरानी विचारधाराओं और नारी विकास में बाधक परम्पराओं का विरोध करती है। नारी की पूर्ण स्वतंत्रता और परम्पराओं के बंधन से मुक्ति के लिए नारी की शिक्षा, आत्मविश्वास, आर्थिक–आत्मनिर्भरता व उसके अस्तित्व को महत्तव दिया है। इनके उपन्याससों में चित्रित नारी पात्र नारी स्वातंत्र्य में बाधक परम्परावादी सामाजिक रूढियों का विरोध करते हुए, उपेक्षाओं और तिरस्कारों, शोषण व अत्याचारों का विद्रोह करते हुए अपने सशक्त व्यक्तित्व को व्यक्त करती है। इनके उपन्यासों की नारी सशक्त है, जो अपने विकास में बाधक मूल्यों का विरोध करती है। इन्होनें स्त्री को उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि जीवित व्यक्तित्व माना है। इनकी रचनाओं में नारी भोग्या नहीं भोक्ता भी है, जो उनके क्रांतिकारी चिंतन को व्यक्त करता है। इनका मानना है कि नारी की लड़ाई पुरूष के प्रति न होकर रूढ़िगत मान्यताओं से होनी चाहिए। ये शोषण के तमाम कारणों को जड़ से उखाड़ फेकना चाहती हैं। इनके उपन्यास अधिकतर नर–नारी संबंधों के घेरे में हैं। एक और तो इन के अपन्यासों में मनु, माधवी, मनीषा जैसी विशिष्ट वर्ग की नारी समस्याएं हैं, तो दूसरी ओर स्मिता, नर्मदा, स्वर्णा, संगीता का वर्ग है, जो आर्थिक अभावों और समाजिक विसंगतियों दोनों से जूझ रहा है।

मृदुला गर्ग ने अपने अपन्यास लेखन में नारी सशक्तिकरण को महत्व दिया है। इनका सशक्तीकरण से तात्पर्य मानस को सशक्त करने, चेतना, प्रज्ञा, अस्मिता को सशक्त करने से है। ये उन परम्परागत मूल्यों का विरोध करते हुए दिखाई देती है, जो नारी के जीवन को दयनीय बना देते हैं, इनके उपन्यासों की नारी सक्षम व सफल है, जिसे इन्होंने एक मनुष्य के रूप में स्थापित किया है। इनकी रचनाओं में नारी की सामाजिक स्थिति और मानसिकता को गहराई से अंकित किया गया है। इनके उपन्यास ''उसके हिस्से की धूप'' की नायिका मनीषा, एक ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो

विवाह संस्था को नकारते हुए दिखाई देती है तथा विवाह के पश्चात अपनी मर्जी से जीना चाहती है। दाम्पत्य संबंधों की उब से मुक्ति के लिए छटपटाते हुए यंत्र बनने से झंकार करती हुई नजर आती है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व आत्मनिर्भर मनीषा दो पुरूषों के मध्य एकाकीपन को भरने के लिए प्रयास करती है। वह उच्च मध्यम वर्ग की पढी–लिखी विचारवान नारी है, जो अपनी अस्मिता के प्रति सजग होती हुई दिखाई देती है। वह निर्णय लेने में सक्षम है और यह जान जाती है कि जीवन का एकाकीपन किसी पुरूष के प्रेम से नहीं भर सकता है अपितु अपने बल पर, अपने कर्म द्वारा अपने भीतर से ही परिपूर्णता मिलती है। अपने आत्मपरितोष के लिए साहित्य सृजन करके अपनी एक अलग पहचान बनाती है। ''वंशज'' की सविता भी एक व्यवहारकुशल नारी है, जो भारतीय नारी की बदलती छवि को भी अभिव्यक्त करती है। बहुचर्चित उपन्यास ''चित्तकोबरा'' की नायिका मनु के रूप में एक चिंतनशील नारी को अभिव्यक्ति मिली है, जो अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। पति महेश के साथ अपने विवाह बंधन से वह असंतुष्ट है अैर कुंठित रहती है। अन्य पुरूष रिचर्ड से उसका लगाव है, जो कि शारीरिक मोह के कारण न होकर मानसिक तृष्टि की वजह से है। महेश व रिचर्ड दोनों के साथ रहते हुए भी वह अपनी अस्मिता को बनाए रखना चाहती है। अंत में मनु निर्णय लेकर कविताओं द्वारा अपने मन की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए अपने व्यक्तित्व को सार्थक करती है।

मृदुला गर्ग के उपन्यासों की नारी लेखन की तरह ही राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी स्वतंत्र पहचान दर्ज करवाना चाहती है। ''अनित्य'' उपन्यास में काजल की रूचि राजनीति में है तथा उसके मन में देश की राजनीतिक व्यवस्था को सुधारने की ललक है। वह इतिहास को दुहराना चाहती है और जो अधूरा रह गया था, उसे पूरा करना चाहती है। ''मैं और मैं'' की माधवी एक गृहणी होने के साथ–साथ महत्तवाकांक्षी और बौद्धिकता से युक्त लेखिका भी है। तथा लेखकार्य द्वारा अपनी अस्मिता बनाना चाहती है। आर्थिक अभावों का शिकार रहा कौशल कुमार, जो कि एक सशक्त कहानीकार है, उसके द्वारा माधवी आर्थिक व मानसिक शोषण का शिकार होती है परन्तु धूर्त कौशल कुमार के बारे में उसके इरादे जानने के पश्चात वह उसकी हर कोशिश को नाकामयाब कर देती है।

मृदुला गर्ग ने 'कठगुलाब' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास की रचना करके नारी के दमन व शोषण का के साथ–साथ नारी–संघर्ष व चेतना को भी दर्शाया है। स्त्री का पुरूष द्वारा होनेवाला आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण और उसके फलस्वरूप स्त्री की प्रतिक्रिया को चित्रित करते हुए समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनानेवाली, सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करनेवाली, स्वाभिमानयुक्त व प्रत्येक चुनौती को स्वीकार करनेवाली, सामाजिक नैतिकता के पुराने मूल्यों का विरोध करनेवाली तथा प्रतिरोध की भावना से युक्त नारी को चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने चार नारी पात्रों के माध्यम से नारी के जीवन–संघर्ष तथा उसकी सामाजिक व मानसिक पीडा को व्यक्त किया है। ''कठगुलाब'' की स्मिता अपने माता–पिता के देहान्त के पश्चात बडी बहन नमिता के घर में रहती है और वहां अपने जीजा द्वारा बलात्कार का शिकार होती है। वह अपने मन में प्रतिशोध की भावना लिए आगे की पढाई पूरी करती है तथा आंसुओं व चीत्कारों में प्रतिशोध का कतराभर बहाने को तैयार नहीं है, बल्कि अपनी सम्पूर्ण उर्जा को प्रतिशोध के लिए बचाकर रखना चाहती है। स्मिता का यह कथन उसकी प्रबल प्रतिशोध की भावना को व्यक्त करता है, ''फिर एक बलात्कार पहले अस्मिता पर अब शिशु पर मेरी चीख ने अस्पताल के दरो–दरवाजे हीला दिये। बचपन के बंधे–रूंधे बलात्कार के क्षण से आंतों में घुटी जो पडी थी। उसके बाद मैंने ओठ कस लिये। मुटि्ठयां भींचकर भीतर उठती चीखों को वापस घोट दिया। आदत थी। मुझे अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखनी थी। ''प्रतिशोध'' बंदूक से दागी गोली की तरह वह एक शब्द बार–बार दिमाग में बज रहा था। 1 तथा ''कमजोरी पर विजय पाने में बहुत समय निकल गया, पर अब मैं बच्ची नहीं हूं, मजलूम भी नहीं हूं, पूरी तरह समर्थ हूं। मेरे पीछे रॉ की स्त्री शक्ति है। बस जो कुछ करना है, तत्काल करना होगा। ऐसा नहीं कि मैं रोती–कलपती रह जाऊ और मेरा अपराधी, सजा पाने से पहले, एक बार फिर, खुद आनी मौत मर जाए'' 2 असीमा के माध्यम से समाज में लडकी व लडके के बीच किये जाने वाले भेदभाव के खिलाफ आक्रोश को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया गया था – ''कभी सुना है किसी लडकी का नाम असीमा? नहीं न ? लडकों का, अलबत्ता, सुना होगा असीम। सारा खेल मेल शॉविनिज्म का है। सीमा में बंधे रहने का ठेका लड़कियों ने जो ले रखा है। मेरे मां–बाप ने कौन–सा मेरा नाम असीमा रखा था। वहीं घिसा–पिटा, सीमा। मेरे पिद्दी भाई को जरूर असीम नाम दिया था। वह तो मैंने खुद बदल कर असीमा कर लिया। 3 वह अपने उपर व अन्य नारियों पर होनेवाले अत्याचारों का विरोध करते हुए दिखाई देती है। उपन्यास की पात्र दर्जन बीबी भी अपने स्वाभिमान की रक्षा करने में सफल रहती है तथा जटिल संघर्ष करते हुए सिलाई का कारखाना खड़ा करके अपने बच्चों का पालन–पोषण करती है। जब उसका पति दूसरा विवाह कर लेता है, तब भी वह न तो तलाक मांगती और न ही जेब खर्च, उल्टे छाती ठोककर ऐलान कर देती है, कि ''मेरे सिद्धान्त मुझे ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाजत नहीं देते जो किसी और का पति बन चुका हो। 5 उसे किसी प्रकार की दया, सहानुभुति और आर्थिक सहायता प्राप्त करना स्वीकार नहीं है। उपन्यास में

स्मिता के माध्यम से चित्रित किया गया है कि नारी का जीवन परिस्थितियों के कारण कितना जटिल व कष्टमय बन जाता है। शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार यह नारी अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरूषप्रधान समाज से टकरा रही है तथा अपने ऊपर हो रहे अत्याचार, शोषण व अन्याय का खुला प्रतिवाद करती है। विद्रोहिणी व स्वाभिमान से युक्त यह नारी हालात के थपेड़ों से परास्त नहीं होती है बल्कि सशक्त रूप से खडी होकर जीवन–संघर्ष की प्रेरणा देती है। इस उपन्यास की नारी पाश्चात्य नारी की भांति पितृसत्तात्मक सत्ता के विरूद्ध स्वतंत्र घोषणा करती हुई नजर आती है। उपन्यास के चारों नारी पात्र समाज के विभिन्न वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है। स्मिता जैसी पढ़ी–लिखी व स्वयं चुनकर विवाह करनेवाली नारी, मारियान जैसी प्रबुद्ध, कर्मठ, स्वावलंबिनी महिला, नर्मदा जैसी बड़े–बड़े सिद्धान्तों से नितांत दूर देशी औरत, असीमा जैसी घोर नारीवादी तथा मारियान द्वारा सृजित रूथ, रॉकजॉन आदि सभी नारी पात्र किसी न किसी रूप में पुरूषों द्वारा सताए गए है। ये सभी स्त्रियां किसी न किसी रूप में पुरूषों द्वारा शोषित व पीड़ित होने के कारण प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त हैं तथा अपनी सारी उर्जा प्रतिशोध के लिए बचा कर रखना चाहती हैं। यह उपन्यास नारी के विद्रोहिणी, स्वालंबिनी व स्वाभिमानिनी रूप को अभिव्यक्त करता है।

मृदुला गर्ग का नवीनतम उपन्यास 'मिलजुल मन' भी नारी–अस्मिता को परिभाषित करने तथा उसके अस्तित्व को स्वतंत्र रूप से चित्रित करने वाला सशक्त उपन्यास है। इसका कथाकाल आजादी के तुरन्त बाद का है तथा उपन्यास की नायिका गुलमोहर और उसकी बहन मोगरा है। लेखिका ने गुल के उन पक्षों को चित्रित किया है जो एक लड़की, एक मनुष्य, एक प्रेमिका, एक पत्नी और एक कथाकार के अलग–अलग किरदारों में रमे हैं। गुलमोहर के जीवन और व्यक्तित्व की अनगिनत परते लेखिका और मोगरा के संवादों के माध्यम से मुख्य कथा के रूप में उभरते हैं। उपन्यास के केंन्द्र में जो दर्द की अभिव्यक्ति हुई है, वह गुलमोहर के लिए ही हुई है। उपन्यास की दोनों नायिकाओं के जीवन और साहित्य की समानांतर यात्रा, एक दूसरे में गुथकर, एक दूसरे के वजूद की वजह बन कर पूरी करती है। उपन्यास में मृदुला गर्ग ने गुल व मोगरा के बचपन व कौमार्य के साथ–साथ वैवाहिक जीवन के माध्यम से भारतीय मध्यमवर्गीय नारी की समाज में स्थिति का चित्रण किया है। ऊपर से खुश दिखने वाली गुल अंदर से त्रासद जिंदगी जी रही है। ससुराल में पति की नालायकी की तोहमत भी उस के सिर पर थी। शदाबी–कबाबी पति को वश में रखने के लिए तमाम उपाय करती हुई तथा जुडवा बच्चों का व गृहस्थी का बोझ अकेले ढोती हुई गुल जीवन की प्रतिकूलताओं से जूझती हुई दिखाई देती है। उसकी पूर्व की ओजस्वी छवि खंडित होती हुई दिखाई देती है। मोगरा का यह कथन – ''उसके कदम लडखडाए से लगे थे, पर वहम भी हो सकता है। .... नजर गुल की तरफ पलटी तो देखा सहेली उसे करवा थमा रही थी, जल्दी से अर्ध्य दे लो, चांद कब का निकल गया, तब तक उपासी रहेगी।.......... आखिरी शाम बातों –बातों में उसी पड़ोसिन ने कहा था, गुल ने गले की चेन बेचकर स्टील की अलमारी खरीदी थी।'' 6 मोगरा के जीवन में भी कोई स्वच्छंदता नहीं दिखाई देती है। पढी–लिखी मोगरा, जो कि दिल्ली के ही एक कॉलेज में अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका है परन्तु पिता के द्वारा ढूंढे गये पति के साथ बिहार के एक कस्बे मे आकर जीवन व्यतीत करती हुई नजर आती है। जीवन की तमाम विसंगतियों के पश्चात दोनों बहने अपने लेखनकार्य के द्वारा अपने अस्तित्व को बनाए रखती है। इस उपन्यास में आंतरिक जीवन में औरत–मर्द में भेद न करके दोनों को अभिव्यक्त किया गया है। देश के नवस्वाधीन रूवरूप की व्यंजना इस रूप में की गई है कि वह अंततः मानवीय है तथा किसी एक गुट, एक लिंग का पक्षधर नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मृदुला गर्ग के उपन्यासों की नारी दमन–शोषण के साथ–साथ नारी चेतना व नारी संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। इनकी नारी शिक्षा व सामाजिक परिवेश के कारण आधुनिक जीवन बोध से संपृक्त है, जिसके कारण वह पुरानी मान्यताओं से मुक्ति चाहती है। मृदुला जी ने नारी की पूर्ण स्वतंत्रता और परम्पराओं के बंधन से मुक्ति के लिए नारी–शिक्षा, आत्मविश्वास, आर्थिक आत्मनिर्भरता व उसके अस्तित्व को महत्तव दिया है। सदियों से प्रचलित पृिसत्तात्मक समाज में व्याप्त उन नैतिकता व संस्कारों का विरोध किया है जो नारी की स्वतंत्रता व अस्तित्व में बाधक है। इनका नारी–अस्मिता से तात्पर्य नारी के भीतर व्याप्त भय को समाप्त करना है। उसका सर्वांगीण विकास करना है।

उद्धरण :–

1. गर्ग, मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. 2014. पृष्ठ संख्या – 59.
2. वही, पृष्ठ संख्या – 61.
3. वही, पृष्ठ संख्या – 165.
4. वही, पृष्ठ संख्या – 165–166.
5. वही, पृष्ठ संख्या – 167.

6. गर्ग, मृदुला. मिलजुल मन. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. 2013. पृष्ठ संख्या, 317.

संदर्भः—

1. मेघनानी, विशु. आधुनिक हिन्दी उपन्यास के विकास में लेखिकाओं की भूमिका. वाराणसी : विजय प्रकाशन मंदिर. 2005.
2. सियाराम. नई सदी के साहित्यिक व सामाजिक विमर्श. नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन. 2012.
3. खान, शमा. महिला लेखन में चेतना के बदलते स्वर. जयपुर : राज पब्लिकेशन हाउस. 2007.
4. यादव, वीरेन्द्र सिंह. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना. दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन. 2012.
5. पचौरी, सुधीर. उत्तर आधुनिक साहित्य विमर्श. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2005.
6. अग्रवाल, रोहिणी. स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2011.
7. भारद्वाज, हेतु. हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास. जयपुर : पंचशील प्रकाशन. 2005.
8. गर्ग, मृदुला. उसके हिस्से की धूप. नई दिल्ली : राजकमल पेपर बैक्स. 2011.
9. गर्ग, मृदुला. चित्तकोबरा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2013.
10. गर्ग, मृदुला. अनित्य. नई दिल्ली : राजकमल पेपर बैक्स. 2013.
11. गर्ग, मृदुला. वंशज. नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन. 1978.
12 गर्ग, मृदुला. मै और मैं. नई दिल्ली : राजकमल पेपर बैक्स. 2013.
13. गर्ग, मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. 2014.
14. गर्ग, मृदुला. मिलजुल मन. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. 2013.

❒❒❒

संत जम्भेश्वर के चिंतन की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

रामरती माँजू*

भक्तिकाल भारतीय हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्ण युग है। इस समय भारत की पवित्र धरा पर अनेक संत-महापुरुष अवतरित हुए, जिनके दिव्य ज्ञानोपदेश से जनमानस में नयी चेतना का संचार हुआ। इन सभी संतों ने निर्भिकता से, अपने ढंग से जनमानस में चेतना प्रवाहित की। संवत 1508 भादवा बदी अष्टमी को वर्तमान राजस्थान के नागौर जिले में स्थित पीपासर गाँव में ठाकुर लोहट जी के घर संत जम्भेश्वर जी अवतरित हुए। चमत्कारित कृत्यों के प्रदर्शन के कारण जनता ने इन्हें जम्भ जी कहना प्रारम्भ किया। सिद्धि प्राप्त हो जाने के अनन्तर ये मुनीन्द्र जम्भ ऋषि के नाम से विख्यात हुए। ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे। सत्ताईस वर्ष गौ सेवा में व्यतीत करने के पश्चात् माता हंसा व पिता लोहट जी का देहान्त होने पर सम्पूर्ण सम्पत्ति जनहित के लिए लगाकर चौंतीस वर्ष की अवस्था में सम्भराथल पर निश्‍िंचत रूप से विराजमान हो गए। उनका स्थायी निवास सम्भराथल धोरा ही रहा है। यहीं पर उन्होंने 'विश्नोई सम्प्रदाय' की स्थापना की। लोगों को ज्ञान का उपदेश देकर उनकी शंकाओं का समाधान करते रहे। समय-समय पर लोगों को युक्तिपूर्वक जीवन जीने एवं मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा देने के उद्देश्य से अपने शिष्यों के साथ दूर-दूर तक भ्रमण करते रहते थे। लोगों को अहिंसा और परोपकार के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते रहे। मरुप्रदेश संत जाम्भोजी का मुख्य उपदेश स्थल रहा है। अपनी शिष्य मंडली के साथ सम्भराथल से चलकर लालासर गाँव के पास ही जंगल में स्थित एक कंकेड़ी के पास आकर विराजमान हो गए और

---

* शोधार्थी हिन्दी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, (राजस्थान)

इसी जगह उन्होंने संवत 1593 को मार्गशीर्ष बदी नवमी को अपना भौतिक शरीर त्याग दिया।

संतों ने बाह्य शुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि पर अधिक बल दिया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि पाँच विकार मानव शरीर के शत्रु माने गए हैं। मनुष्य अपने मन की चंचलता के कारण इन पाँचों विकारों से घिरा रहता है। इनका परित्याग करने का उपदेश संत जम्भेश्वर जी ने अनेक स्थलों पर दिया है। सदाचार एवं जीवन में समरसता को विशेष महत्त्व दिया है। इन्होंने कहा है कि विष्णु का स्मरण करते हुए, किसी की निंदा व क्रोध न करते हुए सर्वव्यापक परमसत्ता की शरण में चले आओ। सत्य वचनों को अपने जीवन में उतारो, जिससे आपका जीवन सार्थक हो जाएगा।

संत जम्भेश्वर जी की काव्य रचना में अच्छी गति थी, परन्तु दुर्भाग्य से इनकी कोई कृति नहीं मिली है। इनके कुछ उपदेश इनके शिष्यों को कंठस्थ याद थे जिन्हें 'सबद' कहा गया है। इनके द्वारा कहे गए इन 'सबदों' के संग्रह का नाम 'सबदवाणी' है। ये नाथपंथ से प्रभावित माने जाते हैं। इनके 'सबदों' में 'ओंकार जप', 'निरंजन की उपासना', 'अजपा जप', 'गगनमण्डल', 'पंचपुरुष', 'सतगुरु-महिमा', 'जरा-मरण से मुक्ति', 'अनन्य भक्ति' का उल्लेख मिलता है। इन्होंने लोगों को उपदेश देने के लिए अनेक 'सबद' कहे थे, इन्हीं सबदों का संग्रह 'सबदवाणी' में है। मौखिक प्रवृत्ति होने के कारण उनके द्वारा कहे गए 'सबदों' को लोग भूल गए और आज उनके द्वारा कहे गए 120 'सबद' एवं कुछ मंत्र ही उपलब्ध है। 'सबदवाणी' में मरुभाषा का प्रयोग हुआ है तथा इन 'सबदों' की भाषा एक जैसी नहीं है। इसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। इसका प्रमुख संदेश ''जीया नै जुगति अर् मूवा नै मुगति है।''

संत जम्भेश्वर जी के मरुप्रदेश में आविर्भाव होने से पूर्व इस प्रदेश में नाथपंथियों का बोलबाला था। अज्ञानान्धकार में डूबे हुए लोग धर्म, कर्म, पवित्रता, सत्य आदि से दूर होते जा रहे थे। चोरी, झूठ, निंदा, लड़ाई-झगड़ा आदि बढ़ते जा रहे थे। अनेक देवी-देवताओं के नाम से पूजा-पाठ व कर्मकाण्ड किए जा रहे थे। उस समय धर्म का स्वरूप विकृत हो गया था। पाखण्डियों ने प्रदेश के भोले-भाले लोगों को अपने पाखण्ड में जकड़ रखा था। पूजा-पाठ के नाम पर जीवों की बलि तक दी जा रही थी। धर्म के इस विकृत रूप का विरोध संत जम्भेश्वर (जाम्भोजी) ने किया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से जनता को सत्य, अहिंसा व प्रेम के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया।

संत जम्भेश्वर जी परम संतोषी, उदार, सत्यवादी, अहिंसा व प्रेम के समर्थक, सात्विक प्रकृति, बाह्याडम्बर विरोधी, समाज सुधारक तथा ईश्वर के सगुणोन्मुख निर्गुण स्वरूप के उपासक थे। इनके उपास्य तो निर्गुण ब्रह्म ही थे किन्तु इनकी शास्त्रों पर आस्था थी तथा परमेश्वर के अवतारों की मान्यता थी। निर्गुण संतों के ही समान

जम्भेश्वर जी ने परमात्मा (विष्णु) को निराकार, अज, अनादि, सर्वव्यापी, गुणातीत, अगोचर, सूक्ष्म माना है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' को दो भागों में बाँटा है- ''निर्गुण भक्ति काव्य परम्परा और सगुणोन्मुख निर्गुण भक्ति काव्य परम्परा। निर्गुण भक्ति काव्य परम्परा के संवर्धक कबीर रहे हैं तो सगुणोन्मुख निर्गुण भक्ति काव्य परम्परा के जाम्भोजी।''[2]

संत जम्भेश्वर जी ने ऐसे ईश्वर की प्रतिष्ठा की है जो सबके लिए ग्राह्य है। उनके अनुसार सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं तथा वह परमपिता परमात्मा सर्वेश्वर अनादि निराकार भगवान विष्णु का ही नाम है। इस परम सत्ता परमात्मा के शुद्ध स्वरूप चैतन्य आत्मा में पंच भौतिक शरीर की भाँति लहू, माँस, रक्त और धातु नहीं है। इस निर्गुण निराकार सच्चिदानन्द आत्मा के न तो कोई माता है और न ही कोई पिता है तथा न ही कोई रूप व आकृति है। वह सर्वव्यापी है तथा कण-कण में वास करता है। इसी विष्णु का नाम स्मरण करना चाहिए। निर्गुण भक्ति में 'अवतारवाद' का विरोध किया गया है परन्तु जम्भेश्वर जी ने परम सत्तावान भगवान विष्णु के नौ अवतारों का वर्णन किया है- ''नव अवतारों नमो नारायण, तेपण रूप हमारा पीयूं।''[3] ये नव अवतार- मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम-लक्ष्मण, कृष्ण तथा बुद्ध हैं। ये नवों अवतार ही नमन करने योग्य हैं, इनसे अतिरिक्त अन्य जन्मा जीव उपास्य नहीं है। देशकाल, शरीर से भिन्न होते हुए भी तत्व रूप से तो नवों अवतार एक ही हैं। संत जम्भेश्वर जी ने मानव जीवन की सार्थकता विष्णु का स्मरण करते हुए सात्विक कर्म करने में ही मानी है। उनके अनुसार मनुष्य को इस संसार में आकर कुछ प्राप्ति करनी है तो केवल एक विष्णु का ही जप, स्मरण-ध्यान करके तथा जीवन को भी विष्णुमय बनाकर अर्थात आनन्दमय होकर ही कर सकता है। मनुष्य के शरीर में प्राणों का संचार हो रहा है इसलिए वह प्राणी है। अतः उसका कर्तव्य है कि जो उसके प्राणों का आधार सर्वेश्वर भगवान विष्णु है उसका जप करे अर्थात स्मरण करते हुए उन महान प्राणों में अपने प्राण सम्मिलित कर ले।

''ओउम् गुरु चीह्नों गुरु चीह्न पुरोहित, गुरु मुख धर्म बखाणी।''[4]

'ओउम्' यह परमपिता परमात्मा परमेश्वर, सर्वेश्वर, अनादि, निराकार, भगवान विष्णु का ही प्रिय नाम है। नाम से ही नामी का ज्ञान होता है। संत जम्भेश्वर जी ने कहा है कि संसार के लोगों ! आप सभी लोग सर्वदा ही यदि अपना कल्याण चाहते हो तो उस परम पिता परमात्मा परमेश्वर परमसत्ता ओम् नामी गुरु को पहचानो। अपने इस अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ में ही व्यतीत मत करो। संत जम्भेश्वर जी ने अपने मुख से निकले हुए शब्दों को सत्य से साक्षात्कार कराने वाले बताया है तथा सत्य का साक्षात्कार कराने वाले होने के कारण ये उपदेश अर्थात शब्द वेद ही हैं तथा सार तत्व रूप परमेश्वर

का भेद बताने वाले हैं ऐसा उन्होंने अपनी सबदवाणी में कहा है- ''ओउम् मोरा उपाख्यान वेदूं कण तत भेदूं।''[5]

मूलरूप स्वरूप मधुर फलदायी विष्णु की सेवा-जप ही सर्वोपरि है। इसलिए उन्होंने कहा है कि - ''विष्णु-विष्णु भण अजर जरीजै, यह जीवन का मूलूं।''[6] अर्थात हे प्राणी। अपने प्राणों के चलते हुए श्वासों-श्वास ही विष्णु परमात्मा को सदा ही याद रख। उन्हीं विष्णु का उच्चारण करते हुए जप भजन करे और काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दोषों को निकालकर शुद्ध पवित्र हो जा। यही जीवन का मूलमंत्र है। यहाँ सर्वजन के मूल रूप भगवान विष्णु हैं तथा डालियाँ, पत्ते रूप छोटे-मोटे देवी देवता हैं और भूत-प्रेत आदि कुमूल विषवृक्ष हैं। विषवृक्ष रूपी भूत-प्रेतों की सेवा सदा ही जीवन को विषैला बना देगी। डाली-पत्ती रूपी देवी-देवता से कुछ भी लाभ नहीं, परिश्रम व्यर्थ होगा इसलिए सभी के मूल रूप विष्णु की सेवा-जप सर्वोपरि है। जो सर्वव्यापक है।

''ओउम् रूप अरूप स्यूं पिण्डे ब्रह्माण्डे, घट-घट अघट रहायो।''[7]

कबीरदास जी के समान ही संत जम्भेश्वर जी ने भी परमात्मा को घट-घट वासी बताया है तथा एक ही सर्वशक्तिमान सत्ता को स्वीकार किया है जिसे विष्णु नाम से सम्बोधित किया है। उनका मानना था कि रूपवान, अरूपवान प्रत्येक शरीर तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परमात्मा विष्णु ही ब्रह्म रूप से रमण करता है। दृष्ट रूप कण-कण में तथा अदृष्ट रूप कण-कण में परमात्मा विष्णु सर्वत्र तिल में तेल, फूल में सुगन्धी की तरह हर जगह प्रत्येक समय समाया हुआ है। इसलिए परमात्मा सर्वव्यापक है। वह अजर-अमर तथा अविनाशी है जिसके ना ही कोई रूप है और ना ही कोई आकृति ही है। वह चेतन ज्योति की सत्ता अनुभवगम्य है। इसे जानने के लिए देश-घर छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ पर भी आप प्रेमपूर्वक एकाग्रमन से ध्यान करोगे वहीं प्राप्त हो जायेगा।

''अड़सठ तीर्थ हिरदै भीतर, बाहर लोका चारू।''[8]

संत जम्भेश्वर जी ने परमात्मा को बाहर खोजने की बात को असत्य बताया है उन्होंने तो परमात्मा का निवास मनुष्य के हृदय के भीतर ही बताया है। उन्होंने कहा है कि अड़सठ स्थानों में प्रसिद्ध तीर्थ तो बाह्य न होकर हृदय के भीतर ही है। भीतर वाले तीर्थों की अवहेलना करके बाह्य तीर्थों में भटकोगे तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। जिस प्रकार अड़सठ तीर्थ हृदय में प्रवाहित होते हैं, योगी उसमें स्नान करते हैं, उसी प्रकार चेतन सत्ता भी हृदय देश में प्रत्यक्ष रूपेण रहती है। उन्होंने कहा है कि हे प्राणी! इस नित्य निरंजन सच्चिदानन्द रूप तत्व की खोज करके अपने जीवन को तन्मय बना लो। इस संसार पर विश्वास नहीं करना क्योंकि यह तो सदा ही परिवर्तनशील है। यह तो

नाशवान है। इस संसार चक्र से मोक्ष प्राप्त करने के लिए केवल विष्णु का नाम स्मरण ही एक सहारा है। यथा –

"भूली दुनिया मर मर जावै, न चीन्हों करतारू।
विष्णु विष्णु तू भण रे प्राणी, बल बल बारम्बारू।।"[9]

हे प्राणी! ये भूल में भटकी हुई दुनिया मृत्यु को प्राप्त करके दिनों-दिन चली जा रही है। इसे समाप्त होते हुए लोग देखते हैं फिर भी स्वयं जीने की आशा करते हैं। सम्पूर्ण कर्ता सर्वेश्वर स्वामी को नहीं पहचानते हैं। इस जीवन-रहस्य को जानने तथा जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटने के लिए पूरा बल अर्थात ध्यान लगाकर बारम्बार अबाध गति से परमात्मा विष्णु का जप स्मरण कर वही तेरे पापों को काटेगा तथा तुझे इस संसार के चक्र से बाहर निकालेगा।

नाथों और सिद्धों के समान इनका परमात्मा (ईश्वर) भी घट-घट वासी है, जिसका साक्षात्कार अन्तर्मन को ही होता है। उस निर्गुण, निराकार, ज्योतिर्स्वरूप परमात्मा को आत्मज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है। वह प्रत्येक कण-कण में व्याप्त सबका स्रष्टा एवं पालनकर्ता है। वह सबमें और सब उसमें हैं। अपनी लीला के विस्तार से वह रूपात्मक जगत का सृजन करता है और जब चाहता है इस सृष्टि को अपने में समेट लेता है।

संत जम्भेश्वर जी ने आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए तथा सत्य का पथ दिखाने के लिए सतगुरु का महत्त्व प्रतिपादित किया है। सतगुरु मिलकर ही सत्य का पथ दिखाता है तथा भ्रांतियाँ दूर कर देता है। यथा–

"सतगुरु मिलियो सत पंथ बतायो, भ्रान्त चुकाई, अवर न बुझबा कोई।"[10]

जब तक गुरु की शरण ग्रहण करके उनके कथनानुसार जीवनयापन नहीं करेगा तब तक परमात्मा के गूढ़ रहस्य को नहीं जान पाएगा। मनुष्य के अन्दर बैठे हुए मोह, भ्रम जनित अज्ञानता की औषधि गुरु के उपदेश ही हैं जिन्हें सुनकर उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर काम, क्रोध, मोह को त्याग कर ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है। इनकी साधना अन्तः साधना है और इसके लिए गुरु के पथ प्रदर्शन और कृपा का होना आवश्यक है। जीवनरूपी नाव को संसार रूपी सागर से पार उतारने के लिए सही दिशा-निर्देश देने वाला गुरु ही है। जो परमगुरु जीवनमुक्त, संतोषी और पवित्र अन्तःकरण वाला है वही मनुष्य की जीवन नैया को संसार सागर से पार लगा सकता है। यथा –

"हिरदै मुक्ता कंवल संतोषी, टेवा ही अति टेऊ।
चढ़ि कर बोहियै भूंये जल पारि लंघावे, सो गुरु खेवट खेवा खेहूं।।"[11]

संत जम्भेश्वर जी ने परमात्मा से मिलन अर्थात संसार से मुक्ति का आधार अंधविश्वास से प्रेरित बाह्याडम्बर को न मानकर सात्विक कर्म करते हुए विचारपूर्ण भक्ति को माना है। पाप, लोभ, अत्याचार और अनाचार को उन्होंने धर्म विरुद्ध बताया है। प्रेम, दया व अहिंसा के साथ ही शील व संतोष को जीवन का मूल मंत्र माना है। यद्यपि जम्भेश्वर जी निर्गुण पंथी थे, तब भी उनके विचार दर्शन का आधार प्रेम और अनन्य भक्ति थे। इनके समय में अनेक धर्म और सम्प्रदाय फैले हुए थे जिनमें बाह्याचारों की प्रधानता थी और धर्म का वास्तविक तत्व उन्हीं के आवरण में लुप्तप्राय था। उन्होंने धार्मिक साधकों में नाना प्रकार की साधनाओं का प्रचलन देखा परन्तु इन साधकों में विष्णु अर्थात् ईश्वर के नाम स्मरण में लीन किसी को भी न पाया। उस समय मुनि, पीर, योगी, जंगम और सन्यासी, ब्राह्मण, मुल्ला आदि सभी मोह-माया के चक्कर में फंसे हुए थे। उन्होंने सभी जगह पर घूमकर देखा था कि सभी सम्प्रदाय अन्धानुसरण में लीन थे तथा अपने ही सम्प्रदाय को सर्वश्रेष्ठ समझते हुए दूसरों को हीन बतला रहे थे, जिसके कारण घृणा व द्वैषभाव फैल रहा था।

भक्तिकाल में जातिगत संकीर्णता और बाह्याडम्बरों के कारण समाज का विकास अवरूद्ध हो रहा था। यद्यपि संतों के जीवन का उद्देश्य ईश्वर की भक्ति करना था तथापि उनके समय में समाज की जो दयनीय स्थिति थी और अज्ञानता के कारण भोली-भाली जनता का शोषण हो रहा था, उसे वे अनदेखा नहीं कर सके। समाज में फैली सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक आडम्बरों से लोगों को बाहर निकालने के लिए जीवन का सही रास्ता दिखाना आवश्यक था। जाति-पाँति के संकीर्ण भाव तथा बाह्याडम्बरों के द्वारा उस असीम व सर्वव्यापी ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए सभी संतों ने इनका विरोध किया।

संत जम्भेश्वर जी भी जाति-पाँति के कट्टर विरोधी थे। जाति-पाँति के भेद को निस्सार मानते हुए उन्होंने कहा है कि सभी मनुष्यों में वही श्वास है, वही माँस एवं वही रक्त है, फिर कोई उत्तम और कोई मध्यम और कोई निम्न कैसे हो सकता है। जाति एवं धर्म का अहं करना व्यर्थ है, जिस प्रकार घुन अनाज को थोथा कर देता है उसी प्रकार जाति और धर्म का अहं मनुष्य को निर्बल बना देता है। यथा-

"दीन गुमान करैलो ठाली। ज्यूं कण घातै घुण हांणी।"[12]

जाति-पाँति को मिटाने के लिए संत जम्भेश्वर ने अपने द्वारा स्थापित विश्नोई धर्म के द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिए थे। उन्होंने मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार जाति को न मानकर कर्म को माना है। कोई भी मनुष्य जाति से महान नहीं बनता है वह तो अपने द्वारा किए गए सत्कर्मों से ही महान बनता है। जाति-पाँति के भेदभाव के साथ ही भक्तिकाल में बाह्याडम्बर भी व्याप्त थे। इस काल के सभी संतों ने बाह्याडम्बरों का

खुलकर विरोध किया है। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, रोजा-नमाज एवं अजान आदि अनेक आडम्बर हिन्दु और मुसलमान दोनों ने ही अपनाए हुए थे। पाखण्डी धर्म गुरुओं ने अपने स्वार्थों के कारण मानव-मानव के बीच जाति व धर्म की दीवार खड़ी कर दी थी। अविवेक के कारण सामान्य जनता इससे दिग्भ्रमित हो रही थी। ब्राह्मण, मुनि, संन्यासी आदि उस समय धर्म के सच्चे रास्ते को भूलकर पाखण्डों को अपनाये हुए थे। संत जम्भेश्वर जी ने ऐसे ही लोगों का विरोध करते हुए तथा फटकारते हुए उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। उन्होंने मूर्तिपूजा, धूणी रमाना, अजान देना, धर्म के नाम पर पशु बलि देना आदि का डटकर विरोध किया है। मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए उन्होंने कहा है -

''ओउम् धवणा धूणै पाहण पूजै, बे फरमाई खुदाई।
गुरु चेले के पाएं लागै, देखो लोग अन्यायी।।''[13]

अर्थात निराकार, सर्वशक्तिमान तत्व रूप परमात्मा का स्मरण करने के स्थान पर कुछ सन्यासी धूणी धूकाते हैं तथा पत्थर की मूर्ति के पास बैठकर सिर हिला रहे हैं तथा शरीर में देवता लाने का ढ़ोंग कर रहे हैं। यह उनका मनमुखी मार्ग है। जन साधारण को भ्रमित करके अधोगति में पहुँचा रहे हैं।

''ओउम् आयसां काहे काजै खेह खेह भकरुड़ो, सेवो भूत मसाणी।''[14]

अर्थात् इस शरीर पर राख की विभूति लगाकर अपनी तेजोमय काया को धुमिल क्यों कर रहे हो ? परमात्मा ने जो रंग-रूप दिया है उसे तुम क्यों छिपा रहे हो ? श्मशान में बैठकर भूत-प्रेत की सेवा करने से क्या लाभ है ? तुमने अपने अन्तःकरण को, जो ज्ञान को ग्रहण करने वाला है उसको तो उल्टा कर रखा है उसमें ज्ञान कहाँ से ठहरेगा ? माला, तिलक आदि का विरोध करते हुए उन्होंने कहा है-

''ओउम् रे रे पिण्ड स पिण्डू, निरधन जीव क्यों खंडूं, ताछै खंड बिहंडु।''[15]

संत जम्भेश्वर जी ने कहा है कि सभी जीवों का पंचभौतिक पिण्ड अर्थात् शरीर समान है। कोई ठुमरा, माला, तिलक से इस शरीर में कोई परिवर्तन आने वाला नहीं है। हे पाखण्डी! तू ने इस पार्थिव दुर्गन्धमय शरीर को ही संवारा है, इसी को ही महत्ता दी है तथा इसमें रहने वाले जीव को खंडित कर दिया है। तुमने परम तत्व की खोज तो नहीं की परन्तु कच्चे घड़े सदृश इस शरीर पर भी अभिमान किया है। यदि गन्तव्य धाम तक पहुँचना है तो गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलकर उस परमतत्व की खोज करो। उन्होंने प्रत्यक्ष व स्वानुभव को ही प्रमाण स्वरूप माना है। सभी संतो के समान बाह्याडम्बरों का परित्याग कर आत्मचिंतन पर बल दिया है। यथा-

''तन मन धोइयै, संजम होइयै, हरष न खोइयै।
ज्यों-ज्यों दुनिया करै खवारी, त्यों-त्यों किरिया पूरी।।''[16]

अर्थात् तन, मन, वचन, कर्म से व्यक्ति को पवित्र और संयमी व संतोषी होना चाहिए। इसके साथ ही प्रतिकूल परिस्थितियों में व्यक्ति को प्रसन्नचित्त रहकर अपना कर्म करते रहना चाहिए।

संत जम्भेश्वर जी ने हिन्दुओं के बाह्याडम्बरों व मूर्ति पूजा के साथ-साथ मुसलमान धर्मपंथियों के बाह्याडम्बरों व अंधविश्वासों का भी विरोध किया है। उनके द्वारा किए जाने वाले हज, नमाज व जीवधारियों का माँस भक्षण करना अनुचित बताया है। उन्होंने कहा है कि यदि तुम्हारे दिल में सच्चाई है तो काबे की हज निकट ही है। जब तुम्हारा अन्तःकरण नजदीक ही है तो फिर उसे दूर समझकर इतनी जोर से आवाज क्यों लगाते हो। वह अल्लाह तो तुम्हारे दिल में ही है। यथा-

"ओउम् दिल साबत हज काबो नैड़ै, क्या उलबंग पुकारो।
सीने सरवर करो बन्दगी, हक्क निवाज गुजारो।।
X X X
आप खुदाय बंद लेखौ मांगै, रे वीन्है गुन्है जीव क्यूं मारो।
X X X
थे चढ़-चढ़ भींते मड़ी मसीते, क्या उलबंग पुकारो।
कारण खोटा करतब हीणा, थारी खाली पड़ी निवाजूं।।"[17]

अर्थात् उस परमपिता परमेश्वर की प्राप्ति करना चाहते हो तो हृदय में प्रेम और दीनता से पुकार करो, यही सच्ची प्रार्थना होगी। नमाज का अर्थ ही है कि हम अपने हृदय को शुद्ध परोपकारमय बनाएं। स्वयं खुदा आपसे पूछेगा कि उन जीवों ने तेरा क्या अपराध किया था जिनको तुमने मार डाला। यदि तूं किसी को जीवनदान नहीं दे सकता है तो मृत्यु देने का तुम्हें क्या अधिकार है ? जीवधारियों का माँस भक्षण करके मेड़ी और मस्जिदों पर चढ़कर खुदा को पुकारते हो, क्या वह खुदा तुम्हारी बात को कभी सुनेगा ? वह खुदा तुम्हारे इन खोटे कर्मों को देख और सुन रहा है। इस लोक दिखावा रूप को छोड़कर अपने मन रूपी मसीत में ही शांति तथा सावधानीपूर्वक नमाज पढ़िए। वह अन्तर्यामी खुदा तो घट-घट की बात जानने वाला है, उसे खड़े होकर जोर-जोर से पुकारने की आवश्यकता नहीं है।

"ओउम् सुण रे काजी, सुण रे मुल्ला, सुण रे बकर कसाई।
किणरी थरपी छाली रोसो, किणरी गाडर गाई।।
X X X
ओउम् बिसमिल्ला रहमान रहीम, जिहिं के सदके भीना भीन।
X X X

ओउम् महमद महमद न कर काजी, महमद का तो विषम विचारूं।

महमद हाथ करद जो होती, लोहै घड़ी न सारूं।।''[18]

संत जम्भेश्वर जी बकरी आदि निरीह जीवों की हत्या करने वालों से वे पूछना चाहते हैं कि तुम्हें किसने यह विधान बताया है जिससे कि तुम इन बेचारे जीवों पर छूरी चलाते हो। वर्तमान में तुमने जो जीव हत्या का मार्ग अपनाया है, यह धर्म मार्ग नहीं था। अपने कुकर्मों पर पर्दा डालने के लिए तू मुहम्मद का नाम बार-बार मत ले। क्योंकि ऐसे हिंसक वृत्ति रखने वालों, तुम्हारे विचारों और कर्मों से मुहम्मद का कोई मेलजोल नहीं है। मुहम्मद जैसे महापुरुष तो ज्ञानरूपी खडग ही रखते थे जिससे लोगों के पाप नाश किया करते थे। उन्होंने तो सद्मार्ग अपना करके स्वयं का तथा अन्य सिद्ध पुरुषों का भी उद्धार किया था। शुभ कर्तव्य करना ही कलमा रखना है और प्रतिज्ञा निभाना ही कुरान पढ़ना है तथा यही पीर पैगम्बरों का आदेश है। जो व्यक्ति अपने अन्तःकरण में छिपे हुए अवगुणों को खोजकर बाहर निकाल देता है, वही सच्चा मुसलमान है तथा वही दरवेश है।

संत जम्भेश्वर जी आध्यात्मिक एकता के साथ-साथ मानव समाज में भी एकता स्थापित करना चाहते थे, जिससे समाज का विकास हो सके। कबीर, रैदास, दादू, गुरुनानक आदि के समान उन्होंने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास किए थे। उनकी दृष्टि में अल्लाह और विष्णु अर्थात् ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। दोनों का ही हित चाहने के उद्देश्य से ही उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में व्याप्त आडम्बरों का विरोध किया तथा पाखण्डियों को उनके बाहरी दिखावे के लिए फटकारा।

भक्तिकाल के सभी संतों में लोक कल्याण की भावना अत्यन्त प्रबल रही है। संत जम्भेश्वर जी ने भी अपने 'सबदों' द्वारा मनुष्य को परोपकार की ओर प्रेरित करने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने लोक कल्याण के कार्य को मनुष्य का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य माना है। उनके अनुसार संसार में मनुष्य को अपने मन में परोपकार का भाव रखना चाहिए। इसके लिए उन्होंने दान देने पर भी बल दिया और बताया कि मनुष्य को अपने सामर्थ्यानुसार दान अवश्य देना चाहिए। दानवीरों की परम श्रृंखला में राजा हरिश्चन्द्र को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। यथा-

''तारा दे रोहितास हरिचन्द, काया दशबन्ध दियो।''[19]

उन्होंने कहा कि राजा हरिश्चन्द्र, उनकी पत्नी तारा एवं सुपुत्र रोहिताश ने भी धर्म सत्य की रक्षार्थ अपना सभी कुछ दान देकर अपनी काया को भी दान में दे दिया। किन्तु निष्काम भाव से दिया हुआ उनका दान फलीभूत हुआ, जिससे अपने आप सहित प्रजा का भी उद्धार किया। यह उद्धार तो ज्ञान, धन एवं स्वकीय काया समर्पण भाव से ही सम्भव हुआ। उन्होंने संतोष, दान, दया, परहित एवं अहिंसा आदि का समर्थन किया है।

संत जम्भेश्वर जी की 'सबदवाणी' में संगृहीत उनके 'सबद' अर्थात उनके द्वारा दिए गए उपदेश आज भी समाज के लिए प्रासंगिक हैं। उनकी सम्पूर्ण वाणी मानव की उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत है जिनकी अभिव्यक्ति सत्य, दृढ़ता और सरलता से प्राणान्वित है। इनके 'सबदों' में सहयोगपूर्ण मानवता की प्रबल प्रेरणा विद्यमान है। मानवीयता की दृढ़ नींव पर समाज का उन्नत गढ़-निर्माण ही जाम्भोजी का जीवन लक्ष्य था, जिसके लिए उन्होंने विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की। उनका लक्ष्य विष्णु-भक्ति समन्वित मानव-भावनाओं को मनुष्य मात्र को हृदयंगम कराकर उसे मानव समाज का योग्याधिकारी बनाना था। उनकी 'सबदवाणी' आज भी समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है।

समाज को सुधारने से उनका तात्पर्य समाज के घटक व्यक्ति के आचरण को सुधारना है। धर्म-पालन व संस्कृति-सेवन से अभिप्राय तदनुकूल आचरण निभाना है। उनकी वाणी नीति के उपदेशों से युक्त है। उनके अनुसार धर्म की नींव व्यक्ति के आचरण में है, तभी धार्मिक सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए उन्होंने लौकिक आचरण अर्थात व्यवहारों का वर्णन किया है। उनकी वाणियों का सम्बन्ध विशेष रूप से लौकिक आचरण से ही है। उनका उद्देश्य बाहरी परिस्थितियों को सुधारना नहीं बल्कि मनुष्य की आन्तरिक उन्नति द्वारा उसके स्वभाव और रुझान को बदलना था। उन्होंने घृणा के स्थान पर प्रेम को, द्वेष के स्थान पर सहनशीलता को तथा मद्यपान के स्थान पर विष्णु के नाम रूपी रस पीने की प्रेरणा दी। उन्होंने अपने चिंतन तथा सूक्ष्म निरीक्षणों के आधार पर श्रेष्ठतर मान्यताओं को स्थापित किया। इसके लिए उन्होंने लोक कल्याण, अहिंसा, व्यभिचार न करना तथा नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना आदि के लिए लोगों को सचेत किया।

संत जम्भेश्वर जी ने अपने आसपास की स्थिति को जानने के लिए अनेक स्थानों का भ्रमण किया था, जिससे उन्हें पता चला कि वहाँ के लोग अज्ञानी थे। खान-पान भी भ्रष्ट था। दया-दान का भी अभाव था। सत्य-झूठ का ज्ञान नहीं था। कपट-कुलोभ के कारण पाप के वशीभूत हो जाते थे। उन्होंने ऐसे सभी लोगों को ज्ञान का व सत्य का मार्ग दिखाने के लिए तथा उनके अन्तःकरण को शुद्ध करके उनमें व्याप्त दुर्गुणों व दुर्व्यसनों को दूर करके सद्गुणों को स्थापित करने के लिए ही विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की, जिसमें जम्भेश्वर जी ने उन्हें उनतीस नियमों की संहिता बतलायी जो एक उत्कृष्ट व समाज निर्माण के लिए उपयोगी है। उनके द्वारा बताये गये 29 नियम इस प्रकार हैं - तीस दिन तक जच्चा घर का कोई काम न करे, पाँच दिन तक रजस्वला स्त्री घर के कार्यों से अलग रहे, प्रातःकाल स्नान करे, शील का पालन करे, संतोष धारण करें, बाहरी व आन्तरिक पवित्रता रखें, प्रातः तथा सायं संध्या वन्दना करें, पानी, वाणी, ईंधन व दूध को छानकर प्रयोग करें, चोरी न करें, निंदा न करें, झूठ न बोलें, वाद-विवाद न करें, अमावस्या का व्रत रखें, विष्णु का जप करें, प्राणी मात्र पर दया करें, हरा वृक्ष न काटें,

काम, क्रोध, मद, लोभ एवं मोह आदि को अपने वश में रखें, रसोई अपने हाथों से बनाएं, बैल बधिया (नपुंसक) न करवायें, अमल न खावें, तम्बाकू का प्रयोग न करें, भांग न पीवें, मांस न खावें, मदिरा न पीवें, नीले वस्त्र का प्रयोग न करें।

संत जम्भेश्वर जी द्वारा बताये गये ये नियम विश्नोई समाज की पहचान के आधार हैं। ये नियम विश्नोई पंथ की आचार सँहिता हैं। यह पंथ मानव मात्र के लिए स्थापित किया गया तथा बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों के लोगों को सम्मिलित किया गया। ये नियम न केवल विश्नोई समाज के लिए उपयोगी हैं अपितु पूरी मानव जाति के लिए उपयोगी हैं। इनका सम्बन्ध किसी काल, स्थान एवं जाति विशेष से न होकर सम्पूर्ण मानव जाति से तथा सार्वकालिक है।

वर्तमान समय में समाज में चारों ओर विसंगतियाँ व्याप्त हैं। असमानता, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, पशु बलि, मद्यपान जैसी कुरीतियाँ समाज में दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। चारों ओर मानवता का हनन हो रहा है। संत जम्भेश्वर जी की 'सबदवाणी' में दिए गए उपदेश तथा उनके द्वारा बताए गए उनतीस नियम वर्तमान सन्दर्भ में उसी प्रकार प्रासंगिक हैं जिस प्रकार फूल के मुरझा जाने पर भी उसकी खुशबू बनी रहती है तथा पतझड़ के समय में भी वृक्ष का अस्तित्व बना रहता है। उनके द्वारा बनाए हुए प्रकृति संरक्षण के नियम का पालन करके हम दूषित हो रहे पर्यावरण के असंतुलन को वृक्ष व जीव बचाकर संतुलित कर सकते हैं। उनके द्वारा दिए गए नशामुक्ति के उपदेशों से समाज में फैल रहे नशे के नासूर को समाप्त किया जा सकता है।

उनका चिंतन सम्पूर्ण मानवता के लिए हितकर है। उनके उपदेशों की सार्थकता प्राणी मात्र के लिए है। श्रेष्ठ समाज का निर्माण शीलवान मनुष्यों के द्वारा ही हो सकता है, इसलिए संत जम्भेश्वर जी ने 'सबदवाणी' में मानवीय गुणों का समर्थन किया है तथा अवगुणों का विरोध किया है। सुखी जीवनयापन के लिए उन्होंने संतोष को महत्त्व दिया है। मनुष्य जब संतोष धारण कर लेता है तो वह झूठ बोलने व गलत कार्य करने से बच जाता है। उन्होंने मनुष्य के आचरण की शुद्धता पर बल दिया है क्योंकि आन्तरिक पवित्रता से ही मनुष्य-मन, काम, क्रोध, मोह, लोभ, झूठ, अहंकार आदि से दूर रहेगा। नित्य हवन करने से भी घर का तथा बाहर का पर्यावरण शुद्ध रहता है। नित्य के हवन से हम पर्यावरण को शुद्ध रखकर प्राणीमात्र का भला कर सकते हैं। हवन की अग्नि से वातावरण में फैले हुए विभिन्न रोगों के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं जो हमें स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संत जम्भेश्वर जी द्वारा बताया हुआ क्षमा व दया का भाव समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है। क्षमा मनुष्य का सबसे बड़ा मानवीय गुण है। क्षमा की शक्ति असीम है। हम जो काम किसी शक्ति या दंड से नहीं कर सकते हैं, उसे क्षमा के द्वारा किया जा सकता

है। क्षमा करने वाले व्यक्ति के हृदय में दया का होना भी आवश्यक है क्योंकि दया के बिना हम द्रवित नहीं हो सकते हैं। समाज में व्याप्त बुराइयाँ चोरी, निंदा, झूठ आदि भी समाज का वातावरण दूषित करते हैं। यदि मनुष्य इनसे दूर रहे तो अनेक बुराइयों से बच सकता है और अपने चरित्र को उज्ज्वल बना सकता है। अहंकार के वशीभूत होकर मनुष्य अपनी बात को सही मानता है और उसे स्थापित करने के लिए वाद-विवाद करता रहता है। वाद-विवाद का अन्त प्रायः झगड़े में होता है। अतः सुख व शान्ति के लिए वाद-विवाद को त्यागना आवश्यक है।

अमल, तम्बाकू, भाँग, मदिरा आदि के सेवन से मानव शारीरिक व मानसिक के साथ-साथ आर्थिक रूप से भी कमजोर होता जाता है। इसके सेवन से मनुष्य अनेक बीमारियों का शिकार हो जाता है। दमा, खाँसी, टी.बी., कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों का एक कारण तम्बाकू भी है। इसके सेवन से मनुष्य के धन एवं स्वास्थ्य की हानि तो होती ही है, साथ ही गृह कलह के कारण परिवार की सुख-शांति भी भंग हो जाती है। इसी तरह की हानि के कारण संत जम्भेश्वर जी ने इन सभी प्रकार के नशे का सेवन न करने का नियम बनाया है। आधुनिक समय में डॉक्टर एवं वैज्ञानिक भी तम्बाकू, मदिरा आदि के नशे से दूर रहने की चेतावनी देते हैं।

आज विश्व में नशाखोरी, पर्यावरण प्रदूषण, आतंकवाद, हिंसा व भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ व्याप्त हैं। संत जम्भेश्वर जी द्वारा मानव समाज को जो कल्याणकारी आचार संहिता दी गई है उसका पालन करके हम अपने सांसारिक जीवन को सुखी बना सकते हैं। उनके द्वारा बताये गए नियम पूर्णतः व्यावहारिक व वैज्ञानिक हैं। उनका चिंतन सम्पूर्ण मानवता के लिए हितकर है। उनके विचार एक सभ्य व सुसंस्कृत समाज के निर्माण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी वाणियाँ हमारी युवा पीढ़ी को नैतिकता एवं आध्यात्मिकता के मार्ग की ओर उन्मुख करके उनके चरित्र में उत्तम गुणों का समावेश करने में सहायक हैं। उनके ये उपदेश आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं, उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने तत्कालीन समय में थे।

संदर्भ सूची

1. बनवारी लाल साहू, विश्नोई पंथ और साहित्य. जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2014, पृष्ठ-39-40
2. कृष्णलाल विश्नोई, गुरु जांभोजी का जीवन दर्शन, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2014, पृष्ठ-12
3. आचार्य कृष्णानन्द, जम्भसागर, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2015. पृष्ठ-31.
4. वही, पृष्ठ-22
5. वही, पृष्ठ-47

6. वही, पृष्ठ-51
7. वही, पृष्ठ-56
8. वही, पृष्ठ-57
9. वही, पृष्ठ-88
10. वही, पृष्ठ-95
11. वही, पृष्ठ-51
12. आचार्य कृष्णानन्द, सबदवाणी, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2014, पृष्ठ-127
13. आचार्य कृष्णानन्द. जम्भसागर, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2015, पृष्ठ-161
14. वही, पृष्ठ-96
15. वही, पृष्ठ-93
16. वही, पृष्ठ-173
17. वही, पृष्ठ- 41-42
18. वही, पृष्ठ- 40-42
19. वही, पृष्ठ-71

अन्य सहायक ग्रंथ

1. आचार्य कृष्णानन्द, जम्भपुराण, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2013
2. सुरेन्द्र कुमार विश्नोई, राजकुमार सेवक, गुरु जांभोजी का वैश्विक चिंतन, 2013
3. कृष्णलाल विश्नोई, मांगीलाल व सुरेन्द्र कुमार, हिन्दी भक्ति काव्यधारा और जांभाणी साहित्य, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2015
4. कृष्णलाल विश्नोई, सुरेन्द्र कुमार व बनवारी लाल साहू, जांभाणी साहित्य : विविध आयाम, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2012
5. नगेन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 1998

❑❑❑